आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसूरिग्रथितः

आख्यानकमणिकोशः

श्रीमदाम्रदेवसूरिसन्दृब्धया वृत्त्या समलङ्कृतः ।

भाग - ३

संशोधकः पुनःसम्पादकश्च :
मुनिपुण्यविजयः

पुनःसंपादन - संस्कृत छाया :
मुनि पार्श्वरत्नसागरः

आचार्य ओमकारसूरि ज्ञानमंदिर ग्रंथावली क्रमांक-८१

आचार्यश्रीनेमिचन्द्रसरिग्रथितः

आख्यानकमणिकोशः

श्रीमदाम्रदेवसूरिसन्दृब्धया वृत्त्या समलङ्कृतः ।

भाग - ३

संशोधकः पुनःसम्पादकश्च
मुनिपुण्यविजयः

: पुनःसंपादन - संशोधन - संस्कृत छाया :
मुनि पार्श्वरत्नसागरः

: प्रकाशक :
आ. ॐकारसूरी आराधना भबन
आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर, गोपीपुरा, सुरत

वीर संवत् : २५३८ विक्रम संवत् : २०६९ इस्वीसन् : २०१३

ग्रंथ का नाम : **आख्यानकमणिकोशः (संस्कृत छाया सह)**

भाग : **३**

आवृत्ति : **प्रथम सं. २०६९**

प्रकाशक : **आ. ॐकारसूरी आराधना भवन**
गोपीपुरा, सुरत

मूल्य : **३०० रूपये**

प्रत : ५००

प्राप्तिस्थान :
- **आचार्य श्रीॐकारसूरिज्ञानमंदिर**
आचार्य श्रीॐकारसूरि आराधनाभवन,
सुभाषचोक, गोपीपुरा, सुरत
फोन : ९८२४१५२७२७
E-mail : omkarsuri@rediffmail.com / mehta_sevantilal@yahoo.co.in

- **आचार्य श्रीॐकारसूरि गुरुमंदिर**
वावपथकनी वाडी, दशापोरवाड सोसायटी,
पालडी चार रस्ता, अमदावाद-३८० ००७
फोन : ०७९-२६५८६२९३

- **विजयभद्र चेरिटेबल ट्रस्ट**
पार्श्वभक्तिनगर, नेशनल हाईवे नं. १४,
भीलडीयाजी, जि. बनासकांठा-३८५५३५
फोन : ०२७४४-२३३१२९, २३४१२९

- **सरस्वती पुस्तक भंडार**
हाथीखाना, रतनपोल, अमदावाद-३८० ००१

मुद्रक : **किरीट ग्राफीक्स**
४१६, वृन्दावन शोपींग सेन्टर, रतनपोळ, अमदावाद-१, दूरभाष : २५३३००९५

प्रकाशकीय

आख्यानकमणिकोश बृहद्गच्छीय सैद्धांतिक शिरोमणि आ.श्री नेमिचन्द्रसूरिजीओ विक्रमना बारमा सैकामां रचेलो उपदेशकथाओनो अनूठो संग्रह छे.

मात्र बावन गाथामां १४६ कथाओनो उल्लेख कर्यो छे. आ 'आख्यानकमणिकोश' ग्रंथ उपर तेओना ज विद्वान शिष्यरत्न आ.आम्रदेवसूरिजीओ वि.सं. १२०९मां १४००० श्लोक प्रमाण वृत्ति रची छे. आ वृत्तिमां मूळ ग्रंथनी बधी गाथाओनी संस्कृतमां व्याख्या तो छे ज ते उपरांत ग्रंथकारे गाथाओमां उल्लिखित बधी कथाओने अति मनोहर शैलिमां रजू करी छे. मोटा भागनी (१२७ मांथी ११७) कथाओ प्राकृत-पद्यमां छे. बे-त्रण कथाओ क्रमांक २३, ४३ (७३ आंशिक) १४, १७, १२४ आ त्रण कथाओ संस्कृत-गद्यमां छे. ३९, ६४, १०९, १२२ क्रमांकनी कथाओ संस्कृत-पद्यमां छे.

आ ग्रंथनुं संपादन आगमप्रभावक मुनिश्री पुण्यविजयजी म.सा.ओ करेलुं. प्राकृत ग्रंथ परिषद् तरफथी ओनुं प्रकाशन वि.सं. २०१८मां थयेलुं. मुनिश्री पार्श्वरत्नसागरजीओ ग्रंथनी बधी ज प्राकृत कथाओनी संस्कृत छायारचनापूर्वक पुनः संपादन कर्युं छे. आ ग्रंथने ४ विभागमां प्रगट करतां अमे अत्यंत आनंद अनुभवीओ छीओ. विदुषी सा. महायशाश्रीजीओ बधा प्रुफो जोई आप्या छे. संस्कृत छायानुं संशोधन कर्युं छे.

आ ग्रंथ उपर श्रीविमल बाफणा Ph.D. करी रह्या छे ओवा समाचार मुनिश्री वैराग्यरति वि.म. द्वारा मळतां आ.मुनिचन्द्रसूरि म.ओ श्री बाफणाने प्रस्तावना लखवा जणावेल जे अहीं भाग-१मां प्रगट थई रही छे.

आख्यानकमणिकोशना प्रथम अधिकार (कथा १ थी ४) अने तेनो डो. तारा डागाओ करेल हिन्दी अनुवादनुं प्रकाशन ई.स. २०१३मां प्राकृत अध्ययन शोध केन्द्रम् राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम् जयपुर द्वारा प्रगट थयुं छे. आ संस्करणमां डो. तारा डागानो लेख प्राकृत कथासाहित्य परंपरा एवं आख्यानकमणिकोशमांथी केटलीक उपयोगी विगतो पण डो. तारा डागाना नामे ज प्रथम भागमां प्रकट थई रही छे. आ माटे अमे डो. तारा डागा अने संस्थाना आभारी छीए. ग्रंथ प्रकाशन माटे बधा लाभार्थी संघोना अमे आभारी छीओ.

अभ्यासीओ आ ग्रंथनो अभ्यास करी आत्मकल्याणने वरे ओज प्रार्थना.

ली.

प्रकाशक

• • •

आवकार

'अक्खाणयमणिकोस' (आख्यानकमणिकोश) प्राकृत कथासाहित्यनुं अेक अणमोल नझराणुं छे. प्राकृत ग्रंथोनो अभ्यास वधारवा संस्कृतछाया बनाववानो प्रचार हमणांथी वध्यो छे. आ कारणे प्राकृत ग्रंथोनुं वांचन वध्युं होय अेवुं पण जाणवा मळ्युं छे.

मुनिश्री पार्श्वरत्नसागरे आ ग्रंथनी संस्कृत छाया बनावी छे. आ पूर्वे 'पउमचरियं'नी संस्कृत छाया पण तेमणे बनावेली. गया वर्षे आज संस्था द्वारा प्रगट थई छे.

साध्वीश्री सत्यरेखाश्रीना शिष्या विदुषी साध्वीश्री महायशाश्रीजीअे बधा प्रुफो जोया छे. संस्कृत छायानुं संशोधन कर्युं छे.

मुनिश्री वैराग्यरति वि.म.अे जणाव्युं के श्री विमल बाफणा आ ग्रंथ उपर Ph.D. करी रह्या छे. अमारी सूचनाथी तेओअे श्री बाफणा पासे प्रस्तावना लखावीने मोकली आपी छे. जे अहीं (भाग-१)मां प्रसिद्ध थई रही छे.

डो. तारा डागाअे 'आख्यानकमणिकोश'नुं हिन्दी भाषांतर करवानुं शरु कर्युं छे. अेक भाग (प्रथम अधिकार) प्रगट थयो छे ते तेओअे अमने मोकल्यो छे. अेमांथी पण उपयोगी विगत अहीं (प्रथम भागमां) आपवामां आवी छे.

अभ्यासीओने विनंती के - मूळ प्राकृत भाषानी मजा माणवा जेवी छे. ज्यां क्लिष्ट के न समजाय त्यां ज संस्कृत छायानो उपयोग करशो. प्राकृत भाषाना संस्कृत रुपांतरो घणां थई शकता होवाथी छायाकार ग्रंथकारना भावो न समजी शक्या होय अने भिन्न रुपांतर थयुं होय अेवुं पण संभवे छे. उपयोगपूर्वक अध्ययन करी अभ्यासीओ ग्रंथकारना हार्दने पामे, कथा रचना द्वारा विविध गुणो वाचकोने पमाडवानो कर्ताश्रीनो आशय छे तेने सफळ करे अने आत्मकल्याणने पामे अेज अभिलाषा.

- आ.विजय मुनिचन्द्रसूरि

• • •

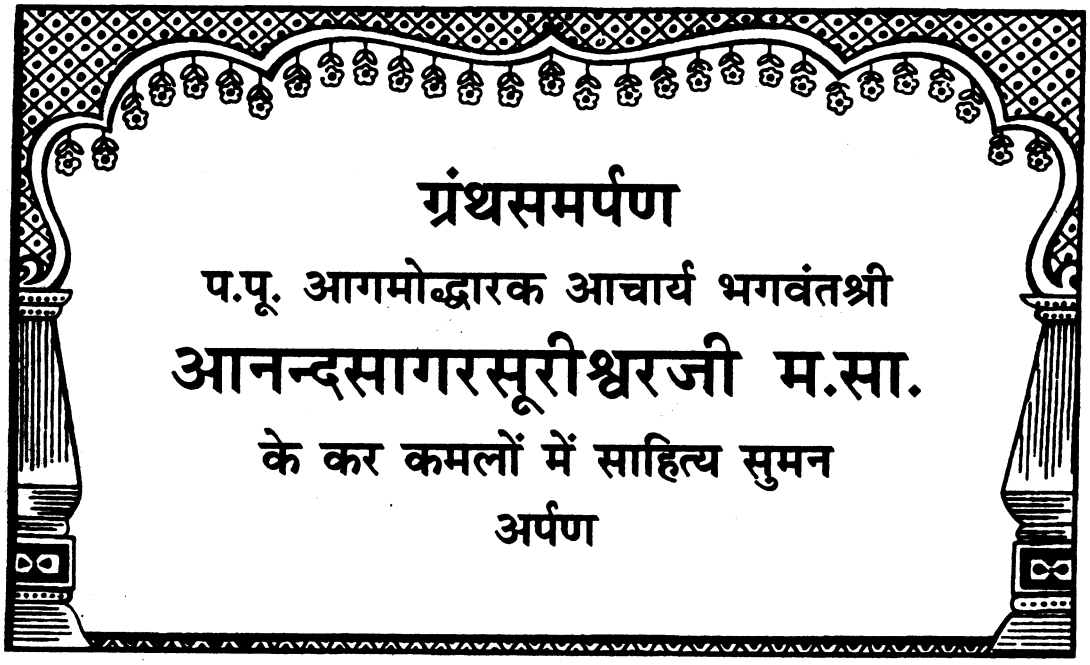
ग्रंथसमर्पण
प.पू. आगमोद्धारक आचार्य भगवंतश्री
आनन्दसागरसूरीश्वरजी म.सा.
के कर कमलों में साहित्य सुमन
अर्पण

: श्रुतलाभ :

॥ श्री शान्तिनाथाय नमः ॥

श्री धानेरानगरे तीर्थोद्धारक प.पू.आ.श्रीमद्विजय नीतिसूरीश्वरजी
म.सा.ना समुदायना गच्छाधिपति शासनप्रभावक
प.पू.आ.श्रीमद्विजय
हेमप्रभसूरीश्वरजी म.सा.ना शिष्यरत्न
धानेराना पनोता पुत्र प.पू.गणिवर्यश्री
अर्हंप्रभविजयजी म.सा. आदि तथा साध्वीश्री
अमितप्रज्ञाश्रीजी म. आदिना वि.सं. २०६७ना अनेकविध
आराधनासभर थयेल चातुर्मासनी अनुमोदनार्थे तथा
श्री धानेरानगरना ईतिहासना स्वर्णपृष्ठमां सर्वप्रथम वखत
पू.पंन्यास श्री अर्हंप्रभविजयजी म.सा.ना आचार्यपदारोहणना
अनुमोदनीय प्रसंगे मुनिश्री भानुप्रभविजयजी म.सा.नी
पावन प्रेरणाथी...

श्री धानेरा तपगच्छ श्वे.मू.पू. जैन संघ
धानेरा (जि. बनासकांठा)

तरफथी ज्ञानद्रव्यमांथी प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशनमां संपूर्ण
लाभ लेवामां आव्यो छे.

अनुमोदना... अनुमोदना... अनुमोदना...

पं.श्री अर्हंप्रभविजयजी गणिवरने आचार्यपद प्रदान
वि.सं. २०६९, वैशाख सुद-१०, ता. २०-५-२०१३ना
शुभदिने अमदावाद-मणिनगर
शुभस्थाने शुभमुहूर्ते प्रदान थयेल.

संपादक की कलम से...

वर्तमानकाल में जहां ज्ञानोपार्जन - अध्ययन आदि का भौतिकरूपसे मात्र व्यवहारिक शिक्षा को लक्ष बनाकर पठन-पठनादि अपनी सीमाएँ लांघ रहा है वहां, जैनशासन के नमोमंडलमें पूर्व आचार्यों द्वारा रचे गए कई महामूल्यवान ग्रंथ अभीतक मात्र हस्तलिखित ताडपत्रों में बंध पड़ा हैं । इनमें से कई ग्रंथो का आगम प्रभाकर पूज्य मुनिराज श्री पुण्यविजयजी म.सा. काफी महेनत करके प्रकाशित करनेका अनुमोदनीय एवं अपकारणीय प्रयास किया है । उन ग्रंथतलिकामें एक ग्रंथ यहभी है "आख्यान मणिकोश"।

पूज्यपाद आचार्य नेमिचन्द्रसूरि म.सा.ने इस ग्रंथकी श्लोकबद्ध प्राकृत भाषामें रचना की थी और उनकी ही परंपरा के पू. आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य पू. आचार्य आम्रदेवसूरिने इस ग्रंथ के श्लोकों में बताये गये दृष्टांतो के नाम उल्लेखों को कथानक में ग्रथन करके पद्यशैलीसे करीब १२७ कथानको को विशिष्ट शैलीओमें प्राकृत - संस्कृत - देश्य एवं अप्रभंश भाषाओंमें विभिन्न छेदालङ्कार - विभिन्नरस - विभिन्न इतिहासों आदी से अत्यंत मनमोहक बनाया है, इस पद्यबद्ध वृत्ति की रचना से ही पूज्यवरकी कवित्व शक्ति एवं भाषाके लय की विशिष्ट छबी उपस्थित होती है ।

मूल केवल ५३ गाथाओं मे रचे गए १४००० श्लोक प्रमाण विस्तृतवृत्ति की अद्‌भूत रचनावाले इस महाग्रंथ को ४१ अधिकारों में कुशलतापूर्वक बांटा गया हैं ।

वर्तमान में अपभ्रंश भाषा एवं देश्य शब्दो का प्रयोग काफी कम दिखाई देता है, वत्तिकारने सूक्ष्मबुद्धि से विभिन्न स्थलों पर अनेक देश्य शब्दों का इतनी बेखुबी से प्रयोग कीया है की जो तदानी काल की भाषाशैली की सुंदरता बयान करती है ।

देश्य शब्दों का भंडार एवं अपभ्रंश शैलीके कथानकों का रसथाल होने के कारण यह ग्रंथ वाचक वर्ग को पढने में काफी मुश्कील है, इतना रोचक और अद्‌भूतग्रंथ भाषा का पूर्ण ज्ञान न होने की वजह से संपादन होने के बादभी वाचक वर्गमें खास पढ़ा नहीं जाता है ।

आगे मैने पूर्वधर श्री विमलसूरि के द्वारा वीर सं. ५३० की साल में रचे गए 'पउमचरिय' ग्रंथकी संस्कृत छाया करने का प्रयत्न प.पू. शास्त्रसंशोधक आ.भ.श्री मुनिचन्द्रसूरि म.सा. के निर्देश के अनुसार कीया था । जो ग्रंथ चार विभागोमें छप चूका है । और उस कार्य को देखकर पू. आचार्य भगवंतश्रीने मुझे इस ग्रंथकी महत्ता बताकर ग्रंथ के अंदर के प्राकृत एव अपभ्रंश दृष्टांतो की संस्कृत छाया करने की बात कही और इस ग्रंथकी भी संस्कृत छाया करनेका मुझे लाभ मिला ।

और इस ग्रंथ को विशेष शुद्धि करके पू. साध्वीवर्या श्री महायशाश्रीजीने भी मुज पर उपकार कीया है । साथमें हर जगह जहां-जहां मुश्कीलें आई वहां पू. आ.भ.ने भी सामग्री हस्तप्रतकी नकल एवं योग्य सलाह लेकर बहोत बड़ा उपकार कीया है ।

इस ग्रंथ प्रकाशनका संपूर्ण लाभ श्री उवसग्गहरं पार्श्वनाथ तीर्थ एवं अ.भा. कल्याणमित्र सभाने लिया है श्रुत भविन इस कार्य के लिए भूरि भूरि अनुमोदना ।

पुस्तक मुद्रण कार्यको सुंदर सहयोग के साथ संपन्न करने के लिए 'किरीट ग्राफिक्स' के सुश्रावक श्री गिरीटभाई एवं सुश्रावक श्री श्रेणिकभाई को भी खुब खुब धन्यवाद ।

ग्रंथ प्रकाशक के रूप में संपूर्ण सहयोग देने के लिए श्री ऊँकार सूरी आराधना भवन की भी अनुमोदना ।

. अंतमें इस ग्रंथकी संस्कृत छाया करते समय मतिदोष एवं प्रेसदोष से कुछ क्षति रह गई हो तो विरुद्धर्य पूज्यों से निवेदन है की सुधारकर पढ़े एवं मुझे क्षतियों से वाकेफ कराएँ ।

अपने अध्ययन - अध्यापनमें इसग्रंथ को सामिल करके जिनशासनमें घटित घटनाओं को कथानकों के माध्यमसे जानकर सभी स्व-पर उपकार करके ज्ञानावरणीवादि कर्मो का क्षय करके अक्षय स्थानको प्राप्त करें ऐसी शुभेच्छा ।

श्रावण वदी ०।।
राजनांद गाँव (छ.ग.)

- मुनि पार्श्वरत्न सागर

• • •

विषयानुक्रम

	विषय	पृष्ठ संख्या
(२४)	**रागाद्यनर्थपरम्परावर्णनाधिकारः**	५३९-५५७
७४	वणिक्पत्न्याख्यानकम्	५४०
७५	नन्दाख्यानकम्	५४१
७६	चंडभटाख्यानकम्	५४३
७७	चित्रसम्भुत्याख्यानकम्	५४४
७८	मायादित्याख्यानकम्	५४७
७९	लोभनन्द्याख्यानकम्	५५४
८०	नकुलवणिन्याख्यानकम्	५५६
(२५)	**क्षान्तिगुणवर्णनाधिकारः**	५५८
(२६)	**जीवदयागुणवर्णनाधिकारः**	५५९-५८६
८१	श्राद्धसुताख्यानकम्	५५९
८२	गुणमत्याख्यानकम्	५६१
८३	मेघाख्यानकम्	५६३
(२७)	**धर्मप्रियत्वादि गुणवर्णनाधिकारः**	५८७-५९३
८४	कामदेवाख्यानकम्	५८७
८५	सागरचन्द्राख्यानकम्	५९०
(२८)	**धर्ममर्मज्ञजनप्रबोधनगुणवर्णनाधिकारः**	५९४-६००
८६	पादावलम्बाख्यानकम्	५९४
८७	रत्नत्रिकोट्याख्यानकम्	५९८
८८	मांसक्रयाख्यानकम्	५९९
(२९)	**भावशल्यानालोचनदोषाधिकारः**	६०१-६४७
८९	मातृसुताख्यानकम्	६०१
९०	मरुकाख्यानकम्	६०४
९१	ऋषिदत्ताख्यानकम्	६०५
९२	मक्षिकामल्लाख्यानकम्	६४५

(३०) मोहर्त्तमृतकुणतिपातदर्शकाधिकारः		**६४८-६६२**
९३	तापसाख्यानकम्	६४८
९४	सागरदत्ताख्यानकम्	६५०
९५	नन्दाख्यानकम्	६५२
९६	ललिताङ्गजनन्याख्यानकम्	६५५
(३१) धर्मसुकरतावर्णनाधिकारः		**६६३-६६८**
९७	ढण्ढणकुमाराख्यानकम्	६६३
९८	जम्ब्याख्यानकम्	६६६
(३२) धर्मविषय कुलप्राधान्यनिवारकाधिकारः		**६६९-६७२**
९९	हरिकेश्याख्यानकम्	६६९
(३३) एकाकिविहारदोषवर्णनाधिकारः		**६७३-६८०**
१००	अरहन्नककथानकम्	६७३
१०१	कुलवालकाख्यानकम्	६७६
(३४) साधुदर्शनमहागुणवर्णनाधिकारः		**६८१-६८५**
१०२	तस्कराख्यानकम्	६८१
१०३	भृगुपुरोहित पुत्रयुगलकाख्यानकम्	६८२
(३५) अवश्यप्राप्तव्यप्राप्त्यधिकारः		**६८६-७१८**
१०४	करकण्ड्वाख्यानकम्	६८६
१०५	नम्याख्यानकम्	६९१
१०६	बन्धुदत्ताख्यानकम्	७०७
(३६) सम्पद्विपदोः सत्पुरुष समतावर्णनाधिकारः		**७१९-७५६**
१०७	नरविक्रमकुमाराख्यानकम्	७१९

• • •

[२४. रागद्यनर्थपरम्परावर्णनाधिकारः ।]

युवतिषु विश्वासो न विधेय इत्यमिहितम् । तासु चाभिलाषो जन्तो रागादिसद्भावे भवति । तेषां चैहिकाऽऽमुष्मिकापायहेतुत्वेन परिहार्यतामाह -

संसारवुड्ढिजणगा राग-द्दोसा तहा कसाया य ।
तवसंजमहाणिकरा इह चेव इमे अणत्थफला ॥ ३० ॥

अस्या व्याख्या - 'ससांरवृद्धिजनकौ'भवोपचयकारकौ 'राग-द्वैषौ' प्रीत्यप्रीतिलक्षणौ जीवपरिणामौ, 'तथा' इति समुच्चये, 'कषायाश्च' क्रोधादयो जीवपरिणामा एव 'तपःसंयमहानिकराः' तपश्च-अनशनादिरूपं संयमश्च-पृथिव्यादिरक्षणलक्षणः तयोः हानिं - वृद्ध्यभावं कुर्वन्ति ये ते तथोक्ताः 'इहैव' अस्मिन्नेव जन्मनि 'अनर्थफलाः' अपायप्रयोजनाः ॥ ३० ॥ एतानेव द्रष्टान्तेनाह -

रागम्मि वणियपत्ती दोसे नायं ति नाविओ नंदो ।
कोहम्मि य चंडहडो मयकरणे चित्तसंभूया ॥ ३१ ॥
मायाए आइच्चो लोभे उण लोभनंदि-नउलवणी ।
इय नाउं जेयव्वा रागाइरिऊ पयत्तेण ॥ ३२ ॥

अनयोर्व्याख्या- 'रागम्मि' त्ति रागविषये वणिक्पत्नी वणिग्भार्या । 'दोषे' त्ति दोषविषये 'नायं ति' द्दष्टान्तः 'नाविकः' पोतवाहकः 'नंदो' त्ति नन्दाभिधानः । 'कोहम्मि य' त्ति क्रोधे च 'चंडहडो' त्तिचण्डभटनामकः । 'मयकरणे' त्ति अहङ्कारनिर्वर्तने 'चित्र-सम्भूतौ' इति चित्र-सम्भूताभिधानौ मातङ्गदारकौ ॥ ३१ ॥ 'मायाए' त्ति मायाकरणे 'आदित्यः' इति मायादित्याभिधानः । 'लोभे उण' त्ति लोभविषये पुनः ज्ञातमित्यर्थः 'लोभनंदि-नउलवणी' इति लोभनन्दिश्च-श्रेष्ठी नकुलवणिक् च नकुलकप्रधानो वाणिजकः लोभनन्दि-नकुलवणिजौ । 'इति' अमुना प्रकारेण 'ज्ञात्वा' [अवबुध्य] अनर्थहेतुतया 'जेतव्याः' वशीकर्तव्याः 'रागादिरिपवः' रागप्रमुखाः शत्रवः 'प्रयत्नेन' आदरेण इति गाथासङ्क्षेपार्थः ॥ ३२ ॥ व्यासार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्र तावत् क्रमप्राप्तं वणिक्पत्न्याख्यानकमाख्यायते-

निवसंति खिइपइट्ठियनयरे जणरेहिरे धणसमिद्धे । अरिहन्न-अरिहमित्ता वाणियगा भाउणो दोन्नि ॥१॥
अरिहन्नभारियाए अहऽन्नयऽब्भत्थिओ अरिहमित्तो । अणुरत्ताए चंदो व्व सोमपयई सुहाहारो ॥२॥
तेणं सा पडिसिद्धा बहुप्पयारं न जाव विरमेइ । तो भणियं मह भाउगभयमवि ते नत्थि इय भणिए ॥३॥
चिंतेइ न कइया वि हु एसो मं मन्नही जियंतम्मि । नियभाउगम्मि नियमा ता तं कहमवि विणासेमि ॥४॥
अह केणावि छलेणं भत्तारं मारिऊण तं भणइ । इण्हिं ते कस्स भयं ? तो सो चिंतइ अहह ! निहओ ॥५॥
मह बंधू एयाए पावाए मह निमित्तमिइ नाउं । वेरग्गगओ गिण्हइ पव्वज्जं सुगुरुमूलम्मि ॥६॥
तव्विरहविहुरियंगी कम्मिवि मरिऊण सन्निवेसम्मि । सुणिया सा संजाया सो वि हु कह कहवि विहरंतो ॥७॥
तत्थेव अरिहमित्तो संपत्तो पेच्छिऊण तं सुणिया । पुव्वभवब्भासाओ न मुयइ पिट्ठिं मुणिवरस्स ॥८॥
तत्तो जणेण कहमवि विओइया मुणिवरं अपेच्छंती । अट्टज्झाणोवगया पडिबद्धा तम्मि साहुम्मि ॥९॥
मरिउं महाडईए संजाया मक्कडी मुणी वि तहिं । विहरंतो संपत्तो तं दट्ठुं कंठमणुलग्गा ॥१०॥
साहुजणएणं निच्छोडिऊण निद्धाडिया कहवि तत्तो । तं साहुमणुसरंती मरिउं सा वंतरी जाया ॥११॥
नाऊण विभंगेणं पुव्वभवं तप्पओसमावन्ना । छिड्डाइं निहालंती अच्छइ सा अरहमित्तम्मि ॥१२॥
हसिऊण तरुणसमणा भणंति धन्नो सि अरिहमित्त ! तुमं । जं सि पिओ सुणियाणं वयंस ! गिरिमक्कडीणं पि ॥१३॥

वणिक्पत्न्याख्यानकम् - ॥ ७४ ॥

निवसतः क्षितिप्रतिष्ठितनगरे जनराजमाने धनसमृद्धे । अर्हन्नर्हमित्रौ वणिजौ भ्रातरौ द्वौ ॥ १ ॥
अर्हद्भार्ययाथान्यदाभ्यर्थितोऽर्हमित्रः ! अनुरक्त्या चन्द्र इव सौम्यप्रकृतिः शुभाधारः ॥ २ ॥
तेन सा प्रतिषिद्धा बहुप्रकारं न यावद्विरमति । तदा भणितं मम भ्रातृकभयमपि ते नास्तीति भणिते ॥ ३ ॥
चिन्तयति न कदापि खल्वेष मंस्यते जीवति । निजभ्रातरि नियमा ततस्तं कथमपि विनश्यामि ॥ ४ ॥
अथ केनापि छलेन भर्त्तारं मारयित्वा तं भणति । इदानीं ते कस्य भयं ? तदा स चिन्तयत्यहह ! निहतः ॥ ५ ॥
मम बन्धुरनया पापया मम निमित्तमिति ज्ञात्वा । वैराग्यगतो गृह्णाति प्रव्रज्यां सुगुरुमूले ॥ ६ ॥
तद्विरहविधुरिताङ्गी कस्मिन्नपि मृत्वा सन्निवेशे । शुनिका सा सञ्जाता सोऽपि हु कथं कथमपि विहरन् ॥ ७ ॥
तत्रैवार्हमित्रः सम्प्राप्तो दृष्ट्वा तं शुनिका । पूर्वाभ्यासान्न मुञ्चति पृष्ठिं मुनिवरस्य ॥ ८ ॥
ततो जनेन कथमपि वियोजिता मुनिवरमप्रेक्षमाणी । आर्त्तध्यानोपगता प्रतिबद्धा तस्मिन् साधौ ॥ ९ ॥
मृत्वा महाटव्यां सञ्जाता मर्कटी मुनिरपि तत्र । विहरन् सम्प्राप्तस्तं दृष्ट्वा कण्ठमनुलग्ना ॥ १० ॥
साधुजनेन निच्छोट्य निष्काशिता कथमपि ततः । तं साधुमनुसरन्ती मृत्वा सा व्यन्तरी जाता ॥ ११ ॥
ज्ञात्वा विभङ्गेन पूर्वभवं तत्प्रद्वेषमापन्ना । छिद्राणि निभालयन्त्यास्ते सार्हमित्रे ॥ १२ ॥
हसित्वा तरुणश्रमणा भणन्ति धन्योऽस्यर्हमित्र ! त्वम् । यदसिप्रियः शुनिकानां वयस्य ! गिरिमर्कटीनामपि ॥ १३ ॥

सो तह वि निक्कसाओ विहरंतो अवरवासरे सरियं । थोवजलमवक्कमिउं उप्पडइ मुणीई तहिं जाव ॥१४॥
ता तं छिद्दं लहिउं छिंदइ सा ऊरुयं गुरुपओसा । पडिए ऊरुम्मि जले मिच्छाउक्कडमिमो देइ ॥१५॥
अह सासणदेवीए सो ऊरू लाइओ ससत्तीए । निद्धाडिया य पच्चंतदेवया साहुभत्ताए ॥१६॥

॥ वणिक्पत्न्याख्यानकं समाप्तम् ॥७४॥

अधुना नन्दाख्यानकमाख्यायते-

बहुजीवसंकुलाए गंगाए हसियसुरसमूहाए । उत्तारइ मोल्लेणं जणनिवहं नाविओ नंदो ॥१॥
अह अन्नया य साहू धम्मरुई विविहलद्धिसंपन्नो । उत्तिन्नो गंगाए धरिओ सो तेण मोल्लकए ॥२॥
अइक्कंते पहरदुगे वि जाव न हु मेल्लए तओ विहिओ । सहस त्ति छारपुंजो मुणिणा सो तेउलेसाए ॥३॥
मरिऊण समुप्पन्नो सभाए घरकोइलो किलिट्ठमणो । धम्मरुई वि य पत्तो विहरंतो तत्थ कालेण ॥४॥
गामाओ विणिक्खंतो भिक्खं गहिऊण भुंजए जाव । तत्थ घरकोइलो सो पुव्वभवब्भासओ रोसा ॥५॥
विक्खिरइ कयवराई मुणी वि अन्नत्थ उट्ठिउं जाइ । सो कुणइ तं तहेव य एवं तइए वि ठाणम्मि ॥६॥
तो चिंतइ धम्मरुई को एसो नंदसरिसगो पावो । कूरं निरिक्खिऊणं सो वि हु भासीकओ तेण ॥७॥
तत्तो मयंगतीरे हंसो मरिऊण सो समुप्पन्नो । कालेण तत्थ पत्तो विहरंतो धम्मरुइसाहू ॥८॥
तं दट्ठुं सो हंसो पक्खउडं भरिय सीयलजलस्स । पुव्वभवकोववसओ आछंटइ सिसिरसमयम्मि ॥९॥

स तथापि निष्कषायो विहरन्नपरवासरे सरितम् । स्तोकजलामापक्रम्योत्पतति मुनिस्तत्र यावत् ॥ १४ ॥
तावत्तं छिद्रं लब्ध्वा छिनत्ति सोरुकं गुरुप्रद्वेषा । पतिते उरू जले मिच्छादुष्कृतमयं ददाति ॥ १५ ॥
अथ शासनदेव्या स उरूर्लागितः स्वशक्त्या । निर्घाटिता च प्रत्यन्तदेवता साधुभक्तया ॥ १६ ॥

॥ वणिक्पत्न्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ७४ ॥

नन्दाख्यानकम् ॥ ७५ ॥

बहुजीवसङ्कुलाया गङ्गाया हसितसुरसमूहायाः । उत्तारयति मूल्येन जननिवहं नाविको नन्दः ॥ १ ॥
अथान्यदा च साधुर्धमरूचि र्विविधलब्धिसम्पन्नः । उत्तीर्णो गङ्गाया धृतः स तेन मूल्यकृते ॥ २ ॥
अतिक्रान्ते प्रहरद्विकेऽपि यावन्न हु मुञ्चति ततो विहितः । सहसेति क्षारपुञ्जो मुनिना स तेजोलेश्यया ॥ ३ ॥
मृत्वा समुत्पन्नो सभायां गृहकोकिलः क्लिष्टमनाः । धर्मरुचिरपि च प्राप्तो विहरंस्तत्र कालेन ॥ ४ ॥
ग्रामाद्विनिष्क्रान्तो भिक्षां गृहीत्वा भुङ्क्ते यावत् । तत्र गृहकोकिलः स पूर्वभवाभ्यासतो रोषाद् ॥ ५ ॥
विकीरति कचवराणि मुनिरप्यन्यत्रोत्थाय याति । स करोति तं तथैव चैवं तृतीयेऽपि स्थाने ॥ ६ ॥
ततश्चिन्तयति धर्मरुचिः क एष नन्दसदृशः पापः । क्रूरं निरीक्ष्य सोऽपि हु भस्मीकृतस्तेन ॥ ७ ॥
ततो मातङ्गतीरे हंसो मृत्वा स समुत्पन्नः । कालेन तत्र प्राप्तो विहरन् धर्मरुचिसाधुः ॥ ८ ॥
तं दृष्ट्वा स हंसः पक्षपूटं भृत्वा शीतलजलस्य । पूर्वभवकोपवशत आच्छोटयति शिशिरसमये ॥ ९ ॥

एवं पुणो पुणो वि हु थक्कइ न हु जाव ताव मुणिणा वि । को एस नंदकप्पो ? त्ति झामिओ तेउलेसाए ॥१०॥
मरिऊण संजाओ अंजणसेलम्मि दुद्धरो सीहो । सह सत्थेणं पत्तो कालेणं तत्थ साहू वि ॥११॥
दट्ठूण तयं सहसा सत्थं मोत्तूण धावए कुविओ । जा मुणिवरस्स समुहो निवारिओ ताव लोएण ॥१२॥
जा कह वि नो नियत्तइ का एसो नंददेसिओ पावो ? । मुणिणा वि विगप्पेउ सहसा छारीकओ सो वि ॥१३॥
मरिऊणं सो जाओ बडुओ वाणारसीए[1] नयरीए । भिक्खट्ठाए पविट्ठो दिट्ठो सो तेण धम्मरुई ॥१४॥
तो डिभे रममाणं मोत्तूणं कुणइ जाव उवसग्गं । पुव्वभववइरभावा ता तत्थ वि मारिओ तेण ॥१५॥
मरिऊणं संजाओ राया तत्थेव सुमरिउं जाइं । चिंतेइ तेण मुणिणा दड्ढो हं एत्तियभवेसु ॥१६॥
इन्हिं पि जइ डहेज्जा न हु होही रज्जसंपया मज्झ । पेच्छेमि तयं जइ ता तो हं खामेमि नियमेण ॥१७॥
तज्जाणणानिमित्तं सड्ढसिलोगेण पुव्वभवचरियं ! । नियइं सव्वजणेणं पढावई तं सिलोगमिमं ॥१८॥

"गंगाए नाविओ नंदो, सभाए घरकोइलो ।
हंसो मयंगतीराए, सीहो अंजणपव्वए ॥१॥
वाणारसीए वडुओ, राया तत्थेव आगओ ।"

एवं बीयसिलोगं, जो पूरइ तस्स पत्थिवो देइ । रज्जसऽद्धं अग्घोसियं च नयरीए तो लोगो ॥१९॥
रइउं सबुद्धिविहवाणुसारओ पच्छिमऽद्धमवणिवइं । अणुसरइ तयं दट्ठुं न पच्चओ होइ नरवइणो ॥२०॥

एवं पनुः पुनरपि हु भ्राम्यति नहु यावत्तावन्मुनिनापि । क एष नन्दकल्प इति दग्धस्तेजोलेश्यया ॥ १० ॥
मृत्वा सञ्जातोऽञ्जनशैले दुर्धरः सिंहः । सह सार्थेन प्राप्तः कालेन तत्र साधुरपि ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा तकम् सहसा सार्थं मुक्त्वा धावति कुपितः । यावन्मुनिवरस्य संमुखो निवारितस्तावल्लोकेन ॥ १२ ॥
यावत्कथमपि न निवर्तयति क एष नन्ददेशिकः पापः ? । मुनिनापि विकल्प्य सहसा क्षारीकृतः सोऽपि ॥ १३ ॥
मृत्वा स जातो बटुको वाणारस्यां नगर्याम् । भिक्षार्थाय प्रविष्टो दृष्टः स तेन धर्मरुचिः ॥ १४ ॥
तदा डिम्भान्रममाणान्मुक्त्वा करोति यावदुपसर्गम् । पूर्वभववैरभावात्तावत्तत्रापि मारितस्तेन ॥ १५ ॥
मृत्वा सञ्जातो राजा तत्रैव स्मृत्वा जातिम् । चिन्तयति तेन मुनिना दग्धोऽहमेतावद्भवेषु ॥ १६ ॥
इदानीमपि यदि दहेयं न खलु भविष्यति राज्यसंपन्मम । पश्यामि तकम् यदि तावत्तदाहं क्षमये नियमेन ॥ १७ ॥
तज्जाननानिमित्तं सार्धश्लोकेनः पूर्वभवचरितम् । निजकं सर्वजनेन पाठ्यति तत् श्लोकमिदम् ॥ १८ ॥

"गङ्गायां नाविको नन्द; सभायां गृह कोकिलः ।
हंसो मातङ्गतीरे, सिंहोऽञ्जनपर्वते ॥ १ ॥
वाणारस्यां बटुको राजा तत्रैवागतः ।"

एवं द्वितीयश्लोकं यः पूर्यते तस्य पार्थिवो ददाति । राज्यस्यार्द्धमुद्घोषितं च नगर्यां ततो लोकः ॥ १९ ॥
रचयित्वा स्वबुद्धिविभवानुसारतः पश्चिमार्द्धमवनिपतिम् । अनुसरति तकद् दृष्ट्वा न प्रत्ययो भवति नरपतेः ॥ २० ॥

---

१. वाराणसीए रं० ।

अह धम्मरुई विहरिय अन्नत्थ समागओ तहिं वुत्थो । उज्जाणम्मि उज्जाणपालएणं पढिज्जंतं ॥२१॥
गंगाए नाविओ इय पयाइं निसुणित्तु तेण सो भणिओ । वारं वारं परिपढसि कीस तं भद्द ! एयं ? ति ॥२२॥
सव्वो वि साहिओ तेण वइयरो तस्स मुणिय परमत्थं । तत्तो मुणिणा तं पच्छिमद्धमापूरियं एवं ॥२३॥
एएसिं घायगो जो उ सो एत्थेव समागओ ॥२॥ त्ति
तो तं संपुन्नपयं धेत्तूणाऽऽरामिओ निवसयासं । पत्तो निवेइयं तं दट्ठुं राया भउव्विग्गो ॥२४॥
मुच्छावसेण महिमंडलम्मि पडिओ तओ परियणेण । एसो असोक्खकारी पहुणो इय जायकोवेण ॥२५॥
पिट्टिज्जंतो सो आह कव्वमेयं कयं मए नेय । किंतु महं समणेणं समप्पियं दुक्खमूलं ति ॥२६॥
उवलद्धचेयणेणं रन्ना उज्जाण पालओ पुट्ठो । केण कयं कव्वमिमं ? सो भणइ वणम्मि मुणिण त्ति ॥२७॥
तो तत्थ निवो पत्तो रिसिणो वंदणय-खामणनिमित्तं । वंदित्तु खामिऊणं पडिवज्जिय सावगं धम्मं ॥२८॥
संपत्तो नियभवणे मुणी वि सरिऊण पुव्वदुच्चरियं । आलोइय पडिकंतो सम्मं गुरुपायमूलम्मि ॥२९॥
सुक्कज्झाणानलदड्ढघाइकम्मिंधणो विमलनाणो । निम्महियसेसकम्मो सासयसोक्खं सिवं पत्तो ॥३०॥

॥ नाविकनन्दाख्यानकं समाप्तम् ॥७५॥

इदानीं चंडहडाख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

अत्थि विसेसयनामो बहुसरसीरसियगोवयसमूहो । विंझो व्व समयसंगयकरकरिसयसंगओ गामो ॥१॥

अथ धर्मरुचि र्विहृत्यान्यत्र समागतस्तत्रौषितः । उद्यान उद्यानपालकेन पठ्यमानम् ॥ २१ ॥
गङ्गायां नाविक इति पदानि निश्रुत्य तेन स भणितः । वारं वारं परिपठसि कथं त्वं भद्र ! एनमिति ? ॥ २२ ॥
सर्वोऽपि कथितस्तेन व्यतीकरस्तस्य ज्ञात्वा परमार्थम् । ततो मुनिना तं पश्चिमार्द्धमापूरितमेवम् ॥ २३ ॥
एतेषां घातको यस्तु सोऽत्रैव समागतः ॥ २ ॥ इति
ततस्तं सम्पूर्णपदं गृहीत्वाऽऽरामिको नृपसकाशम् । प्राप्तो निवेदितं तं दृष्ट्वा राजा भयोद्विग्नः ॥ २४ ॥
मूर्च्छावशेन महिमण्डले पतितस्ततः परिजनेन । एषोऽसौख्यकारी प्रभोरिति जातकोपेन ॥ २५ ॥
पीट्यमानः स आह काव्यमेतत्कृतं मया नैव । किन्तु मह्यं श्रमणेन समर्पितं दुःखमूलमिति ॥ २६ ॥
उपलब्धचेतनेन राज्ञोद्यानपालकः पृष्टः । केन कृतं काव्यमिदं ? स भणति वने मुनिनेति ॥ २७ ॥
ततस्तत्र नृपः प्राप्त ऋषे र्वन्दन-क्षामणनिमित्तम् । वन्दित्वा क्षमयित्वा प्रतिपद्य श्रावकं धर्मम् ॥ २८ ॥
सम्प्राप्तो निजभवने मुनिरपि स्मृत्वा पूर्वदुश्चरितम् । आलोचित-प्रतिक्रान्तः सम्यक् गुरुपादमूले ॥ २९ ॥
शुक्लध्यानानलदग्धघातिकर्मेन्धनो विमलज्ञानः । निर्मथितशेषकर्मा शाश्वतसौख्यं शिवं प्राप्तः ॥ ३० ॥

॥ नाविकनन्दाख्यानकं समाप्तम् ॥ ७५ ॥

चंडभटाख्यानकम् ॥ ७६ ॥

अस्ति विशेषकनाम बहुसरःशीरसितगोपकसमूहः । विन्ध्य इव समयग्संगतकरकरिशतसंगतो ग्रामः ॥ १ ॥

अह तम्मि चेव गाममि दुम्मई वसइ करिसगो एगो । नामेणं चंडहडो भंडणवसणो सहावेण ॥२॥
अह अन्नया य सरयम्मि सस्ससंपत्तिवन्नणिज्जम्मि । फलियम्मि तस्स खेत्तम्मि कहवि सुन्नम्मि एगम्मि ॥३॥
गामबइल्ला कस्सवि य संतिया किल कुओ वि हु पविट्ठा । तेहि वि छुहाकिलंतेहिं भक्खियं बहुविहं धन्नं ॥४॥
दट्ठूण तयं पयईए कोहणो पेच्छिउं च ते वसहे । पाहाण-कट्ठ-जट्ठीहिं निद्दयं हणियमारद्धो ॥५॥
भंजइ तेसि विसाणे केसिंपि खुरे मुहाइ केसिंपि । रुहिरपवाहव्वावियसव्वंगे मुयइ न तहा वि ॥६॥
कोहवसट्ट गलियं पि निवसणं मुणइ नेय तयवत्थो । विम्हरियप्पा वसहे पहरंतो सो गओ गामं ॥७॥
लोएणं सिक्खविओ भो भो ! किं कयमिमेहिं तुह पावं ? । जं पहणसि निस्संको निक्करुणो मुक्कमज्जाओ ॥८॥
तुममेएसिं सामी मग्गसु खाइं निएसु ववहारं । मुंचसु इमे वराए गोरूवे निव्विवेए य ॥९॥
मूढो किमेवमेत्तियमप्पाणं नग्गयं ति नो नियसि ? । भणइ य नग्गमिमेसिं, सामी काहं न संदेहो ॥१०॥
एवं सिक्खविओ वि हु कोहंधो जाव चेयइ न किं पि । तावाऽऽक्खियपुरिसेहिं बंधिउं गाढबंधेहिं ॥११॥
कारागिहम्मि खित्तो धरिउं कइवयदिणाणि सेहेउं । हरिउं गिहसव्वस्सं मुक्को काउं जहाजाओ ॥१२॥

॥ चण्डभडाख्यानकं समाप्तम् ॥७६॥

उक्तंचण्डभडाख्यानकम् । अधुना चित्रसम्भूता(ख्यानक) माख्यायते । तच्चेदम्-

साकेयनयरनायगचंडवडिंसयसुओ गुरुसमीवे । पव्वइओ मुणिचंदो अडवीए सत्थपरिभट्ठो ॥१॥

अथ तस्मिंश्चैव ग्रामे दुर्मति र्वसति कृषक एकः । नाम्ना चण्डभटः कलहव्यसनः स्वभावेन ॥ २ ॥
अथान्यदा च शरदि शस्यसम्पतिवर्णनीये । फलिते तस्य क्षेत्रे कथमपि शून्य एकस्मिन् ॥ ३ ॥
ग्रामबलीवर्दाः कस्यापि च सत्काः किल कुतोऽपि हु प्रविष्टाः । तैरपि क्षुधाक्लान्तै र्भक्षितं बहुविधं धान्यम् ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा तकत् प्रकृत्या क्रोधनः प्रेक्ष्य च तान् वृषभान् । पाषाण-काष्ट-यष्टिभि निर्दयं हन्तुमारब्धः ॥ ५ ॥
भनक्ति तेषां विषाणान् केषामपि क्षुरान् मुखानि केषामपि । रुधिरप्रवाहव्याप्तसर्वाङ्गान् मुञ्चति न तथापि ॥ ६ ॥
क्रोधवशार्तो गलितमपि निवसनं मुणोति नैव तदवस्थः । विस्मृतात्मा वृषभान् प्रहरन् स गतो ग्रामम् ॥ ७ ॥
लोकेन शिक्षियितो भो भो ! किं कृतमिमैस्तव पापम् ? । यत्प्रहन्सि निःशडको निष्करुणो मुक्तमर्यादः ॥ ८ ॥
त्वमेतेषां स्वामिनो मार्गय पुन र्निजेषु व्यवहारम् । मुञ्चेमान् वराकान् गोरुपान् निर्विवेकांश्च ॥ ९ ॥
मूढः किमेवमेतावदात्मानं नग्नमिति न पश्यसि ? । भणति च नग्नमेतेषां स्वामिनः करिष्यामि न सन्देहः ॥ १० ॥
एवं शिक्षियितोऽपि हु क्रोधान्धो यावच्चेतयति न किमपि । तावदारक्षितपुरुषै र्बद्ध्वा गाढबन्धैः ॥ ११ ॥
कारागृहे क्षिप्तो धृत्वा कतिपयदिनानि शिक्षयित्वा । हृत्वा गृहसर्वस्वं मुक्तः कृत्वा यथाजातः ॥ १२ ॥

॥ चण्डभडाख्यानकं समाप्तम् ॥ ७६ ॥

चित्रसम्भूत्याख्यानकम् ॥ ७७ ॥

साकेतनगरनायकचन्द्रावतंसकसुतो गुरुसमीपे । प्रव्रजितो मुनिचन्द्रोऽटव्यां सार्थपरिभ्रष्टः ॥ १ ॥

दिट्ठो गोवालयदारएहिं पडिजग्गिओ य सो चउहिं । पडिबोहिऊण धम्मे सव्वे पव्वाविया तेण ॥२॥
पालिंति समणधम्मं नवरं तेसिं चउण्ह मज्झम्मि । दो जाईमयमहमं कुणंति मणयं तओ मरिउं ॥३॥
उववन्ना सुरलोए भोत्तूणं तत्थ अमरसोक्खाइं । संचिणियनीयगोया चइउं वाणारसिपुरीए ॥४॥
रज्जे रन्नो संखस्स तस्स मायंगभूयदिन्नस्स । उववन्ना पुत्तत्तेण नामओ चित्त-संभूया ॥५॥
ते दो वि रूववंता दोन्नि वि मेहागुणेण संजुत्ता । दोन्नि वि कलाण जोगा संजाया अट्ठवारिसिया ॥६॥
एत्तो य नमुइसचिवेण किंपि अंतेउरम्मि अवरद्धं । तो पच्छन्नो मरिउमप्पिओ तेसि जणयस्स ॥७॥
चिंतियमिमिणा जइ कहवि मह सुए एस गाहइ कलाओ । तो गोवेउं रक्खेमि चिंतिउं पुच्छिओ एसो ॥८॥
तेण वि तं पडिवन्नं सव्वं पि हु मरणभीयहियएणं । भूमीहरयम्मि ठिओ पाढइ ते दो वि तस्स सुए ॥९॥
मायंगी वि हु किच्चं सव्वं पि हु भोयणाइयं कुणइ । तो तीए वि समं सो तहेव लग्गो [1]अकज्जम्मि ॥१०॥
वसणं पत्तो वि हु तीए सह कहं सो अक्कज्जमायरइ ? धिसि धिसि ! एयस्स अकज्जकारिया नयणहयगस्स ॥११॥
इय विनिडियं पि विनडइ विग्गोवइ खलु विगोवियं पि जणं । मारेइ मारियं पि हु एस अणज्जो जओ भणियं ॥१२॥
कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलः, क्षुधाक्षामो दीनः पिठरककपालार्पितगलः ।
व्रणैः पूयक्लिन्नैः कृमिकुलचितैराचिततनुः, शुनीमभ्येति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥१३॥
मायंगेणमिमं पुण पच्छन्नं पि हु वियाणियं कह वि । नज्जइ चोरियरमियं गोविज्जंतं पि जेणुत्तं ॥१४॥
चंदकला-छुरमट्ठी-चोरियरमियाइँ राइणो मंतो । सुट्ठु वि गोविज्जंतं चउदियहे पायडं होइ ॥१५॥

दृष्टो गोपालकदारकैः प्रतिजागरितश्च स चतुर्भिः । प्रतिबोध्य धर्मे सर्वान् प्रव्राजितास्तेन ॥ २ ॥
पालयन्ति श्रमणधर्मं नवरं तेषां चतुर्णां मध्ये । द्वौ जातिमदमधमं कुर्वतो मनाक् ततो मृत्वा ॥ ३ ॥
उत्पन्नौ सुरलोके भुक्त्वा तत्रामरसौख्यानि । संचितनीचगौत्रौ च्युत्वा वाणारसिपुर्याम् ॥ ४ ॥
राज्ये राज्ञः शङ्खस्य तस्य मातङ्गभूतदत्तस्य । उत्पन्नौ पुत्रत्वेन नामतःचित्र-सम्भूती ॥ ५ ॥
तौ द्वावपि रुपवन्तौ द्वावपि मेधागुणेन संयुक्तौ । द्वावपि कलानां यौग्यौ सञ्जातावष्टवार्षिकौ ॥ ६ ॥
इतश्च नमुचिसचिवेन किम्प्यन्तःपुरेऽपराद्धम् । तदा प्रच्छन्नो मारयितुमर्पितस्तयो र्जनकस्य ॥ ७ ॥
चिन्तितमनेन यदि कथमपि मम सुतावेष ग्राहयति कलाः । तदा गोपयितुं रक्षामि चिन्तयित्वा पृष्ट एषः ॥ ८ ॥
तेनापि तत्प्रतिपन्नं सर्वमपि हु मरणभीतहृदयेन । भूमिगृहे स्थितः पाठ्यति तौ द्वावपि तस्य सुतौ ॥ ९ ॥
मातंग्यपि हु कृत्यं सर्वमपि हु भोजनादिकं करोति । ततस्तयापि समं तथैव स लग्नोऽकार्ये ॥ १० ॥
व्यसनं प्राप्तोऽपि हु तया सह कथं सोऽकार्यमाचरति ? । धिग्धिगैतस्याकार्यकारिता नयनहतकस्य ॥ ११ ॥
इति विनटितमपि विनटति विगोपते खलु विगोपितमपि जनम् । मार्यते मारितमपि खल्वेषोऽनार्यो यतो भणितम् ॥ १२ ॥
मातङ्गेनेदं पुनः प्रच्छन्नमपि हु विज्ञातं कथमपि । ज्ञायते चोरिकरमितं गोप्यमानमपि येनोक्तम् ॥ १४ ॥
चन्द्रकला-नापित-चोरिकरमितानि राज्ञो मन्त्रः । सुष्ठुरपि गोप्यमानं चतुर्दिवसे प्रकटं भवति ॥ १५ ॥

---

१. अकिच्चम्मि रं० ।

चिंतियमिमिणा संपइ पावमिमं सव्वहा वि मारिस्सं । पत्थावं लहिऊणं गुरु त्ति काउं पुण सुएहिं ॥१६॥
नीसारिऊण मुक्को गंतुं हत्थिणपुरम्मि अन्नाओ । जाओ पहाणमंती सणंकुमारस्स चक्किस्स ॥१७॥
ते वि हु मायंगसुया जोव्वण-लायन्न-रूवसंपन्ना । जाया कलासु कुसला गीयकलाए विसेसेणं ॥१८॥
अह अन्नया य पत्ते उम्मायकरे वसंतसमयम्मि । अंदोलयकीलासुं विलासिलोयम्मि कीलंते ॥१९॥
विविहासु चच्चरीसुं गायंतीसु (.....) नायरजणेणं । तेसिं मायंगाणं नीहरिया चच्चरी तइया ॥२०॥
गायंति गीयनिउणा तीए मज्झम्मि चित्त-संभूया । नायरयचच्चरीओ तेसिं गीएण भग्गाओ ॥२१॥
मायंगचच्चरीए मिलियाओ गीयपरवसमणाओ । मोत्तुं छिप्पमछिप्पं जायं असमंजसं सव्वं ॥२२॥
नाऊण वइयरमिमं पहाणपुरिसेहिं गंतु विन्नतं । रन्नो जह देव ! इमे मायंगा तुज्झ गायंति ॥२३॥
जत्थ तहिं सव्वो वि हु हरिणजुवाणो व्व गोरिगीएणं । अक्खित्तमणो न मुणइ कज्जमकज्जं नयरिलोओ ॥२४॥
तं सोउं नरवइणा गायंता वारिया समायंगा । रयणीए पच्छन्नं सुणंति ते चच्चरीगीयं ॥२५॥
निसुणंताणं तेसिं बला वि गव्वेण निग्गयं गीयं । सुणिऊण सियालाण व सद्दियमुन्नाइयद्धणियं ॥२६॥
तं नाऊणं रन्ना नियय़ाणइक्कमाओ रुट्ठेणं । नियविसयाओ निव्वासिऊण ते दो वि पम्मुक्का ॥२७॥
चिंतियमिमेहिं तइया अहिमाणाओ मणे सनिव्वेयं । धिसि धिसि ! अम्हाणमिमो कलाकलावाइगुणनियरो ॥२८॥
तथा हि-

चिन्ततमनेन सम्प्रति पापमिमं सर्वथापि मारिष्यामि । प्रस्तावं लब्ध्वा गुरुरिति कृत्वा पुनः सुताभ्याम् ॥ १६ ॥
निःसार्य मुक्तो गत्वा हस्तिनापुरेऽज्ञातः । जातः प्रधानमन्त्री सनत्कुमारस्य चक्रिणः ॥ १७ ॥
तावपि हु मातङ्गसुतौ यौवन-लावण्य-रुपसम्पन्नौ । जातौ कलासु कुशलौ गीतकलायां विशेषेण ॥ १८ ॥
अथान्यदा च प्राप्त उन्मादकरे वसन्तसमये । आन्दोलनक्रीडासु विलासिलोके क्रीडति ॥ १९ ॥
विविधासु चर्चरीषु गायन्तीषु (.....) नागरजनेन । तेषां मातङ्गानां निःसृता चर्चरी तदा ॥ २० ॥
गायन्ति गीतनिपूणा तस्या मध्ये चित्र-सम्भूतौ । नागरचचर्यस्तयो र्गीतेन भग्नाः ॥ २१ ॥
मातङ्गचर्चर्या मिलिता गीतपरवशमनसः । मुक्ता स्पृष्टमस्पृष्टं जातमसमञ्जसं सर्वम् ॥ २२ ॥
ज्ञात्वा व्यतीकरमिदं प्रधानपुरुषै र्गत्वा विज्ञप्तम् । राज्ञो यथा देव ! इमे मातङ्गा तव गायन्ति ॥ २३ ॥
यत्र तत्र सर्वोऽपि हु हरियुवेव गौरिगीतेन । आक्षिप्तमना न मुणोति कार्यमकार्य नगरिलोकः ॥ २४ ॥
तत् श्रुत्वा नरपतिना गायन्तो वारिताः स्वमातङ्गाः । रजन्यां प्रच्छन्नं शृण्वन्ति ते चर्चरीगीतम् ॥ २५ ॥
निशृण्वतां तेषां बलादपि गर्वेण निर्गतं गीतम् । श्रुत्वा शृगालानामिव शब्दितमुन्नीतमत्यन्तम् ॥ २६ ॥
तज्ज्ञात्वा राज्ञा निजकाज्ञातिक्रमाद्रुष्टेन । निजविषयान्निर्वास्य तौ द्वावपि प्रमुक्तौ ॥ २७ ॥
चिन्ततमेताभ्यां तदाभिमानान्मनसि सनिर्वेदम् । धिग्धिगस्माकमयं कलाकलापादिगुणनिकरः ॥ २८ ॥
तथाहि-

रूवं सोहग्गगुणो पियभासित्तं कलासु कुसलत्तं । जाईए दोसेणऽम्ह निप्फलं कासकुसुमं व ॥२९॥
ता दुक्कियहणणत्थं कुणिमो किंपि हु सुहं तवच्चरणं । जम्मे वि जेण एवं न भवामो परिभवट्ठाणं ॥३०॥
इय वेरग्गगएहिं अइसयनाणी मुणी जहा दिट्ठो । तेणा जहा दिन्नवया कट्ठाणुट्ठाण तवनिरया ॥३१॥
दिट्ठा य नमुइणा जह विहियं संभूइणा जह नियाणं । तेण जहा पत्ता सुरलोयं चुया तओ माणुसा जाया ॥३२॥
तह सव्वं समयाओ विन्नेयं वित्थरेण विउसेहिं । इह गंथगउरवभया न सम्ममुत्तं जमम्हेहिं ॥३३॥

॥ चित्र-सम्भूताख्यानकं समाप्तम् ॥७७॥

अधुना मायादित्यकथानकमुच्यते । तच्चेदम्-

रेहइ जो बहुगोउलसयसंकुलभूरिगामनिवहेहिं । गामा सारयससहरवलक्खदेवउलवंद्रेहिं ॥१॥
देवउलाइं वि निम्मलजलभररमणीयसरवरसएहिं । रेहंति सरवराइं वियसियसयकमलसंडेहिं ॥२॥
कमलवणाइं वि मयरंदलुद्धपरिभमिरभमरनियरेहिं । भमरा वि हु सुइसुहयरसमहुरझंकाररावेहिं ॥३॥
महुयरझंकारा वि हु सया वि सवणेक्करसियकुसलेहिं । सोयारा वि हु रेहंति जत्थ गंधव्वियकलाहिं ॥४॥
एवं परंपराए गुणाण को लहइ तस्स पज्जन्तं । त्रियसालयसंकासो सो कासी जणवओ अत्थि ॥५॥
तम्मि य पासजिणेसरपयपउमपवित्तयावणिविभागा । निस्सेसनयरिगुणगामधाम वाणारसी नयरी ॥६॥
तीसे समीववत्ती सालिग्गामो समत्थि थिमियजणो । तम्मि य गंगाइच्चो निवसइ कोडुंबिओ एगो ॥७॥

रुपं सौभाग्यगुणः प्रियभाषित्वं कलासु कुशलत्वम् । जात्या दोषेणास्मन्निष्फलं कासकुसुममिव ॥ २९ ॥
ततो दुष्कृतहननार्थं कुर्वः किमपि हु शुभं तपश्चरणम् । जन्मन्यपि येनैवं न भवावः परिभवस्थानम् ॥ ३० ॥
इति वैराग्यगताम्यामतिशयज्ञानी मुनि र्यथा दृष्टः । तेन यथा दत्तव्रतौ कष्टानुष्ठानतपोनिरतौ ॥ ३१ ॥
दृष्टौ च नमुचिना यथा विहितं सम्भूतिना यथा निदानम् । यथा प्राप्तौ सुरलोकं च्युतौ ततो मनुष्यौ जातौ ॥ ३२ ॥
तथा सर्वं समयाद्विज्ञेयं विस्तरेण विद्वद्भिः । इह ग्रन्थगौरवभयान्न सम्यगुक्तं यदस्माभिः ॥ ३३ ॥

॥ चित्र-सम्भूताख्यानकं समाप्तम् ॥ ७७ ॥

मायादित्यकथानकम् ॥ ७८ ॥

राजते यो बहुगोकुलशतसंकुलभूरिग्रामनिवहैः । ग्रामाः शारदशशधरश्वेतदेवकुलवृन्दैः ॥ १ ॥[1]
देवकुलान्यपि निर्मलजलभररमणीयसरोवरशतैः । राजन्ते सरोवराणि विकसितशतकमलखण्डैः ॥ २ ॥
कमलवनान्यपि मकरंदलुब्धपरिभ्रमद्भ्रमरनिकरैः । भ्रमरा अपि हु श्रुतिसुभगसमधुरझङ्काररावैः ॥ ३ ॥
मधुकरझङ्कारा अपि हु सदापि श्रवणैकरसिककुशलैः । श्रोतारोऽपि हु राजन्ते यत्र गान्धर्विककलाभिः ॥ ४ ॥
एवं परम्पराया गुणानां को लभते तस्य पर्यन्तम् । त्रिदशालयसंकाशः स काशीजनपदोऽस्ति ॥ ५ ॥
तस्मिंश्च पार्श्वजिनेश्वरपदपद्मपवित्रितावनिर्विभागा । निःशेषनगरिगुणग्रामधाम वाणारसी नगरी ॥ ६ ॥
तस्याः समीपवर्ती शालिग्रामः समस्ति स्तिमितजनः । तस्मिंश्च गङ्गादित्यो निवसति कौटुम्बिक एकः ॥ ७ ॥

---

१. वलक्षः - श्वेतः

सो उण कुकम्मवसओ धणवइपरिपूरियम्मि गाममि । दारिद्दभरक्कंतो कुकम्मनिरओ सया वसइ ॥८॥
नियतणुरूवविडंबियमयरद्धयमाणवाण मज्झम्मि । सो च्चिय कुरूवयाए दिट्ठो दिट्ठीए देइ दुहं ॥९॥
पुव्वाभासि-पियंवय-कन्नामयवयणभासणरयाणं । सो चेवेगो उव्वेयकारओ नवरि भासंतो ॥१०॥
सरलेसु वि मायावी किवणो चाईण मज्झयारम्मि । सुकयन्नूण कयग्घो विवुहाणं मुक्खसेहरओ ॥११॥
मुद्धजणवंचणरओ मायाए चेव कुणइ ववहारं । तत्तो जणेण विहियं मायाइच्चो त्ति से नामं ॥१२॥
अह तम्मि चेव गामे दक्खिन्नमहोयही महिमनिलओ । सरलसहावो सज्जणसिरोमणी साहुसिरतिलओ ॥१३॥
वसहाहिट्ठियदेहो अगतणयाहियमओऽभिहाणेण । थाणु त्ति विस्सुओ(.....) संकरो अत्थि थाणु व्व ॥१४॥
जल-जलणाण व छाया-ऽऽयवाण वरमाणि-वराडियाणं व । राहु-ससीण व तेसिं अमय-विसाणं व सुहिभावो ॥१५॥
संजाओ कहवि हु पुव्वजम्मअब्भत्थनेहरायाण । वारंतस्स वि लोयस्स सुद्ध-कलुसियमणाण परं ॥१६॥
अह अन्नया य नियसच्छयाए कलिएण थाणुणा भणिओ । मायाइच्चो मित्तोऽकलुसियचित्तेण कलुसमणो ॥१७॥
पुरिसत्थवज्जिएणं जाएण वि को गुणो मणूसेणं ? । चिंचापुरिसेण व मित्त ! मट्टियामयनरेणऽहवा ॥१८॥
धम्मत्थो तावऽम्हाण नत्थि सुहभावणाए रहियाणं । कामत्थो वि हु धणवज्जियाण दूरेण दुहियाणं ॥१९॥
अत्थोवज्जणकज्जे जुत्तो तावुज्जमो जमत्थेण । रहियाण माणवाणं निरत्थओ गुणकलावो वि ॥२०॥
जओ भणियं-

स पुनः कुकर्मवशाद्धनपतिपरिपूरिते ग्रामे । दारिद्रभराक्रान्तः कुकर्मनिरतः सदा वसति ॥ ८ ॥
निजतनुरुपविडम्बितमकरध्वजमानवानां मध्ये । स चैव कुरुपतया दृष्टो दृष्ट्या ददाति दुःखम् ॥ ९ ॥
पूर्वाभ्यासि-प्रियंवच-कर्णामृतवचनभाषणरतानाम् । स चैवेक उद्वेगकारको नवरि भाषमाणः ॥ १० ॥
सरलेष्वपि मायावी कृपणस्त्यागिनां मध्ये । सुकृतज्ञानां कृतघ्नो विबुधानां मुर्खशेखरकः ॥ ११ ॥
मुग्धजनवञ्चनरतो मायया चेव करोति व्यवहारम् । ततो जनेन विहितं मायादित्य इति तस्य नाम ॥ १२ ॥
अथ तर्स्मिश्चैव ग्रामे दाक्षिण्यिमहोदधि र्महिमानिलयः । सरलस्वभावः सज्जनशिरोमणी साधुशिरस्तिलकः ॥ १३ ॥
वृषभाधिष्ठितदेहोऽगतनयाधीतमतोऽभिधानेन । स्थाणुरिति विश्रुतो (.....) शंकरोऽस्ति स्थाणुरिव ॥ १४ ॥
जल-ज्वालनयोरिव छायातपयो र्वरमणि-वराटिकानामिव । राहु-शशिनो रिव तयोरमृत-विषयोरिव सुहृद्भावः ॥ १५ ॥
सञ्जातः कथमपि हु पूर्वजन्माभ्यस्तस्नेहरतयोः । वार्यमाणस्यापि लोकस्य शुद्ध-कलुषितमनसोः परम् ॥ १६ ॥
अथान्यदा च निजस्वच्छतया कलितेन स्थाणुना भणितः । मायादित्यो मित्रोऽकलुषितचितेन कलुषमनाः ॥ १७ ॥
पुरुषार्थवर्जितेन जातेनापि को गुणो मनुष्येन ? । चिञ्चापुरुषेणेव मित्र ! मृतिकामयनरेणाथवा ॥ १८ ॥
धर्मार्थस्तावदस्माकं नास्ति शुभभावनया रहितानाम् । कामार्थाऽपि हु धनवर्जितानां दूरेण दुःखितानाम् ॥ १९ ॥
अर्थोपार्जनकार्ये युक्तस्तावदुद्यमो यदर्थेन । रहितानां मानवानां निरर्थकोगुणकलापोऽपि ॥ २० ॥
यतो भणितम् -

जाई रूवं विज्जा तिन्नि वि निवडंतु गिरिगुहाविवरे । अत्थो च्चिय परिवड्ढउ जेण गुणा पायडा हुंति ॥२१॥

किंच-

अणहुंता वि हु हुंतीए हुंति हुंता वि जंति जंतीए । ओ ! जीए समं नीसेसगुणगणा जयउ सा लच्छी ॥२२॥

अवरं च दविणरहियस्स मित्त ! धम्मप्पियस्स वि गिहिस्स । इहलोय-पारलोइयकिरियाओ गलंति सयलाओ ॥२३॥

इय मित्तवयणमायन्निऊण मायापवंचमइनिउणो । जंपइ मायाइच्चो पहसियवयणो कुडिलहियओ ॥२४॥

जइ एवं ता चल्लसु जामो वाणारसीए नयरीए । तीए वि हु धणयसमाणविहवनागरयगेहेसु ॥२५॥

खत्ताणि खणामो कणय-रयणऽलंकार भूसिए कन्ने । तोडेमो वणियवहूण दविणगंठीओ छिंदेमो ॥२६॥

काहामो वंदिगहं पभूयविहवाण वणियनिवहाणं । एवंविहमवरं पि हु तत्थऽत्थकए करिस्सामो ॥२७॥

एवं जत्तपराणं साहससहियाण बुद्धिमंताणं । एस वराओ अत्थो कत्तियमेत्तो किलऽम्हाणं ? ॥२८॥

एवं सोउं मयसमयमत्तकरिदंतघट्टियतरु व्व । करपल्लवे धुणंतो, तहिं पिहिन्तो य सवणजुयं ॥२९॥

मा मित्त ! वयणमेरिसमणंतभवभमणकारणमसुद्धं । हियए वि धरसु सज्जण !, किमंग पुण वयण-किरियासु ?।३०।

जेण परस्स विरूवं, जायइ परलोगबाहगं जं वा । तद्दारेणं जं होइ वंछियं तेण न हु कज्जं ॥३१॥

भणियं च-

अकृत्वा परसन्तापमगत्वा खलसङ्गतिम् । अनुत्सृज्य सतां मार्ग, यत् स्वल्पमपि तद् बहु ॥३२॥

जाति रुपं विद्या त्रिण्यपि निपतन्तु गिरिगृहाविवरे । अर्थश्चैव परिवर्धतां येन गुणाः प्रकटा भवन्ति ॥ २१ ॥

किञ्च -

अभवन्तोऽपि हु भवन्त्या भवन्ति भवन्तोऽपि यान्ति यान्त्या । आ ! यस्याः समं निःशेषगुणगणा जयतु सा लक्ष्मीः ॥ २२ ॥

अपरं च द्रविणरहितस्य मित्र ! धर्मप्रियस्यापि गृहिणः । इहलोक-परलौकिकक्रिया गलन्ति सकलाः ॥ २३ ॥

इति मित्रवचनमाकर्ण्य मायाप्रपञ्चमतिनिपूणः । जल्पति मायादित्यः प्रहसितवदनः कुटिलहृदयः ॥ २४ ॥

यद्येवं तावच्चल यावो वाणारस्यां नगर्याम् । तस्यामपि हु धनदसमानविभवनागरगृहेषु ॥ २५ ॥

क्षात्राणि खनावः कनक-रत्नालङ्कारभूषितान् कर्णान् । त्रोटयावो वणिग्वधूनां द्रविणग्रन्थ्यश्चिच्छन्द्वः ॥ २६ ॥

करिष्यावो बन्दिगृहं प्रभूतविभवानां वणिग्निवहानाम् । एवंविधमपरमपि हु तत्रार्थकृते करिष्यावः ॥ २७ ॥

एवं यत्नपराणां साहससहितानां बुद्धिमताम् । एष वराकोऽर्थः कियन्मात्रः किलास्माकम् ? २८ ॥

एवं श्रुत्वा मदसमयमत्तकरिदन्तघट्टयिततरूरिव । करपल्लवौ धुर्णन्, तत्र पिदधंश्च श्रवणयुगम् ॥ २९ ॥

मा मित्र ! वचनमीदृशमनन्तभवभ्रमणकारणमशुद्धम् । हृदयेऽपि धर सज्जन ! किमङ्ग पुनर्वचनक्रिययोः ? ॥ ३० ॥

येन परस्य विरुपं जायते परलोकबाधकं यद्वा । तद्द्वारेण यद्भवति वाञ्छितं तेन न हु कार्यम् ॥ ३१ ॥

भणितं च -

ता अवरे वि उवाया अणेगरूवा धणज्जणे संति । तेहिं वि जायइ वित्तं पुन्नसहायाणं[1] पुरिसाणं ॥३३॥
ते उण वाणिज्जकला किसिकम्मं गरुयराइणो सेवा । धाउव्वाओ वरदेवयाए आराहणाकरणं ॥३४॥
जलनिहितरणं पसुपालवित्तिया गिरिगुहापवेसो य । ईसरगिहकम्मकरत्तमप्पणो विणयकरणेणं ॥३५॥
एमाइअणेगविहं अत्थोवज्जणकए अणुट्ठाणं । ता किं भवओ भणिएण निंदिएणं सयाणाण[2] ? ॥३६॥
तो भणइ तस्स मित्तो, हासेणं मित्त ! जंपियमिमं ति । न उणो मरणा वि अकज्जमेरिसं अहमणुट्ठिस्सं ॥३७॥
अत्थोवज्जणहेउं तत्तो दोन्नि वि गया पइट्ठाणे । तत्थ अणेगोवाएहिं विढवियं तेहिं पउरधणं ॥३८॥
जा गणियं ता जाया, पंच्चसहस्सा सुवन्नजायस्स । पत्तेयं पत्तेयं दोन्हं पि हु दव्वसंखाए ॥३९॥
चिंतियमिमेहिं दव्वं कायकिलेसेण जायमम्हाणं । अन्नत्थ देसियाणं परं किमेएण ? भणियं च ॥४०॥
किं तीए सिरीए पीवराए ? जा होई अन्नदेसम्मि । जा य न मित्तेहिं समं जं च अमित्ता न पेच्छंति ॥४१॥
ता गच्छामो संपइ नियदेसे तत्थ धम्मियजणाणं । नियसयणाण जहिच्छं नियलच्छिं संपयच्छामो ॥४२॥
परमेयं चोरिभया निव्वाहेउं न तीरइ सुवन्नं । ता विणिवट्टिय लेमो महग्घरयणाणि एएण ॥४३॥
ताणि सुहं संगोविय मग्गे निज्जंति चिंतिऊणेवं । किणियाणि सुवन्नेणं सहस्समुल्लाणि रयणाणि ॥४४॥
तत्तो य मलिणजरचीवरस्स गंठीए बंधिउं ताणि । सुमुहुत्तम्मि पयट्टा गंतुं कप्पडियवेसेण ॥४५॥
मग्गे गच्छंतेणं मायाइच्चेण चिंतियमणिट्ठं । वंचेऊणं थाणुं गिण्हामि समग्गरयणाणि ॥४६॥

तावदपरेऽप्युपाया अनेकरूपा धनार्जने सन्ति । तैरपि जायते वित्तं पुण्यसहायानां पुरुषाणाम् ॥ ३३ ॥
ते पुनर्वाणिज्यकलाकृषिकर्मगुरुकराज्ञःसेवा । धातुवादो वरदेवताया आराधनाकरणम् ॥ ३४ ॥
जलनिधितरणं पशुपालवृत्तिका गिरिगुहाप्रवेश्च । ईश्वरगृहकर्मकरत्वमात्मनो विनयकरणेन ॥ ३५ ॥
एवमाद्यनेकविधमर्थोपार्जनकृते ऽनुष्ठानम् । ततः किं भवतो भणितेन निन्दितेन सकर्णानाम् ? ॥ ३६ ॥
तदा भणति तस्य मित्रं, हास्येन मित्र ! जल्पितमिदमिति । न पुनर्मरणादप्यकार्यमीदृशमहमनुस्थास्यामि ॥ ३७ ॥
अर्थोपार्जनहेतुं ततो द्वावपि गतौ प्रतिष्ठाने । तत्रानेकोपायैरर्जितं तैः प्रचुरधनम् ॥ ३८ ॥
यावद्गणितं जाताः पञ्चसहस्राः सुवर्णजातस्य । प्रत्येकं प्रत्येकं द्वयोरपि हु द्रव्यसंख्यया ॥ ३९ ॥
चिन्तितमेताभ्यां द्रव्यं कायक्लेशेन जातमस्माकम् । अन्यत्र देशिकानां परं किमेतेन ? भणितं च ॥ ४० ॥
किं तथा श्रिया पीवरया ? या भवत्यन्यदेशे । या च न मित्रैःसमं यच्चामित्रा न पश्यन्ति ॥ ४१ ॥
ततो गच्छावः सम्प्रति निजदेशे तत्र धार्मिकजनानाम् । निजस्वजनानां यथेच्छं निजलक्ष्मीं सम्प्रयच्छावः ॥ ४२ ॥
परमेतच्चोरिभयान्निर्वाहितुं न शक्यते सुवर्णम् । ततो विनिवर्त्य लावो महार्ध्यरत्नान्येतेन ॥ ४३ ॥
तानि सुखं संगोप्य मार्गे नीयन्ते चिन्तयित्वैवम् । क्रीतानि सुवर्णेन सहस्रमूल्यानि रत्नानि ॥ ४४ ॥
ततश्च मलीनजीर्णचीवरस्य ग्रन्थौ बद्ध्वा तानि । सुमुहूर्ते प्रवृत्तौ गन्तुं कार्पटिकवेशेन ॥ ४५ ॥
मार्गे गच्छता मायादित्येन चिन्तितमनिष्टम् । वञ्चित्वा स्थाणुं गृह्णामि समग्ररत्नानि ॥ ४६ ॥

---

१. ०ण संताणं रं० । २. सकर्णानाम् ।

तो कवडेणं भणियं भो ! भिक्खाभोयणेण एएण । पव्वहिया पइदियहं मित्त ! वयं मग्गपरिसंता ॥४७॥
मुक्खत्तणेण अहयं काउं कयविक्कयं न याणामि । ता आगच्छसु किणिऊण किं पि तं मंडयाईयं ॥४८॥
परमेत्थ नयरमज्झे न नज्जए केरिसो वि ववहारो ? । तो रयणकप्पडमिमं मह पासे मेल्लिउं जाहि ॥४९॥
तत्तो वंचणमइणा नयतरुकरिणा ..... कयसिरमणिणा । निद्दयवणिणा तेणं जं विहियं तं निसामेह ॥५०॥
तारिसयमलिणचीवरगंठिदुगे बंधिऊण पाहाणे । किर एयमप्पिउं गिण्हिऊण सेसं पलाइस्सं ॥५१॥
तो आगए तमप्पिय जामि अहं गोरसाइकज्जम्मि । तं परिवालसु एत्थेव निग्गए तम्मि इय भणिउं ॥५२॥
एसाऽऽगच्छइ मित्तो इय बहुहा खिज्जिऊण थाणुवणी । गेहाभिमुहो चलिओ सविसाओ मित्तवसणेण ॥५३॥
हा मित्त ! सुहय ! तं कत्थ दीससे ? किं न देसि पडिवयणं ? । कत्थ गओ सि महायस ! संपई मोत्तुं ममेगागीं ॥५४॥
जइ जीवंतो एही मह मित्तो ता इमं धणं तस्स । अह नो एही तम्माणुसाण गेहे समप्पिस्सं ॥५५॥
एवं थाणू वच्चइ मायाइच्चो वि दूरदेसम्मि । गंतुं[1] जाव निरूवइ पेच्छइ तावुवलगंठिदुगं ॥५६॥
तत्तो झूरइ पलवइ कुट्टइ वच्छत्थलं मलइ हत्थे । दीहरनीसासे मुयइ दुम्मणो रुयइ चिंतइ य ॥५७॥
जो अन्नस्स विरूयं चिंतइ तेणेव दुगुणतरगेण । सो हम्मइ कंडेण व पच्चुप्फिडिएण न हु भंती ॥५८॥
भमडंतो महिवलयं भिक्खाभोई किलिट्ठपरिणामो । मिलिओ मायाइच्चो कइया वि हु थाणुणो मग्गे ॥५९॥
तो उक्कंठियहियओ कंठिम्मि विलग्गिउं परुन्नो सो । हा मित्त ! मज्झ वल्लह ! कत्थ ठिओ एत्तियं कालं ? ॥६०॥

ततः कपटेन भणितं भो ! भिक्षाभोजनेनैतेन । प्रवाहितौ प्रतिदिवसं मित्र ! आवां मार्गपरिश्रान्तौ ॥ ४७ ॥
मुर्खत्वेनाहं कर्तुं क्रयविक्रयं न जानामि । तत आगच्छ क्रीत्वा किमपि त्वं मण्डकादिकम् ॥ ४८ ॥
परमत्र नगरमध्ये न ज्ञायते कीदृशोऽपि व्यवहारः ? । ततो रत्नकर्पटमिदं मम पार्श्वे मुक्त्वा याहि ॥ ४९ ॥
ततो वञ्चनमतिना नयतरुकरिणा..... कृतशिरोमणिना । निर्दयवणिजा तेन यद्विहितं तन्निशाम्यत ॥ ५० ॥
तादृशमलिनचीवरग्रन्थिद्विके बद्ध्वा पाषाणान् । किलैनमर्पयित्वा गृहित्वा शेषं पलायिष्ये ॥ ५१ ॥
तत आगते तमर्पयित्वा याम्यहं गोरसादि कार्ये । त्वं परिपालयात्रैव निर्गते तस्मिन्निति भणित्वा ॥ ५२ ॥
एष आगच्छति मित्रमिति बहुधा खेदित्वा स्थाणुवणिक् । गृहाभिमुखश्चलितः सविषादो मित्रव्यसनेन ॥ ५३ ॥
हा मित्र ! सुभग ! त्वं कुत्र दृश्यसे ? किं न दासि प्रतिवचनम् । क्व गतोऽसि महायशः ! संप्रति मुक्त्वा मामेकाकिनम् ॥५४॥
यदि जीवन्नेष्यति मम मित्रं तावदिदं धनं तस्य । अथ नैष्यति तन्मनुष्याणां गृहे समर्पयिष्यामि ॥ ५५ ॥
एवं स्थाणुर्गच्छति मायादित्योऽपि दुरदेशे । गत्वा यावन्निरुपयति प्रेक्षते तावदुपलग्रन्थिद्विकम् ॥ ५६ ॥
ततः खिद्यते प्रलपति ताडयति वक्षःस्थलं मलति हस्तौ । दीर्घनिश्वासान्मुञ्चति दुर्मना रोदिति चिन्तयति च ॥ ५७ ॥
योऽन्यस्य विरुपं चिन्तयति तेनैव द्विगुणतरकेण । स हन्यते काण्डेनेव प्रत्युत्स्फट्य न खलु भ्रान्तिः ॥ ५८ ॥
भ्रमन्महिवलयं भिक्षाभोजी क्लिष्टपरिणामः । मिलितो मायादित्यः कदापि खलु स्थाणुं मार्गे ॥ ५९ ॥
तदोत्कण्ठितहृदयः कण्ठे विलग्य प्ररुदितः सः । हा मित्र ! मम वल्लभ ! कुत्र स्थित एतावन्तं कालम् ॥ ६० ॥

१. गंतू खं० ।

किं वा सुह-दुहजायं, मह विरहं विसहियं तए मित्त !? । इय पुट्ठो मायाए मायाइच्चे पयंपेइ ॥६१॥
अत्थि तुह रयणदसगं समप्पिउं पत्थिओ अहं तइया । गोरसकज्जे तत्तो कम्मि वि गेहे पविट्ठो हं ॥६२॥
चोरो त्ति भणिय गहिओ आरक्खियसंतिएहिं पुरिसेहिं । पक्खित्तो गोत्तीए सुदुक्खिओ जाव चिट्ठामि ॥६३॥
भोयावणत्थमेगा तावाऽऽया मज्झिमा जुवई । तीए कहियं ते देवयाए गहिओ बलिनिमित्तं ॥६४॥
धरमज्झवाउलाणं जइ कह वि विणिग्गओ तओ लट्ठं । तो हं भीओ लहिऊणमंतरं कह वि नीसरिओ ॥६५॥
इय नियवइयरजायं तुमए जं पुच्छियं तयं कहियं । सुह-दुहकहणाओ अहं जाओ सुहिओ जओ भणियं ॥६६॥
मित्तेहिं जाव न सुयं सुहं व दुक्खं व जीवलोयम्मि । सुयणाण हिययलग्गं तावऽच्छइ नद्धसल्लं व ॥६७॥
एवं वच्चंताणं अडवी निम्माणुसा समणुपत्ता । तत्तो छुहाकिलंतो मायाइच्चं भणइ थाणू ॥६८॥
गिण्हसु रयणाणि इमाणि मित्त ! मह परवसस्स पडिहिंति । तो तेण हरिसिएणं घेत्तूणं चिंतियं एयं ॥६९॥
पुणरवि वंचेमि इमं हत्थे चडियाणि मज्झ रयणाणि । इय कलुसिएण दिट्ठो तणछन्नो कूवओ तत्तो ॥७०॥
अवहत्थिय चिरपरिचयमवगन्निय(निय)कुलक्कमायारं । परिहरिउं पुरिसव्वयमंगीकाउं नरयवडणं ॥७१॥
उज्झिय नियमज्जायं विस्सरिउं सुहिसिणेहसब्भावं । परिचइउं सदयत्तं दूरीकाऊण लोयठिइं ॥७२॥
पक्खित्तो पिसुणत्तणमवलंबिय तेणमंधकूवम्मि । सरलसहावो मित्तो कयग्घनिक्किवसिरोमणिणा ॥७३॥
तत्थ वि पडिओ चिंतइ पक्खित्तो केण कूवमज्झम्मि ? । न मुणइ सरलत्तणओ थाणू जह मित्तकम्ममिमं ॥७४॥

किं वा सुख-दुःखजातं मम विरहे विसोढं त्वया मित्र ! ? । इति पुष्टो मायया मायादित्यः प्रजल्पति ॥ ६१ ॥
अस्ति तव रत्नदशकं समर्प्य प्रस्थितोऽहंतदा । गोरसकार्ये ततः कस्मिन्नपि गृहे प्रविष्टोऽहम् ॥ ६२ ॥
चौर इति भणित्वा गृहीत आरक्षितसत्कैः पुरुषैः । प्रक्षिप्तो गुप्तौ सुदुःखितो यावत्तिष्ठामि ॥ ६३ ॥
भोजनार्थमेका तावदायाता मम मध्यमा युवतिः । तया कथितं त्वं देवताया गृहीतो बलिनिमित्तम् ॥ ६४ ॥
गृहमध्यव्याकुलानां यथा कथमपि विनिर्गतस्ततो मनोहरम् । तदाहं भीतो लब्ध्वान्तरं कथमपि निःसृतः ॥ ६५ ॥
इति निजव्यतीकरजातं त्वया यत्पृष्टं तकत्कथितम् । सुख-दुःखकथनादहं जातः सुखितो यतो भणितम् ॥ ६६ ॥
मित्रै र्यावन्न श्रुतं सुखं वा दुःखं च जीवलोके । सुहृदानां हृदयलग्नं तावदास्ते नद्धशल्यमिव ॥ ६७ ॥
एवं व्रजतोरटवी निर्मनुष्या समनुप्राप्ता । ततः क्षुधाक्लान्तो मायादित्यं भणति स्थाणुः ॥ ६८ ॥
गृहाण रत्नानीमानि मित्र ! मम परवशस्य पतिष्यन्ति । तदा तेन हर्षितेन गृहीत्वा चिन्तितमेतद् ॥ ६९ ॥
पुनरपि वञ्चयाम्येनं हस्तमारूढाणि मम रत्नानि । इति कलुषितेन दृष्टस्तृणच्छन्नः कूपकस्ततः ॥ ७० ॥
अपहस्त्य चिरपरिचयमवगण्यनिजकुलक्रमाचारम् । परिहृत्य पुरुषव्रतमङ्गीकृत्वा नरकपतनम् ॥ ७१ ॥
उज्झित्वा निजमर्यादां विस्मृत्य सुहृत्स्नेहसद्भावम् । परित्यज्य सदयत्वं दूरीकृत्या लोकस्थितिम् ॥ ७२ ॥
प्रक्षिप्तः पिशुनत्वमवलम्ब्य तेनान्धकूपे । सरलस्वभावो मित्रं कृतघ्ननिष्कृपशिरोमणिना ॥ ७३ ॥
तत्रापि पतितश्चिन्तयति प्रक्षिप्तः केन कूपमध्ये ? । न मुणोति सरलत्वात्स्थाणुर्यथा मित्रकर्मेदम् ॥ ७४ ॥

जावुप्पहेण चलिओ इयरो ता हण हण त्ति भणिरेहिं । भिल्लेहिं बंधिऊणं मुक्को घेत्तूण रयणाणि ॥७५॥
अणुभव दुन्नयतरुणो कुसुमं रे जीव ! फलमिओ नरओ । इय भाविंतो चिट्ठइ कुडंगिमज्झम्मि पक्खित्तो ॥७६॥
एत्तो सेणावइणा भणिया भिल्ला तिसाभिभूएण । भो भो ! जोयह नीरं ते वि भमंता गया तत्थ ॥७७॥
जत्थऽच्छइ सो थाणू तणछन्ने कूवयम्मि पक्खित्तो । नीरं जाव निहालंति ताव निसुणंति नरसद्दं ॥७८॥
भो भो ! मं पहियनरं नरयसमाओ तमंधकूवाओ । उत्तारह केणावि हु पक्खित्तं करिय कारुन्नं ॥७९॥
तेहिं वि सेणावइणो कहिऊणं कड्ढिओ निउत्तेहिं । पुट्ठेण जहावुत्तं कहियं तेसिं नियं चरियं ॥८०॥
भो भो ! एस वराओ पक्खित्तो तेण कूवए नूणं । रयणाणि दंसिऊणं सव्वं पि विणिच्छियं तेहिं ॥८१॥
तेण वि मग्गंतेणं दिट्ठो मित्तो कुडंगमज्झम्मि । नीसारिऊण तत्तो मग्गे गंतुं पयट्टा ते ॥८२॥
वच्चंता य कमेणं पत्ता पच्चंतगाममेगमिमे । तत्तो विचित्तयाए कम्माणमचिंतसत्तीए ॥८३॥
जाओ सुहपरिणामो मायाइच्चस्स एत्थ पत्थावे । चिंतियमिमिणा मह चेट्ठियस्स धिद्धी ! विरूयस्स ॥८४॥
ता केण पयारेण मह सुद्धी होज्ज पावमलिणस्स ? । इय चिंतिऊण पुट्ठा गामकुलीणा विसुद्धिकए ॥८५॥
तेहिं वि केण वि किं पि हु पावविसुद्धीए कारणं भणियं । जावंते सव्वेहिं वि गंगान्हाणं समाइट्ठं ॥८६॥
तो तत्थ पट्ठिएणं दिट्ठो सिरिधम्मनंदणो सूरी । धम्मं वागरमाणो भव्वाणं पावसुद्धिकए ॥८७॥
तत्तो सो वि हु पुच्छइ पच्छायावेण दूमिओ भयवं ! । मह मित्तवंचणऽज्जियपावविलुत्तस्स किं ताणं ? ॥८८॥

यावदुत्पथा चलित इतरस्तावद् जहि जहिति भणद्भिः । भिल्लै र्बद्धवा मुक्तो गृहीत्वा रत्नानि ॥ ७५ ॥
अनुभवदुर्नयतरोः कुसुमं रे जीव ! फलमितो नरकः । इति भावयंस्तिष्ठति कुटङ्गीमध्ये[१] प्रक्षिप्तः ॥ ७६ ॥
इतः सेनापतिना भणिता भिल्लास्तृषाभिभूतेन । भो भो पश्यत नीरं तेऽपि भ्रमन्तो गतास्तत्र ॥ ७७ ॥
यत्रास्ते स स्थाणुस्तृणच्छन्ने कूपके प्रक्षिप्तः । नीरं यावन्निभालयन्ति तावन्निश्रुण्वन्ति नरशब्दम् ॥ ७८ ॥
भो भो ! मां पथिकनरं नरकसमात्तमोंऽधकूपात् । उत्तारयत केनापि हु प्रक्षिप्तं कृत्वा कारुण्यम् ॥ ७९ ॥
तैरपि सेनापतेः कथयित्वा कृष्टो नियुक्तैः । पृष्टेन यथावृत्तं कथितं तेषां निजचरितम् ॥ ८० ॥
भो भो ! एष वराकः प्रक्षिप्तस्तेन कूपके नूनम् । रत्नानि दर्शयित्वा सर्वमपि विनिश्चितं तैः ॥ ८१ ॥
तेनापि मार्गयता दृष्टो मित्रं कुटङ्कमध्ये । निःसार्य ततो मार्गे गन्तुं प्रवृत्तौ तौ ॥ ८२ ॥
व्रजन्तौ च क्रमेण प्राप्तौ प्रत्यन्तग्राममेकमिमौ । ततो विचित्रतया कर्माणामचिन्तशक्त्या ॥ ८३ ॥
जातः शुभपरिणामो मायादित्यस्यात्र प्रस्तावे । चिन्तितमनेन मम चेष्ठितस्य धिग्धिग्विरुपस्य ॥ ८४ ॥
ततः केन प्रकारेण मम शुद्धि र्भवेत्पापमलिनस्य । इति चिन्तयित्वा पृष्टाः ग्रामकुलीना विशुद्धिकृते ॥ ८५ ॥
तैरपि केनापि किमपि हु पापविशुध्याः कारणं भणितम् । यावदन्ते सर्वैरपि गङ्गास्नानं समादिष्टम् ॥ ८६ ॥
ततस्तत्र प्रस्थितेन दृष्टः श्रीधर्मनन्दनः सूरिः । धर्मं कथ्यमानो भव्यानां पापशुद्धिकृते ॥ ८७ ॥
ततः सोऽपि हु पृच्छति पश्चात्तापेन दूनो भगवन् ! । मम मित्रवञ्चनार्जितपापविलिप्तस्य किं त्राणम् ? ॥ ८८ ॥

---

१. कुंडंगी (दे।) कुटङ् की वांसनी ઝાળી

पुव्विल्लगामगामीणएहिं मह मेत्तदोहमलिणस्स । जल-जलण-तित्थण्हाणाइएहिं किल दंसिया सुद्धी ॥८९॥
मुणिनाहो वि पयंपइ इमेहि पुणरुत्तपावजणएहिं । भद्दय ! न भवइ ताणं धुवमन्नाणियबहुमएहिं ॥९०॥
अइकूररायकेसरिकरालमुहकुहरमज्झवडियाणं । कत्तो ताणं ताणं मोत्तूणाऽऽणं जिणिंदाणं ? ॥९१॥
उब्भडदोसमहागयजगडियगरुयाभिमाणविहवाण । कत्तो ताणं ताणं मोत्तूणाऽऽणं जिणिंदाणं ? ॥९२॥
पजलियकोहहुयासणजालावलिडज्झमाणहिययाणं । कत्तो ताणं ताणं मोत्तूणाऽऽणं जिणिंदाणं ? ॥९३॥
माणमहागुरुपव्वयचंपियनिम्मलविवेयगत्ताणं । कत्तो ताणं ताणं मोत्तूणाऽऽणं जिणिंदाणं ? ॥९४॥
मायादुट्ठभुयंगीविसवेयविलुत्तसुद्धबोहाणं । कत्तो ताणं ताणं मोत्तूणाऽऽणं जिणिंदाणं ? ॥९५॥
तिहुयणजगडणसंपत्तमहिमगुणलोहरायवसगाणं[1] । कत्तो ताणं ताणं मोत्तूणाऽऽणं जिणिंदाणं ? ॥९६॥
भुवणत्तयसंतावयमच्चुमहारायवयणपत्ताणं । कत्तो ताणं ताणं मोत्तूणाऽऽणं जिणिंदाणं ? ॥९७॥
इय सोऊणं सम्मं मायाइच्चो पवन्नजिणधम्मो । आलोइऊण मायामहल्लसल्लं गओ सग्गं ॥९८॥

॥ मायादित्याख्यानकं समाप्तम् ॥७८॥

इदानीं लोभनन्द्याख्यानकमुच्यते । तद्यथा-

नयरम्मि वसंतउरे जियारिनामो नरेसरो आसि । तेणऽन्नया सरोवरमेगं कारावियं तत्थ ॥१॥
तम्मि उ खणिज्जमाणे कणयकुसा निग्गया मिउपणिद्धा । निवपच्छन्नं दिन्ना उडुहिं लोहनंदिस्स ॥२॥

पूर्वग्रामग्रामिणकै र्मम मैत्रीद्रोहमलिनस्य । जल-ज्वलन-तीर्थस्नानादिकैः किल दर्शिता शुद्धिः ॥ ८९ ॥
मुनिनाथोऽपि प्रजल्पतीमैः पुनरुक्तपापजनकैः । भद्रक ! न भवति त्राणं ध्रुवमज्ञानिकबहुमतैः ॥ ९० ॥
अतिक्रूररागकेसरिकरालमुखकुहरमध्यपतितानाम् । कुतस्त्राणं तेषां मुक्त्वाऽऽज्ञां जिनेन्द्राणाम् ? ॥ ९१ ॥
उद्भटदोषमहागजकदर्थितगुरुकाभिमानविभवानाम् । कुतस्त्राणं तेषां मुक्त्वाऽऽज्ञां जिनेन्द्राणाम् ? ॥ ९२ ॥
प्रज्वलितक्रोधहुताशनज्वालावलिदह्यमान हृदयाणाम् । कुतस्त्राणं तेषां मुक्त्वाऽऽज्ञां जिनेन्द्राणाम् ? ॥ ९३ ॥
मानमहागुरुपर्वताक्रान्तनिर्मलविवेकगात्राणाम् । कुतस्त्राणं तेषां मुक्त्वाज्ञां जिनेन्द्राणाम् ? ॥ ९४ ॥
मायादुष्टभुजङ्गीविषवेगविलुप्तशुद्धबोधानाम् । कुतस्त्राणं तेषां मुक्त्वाज्ञां जिनेन्द्राणाम् ? ॥ ९५ ॥
त्रिभुवनकदर्थनसंप्राप्तमहिमागुणलोभराजवशगानाम् । कुतस्त्राणं तेषां मुक्त्वाज्ञां जिनेन्द्राणाम् ? ॥ ९६ ॥
भुवनत्रयसंतापकमृत्युमहाराजवदनप्राप्तानाम् । कुतस्त्राणं तेषां मुक्त्वाज्ञां जिनेन्द्राणाम् ? ॥ ९७ ॥
इति श्रुत्वा सम्यग् मायादित्यः प्रपन्नजिनधर्मः । आलोच्य मायामहच्छल्यं गतः स्वर्गम् ॥ ९८ ॥

॥ मायादित्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ७८ ॥

लोभनन्द्याख्यानकम् ॥ ७९ ॥

नगरे वसन्तपुरे जितारिनामा नरेश्वर आसीत् । तेनान्यदा सरोवरमेकं कारितं तत्र ॥ १ ॥
तस्मिन् खन्यमाने कनककुशा निर्गता मृत्स्निग्धाः । नृपप्रच्छन्नं दत्ताः खनकै र्लोभनन्देः ॥ २ ॥

---

१. गुणमोहराय - खं० रं० ।

विन्नायसरूवेण वि लोहऽग्गलिएण लोहमुल्लेण । गहिऊण तेण भणियं अवरे वि य मज्झ दायव्वा ॥३॥
ते वि अणुवासरं पि हु तस्स पयच्छंति अन्नया स वणी । नीओ बलिचंडाए मित्तेणं अन्नगाममि ॥४॥
गच्छंतेणं तेणं पयंपिओ नियसुओ जहा वच्छ ! । लोहकुसा दविणेणं बहुएण वि संगहेयव्वा ॥५॥
ते आगया महग्घत्तणेण कुविएण सेट्ठितणएण । ताणेगो उल्लालिय खित्तो अन्नायतत्तेण ॥६॥
पाहाणे अब्भिट्ठो विघट्टिया मट्टिया तओ तस्स । दिट्ठो य दित्तकंचणविणिम्मिओ रायपुरिसेहिं ॥७॥
भणियं च तेहिं चोरा वणियाणं दिंति रायदविणमिणं । तो बंधिऊण खित्ता रायपुरो पुच्छिया तेण ॥८॥
हट्टम्मि कस्स कस्स य दिन्नामिणं ? ते भणंति नऽन्नस्स । मोत्तूण लोहनंदिं सामि ! समग्गं पि तुह दविणं ॥९॥
पढमं पि हु जिणदासस्स दंसियं तेण गिण्हियं नेय । तो वाहरिय स पुट्ठो निवेण किं न हु तए गहियं ? ॥१०॥
तेणुत्तं सामि ! सया वयाणि मह संति ताणमेगयरं । भज्जइ गिण्हिज्जंतो तेण इमं देव ! नो गहियं ॥११॥
तो तुट्ठेण नरिंदेण पूइउं सो विसज्जिओ गेहे । लूसियमसेसगं पि हु गेहं पुण लोहनंदिस्स ॥१२॥
आणत्ता तग्गहणाय नियभडा भिउडिभासुरनिडाला । तेण वि आगच्छंतेण जाणिओ एस वुत्तंतो ॥१३॥
छिन्नं च कुढारेणं चरणजुयं एवमुल्लवंतेण । एएहिं पाविओऽहं अइघोरं आवइं एवं ॥१४॥
सुहडेहिं तह वि एसो नीओ कुद्धेहिं रायपयपुरओ । तेणावि मारिओ सो दुम्मरणेणं विडंबेउं ॥१५॥

॥ लोभनन्द्याख्यानकं समाप्तम् ॥७९॥

विज्ञातस्वरुपेणापि लोभार्गलितेन लोहमूल्येन । गृहीत्वा तेन भणितमपरेऽपि च मम दातव्याः ॥ ३ ॥
तेऽप्यनुवासरमपि हु तस्मै प्रपच्छन्त्यन्यदा स वणिग् । नीतो बलात्कारेण मित्रेणान्यग्रामे ॥ ४ ॥
गच्छता तेन प्रजल्पितो निजसुतो यथा वत्स ! । लोहकुशा द्रविणेन बहुकेनापि संगृहीतव्याः ॥ ५ ॥
तं आगता महार्ध्यत्वेन कुपितेन श्रेष्ठितनयेन । तेषामेको उल्लाल्य क्षिप्तोऽज्ञाततत्वेन ॥ ६ ॥
पाषाणे सङ्गतो विघट्टिता मृतिका ततस्तस्य । दृष्टश्च दीप्तकञ्चनविनिर्मितो राजपुरुषैः ॥ ७ ॥
भणितं च तै श्चौरा वणिग्भ्यो ददन्ति राजद्रव्यमिदम् । ततो बद्ध्वा क्षिप्ता राजपुरः पृष्टास्तेन ॥ ८ ॥
हट्टे कस्य कस्य च दत्तमिदं ? ते भणन्ति नान्यस्य । मुक्त्वा लोभनन्दिं स्वामिन् ! समग्रमपि तव द्रविणम् ॥ ९ ॥
प्रथममपि हु जिनदासस्य दर्शितं तेन गृहीतं नैव । ततो व्याहृत्य स पृष्टो नृपेण किं न हु त्वया गृहीतम् ? ॥ १० ॥
तेनोक्तं स्वामिन् ! शतानि व्रतानि मम सन्ति तेषामेकतरम् । भज्यते गृह्यमानस्तेनेदं देव ! न गृहीतम् ॥ ११ ॥
तदा तुष्टेन नरेन्द्रेण पूजयित्वा स विसर्जितो गृहे । लूषयितमशेषकमपि हु गृहं पुन र्लोभनन्देः ॥ १२ ॥
आज्ञाप्तास्तद्ग्रहणाय निजभटा भृकुटिभासुरनिडालाः । तेनाप्यागच्छता ज्ञात एष वृत्तान्तः ॥ १३ ॥
छिन्नं च कुठारेण चरणयुगमेवमुल्लपता । एतैः प्रापितोहमतिघोरमापद्येवम् ॥ १४ ॥
सुभटैस्तथाप्येष नीतः क्रुद्धै राजपदपुरतः । तेनापि मारितः स दुर्मरणेन विडम्बयित्वा ॥ १५ ॥

॥ लोभनन्द्याख्यानकं समाप्तम् ।

इदानीं नकुलवणिज्याख्यानकमुच्यते-

उज्जेणीए पुरीए सहोयरा दोन्नि आसि वणियसुया । सिवसिवभद्दऽभिहाणा दुरंतदोगच्चसंतत्ता ॥१॥
दोन्नि वि दविणोवज्जणकज्जम्मि गया सुरट्ठविसयम्मि । दुक्खोवज्जियदविणं नउले काउं पडिनियत्ता ॥२॥
जइया जेट्ठसयासम्मि नउलगो सो विचिंतए तइया । हणिऊण कणिट्ठं सव्वमेव गिण्हामि दविणमिमं ॥३॥
सिवभद्दस्स वि जायइ चिंता एसेव नउलसहियस्स । इय बुद्धिजुया नियनयरिपरिसरे दो वि संपत्ता ॥४॥
गंधवईए नईए दहम्मि परिभमिरमयर-तिमिनियरे । पयसोहणं कुणंतेण चिंतियं तयणु जेट्ठेण ॥५॥
अत्थो धुवं अणत्थो जेण महामोहविसविमूढेण । पाणप्पियस्स वि मए विचिंतियं बंधुणो हणणं ॥६॥
ता अलमिमिणा नियजणविणासकरणेण पावरूवेण । इय चिंतिऊण नीरम्मि निवलओ खित्तओ तेण ॥७॥
भणियं तओ कणिट्ठेण हा ! किमेयं तए कयं भाय ! ? । तेणुत्तमस्स दोसा मारिउमिच्छामि तं सहसा ॥८॥
तेणेस मए खित्तो दहम्मि तं निसुणिउं भणइ लहुओ । तुह मारणम्मि मज्झ वि आसि इमा लोभओ चिंता ॥९॥
ता बंधव ! सुट्ठु कयं जमेस खित्तो तरंगिणीनीरे । इय भणिय हिट्ठहियया नियगेहे दो वि संपत्ता ॥१०॥
तच्चरणसोयणाई काउं जणणीए तेसि लहुभइणी । मच्छाणमाणणत्थं ताण कए पेसिया हट्टे ॥११॥
एत्तो य निवलओ सो गिलिओ तिमिणा छुहाकिलंतेण । तत्तो य जालिएणं स मच्छओ गिण्हओ तत्थ ॥१२॥
नीओ उ विवणिमज्झे कीओ भवियव्वयाए सो तीए । वंजणनिमित्तमेईए छिंदिओ मंदिरे गंतुं ॥१३॥

नकुलवणिज्याख्यानकम् ॥ ८० ॥

उज्जैन्यां पूर्यां सहोदरौ द्वावास्तां वणिक्सुतौ । शिवशिवभद्रामिधानौ दुरन्तदोर्भाग्यसंतप्तौ ॥ १ ॥
द्वावपि द्रविणोपार्जनकार्ये गतौ सौराष्ट्रविषयम् । दुःखोपार्जितद्रविणं नकुले कृत्वा प्रतिनिवृत्तौ ॥ २ ॥
यदा ज्येष्ठं सकाशे नकुलकः स विचिन्तयति तदा । हत्वा कनिष्ठं सर्वमेव गृहणामि द्रविणमिदम् ॥ ३ ॥
शिवभद्रस्यापि जायते चिन्तैषैव नकुलसहितस्य । इति बुद्धियुतौ निजनगरिपरिसरे द्वावपि सम्प्राप्तौ ॥ ४ ॥
गन्धवत्या नद्या द्रहे परिभ्रमन्मकर-तिमिनिकरे । पदशोधनं कुर्वता चिन्तितं तदनु ज्येष्ठेन ॥ ५ ॥
अर्थो ध्रुवमनर्थो येन महामोहविषविमूढेन । प्राणप्रियस्यापि मया विचिन्तितं बन्धो र्हननम् ॥ ६ ॥
ततोऽलमनेन निजजनविनाशकरणेन पापरूपेण । इति चिन्तयित्वा नीरे नकुलकः क्षिप्तस्तेन ॥ ७ ॥
भणितं ततः कनिष्ठेन हा ! किमेतत्त्वया कृतं भ्रातः !? । तेनोक्तमेतस्य दोषान्मारयितुमिच्छामि त्वां सहसा ॥ ८ ॥
तेनैष मया क्षिप्तो द्रहे तन्निश्रुत्य भणति लघुकः । तव मारणे ममाप्यासीदिमा लोभतश्चिन्ता ॥ ९ ॥
ततो बान्धव ! सुष्ठुः कृतं यदेष क्षिप्तस्तरङ्गिणीनीरे । इति भणित्वा हृष्टहृदयौ निजगृहे द्वाववि सम्प्राप्तौ ॥ १० ॥
तच्चरणशोचनादीन् कृत्वा जनन्यास्तयो र्लघुभगिनी । मत्स्यानयनार्थं तयोः कृते प्रेषिता हट्टे ॥ ११ ॥
इतश्च नकुलकः स गलितस्तिमिना क्षुधाक्लान्तेन । ततश्च जालिकेन स मत्स्यो गृहीतस्तत्र ॥ १२ ॥
नीतस्तु विपणीमध्ये क्रीतो भवितव्यतया स तया । व्यञ्जननिमित्तमनया छिन्नितो मन्दिरे गत्वा ॥ १३ ॥

दिट्ठो य नउलओ तयणु झत्ति मुक्को नियम्मि उच्छंगे । पच्छायंती तं पेच्छिऊण जणणीए सा पुट्ठो ॥१४॥
किं पच्छायसि वच्छे ! ? न किंपि इय तीए जंपिए जणणी । निस्संकियकरणत्थं तीए समीवम्मि संपत्ता ॥१५॥
मम्मट्ठाणे चुल्हेत्तएण सहस त्ति तीए हणिया सा । तं निवडंतिं दट्ठूण दो वि तप्पासमल्लीणा ॥१६॥
ते दट्ठूणं भयकंपिराए तीए सयासओ पडिओ । सो निवलओ तओ तेहिं चिंतियं हा ! स एवेसो ॥१७॥
तो दो वि विसन्नमणा भणंति जं दूरमेव परिहरियं । तं पुरओ च्चिय जायं अहह ! महापावपरिणामो ॥१८॥
लोहतिमिरंधनयणा जीवा सयणं पि सत्तुठाणम्मि । पेच्छंति जओ एईए मारिया नियजणणी वि ॥१९॥
ता एयारिससंतावकारयं परिहरित्तु गिहिवासं । इह-परभवहियकरणे तवचरणे किंपि काहामो ॥२०॥
इय जंपिऊण काउं मयकिच्चमसेसयं पि जणणीए । भइणीए तयं दाउं दविणं तो दो वि गंतूणं ॥२१॥
सुत्थियसूरिसमीवे पव्वइया चरियचारुतवचरणा । परिपालियसामन्ना दोन्नि वि सुगइं समणुपत्ता ॥२२॥

॥ नकुलवण्याख्यानकं समाप्तम् ॥८०॥

रागाइदोसवसओ पत्ताणि जहा इमाणि दुहवसणं ।
तह अन्नो वि हु पावइ ता एयविणिग्गहं कुणह ॥१॥

हे धार्मिकाः ! प्रशमसम्भृतिमुक्तिवश्यान्, रागादिशत्रुविसरान् कुरुत प्रयत्नात् ।
एते हि धर्मपथवर्तिनमप्यकस्मादुन्मार्गमङ्गिनिवहं नितरां नयन्ति ॥२॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे रागाद्यनर्थपरम्परावर्णनश्चतुर्विंशतितमोऽधिकारः समाप्तः ॥२४॥

दृष्टश्च नकुलकस्तदनु झटिति मुक्तो निज उत्सङ्गे । प्रच्छादयन्तीं तां प्रेक्ष्य जनन्या सा पृष्टा ॥ १४ ॥
किं प्रच्छादयसि वत्से ! न किमपीति तया जल्पिते जननी । निःशङ्कितकरणार्थं तस्याः समीपे सम्प्राप्ता ॥ १५ ॥
मर्मस्थाने *चुल्लकेष्टिकया सहसेति तया हता सा । तां निपतन्तीं दृष्ट्वा द्वावपि तत्पार्श्वमालीनौ ॥ १६ ॥
तौ दृष्ट्वा भयकम्पमानायास्तस्याः सकाशात्पतितः । स नकुलकस्ततस्ताभ्यां चिन्तितं हा ! स एवैषः ॥ १७ ॥
ततो द्वावपि विषण्णमनसौ भणतो यदूरमेव परिहृतम् । तत्पुरतश्चैव जातमहह ! महापापपरिणामः ॥ १८ ॥
लोभतिमिरान्धनयना जीवाः स्वजनमपि शत्रुस्थाने । पश्यन्ति यतोऽनया मारिता निजकजनन्यपि ॥ १९ ॥
तत एतादृशसन्तापकारकं परिहृत्य गृहवासम् । इह-परभवहितकरणं तपश्चरणं किमपि करिष्यावः ॥ २० ॥
इति जल्पित्वा कृत्वा मृतकार्यमशेषमपि जनन्याः । भगिन्यास्तकद्दत्वा द्रविणं ततो द्वावपि गत्वा ॥ २१ ॥
सुस्थितसूरिसमीपे प्रव्रजितौ चरितचारुतपश्चरणौ । परिपालितश्रामण्यौ द्वावपि सुगतिं समनुप्राप्तौ ॥ २२ ॥

॥ नकुलवण्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ८० ॥

रागादि दोषवशतः प्राप्तानि यथेमानि दुःखव्यसनम् ।
तथान्योऽपि हु प्राप्नोति तत एतद्विनिग्रहं कुरुत ॥ ९ ॥

● ● ●

★ चुल्हेत्तएण - (दे.) ચુલાની ઇંટથી

[२५. क्षान्तिगुणवर्णनाधिकारः ।]

रागादिरिपवोऽनर्थजनकत्वेन जेतव्या इत्यभिहितम् । साम्प्रतमुपलक्षणद्वारेण क्रोधरिपुजयलक्षणां क्षान्तिमाह -

स-परोभयगुणहेउ खंती ता तं कुणेज्ज इह नाया ।
खुड्डुमुणि-नंदिसेण तह सीसो चंडरुद्दस्स ॥ ३३ ॥

अस्या व्याख्या - 'स्व परोभयेषाम्' आत्म-परोभयस्वरुपाणां 'गुणहेतु' गुणकारणं 'क्षान्तिः' क्षमा । 'तत्' तस्मात् कारणात् 'तां' क्षान्तिं 'कुर्याद्' विदध्यात् । 'इह' अस्मिन्नर्थे 'नाय'त्ति ज्ञातानि क्षुल्लकमुनि-नन्दिषेणौ, 'तथा' तेनैव प्रकारेण 'शिष्यः' विनेयः 'चण्डरुद्रस्य' चण्डरुद्राभिधानसूरेः इत्यक्षरार्थः । भावार्थोऽपि प्राक् प्रतिपादिताख्यानकेभ्यो ज्ञेयः ॥ ३३ ॥

जह एयाणं खंती सपरोभयगुणपसाहिया जाया ।
अन्नस्स वि तह जायइ ता तीए जयह जहसत्ती ॥ ३४ ॥

क्षान्त्या सदैव मनुजाः सुरपूजनीयाः, क्षान्त्या भवन्ति भविनो भुवि माननीयाः ।
क्षान्त्या वसन्ति सुरसद्मसु शर्मभाजः, क्षान्त्या व्रजन्ति शिवतामिति तां कुरुध्वम् ॥१॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे क्षान्तिगुणवर्णनः पञ्चविंशतितमोऽधिकारः समाप्त ॥२५॥

●●●

[२६. जीवदयागुणवर्णनाधिकारः ।]

गुणहेतुः क्षान्तिरभिहिता । इमां च जीवदयावानेव प्रायो विधत्ते इत्यतो जीवदयागुणवत्तामाह -

दीहाउयाइहेऊ जीवदया इह परे य सुहहेऊ ।
सड्ढसुओ गुणमइया मेहो दामन्नगो नायं ॥ ३५ ॥

अस्या व्याख्या - 'दीहाउयाइहेउ' त्ति भावप्रधानत्वाद् निर्देशस्य दीर्घायुष्कत्वादिहेतुः दीर्घायुष्कत्वं-चिरजीवित्वं आदिर्येषां नीरोगत्वादीनां गुणानां ते तथोक्तां तेषां हेतुः- कारणं 'जीवदया' प्राणिदया 'इह' अस्मिन्नेव लोके 'परे च' परलोके च 'सुखहेतुः' सौख्यनिमित्तं भवतीति शेषः । द्रष्टान्तानाह-'सड्ढसुओ'त्ति गृहीताणुव्रतः परकूलसूपकारहस्तविक्रीतः श्रावकसुतः 'गुणमती च' श्रेष्ठीसुता 'मेघश्च' श्रेणिकराजसुतः 'दामन्नकश्च' मत्स्यबन्धकजीवः 'नाय'ति प्रत्येकं योजनीयम् इत्यक्षरार्थः ॥ ३५ ॥

भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि-

धन्नउरग्गामे माणिभद्दसेट्ठिस्स धम्मरुइ पुत्तो । सम्ममणुव्वय-गुणवयधारी सम्मत्तथिरचित्तो ॥१॥
जिणचलणकमलभसलो निच्चं गुरुपायपूयणे सत्तो । कइया वि सह वयंसेहिं निग्गओ गामबहिभागे ॥२॥
पत्तो य तक्करेहिं नीओ नयरीए सो अवंतीए । दिन्नो दविणेण नरिंदसुवगारस्स तो तेण ॥३॥
नीओ रसवइसालाए पभणिओ लावयाण हणणट्ठा । रे ! ऊसाससु एए वंजणकज्जे नरिंदस्स ॥४॥

श्राद्धसुताख्यानकम् ॥ ८१ ॥

धन्यपुरग्रामे माणिभद्रश्रेष्ठिनो धर्मरुचिः पुत्रः । सम्यगणुव्रत-गुणव्रतधारी सम्यक्त्वस्थिरचितः ॥ १ ॥
जिनचरणकमलभ्रमरो नित्यं गुरुपादपूजने सक्तः । कदापि सह वयस्यै र्निगतो ग्रामबहिर्भागे ॥ २ ॥
प्राप्तश्च तस्करै र्नीतो नगर्यां सोऽवन्त्याम् । दत्तो द्रविणेन नरेन्द्रसूपकाराय तदा तेन ॥ ३ ॥
नीतो रसवतीशालायां प्रभणितो लावकानां हननार्थे । रे ! उच्छ्वासयैतान् व्यञ्जनकार्ये नरेन्द्रस्य ॥ ४ ॥

सो पाणिवहाईणं विरओ करुणापवन्नहियओ य । तो तेण पासयाओ छोडेउं लावया मुक्का ॥५॥
दिट्ठो य सूवकारेण जंपिओ किं तए इमे मुक्का ? । सो भणइ तुज्झ वयणं मए कयं किमिह पुच्छाए ? ॥६॥
आवलिऊणं कंधरमिमेसि मोक्खं विहेसु बीयदिणे । इय सिक्खविउं तेणं समप्पिया तित्तिरा तस्स ॥७॥
बीयदिणे वि हु तेणं वंकं काऊण कंधरं नियय । उप्पाडेउं मुक्का उड्डेऊणं गया सव्वे ॥८॥
तइयदिणे गाढयरं निब्बुद्धिय ! मंसभक्खणनिमित्तं । मारसु एए इय भणियमप्पिया लावया तस्स ॥९॥
जइ एवं ता सिट्ठाण निंदियं नरयकारणं घोरं । पाणच्चए वि नाहं करेमि एयारिसं पावं ॥१०॥
तत्तो य सूयकारेण आसुरुत्तेण ताडिओ वाढं । धम्मरुई धम्मरुई तह वि न मन्नेइ तव्वयणं ॥११॥
तो पुणरवि निट्ठुरयरपहारनियरेहिं ताडिओ संतो । कंदंतो गुरुसद्दं सुओ महीसामिणा एसो ॥१२॥
वाहरिय सूवगारो पुट्ठो किं एस कंदए करुणं ? । सो भणइ देव ! एसो विक्किज्जंतो मए गहिओ ॥१३॥
न कुणइ जीवविणासं ति ताडिओ निट्ठुरं मए रुयइ । पुट्ठो सो वि नरिंदेण किं न जीवे विणासेसि ? ॥१४॥
सो भणइ मए विहिया जावज्जीवं पि पाणिवहविरई । आह निवो न हु नियमो पलइ परायत्तवित्तीणं ॥१५॥
ता कुणसु पाणिघायं न हु मन्नइ सो तओ नरिंदेण । तस्स परिक्खनिमित्तं भिउडाभीसणनिडालेण ॥१६॥
ताडाविओ सुनिट्ठुरकसप्पहारेहिं तह वि मणयं पि । न हु मन्नइ पाणिवहं तओ महादुट्ठकरिपुरओ ॥१७॥
पक्खिविउं भेसविओ संतो चिंतइ मणे महासत्तो । जीव ! तुह वेयणीयं कम्मं समुवट्ठियं सहसु ॥१८॥

स प्राणिवधेभ्यो विरतः करुणाप्रपन्नहृदयश्च । ततस्तेन पाशकात् छोटयित्वा लावका मुक्ताः ॥ ५ ॥
दृष्टश्चसूपकारेण जल्पितः किं त्वयेमे मुक्ताः ? । स भणति तव वचनं मया कृतं किमिह पृच्छया ? ॥ ६ ॥
.आवल्य कन्धरमेषां मोक्षं विधेहि द्वितीय दिने । इति शिक्षयित्वा तेन समर्पितास्तित्तिरास्तस्य ॥ ७ ॥
द्वितीयदिनेऽपि हु तेन वक्रं कृत्वा कन्धरं निजकम् । उत्पात्य मुक्ता उड्डयित्वा गताः सर्वे ॥ ८ ॥
तृतीयदिने गाढतरं निर्बुद्धिक ! मांसभक्षणनिमित्तम् । मारय एतानिति भणित्वार्पिता लावकास्तस्य ॥ ९ ॥
यद्येवं ततः शिष्टानां निन्दितं नरककारणं घोरम् । प्राणात्ययेऽपि नाहं करोम्येतादृशं पापम् ॥ १० ॥
ततश्च सूपकारेणासुरत्वेन ताडितोऽत्यन्तम् । धर्मरुचि धर्मरुचिस्तथापि न मन्यते तद्वचनम् ॥ ११ ॥
ततः पुनरपि निष्ठुरतरप्रहारनिकरैस्ताडितः सन् । क्रन्दन् गुरुशब्दं श्रुतो महिस्वामिनेषः ॥ १२ ॥
व्याहृत्य सूपकारः पृष्टः किमेष क्रन्दते करुणम् ? । स भणति देव ! एष विक्रीयमाणो मया गृहीतः ॥ १३ ॥
न करोति जीवविनाशमिति ताडितो निष्ठुरं मया रोदिति । पृष्टः सोऽपि नरेन्द्रेण किं न जीवान् विनाश्यसि ? ॥ १४ ॥
स भणति मया विहिता यावज्जीवमपि प्राणिवधविरतिः । आह नृपो न हु नियमः पलति परायत्तवर्तिनः ॥ १५ ॥
ततः कुरुष्व प्राणिघातं न हु मन्यते स ततो नरेन्द्रेण । तस्य परीक्षानिमित्तं भृकुटिभीषणनिडालेन ॥ १६ ॥
ताडयितः सुनिष्ठुर कशप्रहारैस्तथापि मनागपि । न हु मन्यते प्राणिवधं ततो महादृष्टकरिपुरतः ॥ १७ ॥
प्रक्षिप्य भेषयितः संश्चिन्तयति मनसि महासत्त्वः । जीव ! तव वेदनीयं कर्म समुपस्थितं सहस्व ॥ १८ ॥

किंच-

वरमत्थु मज्झ मरणँ अक्खंडियनिययनियमजुत्तस्स । न उणो जीवविणासो चलम्मि जीयम्मि भणियं च ॥१९॥
एक्कस्स कए नियजीवियस्स बहुयाओ जीवकोडीओ । दुक्खे ठवंति जे केइ ताण किं सासयं जीयं ? ॥२०॥
इय चिंततो एसो भणिओ रन्ना न मन्नए जाव । तो नाओ नियनियमे थिरचित्तो एस नरवइणा ॥२१॥
तो एस अंगरक्खगपयस्स जोगो त्ति चिंतिउं तेण । काऊण सप्पसाओ निवेसिओ अंगरक्खपए ॥२२॥
विस्सासठाणमेसो जाओ दिन्नो य तस्स वरदेसो । तं उवभुंजिय बहुकालमसमरिद्धीए संजुत्तो ॥२३॥
पासे केसिं पि गुरूण गिण्हिउं दिक्खमुत्तमं तत्तो । कयतिव्वतवच्चरणो कमेण सुगइं समणुपत्तो ॥२४॥

॥ श्राद्धसुताख्यानकं समाप्तम् ॥८१॥[1]

इदानीं गुणमत्याख्यानकं व्याख्यायते-

नयरम्मि सुसम्मपुरे राया ससिसेहरो हरो व्व तहिं । निवसइ धणाभिहाणो नरवइणो सम्मओ सेट्ठी ॥१॥
नंदो व्व गोउलपिओ गयणाभोओ व्व सुहयमुणिचंदो । भव्वो व्व गुणमइसुओ नयवं व सुसंपयाधरओ ॥२॥
मुणिचंदनिव्विसेसो कम्मयरो थावरो थिरप्पयई । सव्वं पि हु घरचिंतं चिंतइ चउरो विचित्तं पि ॥३॥
अह अन्नया य सेट्ठी तिहुयणसाहारणेण मरणेण । धणवं पि धणो निहणं नीओ धणियं अधणिउ व्व ॥४॥
मुणिचंदो सेट्ठिपयं परिपालइ गुणमई वि जिणधम्मं । सा उण असंपया संपया वि जाया कुकम्मवसा ॥५॥

किञ्च -

वरमस्तु मम मरणमखण्डितनिजकनियमयुक्तस्य । न पुन र्जीवविनाशश्चले जीविते भणितं च ॥ १९ ॥
एकस्य कृते निज्जीवितस्य बहुका जीवकोट्यः । दुःखे स्थापयन्ति ये केऽपि तेषां किं शाश्वतं जीवितम् ? ॥ २० ॥
इति चिन्तयन्नेष भणितो राज्ञा न मन्यते यावत् । तदा ज्ञातो निजनियमे स्थिरचित्त एष नरपतिना ॥ २१ ॥
तत एषोऽङ्गरक्षकपदस्य योग्य इति चिन्तयित्वा तेन । कृत्वा सप्रसादो निवेशितोऽङ्गरक्षपदे ॥ २२ ॥
विश्वासस्थानमेष जातो दत्तश्च तस्मै वरदेशः । तमुपभुज्य बहुकालमसमर्द्धया संयुक्तः ॥ २३ ॥
पार्श्वे केषामपि गुरूणां गृहीत्वा दिक्षामुत्तमं प्राप्तः । कृततीव्रतपश्चरणः क्रमेण सुगतिं समनुप्राप्तः ॥ २४ ॥

॥ श्राद्धसुताख्यानकं समाप्तम् ॥ ८१ ॥

गुणमत्याख्यानकम् ॥ ८२ ॥

नगरे सुशर्मपुरे राजा शशिशेखरो हर इव तत्र । निवसति धनामिधानो नरपतेः सम्मतः श्रेष्ठी ॥ १ ॥
नन्द इव गोकुलप्रियो गगनाभोग इव सुभगमुनिचन्द्रः । भव्य इव गुणमतीसुतो नयवान्निव सुसंपद्धरः ॥ २ ॥
मुनिचन्द्रनिर्विशेषः कर्मकरः स्थावरः स्थिरप्रकृतिः । सर्वमपि हु गृहचिन्तां चिन्तयति चतुरो विचित्रामपि ॥ ३ ॥
अथान्यदा च श्रेष्ठी त्रिभुवनसाधारणेन मरणेन । धनवानपि धनो निधनं नीतोऽत्यन्तमधनिक इव ॥ ४ ॥
मुनिचन्द्रः श्रेष्ठिपदं परिपालयति गुणमत्यपि जिनधर्मम् । सा पुनरसम्पत्सम्पदपि जाता कुकर्मवशात् ॥ ५ ॥

---

१. सार्द्धसुता० प्रतौ ।

विनडिज्जंती अवसेहिं इंदिएहिं दिणं पि राइं पि । अब्भत्थइ थावरयं विसयत्थे सुत्थयाहेउं ॥६॥
सो उण तह वि वराओ मयणंसूगालुओ जसोकामी । भणइ य विरूवमम्मो ! वयणमिणं जं तुमं वयसि ॥७॥
तं मह जणणी अहयं तु तुह सुओ विस्सुयं जणम्मि इमं । ता अंब ! इममकज्जं न जंपणीयं न करणीयं ॥८॥
अन्नं च गेहसामिम्मि विज्जमाणम्मि अंब ! मुणिचंदे । एरिसमकज्जमेवं किज्जंतं केरिसं ? कहसु ॥९॥
तीए भणियं एयं सुत्थं सव्वं करिस्समवरं च । गिहसामित्तमयाणुय ! किमेवमंगीकरेसि न तं ? ॥१०॥
इय तं मन्नावेउं मायाबहुलाए जं समारद्धं । आयन्नह तमयंडे सा पावा रोविउं लग्गा ॥११॥
किं अम्मो ! रुयसि तुमं ? पुट्ठा मुणिचंदसेट्ठिणा सव्वं । तीयुत्तं नियकज्जं सीयंतं वच्छ ! रोएमि ॥१२॥
तेणुत्तं केरिसयं ? कवडेणं सा पयंपइ सदुक्खं । दुद्धाइ गोउलाओ तुह जणओ वच्छ ! आणंतो ॥१३॥
तं पुण पमत्तचित्तो करेमि ता किमिह गोरसेण विणा । सयणाईयं कज्जं ? तेणुत्तं मा वय विसायं ॥१४॥
सयमाणिस्सामि इहं तो तीए गोउलम्मि पेसविओ । थावरएणं समयं नाऊणं गुणमईए इमं ॥१५॥
सिक्खविओ मुणिचंदो होयव्वं निच्चमप्पमत्तेणं । न मुणसि मुद्धत्तणओ नियजणणीविलसियं तुमयं ॥१६॥
सो वि हु खग्गागरिसणपमुहं थावरयचेट्ठियं मुणिउं । सुट्ठुयरं अपमत्तो पत्तो नियगोउलम्मि तओ ॥१७॥
पडिवत्ती सव्वा वि हु विहिया गोउलियसामिणा तस्स । सामि त्ति मुणिय सेज्जा रइया रयणीए गिहमज्झे ॥१८॥
तेण वि भणियं बहुदिवसदिट्ठसंखाणजाणणनिमित्तं । गोरूवाणं गोवाडयम्मि सोविस्समज्जमहं ॥१९॥

विनट्यमानावशैरिन्द्रियै र्दिनमपि रात्रिमपि । अभ्यर्थयति स्थावरकं विषयार्थे स्वस्थताहेतुम् ॥ ६ ॥
स पुनस्तथापि वराको मदनाश्रुगालुको यशःकामी । भणति च विरुपमम्बे ! वचनमिदं यत्त्वं वदसि ॥ ७ ॥
त्वं मम जनन्यहं तु तव सुतो विश्रुतं जन इदम् । ततोऽम्बे ! इदमकार्यं न जल्पनीयं न करणीयम् ॥ ८ ॥
अन्यच्च गृहस्वामिनि विद्यमानेऽम्बे ! मुनिचन्द्रे । ईदृशमकार्यमेवं क्रियमाणं कीदृशं ? कथय ॥ ९ ॥
तया भणितमेतत्स्वस्थं सर्वं करिष्याम्यपरं च । गृहस्वामित्वमतानुग ! किमेवमङ्गीकरोषि न त्वम् ॥ १० ॥
इति तं मानयित्वा मायाबहुलया यत्समारब्धम् । आकर्णयत तमकाण्डे सा पापा रोदितुं लग्ना ॥ ११ ॥
किमम्बे ! रोदिषि त्वं ? पुष्टं मुनिचन्द्रश्रेष्ठिना सर्वम् । तयोक्तं निजकार्यं सीदन्तं वत्स ! रोदिमि ॥ १२ ॥
तेनोक्त कीदृशं ? कपटेन सा प्रजल्पति सुदुःखम् । दुग्धादिः गोकुलात्तव जनको वत्स ! आनयन् ॥ १३ ॥
त्वं पुनः प्रमत्तचित्तः करोमि ततः किमिह गोरसेन विना । स्वजनादिकं कार्यं ? तेनोक्तं मा व्रज विषादम् ॥ १४ ॥
स्वयमानयिष्यामीह ततस्तया गोकुले प्रेषितः । स्थावरकेण समकं ज्ञात्वा गुणमत्येदम् ॥ १५ ॥
शिक्षयितो मुनिचन्द्रो भवितव्यं नित्यमप्रमत्तेन । न मुणसि मुग्धत्वान्निजजननीविलसितं त्वम् ॥ १६ ॥
सोऽपि हु खड्गाकर्षणप्रमुखं स्थावरचेष्टितं मुणित्वा । सुष्ठुतरमप्रमत्तः प्राप्तो निजगोकुले ततः ॥ १७ ॥
प्रतिपत्तिः सर्वापि हु विहिता गोकुलस्वामिना तस्य । स्वामीति मुणित्वा शय्या रचिता रजन्यां गृहमध्ये ॥ १८ ॥
तेनापि भणितं बहुदिवसदृष्टसङ्ख्यानजाननिमित्तम् । गोरुपाणां गोवाटके स स्वपिष्यामिऽद्याहम् ॥ १९ ॥

तह विहिए सेज्जाए खोडिं पच्छाइऊण वत्थेणं । सयमेगंते थक्को जग्गंतो खग्गवग्गकरो ॥२०॥
जाव य थावरएणं खग्गपहारेण आहया खोडी । ता हक्किऊणमियरेण मारिओ खग्गघाएण ॥२१॥
लोयाववायरक्खत्थमेस निक्कालिऊण गोवग्गं । पोक्करइ मारिऊणं थावरयं निंति गावीओ ॥२२॥
एए चोरा तो वालियाओ गावीओ कुढियवग्गेणं । सयमारुहिउं तुरयं तुरियं पत्तो नियगेहं ॥२३॥
जणणीए थावरए पुट्ठे कहियं समेइ मग्गम्मि । तो संकियाए तीए पिपीलियासरणओ कहवि ॥२४॥
थावरयरत्तरत्तं तीए थावरयरत्तरत्ताए । खच्छंखच्छाए[1] दिट्ठमसिवरं समिवपावाए ॥२५॥
मुणिचंदसिरं छिन्नं तीए तेणेव तयणु खग्गेणं । चक्केण राहुसीसं व विण्हुमुत्तीए रुट्ठाए ॥२६॥
मुणिचंदमहेलाए विणासिया सा वि तेण खग्गेणं । तह चेव ठिया तं नियइ गुणमई पाणिवहविरया ॥२७॥
मिलिए लोए सव्वो वि वइयरो गुणमईए सो कहिओ । धन्ना सलक्खणा तं सि संसिया सा वि लोएणं ॥२८॥

॥ गुणमत्याख्यानकं समाप्तम् ॥८२॥

अधुना मेघाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्-

वायरणं व गुणाहियसुसद्दसंगयवियाररमणीयं । निम्मलवन्ननिवेसणपसाहियं चित्तयम्मं व ॥१॥
विस्सुयणेगविणायगमेगविणायगगुणज्जियजसोहं । जमणेगहरविराइयमेगहरं हसइ कइलासं ॥२॥
नाणाविहवत्थव्वयदिय-खत्तिय-वणियवासगेहं व । नयवंतसगुणजणमंदिरं पि पुरमत्थि रायगिहं ॥३॥

तथा विहिते शय्यायां खोडिं प्रच्छाय वस्त्रेण । स्वयमेकान्ते स्थितो जाग्रन् खड्गव्यग्रकरः ॥ २० ॥
यावच्च स्थावरेण खड्गप्रहारेणाहता खोडी । तावदाकार्येतरेण मारितः खड्गघातेन ॥ २१ ॥
लोकापवादरक्षार्थमेष निःसार्य गोवर्गम् । पुत्करोति मारयित्वा स्थावरं नयन्ति गाः ॥ २२ ॥
एते चौरास्तदा वालिता गाव आरक्षकवर्गेण । स्वयमारुह्य तुरगं त्वरितं प्राप्तो निजगृहम् ॥ २३ ॥
जनन्याः स्थावरस्य पृष्टे कथितं समैति मार्गे । तदा शङ्कितया तया पिपीलिकाशरणतः कथमपि ॥ २४ ॥
स्थावरकरक्तरक्तं तया स्थाववररक्तरक्तया । ससम्भ्रान्तया दृष्टमसिवरं समिपपापया ॥ २५ ॥
मुनिचन्द्रशिरश्छिन्नं तया तेनैव तदनु खड्गेन । चक्रेण राहुशीर्षमिव विष्णुमूर्त्या रुष्टया ॥ २६ ॥
मुनिचन्द्रमहिलया विनाशिता सापि तेन खड्गेन । तथा चैव स्थिता तां पश्यति गुणमती प्राणिवधविरता ॥ २७ ॥
मिलित लोके सर्वोऽपि व्यतीकरो गुणमत्या स कथितः । धन्या सलक्षणा त्वमसि शंसिता सापि लोकेन ॥ २८ ॥

॥ गुणमत्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ८२ ॥

मेघाख्यानकम् - ॥ ८३ ॥

व्याकरणमिव गुणाधिकसुशब्दसंगतविचाररमणीयम् । निर्मलवर्णनिवेशनप्रसाधितं चित्रकर्मेव ॥ १ ॥
विश्रुतानेकविनायकमेकविनायकगुणार्जितयशसौघम् । यदनेकगृहविराजितमेकगृहं हसति कैलाशम् ॥ २ ॥
नानाविधवास्तव्यद्विज-क्षत्रिय-वणिग्वासगृहमिव । नयवत्सगुणजनमन्दिरमपि पुरमस्ति राजगृहम् ॥ ३ ॥

---

१. खच्छंखच्छा - ઽઽબડાઽટ इति भाषायाम्

तं पालइ समरहिओऽसमरहिओ गुरुपरक्कमावासो । वीसं पि हु पसरियपवरसेणिओ सेणिओ राया ॥४॥
जो साहीणसुहत्थी परमरहो पउरसुहयपरिवारो । विस्सुयसुहडसमूहो चउरंगबलो उभयहा वि ॥५॥
तस्स य सुनंद-चेल्लणपहाणओरोहमज्झयारम्मि । सव्वंगसुंदरंगी समत्थि सिरिधारिणी देवी ॥६॥
जा हरइ मणं सारयसिरि व्व निम्मलनहा विरायंती । तह य सलक्खणचरणा जणपुज्जा वेयकिरिय व्व ॥७॥
सुघडियपवित्तजंघा पासायपरंपर व्व मणदइया । परमोरुजुया रेहइ रहवरग्गइ व्व रमणीया ॥८॥
सुकुमार-सुहयरमणा नवजोव्वणललियकलियविलय व्व । जिणुमुत्ति व्व गभीरा परमयसमणे हिया सहइ ॥९॥
लच्छि व्व मयणसुहया सया वि परमोयरा विसालच्छी । लायन्नललामरसा सुहथणिया मेहमाल व्व ॥१०॥
वेल्लहललललियबाहा पयंडनरवरनिउत्तसेण व्व । रामसह व्व समंता सुग्गीवा हियसयाण सुहा ॥११॥
कउरवभडयणसेणि व्व सव्वया सहइ सरलसुहकन्ना । जिणदेसण व्व भवियजणसवण-मणसुहयसुहवयणा ॥१२॥
विलसिरनिद्धसुरयणा भाई पुरंदरमहापुरवरि व्व । निम्मलविसुद्धदिट्ठी सिवसुहमणसमणकिरिय व्व ॥१३॥
निव्वणनिद्धनिडाला निरुवहयपहाणपायवालि व्व । विलसिरसुरम्मवाला सपुन्नपुन्नायनारि व्व ॥१४॥
एवं किर को सक्कइ तीए पइअवयवं सरीरगुणं । वन्नेउं विन्नो वि हु अच्चब्भुयपवररूवाए ? ॥१५॥
तस्सऽत्थि पवरपुत्तो अभओ नामेण नायपरमत्थो । मज्झ महामंती पंचण्ह सयाण मंतीणं ॥१६॥
बुद्धीसु चउसु चउरो निउणो चउसुं पि रायनीईसु । सव्वकलाण वराए धम्मकलाए विसेसेणं ॥१७॥

तं पालयति समरथिकोऽसमरहितो गुरुपराक्रमावासः । विंशतिरपि हु प्रसरितप्रवरश्रेणिकः श्रेणिको राजा ॥ ४ ॥
यः स्वाधीनसुहस्ती परमरथः प्रचुरसुभग(सुहृद)परिवारः । विश्रुतसुभटसमूहश्चतुरंगबल उभयथापि ॥ ५ ॥
तस्य च सुनन्दा - चेल्लणाप्रधानान्तःपुर मध्ये । सर्वाङ्गसुन्दराङ्गी समस्ति श्रीधारिणी देवी ॥ ६ ॥
या हरति मनः शारदश्रीरिव निर्मलनभा विराजन्ती । तथा च सलक्षणचरणा जनपूज्या वेदक्रियेव ॥ ७ ॥
सुघटितपवित्रजङ्घा प्रासादपरंपरेव मनोदयिता । परमोरुयुक्ता राजते रथवरराजीव रमणीया ॥ ८ ॥
सुकुमार-सुभगरमणा नवयौवनललितकलितवनितैव । जिनमूर्तिरिव गम्भीरा परमदशमने हिता राजते ॥ ९ ॥
लक्ष्मीरिव मदनसुखदा सदापि परमोदरा विशालाक्षी । लावण्यललामरसा शुभस्तना मेघमालेव ॥ १० ॥
कोमललललितबाहा प्रचण्डनरवरनियुक्तसेनैव । रामसभैव समन्त्रा सुग्रीवा हितशतानां शुभा ॥ ११ ॥
कौरवभटजनश्रेणीव सर्वदा राजते सरलशुभकर्णा । जिनदेशनेव भविकजनश्रवण-मनः सुभगसुखवचना ॥ १२ ॥
विलसत्स्निग्धरत्ना भाति पुरन्दरमहापुरवरीव । निर्मलविशुद्धदृष्टिः शिवसुखमनः श्रमणक्रियेव ॥ १३ ॥
निर्वर्णस्निग्धनिडाला निरुपहतप्रधानपादपालिरिव । विलसत्सुरम्यवाला सपुण्यपुन्नागनारीव ॥ १४ ॥
एवं किल कः शक्यते तस्याः प्रत्यवयवं शरीरगुणम् । वर्णयितुं विज्ञोऽपि खल्वाश्चर्यभूतप्रवररुपायाः ? ॥ १५ ॥
तस्या अस्ति प्रवरपुत्रोऽभयो नाम्ना ज्ञातपरमार्थः । मध्ये महामन्त्रीपञ्चशतानां मन्त्रिणाम् ॥ १६ ॥
बुद्धिषु चतसृषु चतुरो निपुणचतसृपि राजनीतिषु । सर्वकलानां वरायां धर्मकलायां विशेषेण ॥ १७ ॥

आरोवियरज्जभरो सो तम्मि सुयप्पहाणमंतिम्मि । उवभुंजंतो विसए निच्चिंतो गमइ दियहाइं ॥१८॥
अह अन्नया य पासिय सुहसुमिणं धारिणी महादेवी । सुमिणस्स फलं नाउं निवपासे जाइ मुइयमणा ॥१९॥
इट्ठाहिं पियाहिं सुहाहिं चित्तपल्हायणाहिं ताहिं । मउयाहिं मणामाहिं सयत्थजुत्ताहिं वायाहिं ॥२०॥
आलवमाणी विणएण सेणियं हिययवल्लहं रायं । सणियं सणियं सणियं पास(य) मल्लियइ मणदइया ॥२१॥
निसियइ समणुन्नाया निवेण नियडम्मि पायवीढम्मि । सप्पणयमभिप्पायं कयप्पणामा भणइ देवी ॥२२॥
अहमज्ज तम्मि पहु ! तारिसम्मि सुमणुन्नवासभवणम्मि । मणि-रयणपहानासियतमंधयारम्मि रुइरम्मि ॥२३॥
दोसु वि पासेसु समुन्नयम्मि मज्झे गभीरविणयम्मि । सुकुमालतूलि-गंडोवहाण-आलिंगिणिजुयम्मि ॥२४॥
सयणम्मि पसुत्ता सुत्तजागरा किं पि किं पि सुहनिद्दा । सुमिणमिमं पासित्ता ससंभमा सामि ! पडिबुद्धा ॥२५॥
सत्तंगसुप्पइट्ठं तुसार-ससहरवलक्ख चउदंतं । संगय-समुन्नयकरं समग्गलक्खण-गुणोवेयं ॥२६॥
किर गयणादवयरिउं मयसलिलपवाहधोयगंडयलं[1] । वयणम्मि पविसमाणं गयमेगं सामि ! पासामि ॥२७॥
ता सामिय ! किं मन्ने होही मह फलमिमस्स सुमिणस्स ? । भणइ निवो एस पिए ! पहाणसुमिणाण मज्झम्मि ॥२८॥
ता ओरालो सुमिणो कल्लाणकरो य मंगलकरो य । वंससमुन्नइजणगो पयइपहाणो इमो सुमिणो ॥२९॥
तं अम्हं कुलकेउं कुलसेउं कुलवडिंसयमुयारं । कुलकित्तिकरं कुलविद्धिकारयं कुलपसाहणयं ॥३०॥
अद्धट्ठमदिवसाणं नवन्ह मासाणमुवरि वरपुत्तं । दिणयरमिव पुव्वदिसा देवाणुपिए ! पयाइहिसि ॥३१॥

आरोपितराज्यभारः स तस्मिन् सुतप्रधानमन्त्रिणि । उपभुञ्जन् विषयान्निश्चिन्तो गमयति दिवसानि ॥ १८ ॥
अथान्यदा च दृष्ट्वा शुभस्वप्नं धारिणी महादेवी । स्वप्नस्य फलं ज्ञातुं नृपपार्श्वे याति मुदितमनाः ॥ १९ ॥
इष्टाभिः प्रियाभिः सुखाभिश्चितप्रह्लादनाभिः कान्ताभिः । मृदुकाभि र्मनोरमाभिः सदर्थयुक्ताभिर्वाग्भिः ॥ २० ॥
आलपमाना विनयेन श्रेणिकं हृदयवल्लभं राजानम् । शनैः शनैः पार्श्वमालीनाति मनोदयिता ॥ २१ ॥
निषीदति समनुज्ञाता नृपेण निकटे पादपीठे । सप्रणयमभिप्रायं कृतप्रणामा भणति देवी ॥ २२ ॥
अहमद्य तस्मिन् प्रभो ! तादृशे समनोज्ञवासभवने । मणि-रत्नप्रभानाशिततमोऽन्धकारे रुचिरे ॥ २३ ॥
द्वयोरपि पार्श्वयोः समुन्नते मध्ये गभीरविनये । सुकुमालतूलि - गण्डोपधानालिङ्गिणियुक्ते ॥ २४ ॥
शयने प्रसुप्ता सुप्तजागरा किमपि किमपि सुखनिद्रा । स्वप्नमिमं दृष्ट्वा ससम्भ्रमा स्वामिन् ! प्रतिबुद्धाम ॥ २५ ॥
सप्ताङ्गसुप्रतिष्ठं तुषार-शशधरश्वेतं चतुर्दन्तम् । संगत-समुन्नतकरं समग्रलक्षण-गुणोपेतम्॥ २६ ॥
किल गगनादवतीर्य मदसलिलप्रवाहद्यौतगण्डस्थलम् । वदने प्रविशन्तं गजमेकं स्वामिन् ! अपश्यम् ॥ २७ ॥
ततः स्वामिन् ! किं मन्ये भविष्यति मम फलमेतस्य स्वप्नस्य ? । भणति नृप एष प्रिये ! प्रधानस्वप्नानां मध्ये ॥ २८ ॥
तत उदारः स्वप्नः कल्याणकरश्च मङ्गलकरश्च । वंशसमुन्नतिजनकः प्रकृतिप्रधानोऽयं स्वप्नः ॥ २९ ॥
त्वमस्मत्कुलकेतुं कुलसेतुं कुलावतंसकमुदारम् । कुलकीर्तिकरं कुलवृद्धिकारकं कुलप्रसाधनकम् ॥ ३० ॥
अर्द्धाष्टमदिवसानां नवानां मासानामुपरि वरपुत्रम् । दिनकरमिव पूर्वदिग् देवानुप्रिये ! प्रजनिष्यसि ॥ ३१ ॥

---

१. डलयं खं० ।

सो वि हु परिवड्ढंतो तणुवचएणं कलाकलावेणं । होही नाहो पुहईए भावियप्पाऽणगारो वा ॥३२॥
तं वयणं सोऊणं धारऽब्भाहयकयंबपुप्फं व । ऊससियरोमकूवा संवुत्ता धारिणी देवी ॥३३॥
भणइ य देव-गुरूणं पयप्पसायाओ जं तए भणियं । तुम्ह पभावाओ वा होही सव्वं पि मह एवं ॥३४॥
इय सुयसूयासंजायहरिसपप्फुल्ललोयणा देवी । वत्थंचलम्मि सहसा बंधइ वायासउणगंठि ॥३५॥
तत्तो सेणियकंता परिणममाणम्मि तइयमासम्मि । असरिसपुन्नाहियसुकयलब्भगब्भाणुभावाओ ॥३६॥
कुणइ मणे दोहलयं गब्भट्ठियजीवविलसियसरूवं । इममेयारिसरूवं पुरिसासज्झं तयं सुणह ॥३७॥
धन्नाओ ताओ पुत्ताण मायरो ताओ सुकयपुन्नाओ । कयलक्खणाओ ताओ विढत्तसच्चरियविभवाओ ॥३८॥
नणु तासिमम्मयाणं सुलद्धभिह जम्मजीवियफलं च । जाओ विविहविभूसणभूसियसेयणयमारूढा ॥३९॥
सह सेणिएण रन्ना धरिज्जमाणेण सेयछत्तेण । अब्भुन्नएसु अब्भुग्गएसु पणवन्नमेहेसु ॥४०॥
सप्फुसिएसुं सुहगज्जिएसु निव्वावियमेइणितलेसु । पुरतिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुहेसुं निवपहेसुं ॥४१॥
आरामेसु वणेसुं उज्जाणेसुं सकाणणवरेसुं । वेभारगिरिगुहासुं सकंदरासुं दरीसुं च ॥४२॥
वियरंति जहिच्छाए वियरंतीओ मणुन्नमसणाई । तह विविहवत्थ-तंबूलपभिइपणइयणवग्गेसु ॥४३॥
नायरयजणावरिया महरिह-मणहरमहाविभूईए । पूरेमि मणोवंछियमहमवि जइ कहवि एवमिमं ॥४४॥
तो तम्मि मणोभिमए अपूरमाणम्मि झिज्जिउं लग्गा । पइदिवसमसियपक्खम्मि चंदमुत्ति व्व विच्छाया ॥४५॥

सोऽपि हु परिवर्धमानस्ततस्तनूपचयेन कलाकलापेन । भविष्यति नाथः पृथिव्या भावितात्माणगारो वा ॥ ३२ ॥
तं वचनं श्रुत्वा धाराभ्याहतकदम्बपुष्पमिव । उच्छ्वसितरोमकूपा संवृत्ता धारिणीदेवी ॥ ३३ ॥
भणति च देव-गुरूणां पदप्रसादाद्यत्त्वया भणितम् । तव प्रभावाद्वा भविष्यति सर्वमपि ममैवम् ॥ ३४ ॥
इति सुतसुचासज्ञातहर्षप्रफुल्ललोचना देवी । वस्त्रांचले सहसा बध्नाति वाचाशकुनग्रन्थिम् ॥ ३५ ॥
ततः श्रेणिककान्ता परिणममाने तृतीयमासे । असदृशपुण्याहितसुकृतलभ्यगर्भानुभावात् ॥ ३६ ॥
करोति मनसि दोहदं गर्भस्थितजीवविलसितस्वरुपम् । इममेतादृशरुपं पुरुषासाध्यं तकंत् शृणुत ॥ ३७ ॥
धन्यास्ताः पुत्राणां मातरस्ताः सुकृतपुण्याः । कृतलक्षणास्ता अर्जितसच्चरित्रविभवाः ॥ ३८ ॥
ननु तासामम्बानां सुलब्धमिह जन्मजीवितफलं च । या विविधविभूषणभूषितसेचनकमारूढाः ॥ ३९ ॥
सह श्रेणिकेन राज्ञा ध्रियमाणेन श्वेतच्छत्रेण । अभ्युन्नतेष्वभ्युद्गतेषु पञ्चवर्णमेघेषु ॥ ४० ॥
सत्स्पृष्टेषु शुभगर्जितेषु निर्वापितमेदिनितलेषु । पुरत्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुखेषु-नृपपन्थासु ॥ ४१ ॥
आरामेषु वनेषूद्यानेषु सकाननवरेषु । वैभारगिरिगुहासु सकन्दरासु दरीषु च ॥ ४२ ॥
विचरन्ति यथेच्छया वितरन्त्यो मनोज्ञमशनादीन् । तथा विविधवस्त्र-ताम्बूलप्रभृतिप्रणतिजनवर्गेषु ॥ ४३ ॥
नागरजनावरिता महार्हमनोहरमहाविभूत्या । पूरयामि मनोवाञ्छितमहमपि यदि कथमप्येवमिमम् ॥ ४४ ॥
ततस्तस्मिन् मनोऽभिमतेऽपूर्यमाणे क्षयितुं लग्ना । प्रतिदिवसमसितपक्षे चन्द्रमूर्तिरिव [१]विच्छाया ॥ ४५ ॥

---

१. निस्तेजः

तो सेणिएण पुट्ठा साहीणे वि हु समत्थवत्थुम्मि । किसिया कोस किसोयरि ! साहसु किंपि हु मणोभिमयं ॥४६॥
तो साहियम्मि तीए नियगम्मि मणोरहम्मि नरनाहो । आयमुवायं वा तस्स साहगं कमवि अनियंतो ॥४७॥
परिसिढिलियरज्जधुरो पडिओ चिंतामहासमुद्दम्मि । किंकायव्वविमूढो चिट्ठइ नं हरियसव्वस्सो ॥४८॥
ताव य अभयकुमारो पत्तो पिउपायपणमणनिमित्तं । वक्खित्तमणत्तणओ नाऽऽभट्ठो न वि य विन्नाओ ॥४९॥
तो पुच्छियमभएणं तुब्भे मं ताय ! अन्नया इंतं । आभासह आमंतह निसियावह नियययउच्छंगे ॥५०॥
जिग्घह सिरम्मि अद्धासणेण तुट्ठा य मं निमंतेह । ओहयमणसंकप्पा । किं झायह अज्ज ? मे कहह ॥५१॥
रन्ना भणियं सम्मं वियाणियं वच्छ ! मज्झ सुन्नत्तं । जं चुल्लमाउयाए संजाओ दोहलो एस ॥५२॥
जत्थ न पसरइ वुद्धी न यावि संकमइ पोरिसं मज्झ । न य विहवेणं सिज्झइ तो तच्चिंताए सुन्नो हं ॥५३॥
अभएण तओ भणियं कज्जमिमं तुज्झ ताय ! विसमं पि । साहिस्समहं ताओ निराकुलो संपयं भवउ ॥५४॥
तत्तो पोसहसालाए पुव्वसंगइयगरुयदेवस्स । आराहणत्थमारुहइ दब्भसंथारयं अभओ ॥५५॥
ताहे परिणममाणम्मि अट्ठमे सुद्धझाणसहियस्स । मणि-रयणभासुरं दिव्वमासणं चलियममरस्स ॥५६॥
तत्तो रवियरभासुरकिरीडकुंडलपहाकडप्पेण । उज्जोयंतो गयणं पाउब्भूओ पुरो अमरो ॥५७॥
साहिउकामो पत्थुयपओयणं अभयसंगइपहाणो । पयडपयावो अमरो गयणगओ सहइ सूरो व्व ॥५८॥
गरुयपयावोऽभयवंछियत्थनिप्फायगो अमररूवो । मेहकुमरस्स रेहइ भविस्सतवतेयपुंजो व्व ॥५९॥

तदा श्रेणिकेन पृष्टा स्वाधीनेऽपि हु समस्तवस्तुनि । कृशिता कथं कृशोदरि ! कथय किमपि हु मनोऽभिमतम् ॥ ४६ ॥
ततः कथिते तया निजके मनोरथे नरनाथः । आयमुपायं वा तस्य साधकं कमप्यपश्यन् ॥ ४७ ॥
परिशिथिलितराज्यधूरः पतितश्चिन्तामहासमुद्रे । किंकर्तव्यव्यामूढस्तिष्ठतीव हृतसर्वस्वः ॥ ४८ ॥
तावच्चाभयकुमारः प्राप्तः पितृपादप्रणमननिमित्तम् । व्याक्षिप्तमनस्त्वेन नाभाषितो नापि च विज्ञातः ॥ ४९ ॥
ततः पृष्टमभयेन यूयं मां तात ! अन्यदायान्तम् । आभाषध्वमामन्त्र्यध्वं निषेदयत निजकोत्सङ्गे ॥ ५० ॥
जिघ्रत शिरसि अर्द्धासनेन तुष्टा च मां निमन्त्रयध्वम् । उपहतमनःसङ्कल्पाः किं ध्यायत अद्य ! मां कथयत ॥५१॥
राज्ञा भणितं सम्यग्विज्ञातं वत्स ! मम शून्यत्वम् । यल्लघुमातुः सञ्जातो दोहद एषः ॥ ५२ ॥
यत्र न प्रसरति बुद्धि र्न चापि सङ्क्रामति पौरुषं मम । न च विभवेन सिध्यते ततस्तच्चिन्तया शून्योऽहम् ॥ ५३ ॥
अभयेन ततो भणितं कार्यमिदं तव तात ! विषममपि । साधयिष्याम्यहं तातो निराकुलः साम्प्रतं भवतु ॥ ५४ ॥
ततः पौषधशालायां पूर्वसङ्गतिकगुरुकदेवस्य । आराधनार्थमारोहति दर्भसंस्तारकमभयः ॥ ५५ ॥
तदा परिणममानेऽष्टमे शुद्धध्यानसहितस्य । मणि-रत्नभासुरं दिव्यमासनं चलितममरस्य ॥ ५६ ॥
ततो रविकरभासुरकिरीटकुण्डलप्रभाकटप्रेण[1] । उद्योतयन् गगनं प्रादुर्भूतः पुरोऽमरः ॥ ५७ ॥
साधयितुकामः प्रस्तुतप्रयोजनमभयसंगतिप्रधानः । प्रकटप्रतापोऽमरो गगनगतः राजते सूर्य इव ॥ ५८ ॥
गुरुकप्रतापाऽभय वाञ्छितार्थनिष्पादकोऽमररूपः । मेघकुमारस्य राजते भविष्यतपस्तेजष्पुञ्ज इव ॥ ५९ ॥

---

१. समूहेन

सो वि हु विरइयकरकमलसंपुडो भणइ सप्पणयमभयं । भो भो ! भणसु महायस ! किं सरिओ हंतए अज्ज ? ॥६०॥
ता भणसु जमभिरुइयं किं रज्जं देमि ? किमरिसंदोहं । तुह निट्ठवेमि ? किमवरमसज्जमिह किंपि साहेमि ? ॥६१॥
तं सुणिऊणं जंपियमभएणमकालमेहदोहलओ । जाओ मह मायाए तो तं पुरसु महाभाग ! ॥६२॥
एवं करेमि भणिऊण सुरवरो सो तिरोहिओ सहसा । तत्तो अचिंतदेवप्पभावओ मेहपडलेण ॥६३॥
कत्थ वि य सामवन्नेण मइलियं निम्मलं पि गयणयलं । गरुओ वि हु मइलिज्जइ अहवा मलिणेण न हु भंती ॥६४॥
रेहइ घणेण जह रायवट्टवन्नेण गयणवित्थारो । तह सेणिओ वि गुणवंतभाविपुत्तप्पसूएणं ॥६५॥
अवरत्थ सरसजासुयणरत्तवन्नेण जलयविंदेणं । अप्फुन्नं गयणयलं भुवणं व निवाणुराएणं ॥६६॥
कत्थ वि य सुवन्नसमुज्जलेण जह सहइ नहयलाभोओ । मेहेण विमलगब्भट्ठिएण तह सेणिओ राया ॥६७॥
अन्नत्थ बलाहयमिलणविउणधवलेण धवलियं गयणं । जलएणं धवलिज्जइ निम्मलवन्नेणऽहव सव्वो ॥६८॥
इय सप्पवंचवन्नेहिं मालियं वित्थयं पि गयणयलं । जलएहि जयं व गुणेहिं सिरिमहावीरनरवइणो ॥६९॥
सेयणयगयारूढा ताहे सा विहरिया जहिच्छाए । सम्माणियदोहलया सुहेण गब्भं समुव्वहइ ॥७०॥
समुवचियंगा-ऽवयवं पुन्नाहियपुहइपालरज्जं व । लवणमहोयहिनीरं व सरसलायन्नरमणीयं ॥७१॥
सारयदिणदिणमणिमंडलं व विप्फुरियतेयपब्भारं । नाणयपारिक्खियमंदिरं व सुहरूवयमणुन्नं ॥७२॥
सूरजणचंभणिज्जं गुणन्नियं वरधणुं व सुहवंसं । माणससरं व जीसे सहइ सरीरं विसालच्छं ॥७३॥

सोऽपि हु विरचितकरकमलसम्पूटो भणति सप्रणयमभयम् । भो भो ! भण महायशः ! किं स्मृतोऽहं त्वयाद्य ? ॥६०॥
ततो भण यदभिरुचितं किं राज्यं ददामि ? किमरिसन्दोहम् । तव निष्ठापयामि ? किमपरमसाध्यमिह किमपि साधयामि ?॥६१॥
तत् श्रुत्वा जल्पितमभयेनाकालमेघदोहदः । जातो मम मातुस्ततस्तं पूरय महाभाग ! ॥ ६२ ॥
एवं करोमि भणित्वा सुरवरः स तिरोहितः सहसा । ततोऽचिन्त्यदेवप्रभावान्मेघपटलेन ॥ ६३ ॥
कुत्रापि च श्यामवर्णेन मलिनितं निर्मलमपि गगनतलम् । गुरुकोऽपि हु मलीयतेऽथवा मलिनेन न हु भ्रान्तिः ॥ ६४ ॥
राजते घनेन यथा रागपट्टवर्णेन गगनविस्तारः । तथा श्रेणिकोऽपि गुणवद्भाविपुत्रप्रसूतेन ॥ ६५ ॥
अपरत्र सरसजासुदनरक्तवर्णेन जलदवृन्देन । आपूर्णं गगनतलं भुवनमिव नृपानुरागेण ॥ ६६ ॥
कुत्रापि च सुवर्णसमोज्वलेन यथा राजते नभस्तलाभोगः । मेघेन विमलगर्भस्थितेन तथा श्रेणिको राजा ॥ ६७ ॥
अन्यत्र बलाहकमिलनविगुणधवलेन धवलितं गगनम् । जलदेन धवलीयते निर्मलवर्णेनाथवा सर्वः ॥ ६८ ॥
इति सप्रपञ्चवर्णैः शोभमानं विस्तृतमपि गगनतलम् । जलदै र्जगदिव गुणैः श्रीमहावीरनरपतेः ॥ ६९ ॥
सेचनकगजारुढा तदा सा विहृता यथेच्छया । सन्मानितदोहदा सुखेन गर्भं समुद्वहति ॥ ७० ॥
समुपचिताङ्गा-ऽवयवं पुण्याहितपृथिवीपालराज्यमिव । लवणमहोदधिनीरमिव सरसलावण्यरमणीयम् ॥ ७१ ॥
शारददिनदिनमणिमण्डलमिव विस्फुरिततेजःप्राग्भारम् । नाणकपरीक्षितमन्दिरमिव शुभरुपकमनोज्ञम् ॥ ७२ ॥
शूरजनारोहणीयं गुणान्वितं वरधनुरिव शुभवंशम् । मानससरसिव यस्याः राजते शरीरं विशालाक्षम् ॥ ७३ ॥

तीसे सिरिमवलोइय नयरं सव्वं पि वियसियच्छि-मुहं । जायं खलो व्व एक्कं सामुमुहं नवरि थणजुयलं ॥७४॥
सणियं निसियइ सणियं च सयइ सणियं च कुणइ चंकमणं । मणिकुट्टिमम्मि वियणे चिट्ठइ निरुवद्दवे ठाणे ॥७५॥
जं नाइतित्तमसणं न यावि कडुयं न यावि अइअंबं । जं नाइसीयमुण्हं वेलाइक्कमविमुक्कं जं ॥७६॥
जं तस्स पुट्ठिजणयं वुड्ढियरं जं च तस्स गब्भस्स । जं च हियं जं च मियं परिणामसुहं च जं तस्स ॥७७॥
उउसमयसुहयफासं वत्थुज्जलरयणकंबलाईयं । काले देसे य तयं उवभुंजइ वज्जियविसाया ॥७८॥
मुक्कजहिच्छायारा चेट्ठइ सव्वं पि तयणुरोहेणं । विलयायणस्स गब्भो अहो ! पिओ भणियमेयं पि ॥७९॥
दुद्धं गब्भो तूरं घुसिणंऽजण-कत्तणं च पिसुणत्तं । पाएण महिलियाणं इट्ठाइं भवंति लोयम्मि ॥८०॥
तत्तो नवण्ह मासाणमुवरि अद्धट्ठमाण य दिणाणं । नियदेहकंतिपब्भारभरियनिस्सेसदिसिवलयं ॥८१॥
सुकुमालपाणि-पायं लक्खणपडिपुन्नविग्गहाऽवयवं । कंतं पियं मणुन्नं नियवंससमुन्नइकरं च ॥८२॥
बुहयणपसंसणिज्जं समुच्चकुल-गोत्तसंसियं सुहयं । पुव्वदिसा दिणनाहं व पुत्तरयणं पसूया सा ॥८३॥
तत्तो य रभसवसपक्खुलंतपयपाय-तुरियगमणवसा । परिसिढिलियपरिहाणा सिरसंसियउत्तरीया[1] य ॥८४॥
हिययब्भंतरहरिसुब्भवंतजणसुहमणोरहा धणियं । वद्धावइ निवचेडी पियंकरानामिया निवइं ॥८५॥
तो सो जमंगलग्गं वत्थाऽलंकारजायमइरुइरं । तं से सव्वं पि हु पारितोसियं देइ दासीए ॥८६॥
तं कुणइ मत्थयं धोविऊण परिवारमज्झयारम्मि । पियभासणाओ तुट्ठो वियरइ य सुवन्नमयजीहं ॥८७॥

तस्याः श्रियमवलोक्य नगरं सर्वमपि विकसिताक्षि-मुखम् । जातं खल इवैकं श्याममुखं नवरि स्तनयुगलम् ॥ ७४ ॥
शनै र्निषीदति शनैश्च शेते शनैश्च करोति चंक्रमणम् । मणिकुट्टिमे विजने तिष्ठति निरुपद्रवे स्थाने ॥ ७५ ॥
यन्नातितिक्तमशनं न चापि कटुकं न चाप्यत्याम्लम् । यन्नातिशीतमुष्णं वेलातिक्रमणविमुक्तं यत् ॥ ७६ ॥
यत्तस्य पुष्टिजनकं वृद्धिकरं यच्च तस्य गर्भस्य । यच्च हितं यच्च मितं परिणामसुखं च यत्तस्य ॥ ७७ ॥
ऋतुसमयसुभगस्पर्शं वस्त्रोज्वलरत्नकम्बलादिकम् । काले देशे च तकदुपभुङ्क्ते वर्जितविषादा ॥ ७८ ॥
मुक्तयथेच्छाचारा चेष्टते सर्वमपि तदनुरोधेण । वनिताजनस्य गर्भोऽहो ! प्रियो भणितमेतदपि ॥ ७९ ॥
दुग्धं गर्भस्तूर्यं घुसृणमञ्जन-कर्तनं च पिशुनत्वम् । प्रायेण महिलानामिष्टानि भवन्ति लोके ॥ ८० ॥
ततो नवानां मासानामुपरि अर्धाष्टमानां च दिनानाम् । निजदेहकान्तिप्राग्भारभृतनिःशेषदिग्वलयम् ॥ ८१ ॥
सुकुमारपाणि-पादं लक्षणप्रतिपूर्णविग्रहाऽवयवम् । कान्तं प्रियं मनोज्ञं निजवंशसमुन्नतिकरं च ॥ ८२ ॥
बुधजनप्रशंसनीयसमुच्चकुल-गोत्रशंसितं सुभगम् । पूर्वदिक् दिननाथमिव पुत्ररत्नं प्रसूता सा ॥ ८३ ॥
ततश्च रभसवशप्रस्खलत्पदपाद-त्वरितगमनवशात् । परिशिथिलितपरिधाना शिरःस्रस्तोत्तरीया च ॥ ८४ ॥
हृदयाभ्यन्तरहर्षोद्भवज्जनसुखमनोरथाऽत्यन्तम् । वर्धापयति नृपचेटी प्रियंकरानामिका नृपतिम् ॥ ८५ ॥
ततः स यदङ्गलग्नं वस्त्रालङ्कारजातमतिरुचिरम् । तत्तस्यै सर्वमपि हु पारितोषिकं ददाति दास्यै ॥ ८६ ॥
तां करोति मस्तकं धावित्वा परिवारमध्ये । प्रियभाषणात्तुष्टो वितरति च सुवर्णमयजीव्हाम् ॥ ८७ ॥

---

१. शिरःस्त्रस्तोत्तरीया ।

अह पुत्तजम्मसवणुब्भवंतसव्वंगपयडरोमंचो । आणंदियनायरयं कारवइ महूसवं राया ॥८८॥

तं जहा-

गंभीरमहुरवज्जिरचउव्विहाउज्जरावरमणीयं । नच्चिरवारविलासिणिरंजियपेच्छयवियड्ढजणं ॥८९॥

कलकंठविविहगायणगीयरवावहियछेयजणनिवहं । उद्दामसद्दमागहपढिज्जमाणाणवज्जगुणं ॥९०॥

अहिणवपल्लवविरइयवंदणमालामणुन्नगिहदारं । उब्भिज्जमाणचंदणचच्चियबहुजूय-मुसलसयं ॥९१॥

पउमप्पिहाणजलपुन्नपुन्नकुंभाभिरामघरदारं । वंसुग्गयविद्धाकिज्जमाणबहुभेयसुयरक्खं ॥९२॥

अणवरयतेल्लतुप्पिज्जमाणचट्टालिविहियहलबोलं । करकमलकलियचोक्खक्खवत्तनवरमणिरमणीयं ॥९३॥

पियवयणभणणपुव्वजमुद्दालिज्जंतविविहविंटलयं । उत्तालभमिर-धावणहासाविज्जंतजणनिवहं ॥९४॥

खज्जंतविविहफल-भक्ख-भोज्ज-तंबोलतुट्ठसयलजणं । सोहिज्जमाणगरुयावराहजणपुन्नगोत्तिगिहं[1] ॥९५॥

चिरकालं नरवर ! नंद जीव तुह होउ सयलकल्लाणं । कुलरिद्धि-विद्धिजणओ जस्स सुओ एरिसो तुज्झ ॥९६॥

तुह वद्धउ रायसिरी तुह संपइ रट्ठवद्धणं होउ । ओरोहविलयविसरो पुन्नाहिय ! वयउ तुह विद्धिं ॥९७॥

चउरंगबलसमिद्धी वद्धिस्सइ तुज्झ सेणियनरिंद ! । तुह विविहवाहणाणं समुन्नई सुहय ! साहीणा ॥९८॥

तुह नरवइ ! वद्धउ वइरिविसरदुसहो परक्कमपयावो । तुह सारयससहरकरवलक्खजस-कित्ति-गुणविद्धी ॥९९॥

मणहरमणि-रयणविभूसणाइं नेवच्छरुइरदेहाइं । पविसंति पाउलाइं इय आसीवायमुहलाइं ॥१००॥

अथ पुत्रजन्मश्रवणोद्भवत्सर्वाङ्गप्रकटरोमाञ्चः । आनन्दितनागरकं कारयति महोत्सवं राजा ॥ ८८ ॥

तं यथा -

गम्भीरमधुरवाद्यच्चतुर्विधातोद्यरावरमणीयम् । नृत्यद्वारविलासिनिरञ्जितप्रेक्षकविदग्धजनम् ॥ ८९ ॥

कलकण्ठविविधगायनगीतरवावहितच्छेकजननिवहम् । उद्दामशब्दमागधपठ्यमानानवद्यगुणम् ॥ ९० ॥

अभिनवपल्लवविरचितवन्दनमालामनोज्ञगृहद्वारम् । उद्भिद्यमानचन्दनचर्चितबहुयुग-मुशलशतम् ॥ ९१ ॥

पद्मपिधानजलपूर्णपूर्णकुम्भाभिरामगृहद्वारम् । वंशोद्गतवृद्धाक्रियमाणबहुभेदसुतरक्षम् ॥ ९२ ॥

अनवरततैललिप्यमानचट्टालिविहितहलबोलम् । करकमलकलितपवित्राक्षपत्रनवरमणिरमणीयम् ॥ ९३ ॥

प्रियवचनभणनपूर्वजमाच्छिद्यमानविविधविंटलकम्[2] । उत्तालभ्रमद्धावनहास्यमानजननिवहम् ॥ ९४ ॥

खाद्यमानविविधफल-भक्ष्य-भोज्य-तम्बोलतुष्टसकलजनम् । शोध्यमानं गुरुकापराधजनपूर्णगुप्तिगृहम् ॥ ९५ ॥

चिरकालं नरवर ! नन्द जीव तव भवतु सकलकल्याणम् । कुलर्द्धि-वृद्धिजनको यस्य सुत ईदृशस्तव ॥ ९६ ॥

तव वर्धतां राज्यश्रीस्तव संप्रति राष्ट्रवर्धनं भवतु । अन्तःपुरवनितासमूहः पुण्याधिका व्रजतु तव वृद्धिम् ॥ ९७ ॥

चतुरङ्गबलसमृद्धि वर्धिष्यते तव श्रेणिकनरेन्द्र ! । तव विविधवाहनानां समुन्नतिः सुभग ! स्वाधीना ॥ ९८ ॥

तव नरपते ! वर्धतां वैरिसमुहदुःसहः पराक्रमप्रतापः । तव शारदशशधरकरधवलयशःकीर्ति-गुणवृद्धिः ॥ ९९ ॥

मनोहरमणि-रत्नविभूषणानि नेपथ्यरुचिरदेहानि । प्रविशन्ति पापकुलानीत्याशीर्वादमुखराणि ॥ १०० ॥

---

१. गोत्तिगिहं - कारागृहम् । २. विटलयं (दे.) વશીકરણ વિદ્યા

राया वि विविहमणि-रयण-कणय-करि-तुरय-रहवराईहिं । सामंत-मंति-पउराण देइ दाणं पहिट्ठमणो ॥१०१॥
तेहिं पि दिज्जमाणं पडिच्छए तुरय-करिवराईयं । सुयजम्ममहूसववड्ढिकरणपरिवड्ढियाणंदो ॥१०२॥
इय गरुय-विविहविच्छड्डुपयरिसुप्पन्नपउरसंतोसं । पमुइयपकीलियजणं वद्धावणयं कयं रन्ना ॥१०३॥
अह नामकरणदिवसे पुणरवि य महामहूसवं राया । कारविय देइ नामं गुणनिप्फन्नं तयं तु इमं ॥१०४॥
जम्हा इममि गब्भे गयम्मि माउए मेहदोहलओ । जाओ तम्हा एयस्स होउ मेहो त्ति सुहनामं ॥१०५॥
तो से विबुहाणंदो सरीरसोमत्तनिव्वियभवणो । चंदो व्व सुक्कपक्खे परिवड्ढइ नयण-मणसुहओ ॥१०६॥
नाऊण नरवरिंदो मेहकुमारं कलागहणजोग्गं । मइ-मेहागुणपडुयं मणयं सुव्वत्तविन्नाणं ॥१०७॥
काऊणं सियचंदण-वत्थाऽलंकारभूसियसरीरं । विज्जा-विभूइकारयतिहि-वार-मुहुत्त-करणेसु ॥१०८॥
जत्तेण कलायरियं वत्था-ऽऽहरणा-ऽऽसणाइणा सम्मं । सक्कारिऊण सम्माणिऊण तस्सऽप्पए विहिणा ॥१०९॥
तो निवसिक्खवणाओ तहा कलायरियकयपयत्ताओ । नियजोग्गयागुणाओ भविस्सकल्लाणभावाओ ॥११०॥
नइनाहं व नईओ सोहग्गगुणाहियं व तरुणीओ । नयवंतं व सिरीओ विणयनिहिं वा पसिद्धीओ ॥१११॥
सग्ग-ऽपवग्गसुहवित्थराणि जह संकमंति धम्मजुयं । तह मेहकुमारं पि हु कलाओ सयलाओ संकंता ॥११२॥
तत्तो तरुणीहरिणीण वागुरासममणंगनरवइणो । लीला-विलासगेहं व रूयसव्वस्सभवणं व ॥११३॥
सोहग्गसंपयामंदिरं व लायन्नधणनिहाणं व । विब्भम-विलास-विन्नाण-नाणनायरयनयरं व ॥११४॥

राजापि विविधमणिरत्नकनककरितुरगरथवरादिभिः । सामन्त-मन्त्रि-पौरेभ्यो ददाति दानं प्रहृष्टमनाः ॥ १०१ ॥
तैरपि दीयमानं प्रतिच्छति तुरग-करिवरादिकम् । सुतजन्ममहोत्सववृद्धिकरणपरिवर्धितानन्दः ॥ १०२ ॥
इति गुरुक-विविधविभवप्रकर्षोत्पन्नपौरसंतोषम् । प्रमुदितप्रक्रीडितजनं वर्धापनकं कृतं राज्ञा ॥ १०३ ॥
अथ नामकरणदिवसे पुनरपि च महामहोत्सवं राजा । कारयित्वा ददाति नाम गुणनिष्पन्नं तकत्त्विमम् ॥ १०४ ॥
यस्मादेतस्मिन् गर्भे गते मातु र्मेघदोहदः । जातस्तस्मादेतस्य भवतु मेघ इति शुभनामः ॥ १०५ ॥
ततः स विबुधानन्दः शरीरसौम्यत्वनिर्वापितभवनः । चन्द्र इव शुक्लपक्षे परिवर्धते नयन-मनःसुभगः ॥ १०६ ॥
ज्ञात्वा नरवरेन्द्रो मेघकुमारं कलाग्रहणयोग्यम् । मति-मेघागुणपटुकं मनाक् सुव्यक्तविज्ञानम् ॥ १०७ ॥
कृत्वा श्वेतचन्दन-वस्त्रालङ्कारभूषितशरीरम् । विद्याविभूतिकारकतिथि-वार-मुर्हूत-करणेषु ॥ १०८ ॥
यत्नेन कलाचार्यं वस्त्रा-भरणा-सनादिना सम्यक् । सत्कार्य सन्मान्य तस्यार्पयति विधिना ॥ १०९ ॥
ततो नृपशिक्षयणात्तथा कलाचार्यकृतप्रयत्नात् । निजयोग्यतागुणाद् भविष्यक्ल्याणभावात् ॥ ११० ॥
नदीनाथमिव नद्यः सौभाग्यगुणाधिकमिव तरुण्यः । नयवन्तमिव श्रियो विनयनिर्धिं वा प्रसिद्धयः ॥ १११ ॥
स्वर्गा-ऽपवर्गसुखविस्तराणि यथा सङ्क्रामन्ति धर्मयुक्तम् । तथा मेघकुमारमपि हु कलाः सकलाः सङ्क्रान्ताः ॥ ११२ ॥
ततस्तरुणिहरिणीनां वागुरासममनङ्गनरपतेः । लीलाविलासगृहमिव रुपसर्वस्वभवनमिव ॥ ११३ ॥
सौभाग्यसम्पन्मंदिरमिव लावण्यधाननिधानमिव । विभ्रम-विलास-विज्ञान-ज्ञाननागरकनगरमिव ॥ ११४ ॥

निस्सेसगुणारोहणपहाणपासायमुन्नयमणाणं । कप्पियकप्पहुमकप्पमप्पपुन्नाणमइदुलहं ॥११५॥
पोरिसपयावपयरिससिक्खादिक्खागुरुं गरुयगव्वं । तारुन्नं तारुन्नयसरीरसोहं समणुवत्तो ॥११६॥
तओ य-
लायन्नामयकुल्लाओ असमसुंदेरनीरसरिसीओ । सिंगारतरंगतरंगिणीओ रइसोक्खखाणीओ ॥११७॥
कुम्मुन्नयचरणाओ मंसल-वट्टुलसुवत्तजंघाओ । रंभाखंभोरुयविब्भमाओ नइपुलिणरमणाओ ॥११८॥
गंभीरनाहियाओ वलिरेहिर-मुट्ठिगेज्झमज्झाओ । उन्नयपओहराओ मुणालवेल्लहलबाहाओ ॥११९॥
रेहारेहिरकंठाओ बिंबअहराओ कुंददसणाओ । पुन्निमससिवयणाओ वियसियसवत्तनयणाओ ॥१२०॥
धणुकुडिलभूलयाओ पुन्निमचंदद्धसमनिडालाओ[1] । रइअंदोलयसवणाओ सिहिकलावाहकेसाओ ॥१२१॥
उत्तमकुलुब्भवाओ लक्खणपडिपुन्नमणहरंगीओ । निम्मलकलाकलावाओ महुर-मिउभासिणीओ य ॥१२२॥
समरूवजोव्वणाओ तुल्लालंकाररुइरवेसाओ । मेहं सेणियराया परिणावइ अट्ठ कन्नाओ ॥१२३॥
तो परिणयणाणंतरमुदारयगुणविभूसिओ राया । वियरइ वरपासायं सव्वासिं तासिमेगेगं ॥१२४॥
एवं सो विसयसुहं भुंजंतो ताहिं अट्ठहिं समेओ । दोगुंदुगो व्व देवो गयं पि कालं न याणेइ ॥१२५॥
कइया वि सत्थविसयं वियारमब्भसइ छेयनरसहिओ । कइया वि विविहकरणंगहारकलियं च नट्टविहिं ॥१२६॥
कइया वि सरसपत्तयछेयं कइया वि चित्तयम्मविहिं । कइया वि सत्तसरगाम-मुच्छणाकलियगीयविहिं ॥१२७॥

निःशेषगुणरोहणप्रधानप्रासादमुन्नतमनसाम् । कल्पितकल्पद्रुमकल्पमल्पपुण्यानामतिदुर्लभम् ॥ ११५ ॥
पौरुषप्रतापप्रकर्षशिक्षादिक्षागुरुम् गुरुकगर्वम् । तारुण्यं तारोन्नतशरीरशोभं समनुप्राप्तः ॥ ११६ ॥
ततश्च -
लावण्यामृतकूल्या असमसौन्दर्यनीरसरस्यः । शृङ्गारतरङ्गतरङ्गिण्यो रतिसौख्यखान्यः ॥ ११७ ॥
क्रमोन्नतचरणा मांसल-वर्तुलसुव्यक्तजङ्घाः । रम्भास्तम्भोरुकविभ्रमाः नदीपुलिनरमणाः ॥ ११८ ॥
गम्भीरनाभिका वलिराजमानमृष्टिग्राह्यमध्याः । उन्नतपयोधरा मृणालकोमलबाहाः ॥ ११९ ॥
रेखाराजमानकण्ठा बिम्बाधराः कुन्ददशनाः । पूर्णिमाशशिवदना विकसितशतपत्रनयनाः ॥ १२० ॥
धनुकुटिलभ्रुलताः पूर्णिमाचन्द्रार्धसमनिडालाः । रत्यान्दोलनश्रवणाः शिखिकलावाहकेशाः ॥ १२१ ॥
उत्तमकुलोद्भवा लक्षणप्रतिपूर्णमनोहराङ्गयः । निर्मलकलाकलापा मधुर-मृदुभाषिण्यश्च ॥ १२२ ॥
समरूपयौवनास्तूल्यालङ्काररूचिरवेशाः । मेघं श्रेणिकराजा परिणाय्यत्यष्टौ कन्याः ॥ १२३ ॥
ततः परिणयनानन्तरमुदारतागुणविभूषितो राजा । वितरति वरप्रासादं सर्वासां तासामेकैकम् ॥ १२४ ॥
एवं स विषयसुखं भुञ्जंस्तत्राष्टाभिः समेतः । दोगुन्दुक इव देवो गतमपि कालं न जानाति ॥ १२५ ॥
कदापि शास्त्रविषयं विचारमभ्यसति छेकनरसहितः । कदापि विविधकरणाङ्गहारकलितां च नाट्यविधिम् ॥१२६॥
कदापि सरसपत्रच्छेद्यं कदापि चित्रकर्मविधिम् । कदापि सप्तस्वर ग्राम-मूर्च्छनाकलितगीतविधिम् ॥ १२७ ॥

---

१. निलाडाओ रं० ।

कइया वि तुरयसिक्खं कइया वि हु हत्थिसिक्खमायरइ । कइया वि मुट्ठिबुद्धं कइया वि हु मल्लजुद्धं च ॥१२८॥
कइया वि वारविलयापेक्खणयासत्तमाणसो सययं । नियपासायपरिगओ नायरयजणाण सुहजणओ ॥१२९॥
भो ! केरिसो वि देवो न याणमो एस नित्तुलं देवो । इय जणयंतो बुद्धिं विसिट्ठलोयाण सो ललइ ॥१३०॥
अह अन्नया य भयवं ! सिरिवीरजिणेसरो समणसहिओ । विहरंतो संपत्तो समोसढो बाहिरुज्जाणे ॥१३१॥
एत्थंतरम्मि उज्जाणपालओ हरिसिनिव्भरसरीरो । वद्धावइ आगंतुं जएण विजएण नरनाहं ॥१३२॥
देवाणुपिया ! किर जस्स दंसणं सुहयरं समीहंति । वंछंति नयणनिव्वइजणयं वा वीयरागस्स ॥१३३॥
सवणेणं नामस्स य जलधाराहयकयंबपुप्फं व । ऊसवियरोमकूवा हयहियया हुंति नरनाह ॥१३४॥
एसो वीरजिणेसरतित्थयरो णेगदेवकोडीहिं । परियरिओ पावहरो परिमुणियासेसनायव्वो ॥१३५॥
इहइं चिय संपत्तो गिहागओ इह समोसढो भयवं ! । ता एयं वयणमहं पियं ति काउं निवेएमि ॥१३६॥
सुणिऊणं वयणमिणं धाराहयनीवरुक्खकुसुमं व । रोमंचंचियदेहो अणुभवमाणो रसमपुव्वं ॥१३७॥
दाऊण पीइदाणं सहरिसवयणो विसुद्धदविणस्स । तं पुण समए देसियमद्धतेतरससयसहस्सा ॥१३८॥
तो सव्वेण बलेणं सव्वेणंतेउरेण परियरिओ । सव्वाए विभूईए सव्वाए रायलच्छीए ॥१३९॥
आभरणरुइरदेहो सेयणयं सिंधुरं समारूढो । सारयजलहरसंसियपरिविलसिरविज्जुपुंजो व्व ॥१४०॥
चलिओ वंदणहेउं जाव य पत्तो समोसरणभूमिं । परिहरियरायककुहो काउं तिपयाहिणं विहिणा ॥१४१॥

कदापि तुरगशिक्षां कदापि हु हस्तिशिक्षामाचरति । कदापि मुष्टियुद्धं कदापि हु मल्लयुद्धं च ॥ १२८ ॥
कदापि वारवनिताप्रेक्षणकासक्तमानसः सततम् । निजप्रासादपरिगतो नागरकजनानां सुखजनकः ॥ १२९ ॥
भो ! कीदृशोऽपि देवो न जानीम एष निस्तूल्यं देवः । इति जनयन् बुद्धिं विशिष्ठलोकानां स ललति ॥ १३० ॥
अथान्यदा च भगवान् श्री वीरजिनेश्वरः श्रमणसहितः । विहरन् सम्प्राप्तः समवसृतो बहिरुद्याने ॥ १३१ ॥
अत्रान्तरे उद्यानपालको हर्षनिर्भरशरीरः । वर्धापयत्यागत्य जयेन विजयेन नरनाथम् ॥ १३२ ॥
देवानुप्रियाः ! किल यस्य दर्शनं सुखकरं समीहन्ते । वाञ्छन्ति नयननिर्वृत्तिजनकं वा वीतरागस्य ॥ १३३ ॥
श्रवणेन नाम्नश्च जलधाराहतकदम्बपुष्पमिव । उच्छ्वसितरोमकूपाः हतहृदया भवन्ति नरनाथ ! ॥ १३४ ॥
एष वीरजिनेश्वरस्तीर्थकरोऽनेक देवकोटिभिः । परिवारितः पापहरः परिमुणिताशेषज्ञातव्यः ॥ १३५ ॥
इह चैव सम्प्राप्तो गृहागत इह समवसृतो भगवान् । तत एतद्वचनमहं प्रियमिति कृत्वा निवेदयामि ॥ १३६ ॥
श्रुत्वा वचनमिदं धाराहतनीववृक्षकुसुममिव । रोमाञ्चाञ्चित देहोऽनुभवन् रसमपूर्वम् ॥ १३७ ॥
दत्वा प्रीतिदानं सहर्षवदनो विशुद्धद्रविणस्य । तं पुनः समये देशितमर्धत्रयोदशशतसहस्राः ॥ १३८ ॥
ततः सर्वेण बलेन सर्वेणान्तःपुरेण परिवारितः । सर्वया विभूत्या सर्वया राजलक्षम्या ॥ १३९ ॥
आभरणरुचिरदेहः सेचनकं सिन्धुरं समारूढः । शारदजलधरसंश्रितपरिविलसद्विद्युत्पुञ्ज इव ॥ १४० ॥
चलितो वन्दनहेतु यावच्च प्राप्तः समवसरणभूमिम् । परिहृतराजककुभः कृत्वा त्रिप्रदक्षिणां विधिना ॥ १४१ ॥

कयपंचंगपणामो भत्तिभरुल्लसियबहलरोमंचो । जिणवयणनिहियनयणो एवं थोउं समाढत्तो ॥१४२॥

जय जय भुवणुज्जोयण ! जय जय जस-कित्तिवद्धियाणंद ! ।

जय जय गुणरयणायर ! जय जय जय वद्धमाण ! तुमं ॥१४३॥

वद्धइ मणसंतोसो तिसलादेवीए देहलायन्नं । गब्भम्मि गए तुमए तेण तुमं वद्धमाणो सि ॥१४४॥

परमपयाव-परक्कमगुणाण चउरंगबलविभूईए । जं वद्धइ सिद्धत्थनिवो तेण तुमं वद्धमाणो सि ॥१४५॥

पीई-सक्कारेहिं मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-वइरेहिं । जं वद्धइ रायसिरी, तेण तुमं वद्धमाणो सि ॥१४६॥

तइ उदिए चंदम्मि व परमपवित्ते कलानिहाणम्मि । जं वद्धइ कुलजलही तेण तुमं वद्धमाणो सि ॥१४७॥

वद्धइ सुहमारोग्गं जणस्स पाएण धम्मबुद्धी य । तइ संभूए भयवं ! तेण तुमं वद्धमाणो सि ॥१४८॥

तिहि-रिक्खम्मि पसत्थे अम्मा-पियरो करिंसु जं तुज्झ । गुणनिप्फन्नं नामं तेण तुमं वद्धमाणो सि ॥१४९॥

इय वद्धमाणसामिय ! करुणायर ! सइ करेवि कारुन्नं । सिद्धिनिबंधणधम्मस्स वद्धणं कुणसु भवियाणं ॥१५०॥

एवं थोऊण जिणं गंतुं पुव्वुत्तरे दिसीभाए । जिणसमयभणियविहिणा उवविट्ठो मणुयपरिसाए ॥१५१॥

मणि-हेमभासुराभरणकन्तिपसरंततणुपहावलओ । मेहकुमारो वि रवि व्व वयइ आसरहमारूढो ॥१५२॥

सिरिवीरवंदएत्थं ओयरिउं रहवराओ विहिपुव्वं । जणओ व्व जिणं वंदिय उवविट्ठो जणयपासम्मि ॥१५३॥

एत्थंतरम्मि भयवं ! जलहरगंभीरमहुरवाणीए । सुरअसुरनरसभाए एवं कहिउं समाढत्तो ॥१५४॥

कृतपञ्चाङ्गप्रणामो भक्तिभरोल्लसितबहलरोमाञ्चः । जिनवदननिहितनयन एवं स्तोतुं समारब्धः ॥ १४२ ॥

जय जय भुवनोद्यतन ! जय जय यशःकीर्तिवर्धितानन्द ! ।

जय जय गुणरत्नाकर ! जय जय जय वर्धमान ! त्वम् ॥ १४३ ॥

वर्धते मनःसन्तोषस्त्रिशलादेव्या देहलावण्यम् । गर्भे गते त्वयि तेन त्वं वर्धमानोऽसि ॥ १४४ ॥

परमप्रताप-पराक्रमगुणानां चतुरंगबलविभूत्या । वर्धते सिद्धार्थनृपस्तेन त्वं वर्धमानोऽसि ॥ १४५ ॥

प्रीति-सत्कारै र्मणि-मुक्त-शिलाप्रवाल-वज्रैः । यद्वर्धते राजश्रीस्तेन त्वं वर्धमानोऽसि ॥ १४६ ॥

त्वत्युदिते चन्द्र इव परमपवित्रे कलानिधाने । यद्वर्धते कुलजलधिस्तेन त्वं वर्धमानोऽसि ॥ १४७ ॥

वर्धते सुखमारोग्यं जनस्य प्रायेण धर्मबुद्धिश्च । त्वयि सम्भूते भगवन् ! तेन त्वं वर्धमानोऽसि ॥ १४८ ॥

तिथि-ऋक्षे प्रशस्ते अम्बा-पितरावकरोद्यत्तव । गुणनिष्पन्नं नाम तेन त्वं वर्धमानोऽसि ॥ १४९ ॥

इति वर्धमानस्वामिन् ! करुणाकर ! सदा कृत्वा कारुण्यम् । सिद्धिनिबन्धनधर्मस्य वर्धनं कुरु भविकानाम् ॥ १५० ॥

एवं स्तुत्वा जिनं गत्वा पूर्वोत्तरे दिग्भागे । जिनसमयभणितविधिनोपविष्टो मनुजपर्षदि ॥ १५१ ॥

मणि-हेमभासुराभरणकान्तिप्रसरत्तनुप्रभावलयः । मेघकुमारोऽपि रविरिव व्रजत्यश्वरथमारूढः ॥ १५२ ॥

श्रीवीरवन्दनार्थमवतीर्य रथवराद्विधिपूर्वम् । जनक इव जिनं वन्दित्वोपविष्टो जनकपार्श्वे ॥ १५३ ॥

अत्रान्तरे भगवान् जलधरगम्भीरमधुरवाण्या । सुरा-ऽसुर-नरसभायामेवं कथयितुं समारब्धः ॥ १५४ ॥

संसारं संसरंतस्स जंगमत्तं पि दुल्लहं । तम्मि पंचिंदियत्तं च तओ वि मणुयत्तणं ॥१५५॥
नरत्ते आरियं खेत्तं खेत्ते वि विमलं कुलं । कुले वि उत्तमा जाई जाईए रूवसंपया ॥१५६॥
रूवे वि बलसंपत्ती बले वि चिरजीवियं । हिया-ऽहियाइविन्नाणं जीविए खलु दुल्लहं ॥१५७॥
सम्मत्तममलं तम्मि सम्मत्ते सीलमुत्तमं । सीले वि खाइओ भावो सव्वकम्मखयंकरो ॥१५८॥
इय संजोगा इत्थं दुलहा जीवाण कुणह ता धम्मं । संपज्जइ जेण इमं सफलं माणुस्सयं जम्मं ॥१५९॥
दुग्गइधरणा धम्मो जइ-सावयभेयओ य सो दुविहो । दुविहो वि भवे कज्जो उचियत्तं अप्पणो नाउं ॥१६०॥
पाहेएण विरहिओ पहम्मि पहिओ जहा भवे दुहिओ । इय धम्मेण विरहिओ परलोयपहम्मि जीवो वि ॥१६१॥
धम्मत्थिणा य पियजीवियाण जीवाणमवहणं कज्जं । सव्वगुणाणं मूलं सच्चं भासंति धम्मपिया ॥१६२॥
बाहिरपाणसरूवं परदव्वं परिहरंति धम्मरया । जीववहमूलमहमं निच्चमबंभं च वज्जेंति ॥१६३॥
अप्पं व बायरं वा परिग्गहं परिहरंति धम्मधणा । राईभोयणविरई सया वि धम्मत्थिणा कज्जा ॥१६४॥
समिईओ पालणीया मायाउ व धम्ममायरंतेण । गुत्तीओ वि हु रक्खा गुत्तीओ व धम्मसस्सस्स ॥१६५॥
इच्छाकारो कज्जो परम्मि धम्मत्थिएण सव्वत्थ । मिच्छाउक्कडमुत्तं वितहायरणम्मि धम्मंगं ॥१६६॥
धम्मोवएसदाणे गुरुणो परिभासिओ तहक्कारो । आवस्सिया य कज्जा कज्जे नेंताण वसहीओ ॥१६७॥
जो होइ निसिद्धप्पा निसीहिया तस्स पविसणे भणिया । आपुच्छणा उ कज्जा गुरुणो कज्जम्मि पाएणं ॥१६८॥

संसारे संसरतो जंगमत्वमपि दुर्लभम् । तस्मिन् पञ्चेन्द्रियत्वं च ततोऽपि मनुष्यत्वम् ॥ १५५ ॥
नरत्व आर्य क्षेत्रं क्षेत्रेऽपि विमलं कुलम् । कुलेऽप्युत्तमा जातिर्जात्यां रुपसम्पत् ॥ १५६ ॥
रुपेऽपि बलसंम्पत्तिर्बलेऽपि चीरजीवितम् । हिता-ऽहितादिविज्ञानं जीविते खलु दुर्लभम् ॥ १५७ ॥
सम्यक्त्वममलं तस्मिन् सम्यक्त्वे शीलमुत्तमम् । शीलेऽपि क्षायिको भावः सर्वकर्मक्षयंकरः ॥ १५८ ॥
इति संयोगा इत्थं दुर्लभा जीवानां कुरुत ततो धर्मम् । सम्पद्यते येनेदं सफलं मानुष्यं जन्म ॥ १५९ ॥
दुर्गतिधरणाद्धर्मो यति-श्रावकभेदतश्च द्विविधः । द्विविधोऽपि भवेत् कार्य उचितत्वमात्मनो ज्ञात्वा ॥ १६० ॥
पाथेयेन विरहितः पथि पथिको यथा भवेद्दुःखितः । इति धर्मेण विरहितः परलोकपथि जीवोऽपि ॥ १६१ ॥
धर्मार्थिना च प्रियजीवितानां जीवानामवधनं कार्यम् । सर्वगुणानां मूलं सत्यं भाषन्ते धर्मप्रियाः ॥ १६२ ॥
बाह्यप्राणस्वरूपं परद्रव्यं परिहन्ति धर्मरताः । जीववधमूलमधमं नित्यमब्रह्म च वर्जयन्ति ॥ १६३ ॥
अल्पं वा बादरं वा परिग्रहं परिहरन्ति धर्मधनाः । रात्रिभोजनविरतिं सदापि धर्मार्थिना कार्या ॥ १६४ ॥
समितयः पालनीयाः मातर इव धर्ममाचरता । गुप्तयोऽपि हु रक्ष्या गुप्तय इव धर्मशस्यस्य ॥ १६५ ॥
इच्छाकारः कार्यः परस्मिन् धर्मार्थिकेन सर्वत्र । मिथ्यादुष्कृतमूलं वितथाचरणे धर्माङ्गम् ॥ १६६ ॥
धर्मोपदेशदाने गुरोः परिभाषितस्तथाकारः । आवश्यिका च कार्या कार्ये नयतां वसतेः ॥ १६७ ॥
यो भवति निषिद्धात्मा निषिधीका तस्य प्रविशने भणिता । आपृच्छना तु कार्या गुरोः कार्ये प्रायेण ॥ १६८ ॥

पडिपुच्छणा गुरूणं पुव्वनिसिद्धेण होइ कज्जं ति । लद्धम्मि भत्त-पाणम्मि छंदणा होइ कायव्वा ॥१६९॥
साहूण निमंतणयं पविसिउकामो करेइ गोयरियं । उवसंपया वि गुरुणो नाणाईणं निमित्तम्मि ॥१७०॥
इय एस समणधम्मो सप्पुरिसनिसेविओ महाइसओ । अक्खेवेणं मोक्खस्स साहओ जिणवराभिहिओ ॥१७१॥
एयं काउमसत्ता सावयधम्मं दुवालसविहं पि । विहिणा जिणवरभणियं नाऊण कुणंति कयउन्ना ॥१७२॥
एसो वि सुग्गइमग्गो पायं सुकरो विलंबसुहजणओ । समणाणं धम्ममिमं काउमसत्ताणमुचिओ य ॥१७३॥
भणियं च-
विसयसुहपिवासाए अहवा बंधवजणाणुराएणं । अचयंतो अइदुसहे बावीसपरीसहे सहिउं ॥१७४॥
जइ न तरसि काउं जे सम्मं अइदुक्करं समणधम्मं । तो कुज्जा गिहिधम्मं मा बज्झो होसु धम्माओ ॥१७५॥
इय सोउं धम्मकहं के वि हु सुविवेइणो लहुयकम्मा । मोत्तूण गिहं जाया अणगारा भावियप्पाणो ॥१७६॥
अवरेऽणुव्वयधारी अन्ने पडिवन्नसुद्धसम्मत्ता । उवलद्धबोहिवीया केवि अहाभद्दया जाया ॥१७७॥
मेहकुमारो वि समुल्लसंतसुविसुद्धचरणपरिणामो । अभिवंदिऊण वीरं एवं भणिउं समाढत्तो ॥१७८॥
आलित्ते णं भंते ! लोए वीसुं पि तह पलित्ते य । आलित-पलित्ते वि य जराए मरणेण रोगेहिं ॥१७९॥
अवितहमेयं भंते ! भयवं तहमेयमन्नहा नेय । सच्चे णमेस अट्ठं जहेयमेवं वयह तुब्भे ॥१८०॥
जह गेहम्मि पलित्ते सविवेओ कोइ रयणमाईयं । गिन्हइ सारमसारं च चयइ धणधन्नमाईयं ॥१८१॥

प्रतिपृच्छना गुरुणां पूर्वनिषिद्धेन भवति कार्येति । लब्धे भक्त-पाने छन्दना भवति कर्तव्या ॥ १६९ ॥
साधूनां निमन्त्रणकं प्रविष्टुकामः करोति गोचर्याम् । उपसम्पदपि गुरुणो ज्ञानादिकं निमित्ते ॥ १७० ॥
इत्येष श्रमणधर्मः सत्पुरुषनिसेवितो महातिशयः । अक्षेपेण मोक्षस्य साधको जिनवराभिहितः ॥ १७१ ॥
एवं कर्तुमसक्ताः श्रावकधर्मं द्वादशविधमपि । विधिना जिनवरभणितं ज्ञात्वा कुर्वन्ति कृतपुण्याः ॥ १७२ ॥
एषोऽपि सुगतिमार्गः प्रायः सुकरो विलम्बसुखजनकः । श्रमणानां धर्ममिमं कर्तुमशक्तानामुचितश्च ॥ १७३ ॥
भणितं च -
विषयसुखपिपासयाऽथवा बान्धवजनानुरागेण । अपारयन्नतिदुःसहान् द्वाविंशतिपरीषहान् सोढुम् ॥ १७४ ॥
यदि न शक्नोषि कर्तुं ये सम्यगतिदुष्करं श्रमणधर्मम् । ततः कुर्यादृहधर्मं मा बाह्यो भव धर्मात् ॥ १७५ ॥
इति श्रुत्वा धर्मकथां केऽपि हु सुविवेकिनो लघुककर्माणः । मुक्त्वा गृहं जाता अनगारा भावितात्मानः ॥ १७६ ॥
अपरेऽणुव्रतधारिणोऽन्ये प्रतिपन्नशुद्धसम्यक्त्वाः । उपलब्धबीजाः केऽपि यथाभद्रका जाताः ॥ १७७ ॥
मेघकुमारोऽपि सुमुल्लसत्सुविशुद्धचरणपरिणामः । अभिवन्द्य वीरमेवं भणितुं समारब्धः ॥ १७८ ॥
आदीप्ते भदन्त ! लोके विश्वगपि तथा प्रदीप्ते च । आदीप्त-प्रदीप्तेऽपि च जरया मरणेन रोगैः ॥ १७९ ॥
अवितथमेतद्भदन्त ! भगवन् ! तथैतदन्यथा नैव । सत्ये णमेषोऽर्थे यथैतदेवं वदत यूयम् ॥ १८० ॥
यथा गृहे प्रदीप्ते सविवेकः कोऽपि रत्नादिकम् । गृह्णाति सारमसारं च त्यजति धनधान्यादिकम् ॥ १८१ ॥

---

१. णमिति वाक्यालङ्कारे

एवं भवगिहिवासे भयवं ! रागग्गिणा पलित्तम्मि । नित्थारिस्समहं पि हु मप्पाणं[1] धम्मकरणेणं ॥१८२॥
ता जावऽम्मा-पियरो पडिमोयावेमि भयवमप्पाणं । ता तुम्ह पायमूले पडिवज्जस्सामि पव्वज्जं ॥१८३॥
तो भणियं जयपहुणा अहासुहं तुज्झ होउ मा विग्घं । मा पडिबंधं काहिसि इय भणिओ भयवया तुट्ठो ॥१८४॥
तो सप्पणयं पणमिय वीरं पडिवज्जिऊण तव्वयणं । नियगेहे संपत्तो तत्तो वि जणणिपासम्मि ॥१८५॥
पाएसु पणमिऊणं नियजणणिं भणइ महुरवाणीए । अम्मो ! अहमज्ज गओ ताएण समं समोसरणे ॥१८६॥
दिट्ठो य तत्थ वीरो मुणिसहिओ वंदिओ सबहुमाणं । सासयसिवसुहजणओ धम्मो य तयंतिए निसुओ ॥१८७॥
धन्ना हं तुह जणणी वच्छ ! तए अज्ज सोहणं विहियं । जं भुवणवंदणिज्जो मुणिसहिओ वंदिओ वीरो ॥१८८॥
जइ एवं ता संपइ मुयसु तुमं अम्ब ! पव्वइस्समहं । सिरिवीरनाहपासे छेत्तुं पासं व गिहवासं ॥१८९॥
अस्सुयपुव्वं तं कन्नकडुयमायन्निऊण सुयवयणं । परसुनिकिंतियचंपयलय व्व पडिया धरणिवीढे ॥१९०॥
तक्खणमेव य सिरिखंडमीससीयलजलेण सित्तंगी । पडिलंभियचेयन्ना सदुक्खमिइ पलविउं लग्गा ॥१९१॥
तुममेगो वच्छ ! सुओ उंबरपुप्फं व दुल्लहो मज्झ । ता तुह वच्छ ! विओगं खणमवि न सहामि अइदुसहं ॥१९२॥
ता जाय ! जाव जीवामि ताव मा भणसु एरिसं वयणं । परलोयं पत्ताए जं जुत्तं कुणसु तं वच्छ ! ॥१९३॥
मेहेणुत्तं तुह वयणमंब ! सव्वं पि घडइ जइ होज्जा । जीवाण जमेण समं का वि हु एवंविहववत्था ॥१९४॥
पुव्वं मरेज्ज बुड्ढो बालो पच्छा जया य न हु एवं । तो को कुज्जा भरवसयमेरिसे[2] जीवियम्मि जओ ॥१९५॥

एवं भवगृहवासे भगवन् ! रागाग्निना प्रदीप्ते । निस्तारयिष्याम्यहमपि हु आत्मानं धर्मकरणेन ॥ १८२ ॥
ततो यावदम्मा-पितृभ्यां प्रतिमोचयामि भगवन्नात्मानम् । तावत्तव पादमूले प्रतिपत्स्ये प्रव्रज्याम् ॥ १८३ ॥
तदा भणितं जगत्प्रभुणा यथासुखं तव भवतु मा विघ्नम् । मा प्रतिबन्धं करिष्यसीति भणितो भगवता तुष्टः ॥ १८४ ॥
ततः सप्रणयं प्रणम्यवीरं प्रतिपद्य तद्वचनम् । निजगृहे सम्प्राप्तस्ततोऽपि च जननी पार्श्वे ॥ १८५ ॥
पादयोः प्रणम्य निजजननीं भणति मधुरवाण्या । अम्बे ! अहमद्य गतस्तातेन समं समवसरणे ॥ १८६ ॥
दृष्टश्च तत्र वीरो मुनिसहितो वन्दितः सबहुमानम् । शाश्वतशिवसुखजनको धर्मश्च तदन्तिके निश्रुतः ॥ १८७ ॥
धन्याहं तव जननी वत्स ! त्वयाद्य शोभनं विहितम् । यद्भुवनवन्दनीयो मुनिसहितो वन्दितो वीरः ॥ १८८ ॥
यद्येवं ततो सम्प्रति मुञ्च त्वमम्बे ! प्रव्रजिष्याम्यहम् । श्रीवीरनाथपार्श्वे छित्वा पाशमिव गृहवासम् ॥ १८९ ॥
अश्रुतपूर्वं तत् कर्णकटुकमाकर्ण्य सुतवचनम् । परशुनिकर्त्तितचम्पकलतैव पतिता धरणिपीठे ॥ १९० ॥
तत्क्षणमेव च श्रीखण्डमिश्रितशीतलजलेन सिक्ताङ्गी । प्रतिलम्भितचैतन्या सुदुःखमिति प्रलपितुं लग्ना ॥ १९१ ॥
त्वमेको वत्स ! सुत उदुम्बरपुष्पमिव दुर्लभो मम । ततस्तव वत्स ! वियोगं क्षणमपि न सहेऽतिदुःसहम् ॥ १९२ ॥
ततो जात ! यावज्जीवामि तावन्माभणेद्दशं वचनम् । परलोकं प्राप्ताया यद्युक्तं कुरुष्व त्वं वत्स ! ॥ १९३ ॥
मेघेनोक्तं तव वचनमम्बे ! सर्वमपि घटति यदि भवेत् । जीवानां यमेन समं कापि हु एवंविधव्यवस्था ॥ १९४ ॥
पूर्वं म्रियेतवृद्धो बालः पश्चाद्यदा च न खल्वेवम् । ततः कः कुर्यात्प्रत्ययमीदृशे जीविते यतः ॥ १९५ ॥

---

१. मकारोऽत्रालाक्षणिकः । २. विश्वासम्, भरोसो इति भाषायाम् ।

गब्भे जम्मे बालत्तणम्मि तरुणत्तणमम्मि वुड्ढत्ते । मट्टियभंडं व जिया सव्वावत्थासु विहडंति ॥१९६॥
ता होउ मज्झ भणियं कुणसु पसायं इमम्मि अत्थम्मि । माया हिया अवच्चम्मि इय पसिद्धी हवउ सच्चा ॥१९७॥
धारिणी - अज्ज वि तुह तारुन्नं ता तं माणसु विलासकरणेण । समयम्मि कज्जमाणं सलाहणिज्जं हवइ कज्जं ॥१९८॥
मेघः - जलबुब्बुओवमाणं खणभंगुरमंब ! सुंदरं पि इमं । निच्छयओ सहलत्तं वच्चइ जिणधम्मकरणेण ॥१९९॥
धारिणी - तं जाय ! कलाकुसलो सव्वुत्तमरायलक्खणाऽऽवसहो ।
ता विलससु रज्जसिरिं नियजणयपइट्ठिओ वच्छ ! ॥२००॥
मेघः - रायसिरी वि हु बहुदुक्खलक्खसंपुन्ननरयपुरपयवी । अप्प-परगरुयसंतावकारिया कह सुहा अंब ! ? ॥२०१॥
धारिणी - उत्तमकुलुब्भवाओ रूवाइगुणऽन्नियाओ रत्ताओ । वच्छऽट्ठ भारियाओ माणसु एयाओ ता जाय ! ॥२०२॥
मेघः - गिरिगरुयपराभवकारियासु पियभारियासु एयासु । को कुणउ कहसु पडिबंधमंब ! परिणामविरसासु ?।२०३।
धारिणी - तुह वच्छ ! कुलप्पभवो पउरो मणि-कणयपभिइओ अत्थो ।
वियरण-भोगसमत्थो जहोचियं विलससु तयं पि ॥२०४॥
मेघः - जल-जलण-राय-तक्कर-दाइयभयविहुओ दढं अत्थो । वह-बंध-मरणहेउको मुच्छऽउ अंब ! एयम्मि ? ॥२०५॥
धारिणी - सुहलालिओ सि सुहपालिओ सि सुहसमुचिओ सि तं वच्छ ! । कह कम्मक्खयहेउं कट्ठाणुट्ठाणमायरसि ?।२०६।
मेघः - संसारभीरुयाणं सप्पुरिसाणं विवेयसाराणं । सुकयज्झवसायाणं केत्तियमेत्तं इमं कट्ठं ? ॥२०७॥

गर्भे जन्मनि बालत्वे तरुणत्वे वृद्धत्वे । मृतिकाभाण्डमिवजीवाः सर्वावस्थासु विघटयन्ति ॥ १९६ ॥
ततो भवतु मम भणितं कुरु प्रसादमस्मिन्नर्थे । माता हितापत्य इति प्रसिद्धि र्भवतु सत्या ॥ १९७ ॥
धारिणी - अद्यापि तव तारुण्यं ततस्त्वं मानय विलासकरणेन । समये क्रियमाणं श्लाघनीयं भवति कार्यम् ॥ १९८ ॥
मेघः - जलबुद्बुदोपमानं क्षणभङ्गुरमम्बे ! सुन्दरमपीदम् । निश्चयतः सफलत्वं व्रजति जिनधर्मकरणेन ॥ १९९ ॥
धारिणी - त्वं जात ! कलाकुशलः सर्वोत्तमराजलक्षणाऽऽवसथः ।
ततो विलस राज्यश्रियं निजजनकप्रतिष्ठितो वत्स ! ॥ २०० ॥
मेघः - राज्यश्रीरपि हु बहुदुःखलक्षसंपूर्णनरकपुरपदवी । आत्म-परगुरुकसन्तापकारिका कथं सुखाम्बे ! ? ॥ २०१ ॥
धारिणी - उत्तमकुलोद्भवा रूपादिगुणयुक्ता रक्ताः । वत्साष्टौ भार्या मानयैतास्ततो जात ! ॥ २०२ ॥
मेघः - गिरिगुरुकपराभवकारिकासु प्रियभार्याष्वेतासु । कः करोतु कथय प्रतिबन्धमम्ब ! परिणामविरसासु ? ॥ २०३ ॥
धारिणी - तव वत्स ! कुलप्रभवः प्रचुरमणि-कनकपृभृतिकोऽर्थः ।
वितरणभोगसमर्थो यथोचितं विलस तकदपि ॥ २०४ ॥
मेघः - जल-ज्वलन-राज-तस्कर-दायिकभयविद्रुतो दृढमर्थः । वध-बन्धन-मरणहेतुः को मुर्च्छत्वम्ब ! एतस्मिन् ?।२०५।
धारिणी - सुखलालितोऽसि सुखपालितोऽसि सुखसमुचितोऽसि त्वं वत्स ! । कथं कर्मक्षयहेतुं कष्ठानुष्ठानमाचरसि ? ॥ २०६ ॥
मेघः - संसारभीरुकाणां सत्पुरुषाणां विवेकसाराणाम् । सुकृताध्यवसायानां कियन्मात्रमिदं कष्टम् ? ॥ २०७ ॥

धारिणी - लोहमयचणयचावणयतुल्लमच्चंतदुक्करं वच्छ ! । निसिउग्गखग्गधाराचंकमणसमं खु समणत्तं ॥२०८॥
मेघः - एयं पि कुणंति न किंपि दुक्करं अंब ! साहससहाया । पेच्छ झलक्कियकडतल्लभीसणे अब्भिडंति रणे ॥२०९॥
धारिणी - अवरं च सरस-महुरेहिं लालिओ निच्चमन्न-पाणेहिं । कहमंत-पंत-विरसं भुंजसि वच्छय ! तमाहारं ॥२१०॥
मेघः - परलोयदिन्नचित्ताण धिइसहायाण पाणमसणं वा । गलविवराओ परेणं किं काही भद्दमियरं वा ? ॥२११॥
धारिणी - केणावि अपरिभूओ मणयं पि हु वच्छ ! वयपवन्नो उ ।
अक्कोस-हणणपभिई कह विसहसि नीयजणविहियं ? ॥२१२॥
मेघः - मोक्खसुहबद्धचित्ताण नियसरीरे वि निप्पिवासाणं । थोवं पि दुक्खमक्कोसणाइ न हु जणइ धीराणं ॥२१३॥
धारिणी - नवणीयफासमिउहंसरूयतूलीकलावकलियाए ।
सुविओ कोमलसेज्जाए सुयसि किह धरणिवट्टम्मि ? ॥२१४॥
मेघः - हरिणाईण वरायाण रन्नभूमीसु संवसंताणं । सयणीयमंब ! केरिसमह य वणे ते वि हु जियंति ॥२१५॥
इय विविहहेउ-जुत्तीहिं धारिणी जा न सक्कए धरिउं । मेहकुमारं ताहे मुयई अकामा वि पव्वइउं ॥२१६॥
तत्तो पुव्वाभिमुहो महरिहसिंहासणे समुवविट्ठो । चउसट्ठिसहस्सेहिं अभिसित्तो मंतिपमुहेहिं ॥२१७॥
पसरंतबहलपरिमलसिरिखंडविलित्तरुइरसव्वंगो । भमिरभमरउलमणहरमल्ल-ऽलंकाररमणीओ ॥२१८॥
हार-ऽद्धहार-तिसरय-पालंबप्पमुहभूसणकलावो । नियसियधवलदुगुल्लो सक्खं चिय कप्परुक्खो व्व ॥२१९॥

धारिणी - लोहमयचनकचर्वणतूल्यमत्यन्तदुष्करं वत्स ! । निशितोग्रखड्गधारा चङ्क्रमणसमं खलु श्रमणत्वम् ॥ २०८ ॥
मेघः - एतदपि कुर्वन्ति न किमपि दुष्करमम्ब ! साहससहायाः । पश्य दीप्तकडतल्लभीषणे सङ्गच्छन्ति रणे ॥ २०९ ॥
धारिणी - अपरं च सरस-मधुरै र्लालितो नित्यमन्न-पानैः । कथमान्त-प्रान्त-विरसं भुङक्षे वत्सक ! तमाहारम् ॥ २१० ॥
मेघः - परलोकदत्तचित्तानां धृतिसहायानां पानमशनं वा । गलविवरात् परेण किं करिष्यति भद्रमितरं वा ॥ २११ ॥
धारिणी - केनाप्यपरिभूतो मनागपि हु वत्स ! व्रतप्रपन्नस्तु ।
आक्रोश - हननप्रभृतिः कथं विषहसे नीचजनविहितम् ? ॥ २१२ ॥
मेघः - मोक्षसुखबद्धचित्तानां निजशरीरेऽपि निष्पिपासानाम् । स्तोकमपि दुःखमाक्रोशनादि न हु जनयति धीराणाम् ॥ २१३ ॥
धारिणी - नवनीतस्पर्शमृदुहंसरुततूलीकलापकलितायाम् । सुप्तः कोमलशय्यायां स्वपिषि कथं धरणिपुष्टे ? ॥२१४॥
मेघः - हरिणादीनां वराकाणामरण्यभूमिषु संवसताम् । शयनीयमम्ब ! कीदृशमथ च वने तेऽपि हु जीवन्ति ॥ २१५ ॥
एवं विविधहेतु-युक्तिभिर्धारिणी यावन्न शक्यते धर्तुम् । मेघकुमारं तदा मुञ्चत्यकामापि प्रव्रजितुम् ॥ २१६ ॥
ततः पूर्वाभिमुखो महार्हसिंहासने समुपविष्टः । चतुष्षष्ठिसहस्रैरभिषिक्तो मन्त्रिप्रमुखैः ॥ २१७ ॥
प्रसरद्बहलश्रीखण्डविलिप्तरूचिरसर्वाङ्गः । भ्रमद्भ्रमरकुलमनोहरमालालङ्काररमणीयः ॥ २१८ ॥
हाराद्धहार त्रिसरक - प्रालम्बप्रमुखभूषणकलापः । निवसितधवलदुकुलः साक्षाच्चैव कल्पवृक्ष इव ॥ २१९ ॥

सुसिलिट्ठकट्ठ-मणि-रयणकम्मनिम्मवियपवरसिवियाए । आरुहिऊण निसन्नो महरिहसिंहासणवरम्मि ॥२२०॥
सव्वेयरपासट्ठियतरुणीकरधुव्वमाणसियचमरो । धरियधवलायवत्तो बंदियणुग्घुट्ठजयसद्दो ॥२२१॥
पत्थिज्जंतो वंछियविसए वियसंतनयणमालाहिं । पेच्छिज्जंतो अंगुलिसएहिं दाइज्जमाणो उ ॥२२२॥
दिक्खाविणिच्छयमई दुक्करकरणेण भवियलोयस्स । विम्हयमुप्पायंतो निज्जाइ पुराओ जिणपासे ॥२२३॥
सिरिवीरजिणवरेणं विहिणा पव्वाविओ सहत्थेण । किरियाकलावमिणमो सव्वं समणाण सिक्खविओ ॥२२४॥
एवं भाससु एवं च सयसु एवं च भुंजसु सया वि । एवं चिट्ठसु एवं च वयसु इरियासमिइसमिओ ॥२२५॥
एवमणुसासिऊणं थेराण समप्पिओ जिणवरेणं । पत्तो य तेहिं समयं समणाणमुवस्सए मेहो ॥२२६॥
ताहे वियालवेलाए समणसंथारएसु दिन्नेसु । मेहस्स दारदेसे कमेण संथारओ जाओ ॥२२७॥
तो सव्वं पि हु रयणिं निरंतरं मुणिवरेहिं वसहीओ । सज्झायाइनिमित्तं निंतेहिं पुणो विसंतेहिं ॥२२८॥
मेहकुमारो केहिंवि जईहिं रयरेणुगुंडिओ विहिओ । केहिं वि कहिं पि पायाइएहिं संघट्टिओ वहुहा ॥२२९॥
एवं सव्वनिसाए खणं पि निद्दा न पाविया तेण । तत्तोऽसुहकम्मवसा चिंतियमसुभं इमं मणसा ॥२३०॥
जइया गिहत्थभावे अहमासं समणगा इमे तइया । मं आलवंति मं संलवंति भासंति मेह ! त्ति ॥२३१॥
जप्पभिइ अगाराओ पव्वइओ हं इमेसि मज्झम्मि । तप्पभिइ समणगा परिभवंति मं ता धिरत्थु ! इमे ॥२३२॥
समणत्तमिमं सप्पुरिससेवियं कायराण दुरणुचरं । भूसयण-लोयसहणाइदुक्करं भणियमंबाए ॥२३३॥

सुश्लिष्टकाष्ठ-मणि-रत्नकर्मनिर्मितप्रवरशिबिकाम् । आरूह्य निषण्णो महार्हसिंहासनवरे ॥ २२० ॥
सव्येतरपार्श्वस्थिततरुणीकरधुर्ण्यमानश्वेतचमरः । धृतधवलातपत्रो बन्दिजनोद्घुष्टजयशब्दः ॥ २२१ ॥
प्रार्थ्यमानो वान्छितविषयान् विकसन्नयनमालाभिः । प्रेक्ष्यमाणोऽङ्गुलिशतै दर्शयमानस्तु ॥ २२२ ॥
दिक्षाविनिश्चयमति दुष्करकरणेन भविकलोकस्य । विस्मयमुत्पादयन्निर्याति पुराज्जिनपार्श्वे ॥ २२३ ॥
श्री वीरजिनवरेण विधिना प्रव्राजितः स्वहस्तेन । क्रियाकलापमयं सर्वं श्रमणेभ्यः शिक्षियतः ॥ २२४ ॥
एवं भाषस्वैवं च स्वपिहि एवं च भुङ्क्ष्व सदापि । एवं तिष्ठैवं व्रजेर्यासमितिसमितः ॥ २२५ ॥
एवमनुशास्य स्थविरेभ्यः समर्पितो जिनवरेण । प्राप्तश्च तैः समकं श्रमणानामुपाश्रये मेघः ॥ २२६ ॥
तदा विकालवेलायां श्रमणसंस्तारकेषु दत्तेषु । मेघस्य द्वारदेशे क्रमेण संस्तारको जातः ॥ २२७ ॥
ततः सर्वमपि हु रजनीं निरंतरं मुनिवरै र्वसतेः । स्वाध्यायादिनिमित्तं निर्यद्भिः पुनर्विशद्भिः ॥ २२८ ॥
मेघकुमारः कैरपि यतिभी रजोरेणुगुण्डितो विहितः । कैरपि क्वापि पादादिकैः संघट्टितो बहुधा ॥ २२९ ॥
एवं सर्वनिशि क्षणमपि निद्रा न प्राप्तास्तेन । ततोऽशुभकर्मवशाच्चिन्तितमशुभमिमं मनसा ॥ २३० ॥
यदा गृहस्थभावेऽहमासं श्रमणका इमे तदा । मामालपन्ति मां संलपन्ति भाषन्ते मेघ ! इति ॥ २३१ ॥
यत्प्रभूत्यागारात्प्रव्रजितोऽहमेतेषां मध्ये । तत्प्रभूति श्रमणकाः परिभवन्ति मां ततो धिगस्तु ! इमान्॥ २३२ ॥
श्रमणत्वमिदं सुपुरुषसेवितं कातराणां दुरणुचरम् । भूशयन-लोचसहनादि दुष्करं भणितमम्बया ॥ २३३ ॥

एवं जहुत्तमिण्हिं सक्किस्समहं न चेव काउं जे । ता मोत्तुं जिणपासे लिंगमिमं जामि गिहवासे ॥२३४॥
इय परिचिंतिय गोसे अचिंतमाहप्पमोहवसवत्ती । जिणवीरवंदणत्थं साहूहिं समं गओ मेहो ॥२३५॥
आभासिओ जिणेणं पढमं चिय धारिणीसुओ सम्मं । अत्थि तुह मेह ! रयणीए अज्ज परिचिंतियमिमं ? त्ति ॥२३६॥
सिररइयकरंजलिणा मेहकुमारेण पणमिउं भणियं । सच्चमिमं जं तुब्भे नाणेण वियाणिउं भणह ॥२३७॥
पुणराह जिणो तुह भद्द ! जुत्तमेयं न सुद्धवंसस्स । जं पाविय पव्वज्जं पमायमायरसि अप्परिउं ॥२३८॥
जम्हा एसो च्चिय वच्छ ! विविहदुहवसणकारणमणज्जो । भवपहसंपत्थियऽणत्थसत्थसत्थाहसिररयणं ॥२३९॥
सयमेव चिंतसु तुमं इहइं चिय जे अचिंतकम्मवसा । संजमगिरिवरसिहराओ एयवसया खडहडंति ॥२४०॥
ते दुक्कयकम्महया ससंकिया लज्जिया विवन्नुमहा । बहुजणधिक्कारहता जियंति दुहजीवियं वच्छ ॥२४१॥
इय निऊण-महुरवयणप्पुव्वगमणुसासिओ भुवणपहुणा । परितुट्ठो एवं चिय लहुदोसे सिक्खवंति गुरू ।२४२॥
भणियं च-
महुरेहिं निउणेहिं वयणेहिं सिक्खवंति आयरिया । सीसे कहिं पि खलिए जह मेहमुणी महावीरो ॥२४३॥
अवरं च वच्छ ! तुह पुव्वजम्मभावम्मि वट्टमाणस्स । तिरियस्स वि आसि स कोवि कम्मवसओ सुहविवेओ ॥२४४॥
तथा हि-
तुममेत्तो तइयभवे गुरुबलमाहप्पपहयपडिवक्खो । वेयड्ढपायमूलेसु जायजुहाहिवपहाणो ॥२४५॥

एवमयथोक्तमिदानीं शक्तास्म्यहं न चैव कर्तुं ये । ततो मुक्त्वा जिनपार्श्वे लिङ्गमिदं यामि गृहवासे ॥ २३४ ॥
इति परिचिन्त्य प्रत्युषेऽचिन्त्यमाहात्म्यमोहवशवर्ती । जिनवीरवन्दनार्थं साधुभिः समं गतो मेघः ॥ २३५ ॥
आभाषितो जिनेन प्रथमं चैव धारिणीसुतः सम्यक् । अस्ति तव मेघ ! रजन्यामद्य परिचिन्तितमिदमिति ॥ २३६ ॥
शिरोरचितकराञ्जलिना मेघकुमारेण प्रणम्य भणितम् । सत्यमिदं यद्यूयं ज्ञानेन विज्ञाय भणथ ॥ २३७ ॥
पुनराह जिनस्तव भद्र ! युक्तमेतन्न शुद्धवंशस्य । यत्प्राप्य प्रव्रज्यां प्रमादमाचरष्यात्मरिपुम् ॥ २३८ ॥
यस्मादेष चैव वत्स ! विविधदुःखव्यसनकारणमनार्यः । भवपथसम्प्रस्थिताऽनर्थसार्थसार्थवाहशिरोरत्नम् ॥ २३९ ॥
स्वयमेव चिन्तय त्वमिह चैव येऽचिन्त्यकर्मवशात् । संयमगिरिवरशिखरादेतद्वशगाः शिथिलन्ति ॥ २४० ॥
ते दुष्कृतकर्महताः सशङ्किता लज्जिता विवर्णमुखाः। बहुजनधिक्कारहता जीवन्ति दुःखजीवितं वत्स ! ॥ २४१ ॥
इतिनिपूणमधुरवचनपूर्वकमनुशासितो भुवनप्रभुणा । परितुष्ठ एवं चैव लघुदोषान् शिक्षयन्ते गुरवः ॥ २४२ ॥
भणितं च -
मधुरै र्निपुर्णै र्वचनैः शिक्षयन्ते आचार्याः । शिष्ये कुत्रापि स्खलिते यथा मेघमुनिं महावीरः ॥ २४३ ॥
अपरं च वत्स ! तव पूर्वजन्मभावे वर्तमानस्य । तिरश्चोऽप्यासीत् स कोऽपि कर्मवशतः शुभविवेकः ॥ २४४ ॥
तथा हि -
त्वमितस्तृतीये भवे गुरुबलमाहात्म्यप्रहतप्रतिपक्षः । वैताढ्यपादमूलेषु जातयूथाधिपप्रधानः ॥ २४५ ॥

विंझो व्व सरलवंसो निवो व्व सययं समुन्नयक्खंधो । सुहदाणविलसिरकरो चाइ व्व मुणि व्व सुइदंतो ॥२४६॥
निवरज्जभरो व्व महासत्तंगपइट्ठिओ पगिट्ठपओ । सव्वंगलक्खणधरो अहेसि हत्थी समग्गगुणो ॥२४७॥
तत्थठिय वणयरेहिं सहसि सुमेरुप्पहो त्ति कयनामो । चरसि निरुव्विग्गमणो भयमगणंतोऽभिमाणधणो ॥२४८॥
कइया वि लहुयनियकलह-कलभियाजूहयं पडिक्खंतो । करिणीकरकंडूयणमीलियनयणो सुहं लहसि ॥२४९॥
कइया वि हु चरसि महल्लसल्लईपल्लवेसु पडिबद्धो । कइया वि पयंडविपक्खभिडणसंपत्तजयपसरो ॥२५०॥
कइया वि हु पयपूरियगुरुसरवरजलनिमग्गसव्वंगो । घणचाडुकरणकोवियकरेणुयासुरयसुहरिसिओ ॥२५१॥
कइया वि कुणंतो सरवरम्मि सह भारियाहिं जलकीलं । अणुभवसि सकामकरेणुगंडगंडूसपाणसुहं ॥२५२॥
एवं गिरिकंदर-काणणेसु गुरुसरवरेसु वियरंतो । सच्छंदसमुत्थसुहिल्लिसंगओ गमयसि दिणाणि ॥२५३॥
अह अन्नया य खरतरदिणयरकरनियरताविए भुवणे । गिम्हम्मि परोप्परवंसघंससंजायजलणवसा ॥२५४॥
पाउब्भूओ संभंतसत्त-तरु-कट्ठदहणदुप्पेच्छो । धूमंधयारजालामालियगयणो वणदवग्गी ॥२५५॥
तथा हि-
[1]मल्लियसमुच्चगोत्तो झामियसच्छायतरु-सउणनिवहो । कलिकालो व्व समंता वित्थरिओ वणदवहुयासो ॥२५६॥
फुट्टंतवंसअट्टट्टहासरवभरियनहयलाभोगो । जालापिंगलकेसो [2]ढयरो व्व वियंभिओ दावो ॥२५७॥
निद्दड्ढविसप्पिरसमयसावभयभीयसत्तसंघाओ । कुद्धमुणि व्व विसप्पइ विमुक्कतेओ वणदवग्ग ॥२५८॥

विध्य इव सरलवंशो नृप इव सततं समुन्नतस्कन्धः । शुभदानविलसितकरस्त्यागीव मुनिरिव शुचिदन्तः ॥ २४६ ॥
नृपराज्यभार इव महासप्ताङ्गप्रतिष्ठितः प्रकृष्टपदः । सर्वाङ्गलक्षणधर आसीद्धहस्ती समग्रगुणः ॥ २४७ ॥
तत्रस्थितो वनचरैः सहसे सुमेरुप्रभ इति कृतनामः । चरसि निरुद्विग्नमनाः भयमगणयन्नभिमानधनः ॥ २४८ ॥
कदापि लघुकनिजकलभ-कलभिकायूथकं प्रतीक्ष्यमाणः । करिणीकरकण्डूयनमीलितनयनः सुखं लभसे ॥ २४९ ॥
कदापि हु चरसि महच्छल्लकीपल्लवेषु प्रतिबद्धः । कदापि प्रचण्डविपक्षयुद्धसम्प्राप्तजयःप्रसरः ॥ २५० ॥
कदापि खलु पयःपूरितगुरुसरोवरजलनिमग्नसर्वाङ्गः । घनचाटुकरणकोविदकरेणुकासुरतसुहर्षितः ॥ २५१ ॥
कदापि कुर्वन् सरोवरे सह भार्याभि र्जलक्रीडाम् । अनुभवसि सकामकरेणुगण्डगण्डूषपानसुखम् ॥ २५२ ॥
एवं गिरिकन्दर-काननेषु गुरुसरोवरेषु विचरन् । स्वच्छन्दसमुत्थसुखकेलिसंगतो गमयसि दिनानि ॥ २५३ ॥
अथान्यदा च खरतरदिनकरनिकरतापिते भुवने । ग्रीष्मे परस्परवंशघर्षणसञ्जातज्वलनवशात् ॥ २५४ ।
प्रादुर्भूतः सम्भ्रान्तसत्त्व-तरु-काष्टदहनदुष्प्रेक्ष्यः । धूम्रान्धकारज्वालामालितगगनो वनदवाग्निः ॥ २५५ ॥
तथा हि -
मलिनीतसमुच्चगोत्रो दग्धसच्छायतरू-शकुन निवहः । कलिकाल इव समन्ततो विस्तृतो वनदवहुताशः ॥ २५६ ॥
स्फुटद्वंशाट्टाट्टहास्यरवभृतनभस्तलाभोगः । ज्वालापिङ्गलकेशः पिशाच इव विजृम्भितो दावः ॥ २५७ ॥
निर्दग्धविसर्पत्समदश्वापदभयभीतसत्त्वसङ्घातः । क्रुद्धमुनिरिव विसर्पति विमुक्ततेजा वनदवाग्निः ॥ २५८ ॥

---

१. मइलियसमु रं० । २. पिशाचः ।

तत्तो य वणदवभया पलायमाणेसु सावयगणेसु । मणवल्लहं पि जूहं मोत्तूण तुमं पि हु पलाणो ॥२५९॥
मोडंतो तरुनिवहे वणदवपाउब्भवंतदप्पेण । तोडंतो वेयवसा विविहे वल्लीवियाणे य ॥२६०॥
जालावलिधूमेणं सुदूरमप्फुन्नविग्गहावयवो । एगागी नीहरिओ महया किच्छेण दावाओ ॥२६१॥
दवजलणदाहतावियतणुणा तत्तो तिसाभिभूएणं । तुच्छजलं बहुकद्दममेगं पत्तं सरं तुमए ॥२६२॥
तत्तो पिवासिओ तं पविससि पाहं ति पाणियं तम्मि । नवरमतित्थपवेसा खुत्तो पंके अगाहम्मि ॥२६३॥
तत्तो तं तयवत्थो दिट्ठो तरुणेण वेरिणा करिणा । विद्धो य पट्ठिभायम्मि दंतमुसलेहिं तेणावि ॥२६४॥
पंकम्मि खुत्तगत्तो पिवासिओ दंतमुसलजज्जरिओ । अणुभवसि सत्त दिवसाणि दुरहियासं महावियणं ॥२६५॥
वीसाहियवरिससयं सव्वाउं पालिऊण तम्मि भवे । अट्टवसट्टोवगओ मरिउं इह चेव भरहम्मि ॥२६६॥
सरसतरुराइरेहिरसर-सरियानियर निज्झराइन्ने । विंझगिरिपायमूले पुणरवि य गओ समुप्पन्नो ॥२६७॥
ससि-संख-कुंदधवलो चउदसणो गलियदाणगंडयलो । परिसक्किरनवनीरयरेहासंगयहिमगिरि व्व ॥२६८॥
सुपसत्थलक्खणंकियसत्तसयपमाणगयपरीवारो । वियरसि तुमं जहिच्छं भयरहिओ विंझगिरिगहणे ॥२६९॥
परितुट्ठवणयरेहिं तत्थ वि मेरुप्पहो त्ति कयनामो । गिम्हम्मि नियसि वंसीसाहाघंसणसमुब्भूयं ॥२७०॥
खरपवणवसवियंभियजालामालियसमग्गगयणयलं । धूमंधयारवेविरसमत्थघणसावयसमूहं ॥२७१॥
पज्जलियवणदवग्गिं कत्थ वि मह एस दिट्ठपुव्वो त्ति । इय ईहाकरणवसा सुमरसि तं मेह ! पुव्वभवं ॥२७२॥

ततश्च वनदवभयात्पलायमानेषु श्वापदगणेषु । मनोवल्लभमपि यूथं मुक्त्वा त्वमपि खलु पलायनः ॥ २५९ ॥
मोटयन् तरुनिवहान् वनदवप्रादुर्भवद्दर्पेण । त्रोटयन् वेगवशाद्विविधान् वल्लीवितानांश्च ॥ २६० ॥
ज्वालावलिधूम्रेण सुदुरमापूर्णविग्रहावयवः । एकाकी निःसृतो महता कृच्छ्रेण दवात् ॥ २६१ ॥
दवज्वलनदाहतापिततनुना ततस्तृषाभिभूतेन । तुच्छजलं बहुकर्दममेकं प्राप्तं सरस्त्वया ॥ २६२ ॥
ततः पिपासितस्त्वं प्रविशसि पिबामीति पानीयं तस्मिन् । नवरमतीर्थप्रवेशात् निमग्नः पङ्केऽगाधे ॥ २६३ ॥
ततस्त्वं तदवस्थो दृष्टस्तरुणेन वैरिणा करिणा । विद्धश्च पृष्टिभागे दन्तमुशलैस्तेनापि ॥ २६४ ॥
पङ्के मग्नगात्रः पिपासितो दन्तमुशलजर्जरितः । अनुभवसि सप्तदिनानि दुरध्यासां महावेदनाम् ॥ २६५ ॥
विंशत्यधिकवर्षशतं सर्वायुः पालयित्वा तस्मिन् भवे । आर्तवशार्तोपगतो मृत्वैव चैव भरते ॥ २६६ ॥
सरसतरुराजिराजमानसरःसरितानिकरनिर्झराकीर्णे । विन्ध्यगिरिपादमूले पुनरपि च गजः समुत्पन्नः ॥ २६७ ॥
शशि-शङ्ख-कुन्दधवलश्चतुर्दशनो गलितदानगण्डस्थलः । परिसर्पन्नवनीरदरेखासंगतहिमगिरिरिव ॥ २६८ ॥
सुप्रशस्तलक्षणाङ्कितसप्तशतप्रमाणगजपरिवारः । विचरसि त्वं यथेच्छं भयरहितो विन्ध्यगिरिगहने ॥ २६९ ॥
परितुष्टवनचरैस्तत्रापि मेरुप्रभ इति कृतनामा । ग्रिष्मे पश्यसि वंशीशाखाघर्षणसमुद्भूतम् ॥ २७० ॥
खरपवनवशविजृम्भितज्वालामालितसमग्रगगनतलम् । धूम्रान्धकारवेपमानसमस्तघानश्वापदसमूहम् ॥ २७१ ॥
प्रज्वलितवनदवाग्निं कुत्रापि ममैष दृष्टपूर्व इति । इतीहाकरणवशात्स्मरसि त्वं मेघ ! पूर्वभवम् ॥ २७२ ॥

तो विन्नायं तुमए वणम्मि एसो भविस्सइ सया वि । ता एयरक्खणोवायमविकलं किंपि चिंतेमि ॥२७३॥
जम्मंतरे वि अहयं एयाओ पाविओ महावसणं । वणदवदाहभयाओ अणागयं नियबुद्धीए ॥२७४॥
आई-मज्झ-ऽबसाणए वासारत्तस्स थंडिलाण तिगं । तं कुणसि कयवराई तत्थगयं सव्वमवणेउं ॥२७५॥
इय जा निव्वुयहियओ चिट्ठसि ता वणदवम्मि पज्जहिए । नट्ठो भयभीयमणो पत्तो ता थंडिलं पढमं ॥२७६॥
तम्मि रुरु-रोज्झ-संबर-ससय-तरच्छ-ऽच्छभल्लपभिईणं । बिलधम्मेणं चिट्ठइ अरन्नसत्ताण संघाओ ॥२७७॥
तो तं मोत्तुं बीयम्मि वयसि तं पि हु तहेव पडिपुन्नं । तो तइए गंतूणं पविरलसत्तम्मि तं थक्को ॥२७८॥
उक्खिवसि पायमेगं कंडुयणत्थं पुणो वि जा मुयसि । तो तम्मि पायठाणे पेल्लिज्जंतो बलिट्ठेहिं ॥२७९॥
ससयसरूवो कोवि हु सत्तविसेसो ठिओ तयं मुणिउं । मा मारिज्जउ एसो मह पाएणं पमुक्केणं ॥२८०॥
इय अणुकंपावसओ तहेव आकुंचिउं धरसि पायं । सो थंभिओ तहेव य भरिओ रुहिरस्स निब्भिच्चं ॥२८१॥
तत्तो तुह तिरियस्स वि अचिंतविरियत्तणाओ जीवस्स । कम्माणं च तहाविहविचित्तपरिणामभावाओ ॥२८२॥
जीवाणुकंपलक्खणसव्वुत्तमगुणपभावजोगेण । मणुयाउं निव्बंधसि विसुद्धसम्मत्तबीयं च ॥२८३॥ जओ-
थेवा वि हु जीवदया जियाण कल्लाणसंपयं कुणइ । मणकप्पियं पयच्छइ अहवा तणुया वि कप्पलया ॥२८४॥
किंच-
सग्गसिरीए नियाणे विलसिरनरराय संपयाहेऊ । सिवलच्छिवसीकरणे एक्क च्चिय होइ जीवदया ॥२८५॥

ततो विज्ञातं त्वया वने एष भविष्यति सदा पि । तत एतद्रक्षणोपायमविकलं किमपि चिन्तयामि ॥ २७३ ॥
जन्मान्तरेऽप्यहमेतस्मात् प्राप्तो महाव्यसनम् । वनदवदाहभयादनागतं निजबुद्धया ॥ २७४ ॥
आदि-मध्यावसाने वर्षाऋतोः स्थण्डिलानां त्रिकम् । त्वं करोषि कचवराणि तत्रगतानि सर्वमपनीय ॥ २७५ ॥
इति यावन्निवृत्तहृदयस्तिष्ठसि तावद्वनदवे प्रज्वलिते । नष्टो भयभीतमनाः प्राप्तस्तावत्स्थण्डिलं प्रथमम् । २७६ ॥
तस्मिन् रूरू-रोझ-शम्बर-शशक-तरक्ष-ऋक्षभल्लप्रभृतीनाम् । बिलधर्मेण तिष्ठत्यरण्यसत्त्वानां सङ्घातः ॥ २७७ ॥
ततस्तन्मुक्त्वा द्वितीये व्रजसि तदपि हु तथैव प्रतिपूर्णम् । ततस्तृतीये गत्वा प्रविरलसत्त्वे त्वं स्थितः ॥ २७८ ॥
उत्क्षिपसि पादमेकं कण्डूयनार्थं पुनरपि यावन्मुञ्चसि । ततस्तस्मिन् पादस्थाने पीडयमानो बलिष्ठैः ॥ २७९ ॥
शशकरूपः कोऽपि हु सत्त्वविशेषः स्थितस्तकन्मुणित्वा । मा म्रियतां एष मम पादेन प्रमुक्तेन ॥ २८० ॥
इत्यनुकम्पावशात्तथैवाकुञ्च्य धरसि पादम् । स स्तम्भितस्तथैव च भृतो रुधिरस्य नितान्तम् ॥ २८१ ॥
ततस्तव तिरश्चोऽप्यचिन्त्यवीर्यत्वाज्जीवस्य । कर्माणां च तथाविधविचित्रपरिणामभावात् ॥ २८२ ॥
जीवानुकम्पालक्षणसर्वोत्तमगुणप्रभावयोगेन । मनुष्यायु र्निबध्नासि विशुद्धसम्यक्त्वबीजं च ॥ २८३ ॥
यतः -
स्तोकापि हु जीवदया जीवानां कल्याणसंपदं करोति । मनःकल्पितं प्रयच्छत्यथवा तनुकापि कल्पलत्ता ॥ २८४ ॥
स्वर्गश्रियो निदानं विलसन्नरराजसंपद्धेतुः । शिवलक्ष्मीवशीकरणमेका चैव भवति जीवदया ॥ २८५ ॥

सुहपुन्नसस्सभूमी निम्मलगुणरयणरोहणगिरिंदो । भवजलहिजाणवत्तं एक्क च्चिय होइ जीवदया ॥२८६॥
चिंतियचिंतारयणं अहरीकयकामधेणुमाहप्पा । अवहत्थियकामघडा एक्क चिय होइ जीवदया ॥२८७॥
अड्ढाइयदिवसेहिं पभूयतण-कट्ठ-कयवराइन्नं । विंझारन्नमसेसं दहिउं विरओ वणदवग्गी ॥२८८॥
तो नीसरिए सव्वम्मि मंडलाओ पसूण संघाए । तुममवि पायं धरणीए मुयसि गमणाय वेगेण ॥२८९॥
तत्तो य दुज्जयजराजज्जरियतणुत्तओ तुमं तइया । थंभियचरणत्ताओ य पडसि धरणीए सहस त्ति ॥२९०॥
हत्थीणमेगपडणाओ उट्ठिउं सव्वहा वि अचयंतो । समकालं पसरियतिव्ववेयणाविहुरसव्वंगो ॥२९१॥
खद्धो सि तं सियालाइएहिं मंसासिसावयसएहिं । अहियासिऊण दूसहतणुवियणं तिन्नि दिवसाणि ॥२९२॥
संपुन्नं वाससयं सव्वाउं पालिऊण हत्थिभवे । अणुकंपागुणविढवियनिरुवमपुन्नप्पभावेण ॥२९३॥
जाओ सेणियपुत्तो मणप्पिओ धारिणीए देवीए । सव्वगुणाण निवासो मह सीसो एस पच्चक्खो ॥२९४॥
इय वीरजिणेसरमुहविणिग्गयं निसुणिऊण नियचरियं । जाईसरणा जायं मेहकुमारस्स पच्चक्खं ॥२९५॥
रयणीए वइयरे अक्खियम्मि वीरेण मेहकुमरो वि । जाओ विलक्खवयणो नियदुच्चरियं सुमरमाणो ॥२९६॥
भणइ जिणं मेहमुणी मह सामि ! पवित्तमुत्तिणो मुणिणो । नयणदुगं मोत्तूणं सव्वत्थ कुणंतु संघट्टं ॥२९७॥
एयाणे मुणिसीहाण विमलसीलंगगुणपवित्ताणं । पायाइघट्टणेणं संपन्नो पूयपावो हं ॥२९८॥
पच्चागयसंवेगो आलोइयमणसमुत्थअइयारो । परिणमियसुद्धभावो विहरइ सिरिवीरपयमूले ॥२९९॥

शुभपुण्यस्यभूमि र्निर्मलगुणरत्नरोहणगिरीन्द्रः । भवजलधियानपात्रमेका चैव भवति जीवदया ॥ २८६ ॥
चिन्तितचिन्तारत्नमधरीकृतकामधेनुमाहात्म्या । अपहस्तितकामघटैका चैव भवति जीवदया ॥ २८७ ॥
अर्धतृतीयदिवसैः प्रभूततृणकाष्ठकचवराकीर्णम् । विन्ध्यारण्यमशेषं दग्ध्वा विरतो वनदवाग्निः ॥ २८८ ॥
ततो निःसृते सर्वस्मिन् मण्डलात् पशूनां संघाते । त्वमपि पादं धरण्यां मुञ्चसि गमनाय वेगेन ॥ २८९ ॥
ततश्च दुर्जयजराजर्जरिततनुत्वात्त्वं तदा । स्तम्भितचरणत्वाच्च पतसि धरण्यां सहसेति ॥ २९० ॥
हस्तिनमेकपतनादुत्थातुं सर्वथाऽप्यपार्यन् । समकालं प्रसरिततीव्रवेदनाविधुरसर्वाङ्गः ॥ २९१ ॥
भक्षितोऽसि त्वं शृगालै र्मांसाशिश्वापदशतैः । अध्यास्य दुःसहतनुवेदनां त्रिणि दिवसानि ॥ २९२ ॥
सम्पूर्ण वर्षशतं सर्वायुः पालयित्वा हस्तिभवे । अनुकम्पागुणार्जितनिरुपमपुण्यप्रभावेन ॥ २९३ ॥
जात श्रेणिकपुत्रो मनःप्रियो धारिण्या देव्याः । सर्वगुणानां निवासो मम शिष्य एष प्रत्यक्षः ॥ २९४ ॥
इति वीरजिनेश्वरमुखविनिर्गतं निश्रुत्य निजचरितम् । जातिस्मरणाज्जातं मेघकुमारस्य प्रत्यक्षम् ॥ २९५ ॥
रजन्या व्यतीकर आख्याते वीरेण मेघकुमारोऽपि । जातो विलक्षवदनो निजदुश्चरितं स्मर्यमाणः ॥ २९६ ॥
भणति जिनं मेघमुनिर्मम स्वामिन् ! पवित्रमूर्तयो मुनयः । नयनद्विकं मुक्त्वा सर्वत्र कुर्वन्तु संघट्टम् ॥ २९७ ॥
एतेषां मुनिसिंहानां विमलशीलाङ्गगुणपवित्राणाम् । पादादिघट्टनेन संपन्नः पूतपापोऽहम् ॥ २९८ ॥
प्रत्यागतसंवेग आलोचितमनःसमुत्थातिचारः । परिणमितशुद्धभावो विहरति श्रीवीरपादमूले ॥ २९९ ॥

एक्कारस अंगाइं तेण अहीयाइं गुरुसयासम्मि । गीयत्थो संजाओ थिरधम्मो मंदरगिरि व्व ॥३००॥
एयस्स महामुणिणो सोहणपंथम्मि संपयट्टस्स । कंटगखलणतुल्लो विन्नेओ वयविपरिणामो ॥३०१॥
संलिहियनिययतणुणो विणीयविणियस्स तस्स साहुस्स । पव्वजापरियाओ बारस वासाणि संजाओ ॥३०२॥
बारस भिक्खूपडिमा तेण तया फासिया महामइणा । गुणरयणवच्छरेणं तवेण परिसुसियसव्वंगो ॥३०३॥
उद्धरियसव्वसल्लो पइसमयसमुल्लसंतपरिणामो । मासद्धपमाणाए अणसणकिरियाए सुहलेसो ॥३०४॥
आपुच्छिऊण वीरं सह गीयत्थेहिं सुविहियमुणीहिं । आरुहइ विउलपव्वयसिलायले जिणवराणाए ॥३०५॥
आउयखयम्मि जाए कालं काऊण कालमासम्मि । पंचपरमेट्ठिमंतं झायन्तो सुद्धपरिणामो ॥३०६॥
मेहो व्व मेहकुमारो सुहरसनिव्ववियसत्तसंघाओ । जह इह तहा मओ वि हु वरविजयविमाणमारूढो ॥३०७॥
तत्तो चुओ समाणो सव्वुत्तमगुणविसिट्ठकुलजम्मो । परिपालियपव्वज्जो महाविदेहम्मि सिज्झिहई ॥३०८॥

॥ मेघकुमाराख्यानकं समाप्तम् ॥८३॥

अधुना दामन्नक कथानकस्यावसरः । तच्च नियमाधिकारे भणितमिति कृत्वा नाऽऽख्यायते ।

इहलोय-पारलोइयसुहाण भायणमिमे जहा जाया । जीवदयाए तहऽन्नो वि होइ ता तीए जइयव्वं ॥१॥

यत् सुस्थिता गतरुजो निरवद्यदेहा, आजन्म जन्मिनिवहा गमयन्ति कालम् ।
तत् सर्वमङ्गिगणनिर्मलनस्य (शस्य) श्रेयोविजृम्भितमुदारधियो भणन्ति ॥२॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे जीवदयागुणवर्णनः षड्विंशतितमोऽधिकारः समाप्तः ॥२६॥

एकादशाङ्गानि तेनाधीतानि गुरुसकाशे । गीतार्थः सञ्जातः स्थिरधर्मो मन्दरगिरिरिव ॥ ३०० ॥
एतस्य महामुनेः शोभनपथि सम्प्रवृत्तस्य । कण्टकस्खलनातूल्यो विज्ञेयो व्रतविपरिणामः ॥ ३०१ ॥
संलिखितनिजतनो र्विनीतविनीतस्य तस्य साधोः । प्रव्रज्यापर्यायो द्वादशवर्षाणि सञ्जातः ॥ ३०२ ॥
द्वादश भिक्षुप्रतिमास्तेन तदा स्पृष्टा महामतिना । गुणरत्नवत्सरेण तपसा परिशोषितसर्वाङ्गः ॥ ३०३ ॥
उद्धरितसर्वशल्यः प्रतिसमयसमुल्लसत्परिणामः । मासार्द्धप्रमाणयाऽनशनक्रियया शुभलेश्यः ॥ ३०४ ॥
आपृच्छय वीरं सह गीतार्थैः सुविहितमुनिभिः । आरोहति विपुलपर्वतशिलातले जिनवराज्ञया ॥ ३०५ ॥
आयुः क्षये जाते कालं कृत्वा कालमासे । पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रं ध्यायन् शुद्धपरिणामः ॥ ३०६ ॥
मेघ इव मेघकुमारः शुभरसनिर्वापितसत्त्वसङ्घातः । यथेह तथा मृतोऽपि हु वरविजयविमानमारूढः ॥ ३०७ ॥
ततश्च्युतस्सन् सर्वोत्तमगुणविशिष्टकुलजन्मा । परिपालितप्रव्रज्यो महाविदेहे सेत्स्यति ॥ ३०८ ॥

॥ मेघकुमाराख्यानकं समाप्तम् ॥ ८३ ॥

इहलोक-परलौकिकसुखानां भाजनमिमे यथा जाताः ।
जीवदयया तथाऽन्योऽपि भवति ततस्तस्यां यतितव्यम् ।

● ● ●

[२७. धर्मप्रियत्वादिगुणवर्णनाधिकारः ।]

जीवदया सुखहेतुत्वेनाभिहिता । साम्प्रतं सर्वोऽपि जिनधर्मं सुखहेतुः परमादेयबुद्ध्या गृहीतोऽयं मोक्षसाधको भवतीत्यमुमर्थमभिधित्सुराह -

पियधम्मा दढधम्मा गिहिणो वि य मोक्खसाहगा होंति ।
जह कामदेव-सागरचन्दा चंडावडिंसो य ॥ ३६ ॥

अस्या व्याख्या - प्रियः-वल्लभः धर्मः-जिनोदितं दानाद्यनुष्ठानं येषां ते प्रियधर्माणः । दृढः- व्यसनगतैरपि यो न विराध्यते स तादृशो धर्मो येषां ते दृढधर्माणः । गृहीणोऽपि च न केवलं यतय इत्यर्थः 'मोक्षसाधकाः' निवृत्तिजनकाः 'यथा' येन प्रकारेण कामदेव-सागरचन्द्रौ श्रावकौ चन्द्रावतंसकश्च राजेति गाथासमासार्थः ॥ व्याख्या(व्यासा)र्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्र तावत् कामदेवाख्यानकमारभ्यते-

जियसत्तू नाम निवो अहेसि चंपाए विस्सुओ भुवणे । रूवेण कामएवो व्व सावओ कामएवो त्ति ॥१॥
रूवाइगुणसुभद्दा भद्दा नामेण पणइणी तस्स । सम्माणट्ठाणं सो नरिंदपज्जंतपउराण ॥२॥
विन्नायपुन्न-पावो जीवा-ऽजीवाइजाणियसरूवो । छक्कोडीउ निहाणीकयाउ कणयस्स तब्भवणे ॥३॥
छव्वित्थरप्पउत्ताउ तह य छव्वड्ढिसंपउत्ताओ । छ व्वहणाइं तहा से वहंति सगडाण पंच सया ॥४॥

कामदेवाख्यानकम् ॥ ८४ ॥

जितशत्रु र्नाम नृप आसीच्चम्पायां विश्रुतो भुवने । रूपेण कामदेव इव श्रावकः कामदेव इति ॥ १ ॥
रूपादिगुणसुभद्रा भद्रा नाम्ना प्रणयिनी तस्य । सन्मानस्थानं स नरेन्द्रपर्यन्तपौराणाम् ॥ २ ॥
विज्ञातपुण्य-पापो जीवा-ऽजीवादिज्ञातस्वरूपः । षट्कोट्यो निधानीकृता कनकस्य तद्भवने ॥ ३ ॥
षड्विस्तरप्रयुक्तास्तथा च षड्वृद्धिसम्प्रयुक्ताः । षड्वहनानि तथा तस्य वहन्ति शकटानां पञ्च शताः ॥ ४ ॥

पंच सयाणि हलाणं किसिप्पउत्ताणि गोउलाइं से । छ प्पत्तेयं दसदससहस्सगोसंखजुत्ताणि ॥५॥
तत्थऽन्नया य अमरा-ऽसुरिंद-नर-खयरराय़नयचरणो । समवसरिओ पुरीए उज्जाणे वद्धमाणजिणो ॥६॥
परिसाए निग्गयाए स कामदेवो जिणिंदनमणत्थं । संपत्तो रोमंचियगत्तो वंदित्तु भयवंतं ॥७॥
उचियट्ठाणनिविट्ठो सोउं सद्देसणं जिणाभिहियं । चित्तब्भंतरसुहपरिणईजुओ भणइ जिणनाहं ॥८॥
भयवं ! काउमसत्तो पव्वज्जमहं करेमि पुण सम्मं । धम्मं सुसावगाणं तो वारसहा वि पडिवन्नो ॥९॥
सावयधम्मो पणमिय जिणेसरं पडिगओ तओ तस्स । तं सम्मं पालंतस्स सुद्धसज्झायजुत्तस्स ॥१०॥
अट्ठमि-चउद्दसीसुं चउव्विहं पोसहं कुणंतस्स । चोद्दस समइक्कंताणि तस्स वरिसाणि गुणनिहिणो ॥११॥
अह अन्नया य पोसहसालाए सव्वराइयं पडिमं । पडिवन्नमिमं खोभेउमागओ रक्खरूवसुरो ॥१२॥
आरत्तनेत्तदित्ती विद्धंसियअंधयारसंधाणो । पज्जलियजलणमिस्सियविमुक्कलल्लक्कफेक्कारो ॥१३॥
गुरुकरहकंधरारोमकविलकेसो करालमुहकुहरो । फालसमविसमदंतो धूमसिहासामलच्छओ ॥१४॥
गोणसकयावयंसो जन्नोइयअइगरेण अइभीमो । घुंटंतो करयलकयकवालकीलालमणवरयं ॥१५॥
उक्खायखग्गदंडो पभणइ भो कामदेव ! जइ नो तं । सीलव्वयाइं खंडसि ता खग्गेणं हणिस्सामि ॥१६॥
तो कामदेवसड्ढो गाढयरं धम्मझाणमारूढो । इय वारत्तियमुत्तो वि न चलिओ धम्मझाणाओ ॥१७॥
ता खग्गदंडघाएहिं खंडिओ सहइ सम्ममेसो वि । तो मुक्कजक्खरूवो देवो जाओ गुरुकरिंदो ॥१८॥

पञ्चशतानि हलानां कृषिप्रयुक्तानि गोकुलानि तस्य । षट्प्रत्येकं दशदशसहस्रगोसंख्ययुक्तानि ॥ ५ ॥
तत्रान्यदा चामरा-ऽसुरेन्द्र-नर-खचरराजनतचरणः । समवसृतः पूर्या उद्याने वर्द्धमानजिनः ॥ ६ ॥
पर्षदि निर्गतायां स कामदेवो जिनेन्द्रनमनार्थम् । सम्प्राप्तो रोमाञ्चितगात्रो वन्दित्वा भगवन्तम् ॥ ७ ॥
उचितस्थाननिविष्टः श्रुत्वा सद्देशनां जिनाभिहिताम् । चित्ताभ्यन्तरशुभपरिणतियुतो भणति जिननाथम् ॥ ८ ॥
भगवन् ! कर्तुमशक्तः प्रव्रज्यामहं करोमि पुनः सम्यक् । धर्मं सुश्रावकाणां ततो द्वादशधापि प्रतिपन्नः ॥ ९ ॥
श्रावकधर्मः प्रणम्य जिनेश्वरं प्रतिगतस्ततस्तस्य । तत्सम्यक् पालयतः शुद्धस्वाध्याययुक्तस्य ॥ १० ॥
अष्टमी-चतुर्दशीषु चतुर्विधं पौषधं कुर्वतः । चतुर्दशसमतिक्रान्तानि तस्य वर्षाणि गुणनिधेः ॥ ११ ॥
अथान्यदा च पौषधशालायां सर्वरात्रिकां प्रतिमाम् । प्रतिपन्नमिमं क्षोभयितुमागतो राक्षसरूपसुरः ॥ १२ ॥
आरक्तनेत्रदीप्तिविध्वंसितान्धकारसंधानः । प्रज्वलितज्वलनमिश्रितविमुक्तभयानकफुत्कारः ॥ १३ ॥
गुरूकरंभकन्धरारोमकपिलकेशः करालमुखकुहरः । फालसमविषमदन्तो धूम्रशिखा-श्यामलच्छायः ॥ १४ ॥
गोनसकृतावतंसो यज्ञोपविताजगरेणातिभीमः । घुण्टयन् करतलकृतकपालकीलालमनवरतम् ॥ १५ ॥
उत्खातखड्गदण्डः प्रभणति भो कामदेव ! यदि नस्त्वम् । शीलव्रतानि खण्डयसि तदा खड्गेन हनिष्यामि ॥ १६ ॥
ततः कामदेवश्राद्धो गाढतरं धर्मध्यानमारुढः । इति वारत्रिकमुक्तोऽपि न चलितो धर्मध्यानात् ॥ १७ ॥
तदा खड्गदण्डघातैः खण्डितः सहते सम्यगेषोऽपि । ततो मुक्तयक्षरूपो देवो जातो गुरुकरीन्द्रः ॥ १८ ॥

उव्भियसुंडादंडो रणंतघंटाजुएण डंबरिओ । गलगज्जिभरियभुवणो सत्तंगोगलियमयपवहो ॥१९॥
जंपइ य कामदेवं जइ न कुणसि खंडणं नियवयाणं । ता उल्लालिय सुंडाए तह पडिच्छेवि दंतेहिं ॥२०॥
वलवट्टिस्सं पाएहिं होइ तुह मरणमट्टझाणेण । इय तिक्खुत्तो वुत्तो वि न चलिओ सो सुझाणाओ ॥२१॥
तत्तो य आसुरुत्तेण हत्थिणा गिण्हिऊण सुंडाए । उल्लालिऊण दंतेहिं कलिय दलिओ सपाएहिं ॥२२॥
सो वि हु करिकयवियणं सम्मं अहियासए महासत्तो । तो अमरो करिरूवं परिहरिउं विसहरो जाओ ॥२३॥
फुक्कारविडुरिल्लो वियडफडाडोयडंबरुडुमरो । जलणकणारुणनयणो तरलदुजीहो घणच्छओ ॥२४॥
भणइ य तयं तहेव य वारतिगं सो न मणयमवि खुहिओ । गाढं वेढिय कंठेसु तिक्खदाढाहिं तो डसइ ॥२५॥
तं पि हु वियणं सम्मं अहियासइ जिणमयम्मि थिरबुद्धी । तो तं अभीयमवलोइऊण धम्मम्मि थिरचित्तं ॥२६॥
तयणु कयामररूवो विलसिरमणिकणयकुंडलाऽऽहरणो । पभणइ य कामदेवं सकयत्थो धन्न-पुन्नो तं ॥२७॥
तुह जम्म-जीवियाइं सकयत्थाइं समत्थि निग्गंथे । जिणपवयणम्मि एरिसनिच्चलया जस्स सयकालं ॥२८॥
विहियं देवाणुप्पिय ! सक्केण सुहम्मसुरसहामज्झे । तुज्झ गुणग्गहणमिणं जहा सइंदेहिं देवेहिं ॥२९॥
चंपाए कामदेवो तीरइ न जिणप्पणीयधम्माओ । चालेउमिममसद्दहमाणोऽहमिहागओ झत्ति ॥३०॥
विहिया य चालणकए घोरुवसग्गा मए इमे तुज्झ । ता खमसु इय पयंपिय पणमिय तं खामिउं अमरो ॥३१॥
नियठाणे संपत्तो गोसे पारेइ पडिममेसो वि । एत्थंतरम्मि सामी समोसढो वद्धमाणजिणो ॥३२॥

उर्ध्वितशुण्डादण्डो रणत्घण्टायुगेन डम्बरितः । गलगर्जितभृतभुवनः सप्ताङ्गोद्गलितमदप्रवाहः ॥ १९ ॥
जल्पति च कामदेवं यदि न करोषि खण्डनं निजव्रतानाम् । तदोल्लालितशुण्डया तथा प्रतीच्छय दन्तैः ॥ २० ॥
वलवर्तिष्ये पादै र्भवति तव मरणमार्तध्यानेन । इति त्रिकृत्व उक्तोऽपि न चलितः स सुध्यानात् ॥ २१ ॥
तत आसुरत्वेन हस्तिना गृहीत्वा शुण्डया । उल्लाल्य दन्तैः कलित्वा दलितः स्वपादैः ॥ २२ ॥
सोऽपि हु करिकृतवेदनां सम्यगध्यासते महासत्त्वः । तदामरः करिरूपं परिहृत्य विषधरो जातः ॥ २३ ॥
फुत्काराटोपितो विकटफटाटोपडम्बरोत्कृष्टः । ज्वलनकणारुणनयनस्तरलद्विजीव्हो घनच्छायः ॥ २४ ॥
भणति च तकत्तथैव च वारत्रिकं स न मनागपि क्षुब्धः । गाढं वेष्टयित्वा कण्ठेषु तीक्ष्णदंष्ट्राभिस्ततो दशति ॥ २५ ॥
तदपि हु वेदनां सम्यगध्यासते जिनमते स्थिरबुद्धिः । ततस्तमभीतमवलोक्य धर्मे स्थिरचित्तम् ॥ २६ ॥
तदनु कृतामररूपो विलसन्मणि-कनक कुण्डलाऽऽभरणः । प्रभणति च कामदेवं सकृतार्थो धन्य-पुण्यस्त्वम् ॥ २७ ॥
तव जन्म-जीवितानि सकृतार्थानि समस्ति निर्ग्रन्थे । जिनप्रवचने ईदृशनिश्चलता यस्य सदाकालम् ॥ २८ ॥
विहितं देवानुप्रिय शक्रेण सुधर्मसुरसभामध्ये । तवगुणग्रहणमिमं यथा सेन्द्रै देवैः ॥ २९ ॥
चम्पायां कामदेवः शक्यते न जिनप्रणीतधर्मात् । चालयितुमिममश्रद्धानोऽमिहागतो झटिति ॥ ३० ॥
विहता च चालनकृते घोरोपसर्गा मयेमे तव । ततः क्षमस्वेति प्रजल्प्य प्रणम्य तं क्षमयित्वामरः ॥ ३१ ॥
निजस्थाने संप्राप्तः प्रत्यूषे पारयति प्रतिमामेषोऽपि । अत्रान्तरे स्वामी समवसृतो वर्धमानजिनः ॥ ३२ ॥

वंदेवि कामदेवो भयवंतं पज्जुवासए जाव । ता भुवणसामिणा सो पयंपिओ तुज्झ रयणीए ॥३३॥
सम्ममहियासिया इह उवसग्गा रक्खसाइणो तुमए । तेणुत्तं जह भयवं ! तुब्भे जाणह तह च्चेव ॥३४॥
पुणरवि य भयवया सो भणिओ जिणपवयणम्मि जस्सेसा । निच्चलया सो तं पुन्नभायणं इय निसामेउं ॥३५॥
हरिसपरिपूरियंगो पणमेवि जिणं गओ सठाणे सो । वाहरिय भयवया पभणिया य समणा य समणीओ ॥३६॥
अज्जो ! जइ गिहिणो वि हु एवं सम्मं सहंति उवसग्गे । ता किं न हु सहियव्वा तुब्भेहिं विमुक्कसंगेहिं ॥३७॥
ताणि जिणवयणमेयं सम्मं रोमंचियाणि मन्नंति । एत्तो य कामदेवो सावयपडिमाउ काऊण ॥३८॥
अप्पाणं भाविंतो सीलव्वयभावणाहि जा वीसं । वासाइं सावयत्तं परिपालिय सो महासत्तो ॥३९॥
आलोइय-पडिकंतो मासियसंलेहणाए कालगओ । सोहम्मअमरलोए अरुणाभे वरविमाणम्मि ॥४०॥
विप्फुरियसरीरपहो चउपलियाऊ सुरो समुप्पन्नो । तत्तो चुओ विदेहे उववज्जिय पाविही सिद्धिं ॥४१॥

॥ कामदेवाख्यानकं समाप्तम् ॥८४॥

अधुना सागरचन्द्राख्यानकमारभ्यते । तच्चेम्-

बारवईए बलदेवपुत्तनिसढस्स नंदणो मइमं । सागरचंदो नामेण आसि निस्सेसगुणभवणं ॥१॥
संबाइकुमाराणं मणप्पिओ सयलसुंदरावयवो । एत्तो य आसि धणसेणनरवई विस्सुओ तत्थ ॥२॥
कमलदलसरसनयणा कमलामेलाभिधा सुया तस्स । दिन्ना निवुग्गसेणंगयस्स नहसेणकुमरस्स ॥३॥

वन्दित्वा कामदेवो भगवन्तं पर्युपासते यावत् । तावद्भुवनस्वामिना स प्रजल्पितस्तव रजन्याम् ॥ ३३ ॥
सम्यगध्यासिता इह उपसर्गा राक्षसादयस्त्वया । तेनोक्तं यथा भगवन् ! यूयं जानीथ तथा चैव ॥ ३४ ॥
पुनरपि च भगवता स भणितो जिनप्रवचने यस्यैषा । निश्चलता स त्वं पुण्यभाजनमिति निशम्य ॥ ३५ ॥
हर्षपरिपूरिताङ्गः प्रणम्य जिनं गतः स्वस्थाने सः । व्याहृत्य भगवता प्रभणिताश्च श्रमणाश्च श्रमण्यः ॥ ३६ ॥
आर्याः ! यदि गृहिणोऽपि हु एवं सम्यक् सहन्त उपसर्गान् । ततः किं न खलु सोढव्या युस्माभि र्विमुक्तसङ्गैः ॥ ३७ ॥
तानि जिनवचनमेतत्सम्यग् रोमाञ्चितानि मन्यन्ते । इतश्च कामदेवः श्रावकप्रतिमां कृत्वा ॥ ३८ ॥
आत्मानं भावयन् शीलव्रतभावनाभिर्यावद्विंशतिः । वर्षाणि श्रावकत्वं परिपाल्य स महासत्वः ॥ ३९ ॥
आलोचित-प्रतिक्रान्तो मासिकसंलेखनया कालगतः । सौधर्मामरलोकेऽरुणाभे वरविमाने ॥ ४० ॥
विस्फुरितशरीरप्रभश्चतुष्पल्यायुः सुरः समुत्पन्नः । ततश्च्युतो विदेह उपपद्य प्राप्स्यति सिद्धिम् ॥ ४१ ॥

॥ कामदेवाख्यानकं समाप्तम् ॥ ८४ ॥

सागरचन्द्राख्यानकम् ॥ ८५ ॥

द्वारावत्यां बलदेवपुत्रनिषढस्य नन्दनो मतिमान् । सागरचन्द्रो नाम्नासीन्निशेषगुणभवनम् ॥ १ ॥
शाम्बादिकुमाराणां मनःप्रियः सकलसुन्दरावयवः । इतश्चासीद्धनसेननरपति विश्रुतस्तत्र ॥ २ ॥
कमलदलसरलनयना कमलामेलाभिधा सुता तस्य । दत्ता नृपोग्रसेनस्य नभःसेनकुमारस्य ॥ ३ ॥

वीवाहकज्जसज्जम्मि परियणे नारओ नहयलेण । पत्तो नहसेणंते न जाव सम्माणिओ तेणं ॥४॥
ताव पउट्ठो संतो सागरचंदस्स मंदिरं पत्तो । सम्माणिय पुट्ठो कहसु किं पि भयवं ! ममऽच्छरियं ॥५॥
सो भणइ वच्छ ! अच्छरियमेरिसं तुह कहिज्जइ इहेव । कमलामेला धणसेणकन्नया अत्थि रुइरंगी ॥६॥
नियरूवविजियअमरी भमरीनिउरुंबकसिणघणकेसा । कुमरेण तओ भणियं भयवं ! सा मम कहं होही ? ॥७॥
न मुणेमि त्ति पयंपिय कमलामेला सयासमल्लीणो । तो तीए सम्माणिय सविणयमाभासिओ एवं ॥८॥
भयवं ! अच्छरियं किंपि कहसु तेणावि जंपियं वच्छे ! । दिट्ठं अच्छरियम्मं इहेव नयरीए मज्झम्मि ॥९॥
रूविजणसिरोरयणं सागरचंदो जयत्तए एसो । अवरो कुरूविचूडामणी पुणो एत्थ नहसेणो ॥१०॥
सोऊण तमणुरत्ता सागरचंदे नरिंदकुमरी सा । नहसेणम्मि विरत्ता चंचलचित्ताऽहवा नारी ॥११॥
गंतुं सागरचंदस्स अक्खियं नारएण सा कुमरी । तं पइ अणुरायपरा तं सोउं सो वि अणुरत्तो ॥१२॥
तं चिय कुमरी चिंतइ चित्तइ रूवेहिं तस्स भूवलयं । तो विमणदुम्मणो सो दिट्ठो संबेण साममुहो ॥१३॥
परिहासेणं पिट्ठीए तस्स ठाऊण तेण नयणजुयं । पिहियं नियकरजुयलेण तयणु तेणेवमुल्लवियं ॥१४॥
कमलामेल त्ति तओ भणियं संबेण ईसि हसिऊण । नाहं कमलामेला कमलामेलो अहं किंतु ॥१५॥
तेणुत्तं जइ एवं ता तं तुममेव मज्झ मेलेहि । कमलदलदीहनयणं कमलामेलं मणोभिमयं ॥१६॥
कुमरेहिं सुरं पाइय अब्भुवगच्छविओ इमं संबो । विगयमओ पुण चिंतइ कहमेयमहं करिस्सामि ? ॥१७॥

विवाहकार्यसज्जे परिजने नारदो नभस्तलेन । प्राप्तो नभःसेनान्ते न यावत्सन्मानितस्तेन ॥ ४ ॥
तावत्प्रदुष्टस्सन्सागरचन्दस्य मन्दिरं प्राप्तः । सन्मान्य पृष्टः कथय किमपि भगवन् ! ममाश्चर्यम् ॥ ५ ॥
स भणति वत्स ! आश्चर्यमीदृशं तव कथ्यत इहैव । कमलामेला धनसेनकन्यास्ति रुचिराङ्गी ॥ ६ ॥
निजरूपविजितामरी भ्रमरीनिकुरम्बकृष्णघनकेशा । कुमारेण ततो भणितं भगवन् ! सा मम कथं भविता ? ॥ ७ ॥
न मुणोमीति प्रजल्प्य कमलामेला सकाशमालीनः । ततस्तया सन्मान्य सविनयमाभाषित एवम् ॥ ८ ॥
भगवन् ! आश्चर्यं किमपि कथय तेनापि जल्पितं वत्से ! । दृष्टमाश्चर्यमिदमिहैव नगर्या मध्ये ॥ ९ ॥
रूपिजनशिरोरत्नं सागरचन्द्रो जगत्त्रय एषः । अपरः कुरुपिचूडामणिः पुनरत्र नभःसेनः ॥ १० ॥
श्रुत्वा तमनुरक्ता सागरचन्द्रे नरेन्द्रकुमारी सा । नभःसेने विरक्ता चञ्चलचित्ताथवा नारी ॥ ११ ॥
गत्वा सागरचन्द्रस्या ख्यातं नारदेन सा कुमारी । त्वां प्रत्यनुरागपरा तत् श्रुत्वा सोऽप्यनुरक्तः ॥ १२ ॥
तां चैव कुमारीं चिन्तयति चित्रयति रूपैस्तस्य भूवलयम् । ततो विमनदुर्मनाः स दृष्टः शाम्बेन श्याममुखः ॥ १३ ॥
परिहासेन पृष्टयां तस्य स्थित्वा तेन नयनयुग्मम् । विहितं निजकरयुगलेन तदनु तेनैवमुल्लपितम् ॥ १४ ॥
कमलामेलेति ततो भणितं शाम्बेनेषद्धिसित्वा । नाहं कमलामेला कमलामेलोऽहं किन्तु ॥ १५ ॥
तेनोक्तं यद्येवं तदा तां त्वमेव मम मेलय । कमलदलदीर्घनयनां कमलमेलां मनोऽभिमताम् ॥ १६ ॥
कुमारैः शुरां पायित्वाभ्युपगमयित इदं शाम्बः । विगतमदः पुनश्चिन्तयति कथमेतदहं करिष्यामि ? ॥ १७ ॥

घेत्तूणं पन्नत्तिं पज्जुनाओ कुमारपरियरिओ । गंतूणुज्जाणे नारयस्स सो भिन्दइ रहस्सं ॥१८॥
परिणयणकज्जसज्जे नहसेणे नारएण लग्गदिणे । हरिऊण सुरंगाए कुमरी नेऊणमुज्जाणे ॥१९॥
परिणाविओ य सागरचंदो चिट्ठंति तत्थ कीलंता । विज्जाहररूवेणं इओ य धणसेणभवणम्मि ॥२०॥
निऊणं निरिक्खिया वि हु कुमारी दिट्ठा न तेसि लोएण । तत्तो मग्गंतेहिं सच्चविया तम्मि उज्जाणे ॥२१॥
कहिओ य वासुदेवस्स वइयरो सो वि कोवदट्ठोट्ठो । सन्नद्धबद्धकवओ उज्जाणम्मिं समणुपत्तो ॥२२॥
संबाइकुमारेहिं रणंगणे गुरुबलं पि कन्हबलं । निज्जिणियं तो पत्तो हक्कंतो वासुदेवो वि ॥२३॥
संहरियखयररूवो संबो चलणेसु निवडिओ तस्स । सागरचंदस्सेव य दिन्ना कन्हेण सा कुमरी ॥२४॥
नहसेणसयणवग्गो खमाविओ सो पुणो सकोवमणो । मग्गइ छिड्डाणि तओ सागरचंदस्स हणणत्थं ॥२५॥
सागरचंदो वि पुणो अहिणवजोव्वणमणोहरंगीए । तीए समं विसयसुहं उवभुंजंतो गमइ कालं ॥२६॥
अह अन्नया जगत्तयजणसरणो तियसकयसमोसरणो । पयडियमुणिजणचरणो कमलोवरिनिहियनियचरणो ॥२७॥
निज्जिणियसयलकरणो पयासियासेससाहुगुरुकरणो । सुसिणिद्धबहलकज्जलतमालदलसन्निभो भयवं ॥२८॥
सिरिनेमिजिणो उज्जिंतपव्वए पव्वए समोसरिओ । निस्सेसजायवेसुं पणमिय तत्थोवविट्ठेसु ॥२९॥
धम्मकहापज्जंते सागरचंदेण नमिय नेमिजिणं । पडिवन्नो भत्तीए सावगधम्मो समग्गो वि ॥३०॥
अह अन्नया य पडिमापडिवन्नं तं मसाणभूमीए । दट्ठुं नहसेणेणं चिंतियमिमिणा जह अज्ज ॥ ३१ ॥

गृहीत्वा प्रज्ञप्तिं प्रद्युम्नात् कुमारपरिवारितः । गत्वोद्याने नारदस्य स भिन्दति रहस्यम् ॥ १८ ॥
परिजनकार्यसज्जे नभःसेने नारदेन लग्नदिने । हृत्त्वा सुरङ्गाया कुमरीं नीत्वोद्याने ॥ १९ ॥
परिणायितश्च सागरचन्द्रस्तिष्ठन्ति तत्र क्रीड्यमानाः । विद्याधररुपेणेतश्च धनसेनभवने ॥ २० ॥
निपुणं निरीक्षिताऽपि खलु कुमारी दृष्टा न तेषां लोकेन । ततो मार्गयद्भिः दृष्टा तस्मिन्नुद्याने ॥ २१ ॥
कथितश्च वासुदेवस्य व्यतीकरः सोऽपि कोपदष्टौष्ठः । सन्नद्धबद्धकवच उद्याने समनुप्राप्तः ॥ २२ ॥
शाम्बादिकुमारै रणाङ्गणे गुरुबलमपि कृष्णबलम् । निर्जितं ततः प्राप्त आकुर्वन् वासुदेवोऽपि ॥ २३ ॥
संहृतखचररूपः शाम्बश्चरणयो र्निपतितस्तस्य । सागरचन्द्रस्यैव च दत्ता कृष्णेन सा कुमारी ॥ २४ ॥
नभःसेनस्वजनवर्गः क्षमयितः स पुनः सकोपमनाः । मार्गयति छिद्राणि ततः सागरचन्द्रस्य हननार्थम् ॥ २५ ॥
सागरचन्द्रोऽपि पुनरभिनवयौवनमनोहराङ्ग्याः । तस्याः समं विषयसुखमुपभुञ्जन् गमयति कालम् ॥ २६ ॥
अथान्यदा जगत्त्रयजनशरणस्त्रिदशकृतसमवसरणः । प्रकटितमुनिजनचरणः कमलोपरिनिहितनिजचरणः ॥ २७ ॥
निर्जितसकलकरणः प्रकाशिताशेषसाधुगुरुकरणः । सुस्निग्धबहलकज्जलतमालदलसन्निभो भगवान् ॥ २८ ॥
श्री नेमिजिन उज्जयन्तपर्वते पर्वते समवसृतः । निःशेषयादवेषु प्रणम्य तत्रोपविष्टेषु ॥ २९ ॥
धर्मकथा पर्यन्ते सागरचन्द्रेण नत्वा नेमिजिनम् । प्रतिपन्नो भक्त्या श्रावकधर्मः समग्रोऽपि ॥ ३० ॥
अथान्यदा च प्रतिमाप्रतिपन्नं तं स्मशानभूमौ । दृष्ट्वा नभःसेनेन चिन्तितमनेन यथाद्य ॥ ३१ ॥

पुज्जिस्संति अवस्सं मणोरहा मज्झमिय विचिंतेउं । कुरियं ठयं विहउं नहसेणेणं सिरे तस्स ॥ ३२ ॥
भरिओ पज्जलियचियाअंगाराणं तओ य स महप्पा । जिणवयणभावियमई सम्मं अहियासिउं लग्गो ॥ ३३ ॥
इह इयरजलणजणिया वियणा तुह केत्तिया इमा जीव ! । सहिया वज्जग्गिकया अणेगसो नरयपुढवीसुं ॥ ३४ ॥
मा कुणसु कोवलवमवि निमित्तमेते इमम्मि रे जीव ! । अवरज्झंति जओ तुह पुव्वक्कयदुकयकम्माणि ॥ ३५ ॥
एवमहियासिऊणं सागरचंदो विसुद्धपरिणामो । मरिऊण समुप्पन्नो तियसो तियसालए पवरो ॥ ३६ ॥

॥ सागरचन्द्राख्यानकं समाप्तम् ॥ ८५॥

इदानीं चन्द्रावतंसकाख्यनकस्यावसरः । तच्च मेतार्याख्यनके भणिष्यत इति अत्र नोच्यते, ग्रन्थगौरवभयादिति ।

धम्मम्मि निच्छियमई जह एए धम्मसाहगा जाया ।
अन्ने वि हु होंति तहा ता एयगुणेहिं भवियव्वं ॥

यद्यप्यनल्पगृहपासपरिग्रहार्ता भोगोपभोगसुखगृद्धियुजो गृहस्थाः ।
केचित् तथापि दृढधर्मतया गुणज्ञा मोक्षं महागुणममी इव साधयन्ति ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे धर्मप्रियत्वादिगुणवर्णनः सप्तविंशतितमोऽधिकारः समाप्तः ॥ २७ ॥

पूरिष्यन्तेयवश्यं मनोरथा ममेति विचिन्त्य । कोऽर्थ विधाय नभःसेनेन शिरसि तस्य ॥ ३२ ॥
भृतः प्रज्वलितचिताङ्गारेभ्यस्ततश्च स महात्मा । जिनवचनभावितमतिः सम्यगध्यसितुं लग्नः ॥ ३३ ॥
इहेतरज्वलनजनिता वेदना तव कियतीमा जीव ! । सोढा वज्राग्निकृताऽनेकशो नरकपृथिवीषु ॥ ३४ ॥
मा कुरुष्व कोपलवमपि निमित्तमात्रे एतस्मिन् रे जीव ! । अपराध्यन्ते यतस्तव पूर्वकृतदुष्कृतकर्माणि ॥ ३५ ॥
एवमध्यास्य सागरचन्द्रो विशुद्धपरिणामः । मृत्वा समुत्पन्नस्त्रिदशस्त्रिदशालये प्रवरः ॥ ३६ ॥

॥ सागरचन्द्राख्यानकं समाप्तम् ॥ ८५ ॥

धर्मे निश्चितमति र्यथैते धर्मसाधका जाताः ।
अन्येऽपि खलु भवन्ति तथा तावदेतद्गुणै र्भवितव्यम् ।

[२८. धर्ममर्मज्ञजनप्रबोधनगुणवर्णनाधिकारः]

एते प्रियधर्मत्वादिगुणयुक्ता धर्मनिश्चये सति मोक्षसाधका जाताः । ततश्च न केवलं तत्परिज्ञाने आत्मनः गुणो जायते । किं तर्हि ? परप्रतिबोधनमपि भवति । अमुमर्थमभिधित्सुराह –

धम्मट्ठनिउणबुद्धी गिही वि बोहिंति बहुजणं धम्मे ।
पायावलंब-रयणत्तिकोडि-मंसकयनाएहिं ॥ ३७ ॥

अस्या व्याख्या-धर्म एव शेषपुरुषार्थजनकत्वेन वस्तुतोऽर्थः — पुरुषार्थो धर्मार्थः, तस्मिन् निपुणबुद्धयः-निश्चितधियः 'गिही वि' त्ति गृहिणोऽपि 'बोधयन्ति' [धर्मे] धर्ममार्गे योजयन्ति 'बहुजनं' प्रभूतलोकम् । दृष्टान्तानाह-पादस्य-लिखितवृत्तचतुर्भागभूर्जादिखण्डस्य अवलम्बनं-शाखादेर्बद्ध्वा मोचनं पादावलम्बः स च, रत्नानां तिस्रश्च ताः कोटयश्च रत्नत्रिकोटयः ताश्च, मांसक्रयश्च-मूल्येन मांसग्रहणम् ते यथोक्ताः, त एव ज्ञातानि-दृष्टान्ता इति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्रापि क्रमप्राप्तं पादावलम्बाख्यानकम् । तच्चेदम्–

कम्मि वि नयरे कुरुचंदनरवई नरवरिंदनयचलणो । देव-गुरु-धम्मतत्ते सययं संपन्नजिन्नासो ॥ १ ॥
तस्स य रन्नो रज्जाइचिंतगो मुणियसुइसमायारो । नामेणं चउरमई चउराणणसन्निभो मंती ॥ २ ॥
तेणऽन्नया तहाविहगीयत्थगुरूण पायमूलम्मि । सम्मं परिक्खिऊणं धम्मम्मि पइट्ठिओ अप्पा ॥ ३ ॥
नायं च इमं रन्ना चिंतियममुणा ममावि जुत्तमिणं । देवो वि पूयणिज्जो पइट्ठिओ जेण पन्नाण ॥ ४ ॥

पादावलम्बाख्यानकम् ॥ ८६ ॥

कस्मिन्नपि नगरे कुरुचन्द्रनरपति र्नरवरेन्द्रनतचरणः । देव-गुरु-धर्मतत्त्वे सततं सम्पन्नजिज्ञासः ॥ १ ॥
तस्य च राज्ञो राज्यादिचिन्तको मुणितशुचिसमाचारः । नाम्ना चतुरमतिश्चतुराननसन्निभो मन्त्री ॥ २ ॥
तेनान्यदा तथाविधगीतार्थगुरूणां पादमूले । सम्यक् परीक्ष्य धर्मे प्रतिष्ठित आत्मा ॥ ३ ॥
ज्ञातं चेदं राज्ञा चिन्तितमनेन ममापि युक्तमिदम् । देवोऽपि पूजनीयः प्रतिष्ठितो येन प्रज्ञानाम् ॥ ४ ॥

भणिओ रन्ना मंती सायरमेगागिणा वि किं धम्मो । अंगीकओ महायस ! ? ममावि जुत्तं तमायरिउं ॥ ५ ॥
तो भणियममच्चेणं देवऽम्हे वणियजाइणो धम्मो । जह तह होउ न दोसो देवस्स परिक्खिउं जुत्तं ॥ ६ ॥
रन्ना भणियं तं चिय बुद्धीए तं परिक्खिउं सम्मं । धम्मियजणं च पुच्छिय ठावसु मं सव्वहा धम्मे ॥ ७ ॥
जइ एवं तो जुत्तं सव्वे पासंडिए सधम्मरए । वाहरिऊण वियारसु धम्मं पायाबलंवेण ॥ ८ ॥
तत्तो "सकुंडलं वा वयणं" इच्चाइ भुज्जखंडम्मि । आलिहिउं वंसग्गे पलंबिउं भाणियं रन्ना ॥ ९ ॥
जो पायमिमं लद्धुं पूरियवित्तं सकव्वसत्तीए । रंजइ रायाणमिमं तस्सेव य होइ सो भत्तो ॥ १० ॥
इय सोऊणं सव्वे वंसग्गाओ पगिण्हिउं पायं । पूरेऊणं वित्तं समागया रायअत्थाणे ॥ ११ ॥
आसीवायं दाउं कमेण भट्टाइया समुवविट्ठा । पढमं चिय भट्टेणं रन्ना भणिएण पढियमिमं ॥ १२ ॥
कणत्थभिक्खाए गएण दिट्ठा, सुवन्नवन्ना जजमाणजाया ।
वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठुनायं सकुंडलं वा वयणं न वेति ॥ १३ ॥
तयणंतरं च सइवो रन्ना भणिओ तवस्सि ! तं पढसु । रन्नाइट्ठं नियय वित्तमिमं जपइ जडी वि ॥ १४ ॥
भिक्खाभमंतेण मएऽज्ज दिट्ठा माहेसरी पिहुलनियंबबिंबा ।
वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं सकुंडलं वा वयणं न वत्ति ॥ १५ ॥
तयणंतरं च भणिओ रत्तंबरनिवसणो सुगयसिस्सो । तं भणसु बुद्धदेवय ! पयाणुरूवं रइय कव्वं ॥ १६ ॥
मालाविहारम्मि मएऽज्ज दिट्ठा उवासिया कंचणभूसियंगी ।
वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठुनायं सकुंडलं वा वयणं न वेत्ति ॥ १७ ॥

भणितो राज्ञा मन्त्री सादरमेकाकिनापि किं धर्मः । अङ्गीकृतो महायशः ! ममापि युक्तं तमाचरितुम् ॥ ५ ॥
तदा भणितममात्येन देव वयं वणिग्जातयो धर्मः । यथा तथा भवतु न दोषो देवस्य परीक्षितुं युक्तम् ॥ ६ ॥
राज्ञा भणितं त्वं चैव बुद्ध्या तं परीक्ष्य सम्यक् । धार्मिकजनं च पृष्ट्वा स्थापय मां सर्वथा धर्मे ॥ ७ ॥
यद्येवं तदा युक्तं सर्वान् पाखण्डिन् स्वधर्मरतान् । व्याहृत्य विचारय धर्मं पादावलम्बेन ॥ ८ ॥
ततः "सकुण्डलं वा वदन" मित्यादि भुर्जखण्डे । आलिख्य वंशाग्रे प्रलम्ब्य भाणितं राज्ञा ॥ ९ ॥
यः पादमिदं लब्ध्वा पूरितवृत्तं स्वकाव्यशक्त्या । रञ्जयति राजानमिमं तस्यैव च भवति स भक्तः ॥ १० ॥
इति श्रुत्वा सर्वे वंशाग्रात् प्रगृह्य पादम् । पूरयित्वा वृत्तं समागता राजास्थाने ॥ ११ ॥
आशीर्वादं दत्वा क्रमेण भट्टादिकाः समुपविष्टाः । प्रथमं चैव भट्टेन राज्ञा भणितेन पठितमिदम् ॥ १२ ॥
कणार्थभिक्षाया गतेन दृष्ट्वा, सुवर्णवर्णा यजमानजाया । व्याक्षिप्तचित्तेन न सुष्ठु ज्ञातं सकुण्डलं वा वदनं न वेति ॥ १३ ॥
तदनन्तरं च शैवो राज्ञा भणितस्तपस्विन् ! त्वं पठ । राज्ञादिष्टं निजकं वृत्तमिदं जल्पति जट्यपि ॥ १४ ॥
भिक्षाभ्रमता मयाद्य दृष्टा माहेश्वरी पृथुलनितम्बबिम्बा । व्याक्षिप्त चित्तेन न सुष्ठुज्ञातं सकुण्डलं वा वदनं न वेति ॥ १५ ॥
तदनन्तरं च भणितो रक्ताम्बरनिवसनः सुगतशिष्यः । त्वं भण बुद्धदेवत ! पदानुरुपं रचितकाव्यम् ॥ १६ ॥
मालाविहारे मयाद्य दृष्टोपासिका कञ्चनभूषिताङ्गी । व्याक्षिप्तचित्तेन न सुष्ठुज्ञातं सकुण्डलं वा वदनं न वेति ॥ १७ ॥

तत्तो पच्चक्खपमाणगज्झपंच(मह)भूयमयवत्ती । भणिओ नाहियवाई पढसु तुमं पि हु सकयकव्वं ॥ १८ ॥

भिक्खाभमंतेण मए ऽज्ज दिट्ठं पमयामुहं कमलविसालनेत्तं ।

वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं सकुंडलं वा वयणं नव त्ति ॥ १९ ॥

एत्तो वि य भूवइणा भणाविओ कविलदंसणवयत्थो । तं भणसु भगवभयवं ! भव्यं कव्वं समइरइयं ॥ २० ॥

फलोदएणम्हि गिहं पविट्ठो, तत्थाऽऽसणत्था पमया मे दिट्ठा ।

वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं, सकुंडलं वा वयणं न वत्ति ॥ २१ ॥

तो सारेयरभावं कव्वाणं पुच्छिया सहावइणो । भणियं तेहिं विसेसं वयमेयाणं न पेच्छामो ॥ २२ ॥

जम्हा नरिंद ! वक्खित्तचित्तया फुडमिमेहिं वागरिया । सो य पमाओ तेण य सह धम्मो चिंतणीयमिमं ॥ २३ ॥

तयणंतरं च रन्ना पलोइयं मंतिणो मुहं भद्द ! । एयाणं कस्स तए पडिवन्नो कहसु मह धम्मो ॥ २४ ॥

तत्तो य भणियमिमिणा अन्नं पि हु देव ! दरिसणं जइणं । विज्जइ ते पुण केणावि कारणेण न संपत्ता ॥ २५ ॥

समतिण-मणिणो समलेट्ठु-कंचणा तुल्लरंक-रायाणो । अनियतभिक्खातणुवित्तिजीविणो जियअहंकारा ॥ २६ ॥

छज्जीवनिकायहिया सज्झाय-ज्झाण-संजमुज्जुत्ता । वाहरिया वि हु ते इंति नेन्ति वा तं न याणामो ॥ २७ ॥

रन्ना भणियं वाहरसु ताव पेच्छामि ताण वि सरूवं । तत्तो खुड्डयरूवो वाहरिओ मंतिणा साहू ॥ २८ ॥

रन्ना नमिउं भणिओ काउं किं मुणसि किंपि तं कव्वं ? । तेणुत्तं जाणामो गुरुप्पसाया महाराय ! ॥ २९ ॥

ततः प्रत्यक्षप्रमाणग्राह्य पञ्च (महा) भूतमतवर्त्ती । भणितो नास्तिकवादी पठ त्वमपि खलु स्वकृतकाव्यम् ॥ १८ ॥

भिक्षाभ्रमता मयाद्य दृष्टं प्रमदामुखं कमलविलासनेत्रम् । व्याक्षिप्तचितेन न सुष्ठुज्ञातं सकुण्डलं वा वदनं न वेति ॥ १९ ॥

इतोऽपि च भूपतिना भाणितः कपिलदर्शनव्रतस्थः । त्वं भण भगवभगवन् ! भव्यं काव्यं स्वमतिरचितम् ॥ २० ॥

फलोदकेनास्मि गृहं प्रविष्टस्तत्राऽऽसनस्था प्रमदा मया दृष्टा । व्याक्षिप्तचित्तेन न सुष्ठुज्ञातं सकुण्डलं वा वदनं न वेति ॥ २१ ॥

ततः सारेतरभावं काव्यानां पृष्टाः सभापतयः । भणितं तै विशेषं वचनमेतेषां न प्रेक्षामहे ॥ २२ ॥

यस्मान्नरेन्द्र ! व्याक्षिप्तचित्तता स्फुटमेभि र्व्याकृता । स च प्रमादस्तेन च सह धर्मश्चिन्तनीयमिदम् ॥ २३ ॥

तदनन्तरं च राज्ञा प्रलोकितं मन्त्रिणो मुखं भद्र ! । एतेषां कस्य त्वया प्रतिपन्नः कथय मम धर्मः ॥ २४ ॥

ततश्च भणितमनेनान्यदपि खलु देव ! दर्शनं यतीनाम् । विद्यते ते पुनः केनापि कारणेन न सम्प्राप्ताः ॥ २५ ॥

समतृण-मणयः समलेष्टु-कञ्चनास्तूल्यरङ्क-राजानः । अनियतभिक्षातनुवृत्तिजीविनो जिताहङ्काराः ॥ २६ ॥

षड्जीवनिकायहिताः स्वाध्याय-ध्यान-संयमोद्युक्ताः । व्याहृता अपि खलु त आयान्ति नायान्ति वा तन्न जानीमः ॥ २७ ॥

राज्ञा भणितं व्याहर तावत्पश्यामि तेषामपि स्वरुपम् । ततः क्षुल्लकरूपो व्याहृतो मन्त्रिणा साधुः ॥ २८ ॥

राज्ञा नत्वा भणितः कर्तुं किं मुणसि किमपि त्वं काव्यम् ? । तेनोक्तं जानीमो गुरुप्रसादान्महाराज ! ॥ २९ ॥

जइ एवं ता पूरसु सिलोगमेगं इमं समस्साए । भणियं खुड्डुयमुणिणा भणसु तुमं पायमद्धं वा ॥ ३० ॥
भणिए परिभावेउं पढियं सव्वेसिं तेसिं पच्चक्खं । तं च इमं जं मुणिणा वज्जरियं तेसि निरवेक्खं ॥ ३१ ॥
खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स अज्झप्पजोगे गयमाणसस्स ।
किं मज्झ एएण विचिंतिएणं सकुंडलं वा वयणं न व त्ति ॥ ३२ ॥
भणिओ रन्ना साहू विसरिसमेयाण किं तए पढियं ? । तेणुत्तं एयाणं गुरुणा वि हु एरिसं वुत्तं ॥ ३३ ॥
जओ –
उल्लो सुक्को व दो वेत्थ गोलया मट्टियामया । दो वि अब्भेडियाकूडे जो उल्लो सोऽत्थ लग्गई ॥ ३४ ॥
एवं लग्गंति दुम्मेहा जे नरा कामलालसा । विरत्ता उ न लग्गंति जहा से सुक्कगोलए ॥ ३५ ॥
परितुट्ठेणं रन्ना परिक्खिउं सम्ममप्पणो एयं । पडिवन्नो जिणधम्मो गुणाहिओ सव्वधम्माणं ॥ ३६ ॥
उक्तं च–
रुक्खेसु कप्परुक्खो मणीसु चिंतामणी जह पहाणो ।
[ग्रन्थाग्राम् ९०००] अमयं रसेसु गोसीसचंदणं चंदणेसु जहा ॥ ३७ ॥
तह पावकम्ममहणो सयलदुहनिवारणो सुहनिहाणं । सव्वेसिं धम्माणं जिणधम्मो चेव सुपहाणो ॥ ३८ ॥

॥ पादावलम्बाख्यानकं समाप्तम् ॥ ८६ ॥

यद्येवं ततः पुरय श्लोकमेकमिदं समस्यया । भणितं क्षुल्लकमुनिना भण त्वं पादमर्धं वा ॥ ३० ॥
भणिते परिभाव्य पठितं सर्वेषां तेषां प्रत्यक्षम् । तच्चेदं यन्मुनिना कथितं तेषां निरपेक्षम् ॥ ३१ ॥
क्षान्तस्य दान्तस्य जितेन्द्रियस्याध्यात्मयोगे गतमानसस्य । किं ममैतेन विचिन्तितेन सकुण्डलं वा वदनं न वेति ॥ ३२ ॥
भणितो राज्ञा साधु विसदृशमेतेभ्यः किं त्वया पठितम् ? । तेनोक्तं एतेषां गुरुणापि खल्विदृशमुक्तम् ॥ ३३ ॥
यतः –
आर्द्रः शुष्को वा द्वौ वात्र गोलकौ मृत्तिकामयौ । द्वावप्यास्फालितौ कुड्यां य आर्द्रः सोऽत्र लगति ॥ ३४ ॥
एवं लगन्ति दुर्मेधा ये नरः कामलालसाः । विरक्तास्तु न लगन्ति यथा [१]से शुष्कगोलकाः ॥ ३५ ॥
परितुष्टेन राज्ञा परीक्ष्य सम्यगात्मन एतत् । प्रतिपन्नो जिनधर्मो गुणाधिकः सर्वधर्माणाम् ॥ ३६ ॥
उक्तं च –
वृक्षेषु कल्पवृक्षो मणिषु चिन्तामणिर्यथा प्रधानः । अमृतं रसेषु गोशीर्षचन्दनं चन्दनेषु यथा ॥ ३७ ॥
तथा पापकर्ममथनः सकलदुःखनिवारणः सुखनिधानम् । सर्वेषां धर्माणां जिनधर्मश्चैव सुप्रधानः ॥ ३८ ॥

॥ पादावलम्बाख्यानकं समाप्तम् ॥ ८६ ॥

---

१. से – पादपूरणे

इदानीं रत्नत्रिकोट्यख्यानकं व्याख्यायते । यथा–

नयरे सिरिरायगिहं विहरंता केवि आगया थविरा । दिट्ठपयत्था पालियमहव्वया पवरगोव व्व ॥ १ ॥
आजम्मं भिक्खयरो रायगिहजणस्स परिचिओ एगो । कम्मयरो पडिबुद्धो पव्वइओ तेसि पासम्मि ॥ २ ॥
अह सो सिरिमणुपत्तो अहिणववत्थाइभूसिओ संतो । ईसरजणपणिवइओ जाओ जिणधम्ममाहप्पा ॥ ३ ॥
तो इयरजणो पभणइ एसो सो अम्ह गेहकम्मयरो । इच्चाइवयणसवणा दूमिज्जइ सोऽहियं हियए ॥ ४ ॥
तो सो असमाहिजुओ गुरूहिं पुट्ठो तयं भणइ दुक्खं । तो तस्स समाहिकए विहरिउकामे मुणीदट्ठुं ॥ ५ ॥
भणियमभएण भयवं ! किमेस किर सिग्धमेव य विहारो ? । कहियम्मि कारणम्मि अभयकुमारेण संलत्तं ॥ ६ ॥
जइ एवं ता चिट्ठह एयत्थे सुत्थयं करिस्सामि । भणियं गुरूहिं सावय ! जणाण कूवाण य मुहाणि ॥ ७ ॥
बंधेउं को सक्कइ ? तेणुत्तं बुद्धिविलसियं मज्झ्फ । पेच्छह पच्छा भयवं ! जं जुत्तं तं करिज्जाह ॥ ८ ॥
इय भणिऊणं चउहट्टयम्मिरयणाण तिन्नि कोडीओ । उक्कुरुडाविय लोयं जाणावइ पडहयपयाणा ॥ ९ ॥
अभयकुमारो रयणाणि देइ इय आगयम्मि जणनिवहे । गिण्हह रयणाणि अहो ! परमेयाए ववत्थाए ॥ १० ॥
परिहरइ जो सचेयणपाणीयं तह य जलणमित्थि च । सो गिन्हउ एगं वा दो वा तिन्नि वि जहासत्तिं ॥ ११ ॥
सव्वेहिंवि परिहरिए भणिया ते अभयमंतिणा लोया । जइ एवं किं पभणह एस मुणी रंककम्मयरो ॥ १२ ॥

रत्नत्रिकोट्याख्यानकम् ॥ ८७ ॥

नगरे श्री राजगृहे विहरन्तः केऽप्यागताः स्थविराः । दृष्टपदार्थाः पालितमहाव्रताः प्रवरगोपा इव ॥ १ ॥
आजन्म भिक्षाचरो राजगृहजनस्य परिचित एकः । कर्मकरः प्रतिबुद्धः प्रव्रजितस्तेषां पार्श्वे ॥ २ ॥
अथ स श्रियमनुप्राप्तोऽभिनववस्त्रादिभूषितस्सन् । ईश्वरजनप्रणिपतितो जातो जिनधर्ममाहात्म्यात् ॥ ३ ॥
तदेतरजनः प्रभणत्येष सोऽस्मद्गृहकर्मकरः । इत्यादिवचनश्रवणात् खिद्यते सोऽधिकं हृदये ॥ ४ ॥
तदा सोऽसमाधियुतो गुरुभिः पुष्टस्तकद्भणति दुःखम् । ततस्तस्य समाधिकृते विहर्तुकामान् मुनीन् दृष्ट्वा ॥ ५ ॥
भणितमभयेन भगवन् ! किमेष किल शीघ्रमेव च विहारः ? । कथिते कारणेऽभयकुमारेण संलप्तम् ॥ ६ ॥
यद्येवं तावत्तिष्ठतैतदर्थे सुस्वस्थं करिष्यामि । भणितं गुरुभिः श्रावक ! जनानां कूपानां च मुखानि ॥ ७ ॥
बद्धुं कः शक्यते ? तेनोक्तं बुद्धिविलसितं मम । प्रेक्ष्यध्वं पश्चाद्भगवन् ! यद्युक्तं तत् कुर्यात् ॥ ८ ॥
इति भणित्वा चतुर्हट्टके रत्नानां त्रिणि कोटयः । राशीकृत्य लोकं ज्ञापयति पटहकप्रदानात् ॥ ९ ॥
अभयकुमारो रत्नानि ददातीत्यागते जननिवहे । गृह्णीत रत्नान्यहो ! परमेतया व्यवस्थया ॥ १० ॥
परिहरति यः सचेतनपानीयं तथा च ज्वलनं स्त्रीं च । स गृह्णात्वेकं वा द्वौ वा त्रिण्यपि यथाशक्तिम् ॥ ११ ॥
सर्वैरपि परिहृते भणितास्तेऽभयमन्त्रिणा लोकाः । यद्येवं किं प्रभणतैष मुनी रङ्ककर्मकरः ॥ १२ ॥

रंकोऽत्थ तुम्ह जणओ कम्मयरो तुम्ह जणयजणओ य । जो धणमेत्तियमुज्झइ सो भण कह भन्नई रंको ? ॥१३॥
एवं ते सिक्खविया सव्वे वि हु मोणमस्सिया लोया । सो वि हु साहू विहरइ समाहिसहिओ गुरूहिं समं ॥ १४ ॥

॥ रत्नत्रिकोट्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ८७ ॥

इदानीं मांसक्रयाख्यानकमाख्यायते । तद्यथा—

नयरे रायगिह च्चिय रन्नो सिरिसेणियस्स अत्थाणे । जाओ सामंताणं अभयाईणं च मंतीणं ॥ १ ॥
विवयंताण विवाओ अनायतत्ताण थूलबुद्धिणं । कह वि समग्घ-महग्घयकयाणविसओ विसेसेण ॥ २ ॥
केणावि हु कप्पूरं कुंकुममवरेण हेममवरेण । हीराइयं च केणवि महग्घयंसंपयं कहियं ॥ ३ ॥
जाव य मंसवियरि महग्घयं मंसममयकुमरेणं । भणिए सव्वे जंपंति देव ! नेयं घडइ कहवि ॥ ४ ॥
जम्हा भरियं छब्बगमेगेणं रूवगेण ववहरियं । रन्ना वि हु पडिवन्नं अभओ पुण पत्तियइ नेयं ॥ ५ ॥
अभएणुत्तं कल्ले सव्वमिमं [तुम्ह] पत्तियाविस्सं । ततो सरीरकारणमलियं रन्नो पुरे कहियं ॥ ६ ॥
आदन्नो नयरजणो पहाणवेज्जेहिं पुण समाइट्ठं । जइ माणुसकालेज्जयजवतिगमेत्तं लहह मंसं ॥ ७ ॥
ता कीए वि जुत्तीए ओसहसहिएण तेण दिन्नेणं । पउराणं पुन्नवसा कया वि पउणो हवइ राया ॥ ८ ॥
जाव तयं मग्गिज्जइ न ताव लक्खेण न वि य कोडीए । पुहवीमोल्लेणावि हु न को वि दाउं समुच्छहइ ॥ ९ ॥
विवयंतो जावऽच्छइ सव्वजणो ताव भणियमभएण । भो भो ! 'समग्घ मंसं' ति तुम्ह वयणं गयं कत्थ ? ॥१०॥

रङ्कोऽत्र युष्माकं जनकः कर्मकरो युष्माकं जनकजनकश्च । या धनमेतावन्तमुज्झति स भण कथं भण्यते रङ्कः ? ॥ १३ ॥
एवं ते शिक्षयिताः सर्वेऽपि हु मौनमाश्रिता लोकाः । सोऽपि हु साधु विहरति समाधिसहितो गुरूभिः समम् ॥ १४ ॥

॥ रत्नत्रिकोट्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ८७ ॥

मांसक्रयाख्यानकम् ॥ ८८ ॥

नगरे राजगृहे चैव राज्ञः श्रीश्रेणिकस्यास्थाने । जातः सामन्तानामभयादीनां च मन्त्रीणाम् ॥ १ ॥
विवदतां विवादोऽज्ञाततत्त्वानां स्थूलबुद्धीनाम् । कथमपि समर्घ्य-महार्घ्यक्रयाणविषयो विशेषेण ॥ २ ॥
केनापि हु कर्पूरं कुङ्कुममपरेण हेमापरेण । हीरादिकं च केनापि महार्घ्यं संपत् कथितम् ॥ ३ ॥
यावच्च मांसविचारे महार्घ्यं मांसमभयकुमारेण । भणिते सर्वे जल्पन्ति देव ! नैतत् घटयति कथमपि ॥ ४ ॥
यस्माद्धृतं छब्बकमेकेन रुपकेण व्यवहरितम् । राज्ञाऽपि हु प्रतिपन्नमभयः पुनः प्रत्यायति नैवम् ॥ ५ ॥
अभयेनोक्तं कल्ले सर्वमिदं (युष्माकं) प्रत्यायिष्ये । ततः शरीरकारणमलिकं राज्ञः पुरः कथितम् ॥ ६ ॥
आदृतो नगरजनः प्रधानवैद्यैः पुनः समादिष्टम् । यदि मनुष्यकलिज्जकयवत्रिकमात्रं लभध्वे मांसम् ॥ ७ ॥
ततः कयापि युक्त्यौषधसहितेन तेन दत्तेन । पौराणां पुण्यवशात्कदापि प्रगुणो भवति राजा ॥ ८ ॥
यावत्तकन्मार्ग्यते न तावल्लक्षेण नापि कोट्या । पृथिवीमूल्येनापि खलु न कोऽपि दातुं समुत्सहते ॥ ९ ॥
विवदन्यावदास्ते सर्वजनस्तावद्भणितमभयेन । भो भो ! समर्घ्यं मांसमिति युष्माकं वचनं गतं क्व ? ॥ १० ॥

पडिवन्नं सव्वेहिं वि अभयकुमारस्स संतियं वयणं । तेणावि हु बुज्झविया जुत्तीए अणुभवजुयाए ॥ ११ ॥
सामी-जीवादत्तं तित्थयरेणं तहेव य गुरूहिं । चउविहमदत्तदाणं विगयमला जिणवरा बिंति ॥ १२ ॥
तो सव्वो वि हु लोओ जीवादिन्नं सया असइ मंसं । कहमन्नहा न लब्भंति देवकज्जे वि तिन्नि जवा ॥ १३ ॥
सव्वो वि जणो मग्गम्मि लाइओ एवमभयकुमरेण । धम्मम्मि नायतत्ता एवं बोहंति भव्वजणं ॥ १४ ॥

॥ मांसक्रयाख्यानकं समाप्तम् ॥ ८८ ॥

एएहिं धम्ममग्गम्मि बोहिया कोविएहिं जह लोया । तह अन्नो वि हु बोहइ भव्वजणं धम्ममम्मविऊ ॥

इत्थं विवेकवशतो व्यवहारविज्ञा, विज्ञातधर्मगुरु-लाघवचिन्तनाश्च ।
सत्तत्त्वनैपुणगुणा गृहिणोऽपि चित्रं, सद्धर्मवर्त्मनि जनानवतारयन्ति ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे
धर्ममर्मज्ञशेषजनप्रबोधनगुणवर्णनोऽष्टाविंशतितमोऽधिकारः समाप्तः ॥ २८ ॥

प्रतिपन्नं सर्वैरप्यभयकुमारस्य सत्कं वचनम् । तेनापि हु बोधिता युक्त्यानुभवयुक्तया ॥ ११ ॥
स्वामिजीवादत्तं तीर्थकरेण तथैव च गुरुभिः । चतुर्विधमदत्तदानं विगतमला जिनवरा ब्रुवन्ति ॥ १२ ॥
ततः सर्वोऽपि हु लोको जीवादत्तं सदाश्नुते मांसम् । कथमन्यथा न लभन्ते देवकार्येऽपि त्रयो यवाः ॥ १३ ॥
सर्वोऽपि जनो मार्गे लायित एवमभयकुमारेण । धर्मे ज्ञाततत्त्वा एवं बोधयन्ति भव्यजनम् ॥ १४ ॥

॥ मांसक्रयाख्यानकं समाप्तम् ॥ ८८ ॥

एतै धर्ममार्गे बोधिताः कोविदैर्यथा लोकाः ।
तथान्योऽपि खलु बोधयति भव्यजनं धर्ममर्मविदुः ॥

[२९. भावशल्यानालोचनदोषाधिकारः]

अस्य च धर्मस्य सम्यग् ग्रहणेऽप्यनाभोगादिना मालिन्यसम्भवेऽपि सम्यग् गुरोरालोचनीयम् असम्यगालोचने दोष इत्येतदभिधातुकाम आह-

जो सम्मं नालोयइ नियसल्लं सो हु पावइ अणत्थं ।
जह माइ-सुयामरुओ रिसिदत्तामच्छमल्लो य ॥ ३८ ॥

व्याख्या-'यः'-कश्चिद्विवेकविकलः 'सम्यग्' यथावद् 'नालोचयति' न गुरुभ्यः कथयति 'निजशल्यं' स्वदुश्चरितं 'सः' प्राणी 'प्राप्नोति' लभते 'अनर्थं' व्यसनम् । दृष्टान्तानाह-'यथा' इत्युदाहरणोपन्यासे । 'मातृ-सुतौ' जननी-पुत्रौ 'मरुकः' ब्राह्मणः 'ऋषिदत्ता' तापसकन्या 'मत्स्यमल्लः' राजमल्ल इति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थस्त्वाख्यानकैः कथयति । तानि चामूनि।

तत्रापि प्रथमं क्रमायातं मातृ-सुताख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

विंझे व्व बहुविहधवे तहाविहे कहिं वि सन्निवेसम्मि । अत्थि महेला अडवि व्व दुग्गया सुमयबालसुया ॥ १ ॥
सा सव्वयावि ईसरगिहेसु परिपूरणत्थमुदरस्स । कुणइ कुकम्मं चारइ पुत्तो वि हु वच्छरूवाइं ॥ २ ॥
सा य सुयत्थं भोयणजायं काऊण सिक्कयम्मि गया । कस्स वि गेहे कम्मत्थमागओ तम्मि जामाऊ ॥ ३ ॥
सा कम्मयरी जामाउयस्स ण्हाणाइकारिया पढमं । पच्छा पीसण-कंडण-रंधणकिच्चेसु कम्मविया ॥ ४ ॥

मातृ-सुताख्यानकम् ॥ ८९ ॥

विन्ध्य इव बहुविधधवे तथाविधे कुत्रापि सन्निवेशे । अस्ति महिलाटवीव दुर्गता सुमृतबालसुता ॥ १ ॥
सा सर्वदापीश्वरगृहेषु परिपूरणार्थमुदरस्य । करोति कुकर्म चारयति पुत्रोऽपि हु वत्सरुपाणि ॥ २ ॥
सा च सुतार्थं भोजनजातं कृत्वा शिक्के गता । कस्यापि गृहे कर्मार्थमागतस्तस्मिन् जामाता ॥ ३ ॥
सा कर्मकरी जामातुः स्नानादिकारिका प्रथमम् । पश्चात्पीषण-कण्डन-रन्धनकृत्येषु कार्मिता ॥ ४ ॥

जाया महई वेला वाउलभावेण तीए भत्ताई । दिन्नं न किं पि तो सा भुक्खिय-तिसिया गया सगिहं ॥ ५ ॥
तं दट्ठुं मन्नुइएण तेण पुत्तेण निट्ठुरं भणिया । तत्थ वि तं किं सूलाए पोइया जं न संपत्ता ॥ ६ ॥
तयणु घयसित्तपज्जलियजलणजालासमाणरूवाए । तीए वि ताविआए सुनिट्ठुरं कोववसगाए ॥ ७ ॥
भणियं तुह पुण किं कट्टिया करा सिक्कगाउ भत्तमिमं । घेत्तुण जं न जिमिओ अहयं तु परव्वसा थक्का ॥ ८ ॥
एवं च तेहिं दोहि वि निकाइयंदुक्कियं वराएहिं । तं पुण मूढत्तणओ कत्थवि नालोइयं कहवि ॥ ९ ॥
तेसिं दाणरयाणं मणयं सत्ताण मज्झिमगुणाणं । किंचि सुहभावणाए वट्टंताणं गलियमाउं ॥ १० ॥
तीए सुओ मरिऊणं भरुयच्छे सेट्ठिनंदणो जाओ । नामेण बंधुदत्तो उदारयाईगुणावासो ॥ ११ ॥
माया वि हु मरिऊणं धूया रइसायरस्स सेट्ठिस्स । नामेण बंधुमई संजाया तामलित्तीए ॥ १२ ॥
दुज्जयभवट्ठिईए विचित्तयाए य कम्मपयईए । परिणयणव्ववहारो तेसिं जाओ जओ भणियं ॥ १३ ॥
भज्जा जायइ माया धीया पत्ती पिया वि पुण पुत्तो । दासो जायइ सामी संसारे संसरंताणं ॥ १४ ॥
हर-गोरीण व तेसिं मयण-रईण व सुहेल्लिसव्वस्सं । महुसूयण-कमलाण व परोप्परं वड्ढिओ पणओ ॥ १५ ॥
मोत्तूणं पिइगेहे बंधुमइं बंधुपरियणसमेओ । जलहिम्मि बंधुदत्तो संचलिओ जाणवत्तेणं ॥ १६ ॥
विणियट्ठिउं कयाणे मणोरहाइरित्तविढवियधणोहो । जावाऽऽगच्छइ पाउब्भवंतबहुविहवियप्पसओ ॥ १७ ॥
तथाहि–

जाता महतीवेला व्याकुलभावेन तस्यै भक्तादयः । दत्तं न किमपि ततः सा बुभुक्षिता - तृषिता गता स्वगृहम् ॥ ५ ॥
तां दृष्ट्वा मन्यूदितेन तेन पुत्रेण निष्ठुरं भणिता । तत्रापि त्वं किं शूलयामारोपिता यन्न सम्प्राप्ता ॥ ६ ॥
तदनु घृतसिक्तप्रज्वलितज्वलनज्वालासमानरूपया । तयापि तापितया सुनिष्ठुरं कोपवशगतया ॥ ७ ॥
भणितं तव पुनः किं कर्तिताः कराः शिक्कगाभ्दक्तमिदम् । गृहीत्वा यन्न जिमितोऽहं तु परवशा स्तब्धा ॥ ८ ॥
एवं च ताभ्यां द्वाभ्यामपि निकाचितं दुष्कृतं वराकाभ्याम् । तत्पुनर्मूढत्वेन कुत्रापि नालोचितं कथमपि ॥ ९ ॥
तयो र्दानरतयो र्मनाक् सत्त्वयो र्मध्यमगुणयोः । किञ्चित् शुभभावनया वर्तमानयो र्गलितमायुः ॥ १० ॥
तस्याः सुतो मृत्वा भृगुकच्छे श्रेष्ठिनन्दनो जातः । नाम्ना बन्धुदत्त उदारतादिगुणावासः ॥ ११ ॥
मातापि हु मृत्वा दुहिता रतिसागरस्य श्रेष्ठिनः । नाम्ना बन्धुमतिः सज्जाता ताम्रलिप्त्याम् ॥ १२ ॥
दुर्जयभवस्थित्या विचित्रतया च कर्मप्रकृत्याः । परिणयनव्यवहारस्तयोर्जातो यतो भणितम् ॥ १३ ॥
भार्या जायते माता दुहिता पत्नी पितापि पुनः पुत्रः । दासो जायते स्वामी संसारे संसरताम् ॥ १४ ॥
हर-गौर्योरिव तयो र्मदन-रत्योरिव सुखसर्वस्वम् । मधुसूदन-कमलयोरिव परस्परं वर्धितः प्रणयः ॥ १५ ॥
मुक्त्वा पितृगृहं बन्धुमतिं बन्धुपरिजनसमेतः । जलधौ बन्धुदत्तः सञ्चलितो यानपात्रेण ॥ १६ ॥
विनिवर्त्य क्रयाणान् मनोरथातिरिक्तार्जितधनौघः । यावदागच्छति प्रादुर्भवद्बहुविधविकल्पशतः ॥ १७ ॥
तथाहि -

एएण सुद्धनायागएण नियभुयविढत्तदविणेण । नियपणईणं पढमं मणोरहे पूरइस्सामि ॥ १८ ॥
नियपणइणिं च मणहरसव्वालंकारभूसियसरीरं । काउं पंचपयारं विसयसुहं अणुभविस्सामि ॥ १९ ॥
चइऊण सम्ममेयं धम्मट्ठाणं समुद्धरिस्सामि । तो जलहिमज्झभाए केणइ पावोदयवसेणं ॥ २० ॥
ऊसरखेत्ते बीयं व भट्ठसीले विसुद्धदाणं व । उवयरियं व खलयणे विणयविहूणम्मि सत्थं व ॥ २१ ॥
निग्गुणविज्जादाणं व दुट्ठसिस्सोवएसरयणं व । जलहिम्मि जाणवत्तं धणपडिपुन्नं विणट्ठं तं ॥ २२ ॥
तत्तो विसन्नचित्तो कम्मवसा किंपि पाविउं फलयं । कहकहवि हु किच्छेणं उत्तरिओ जलहितीरवणे ॥ २३ ॥
लद्धूणं चेयन्नं जाव य सम्मं निरूवइ दिसाओ । ताव य निस्संदेहं विणिच्छयं ससुरपुरमेयं ॥ २४ ॥
जाणावियं च केणइ अप्पाणं तेण ससुरवग्गस्स । जावाऽऽगच्छइ ससुरो तयाणणत्थं सपरिवारो ॥ २५ ॥
समयंबंधुमईए सव्वालंकारभूसियंगीए । ता रयणकणयचूडयविभूसिसं रुइर करजुयलं ॥ २६ ॥
छेत्तूणं पावमई कोवि हु जूइयरसन्निमो चोरो । आरक्खियभीओ बंधुदत्तपासम्मि संपत्तो ॥ २७ ॥
तेणं च धुत्तयाए चिंतियमिणमेव पत्तकालं मे । मोत्तूण तस्स पासे करजुयलं निग्गओ चोरो ॥ २८ ॥
घेत्तूणं सेट्ठिसुयं चोरो एसो त्ति कलिय सूलाए । ते आरक्खियपुरिसा रायाएसेण पोयंति ॥ २९ ॥
तं तेसिं दोण्हं पि हु तहेव दुव्वयणविलसियं जायं । थेवस्स वि पेच्छ अहो ! हु दुट्ठया भावसल्लस्स ॥ ३० ॥

॥ मातृ-सुताख्यानकं समाप्तम् ॥ ८९ ॥

एतेन शुद्धन्यायागतेन निजभुजार्जितद्रविणेन । निजप्रणयिन्यः प्रथमं मनोरथान् पूरयिष्यामि ॥ १८ ॥
निजप्रणयिनीं च·मनोहरसर्वालङ्कारभूषितशरीराम् । कृत्वा पञ्चप्रकारं विषयसुखमनुभविष्यामि ॥ १९ ॥
त्यक्त्वा सम्यगेतद्धर्मस्थानं समुद्धरिष्यामि । तदा जलधिमध्यभागे केनचित्पापोदयवशेन ॥ २० ॥
उषरक्षेत्रे बीजमिव भ्रष्टशीले विशुद्धदानमिव । उपचरितमिव खलजने विनयविहीने शास्त्रमिव ॥ २१ ॥
निर्गुणविद्यादानमिव दुष्टशिष्योपदेशरत्नमिव । जलधौ यानपात्रं धनप्रतिपूर्णं विनष्टं तत् ॥ २२ ॥
ततो विषण्णचित्तः कर्मवशात् किमपि प्राप्य फलकम् । कथंकथमपि हु कृच्छ्रेणोत्तीर्णो जलधितीरवने ॥ २३ ॥
लब्ध्वा चैतन्यं यावच्च सम्यक् निरुपयति दिशः । तावच्च निःसन्देहं विनिश्चितं श्वसुरपुरमेतत् ॥ २४ ॥
ज्ञापितं च केनचिदात्मानं तेन श्वसुरवर्गस्य । यावदागच्छति श्वसुरस्तदाननार्थं सपरिवारः ॥ २५ ॥
समकं बन्धुमत्या सर्वालङ्कारभूषिताङ्ग्या । तावद्रत्नकनकचूडकविभूषितं रुचिरकरयुगलम् ॥ २६ ॥
छित्वा पापमतिः कोऽपि हु द्युतकारसन्निभश्चौरः । आरक्षितभीतो बन्धुदत्तपार्श्वे सम्प्राप्तः ॥ २७ ॥
तेन च धूर्ततया चिन्तितमिदमेव प्राप्तकालं मे । मुक्त्वा तस्य पार्श्वे करयुगलं निर्गतश्चौरः ॥ २८ ॥
गृहीत्वा श्रेष्ठिसुतं चौर एष इति कलित्वा शूलायाम् । ते आरक्षितपुरुषा राजादेशेनारोपयन्ति ॥ २९ ॥
तत्तयो र्द्वयोरपि हु तथैव दुर्वचनविलसितं जातम् । स्तोकस्यापि पश्याहो ! खलु दुष्टता भावशल्यस्य ॥ ३० ॥

॥ मातृसुताख्यानकं समाप्तम् ॥ ८९ ॥

अधुना मरुकाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्–

को वि तहाविहविप्पो समयायावणरओ रइधवो व्व । मंहुमासपिओ वेयत्तईमओ तावसो जाओ ॥ १ ॥
पंचग्गितवण-तिलहोमकरण-जलण्हाण-तवण-महणाई । नियया णुट्ठाणरओ तरुदल-फल-कंदमूलासी ॥ २ ॥
तहा हि–
सिसिरम्मि जले मज्जइ आयावइ गिम्हतवणसमयम्मि । वासासु गुहासीणो चिट्ठइ सज्झाणमल्लीणो ॥ ३ ॥
इय कट्ठाणुट्ठाणा रायाइजणस्स विस्सुओ जाओ । आवज्जंति गुणा खलु पाएण जणं अमच्छरियं ॥ ४ ॥
सो अन्नया य वियणे नईए न्हाणत्थमागओ नियइ । जालेण नइदहाओ गिण्हंतं मच्छियं मच्छे ॥ ५ ॥
वेयुत्तविहाणेणं सो पुव्विं मंसभक्खणमकासी । ता सुमरिय तस्स रसं संजाओ असुहपरिणामो ॥ ६ ॥
चिंतियमिमिणा तइया न ताव मं कोई पेच्छइ अरन्ने । ता उवसप्पिय मच्छियमेयं मग्गित्तु मच्छमहं ॥ ७ ॥
भक्खामि मच्छमंसं जइ ता नियमेण होइ वयभंगो । रसगिद्धीए न चएमि अच्छिउं इय विचिंतेउं ॥ ८ ॥
रसवंछाए रसणिंदियस्स दोसाण मंदिरत्तणओ । एगागित्तस्स तया भक्खियमिमिणाऽमिसमंसं ॥ ९ ॥
अणिचियभक्खवसाओ सो तक्खणमेव पीडिओ गाढं । जररोगेण न किंचि वि चेयइ सो कंठगयपाणो ॥ १० ॥
तत्तो रन्नो जाणावियम्मि वेज्जेण सह समायाओ । तक्खणमेव य राया दिट्ठो वेज्जेण तयवत्थो ॥ ११ ॥
पुट्ठो नियाणमेसो लज्जाए न किंचि साहिउं तरइ । भणइ य कंद-फलाणं आहारो तावसजणस्स ॥ १२ ॥

मरुकाख्यानकम् ॥ ९० ॥

कोऽपि तथाविधविप्रः समयातापनरतो रतिधव इव । मधुमासप्रियो वेदत्रयीमयस्तापसो जातः ॥ १ ॥
पञ्चाग्नितपन-तिलहोमकरण-जलस्नान-तपन-मथनादयः । निजकानुष्ठानरतस्तरुदल-फल-कन्दमूलाशी ॥ २ ॥
तथाहि -
शिशिरे जले मज्जत्यातापयति ग्रीष्मतपनसमये । वर्षासु गुहासीनस्तिष्ठति स्वाध्यायमालीनः ॥ ३ ॥
इति कष्टानुष्ठानाद्राजादिजनस्य विश्रुतो जातः । आवर्जयन्ति गुणाः खलु प्रायेण जनममत्सरितम् ॥ ४ ॥
सोऽन्यदा च विजने नद्यां स्नानार्थमागतः पश्यति । जालेन नदीद्रहाद्गृह्णन्तं मात्स्यिकं मत्स्यान् ॥ ५ ॥
वेदोक्तविधानेन स पूर्वे मांसभक्षणमकार्षीत् । ततः स्मृत्वा तस्य रसं सञ्जातोऽशुभपरिणामः ॥ ६ ॥
चिन्तितमनेन तदा न तावन्मां कोऽपि प्रेक्षतेऽरण्ये । ततः उपसर्प्य मात्स्यिकमेतन्मार्गयित्वा मत्स्यमहम् ॥ ७ ॥
भक्षयामि मत्स्यमांसं यदि तावन्नियमेन भवति व्रतभङ्गः । रागगृद्धया न पारयाम्यासितुमिति विचिन्त्य ॥ ८ ॥
रसवाञ्छया रसनेन्द्रियस्य दोषाणां मन्दिरत्वात् । एकाकित्वस्य तदा भक्षितमनेनामिषं मांसम् ॥ ९ ॥
अनुचितभक्ष्यवशात् स तत्क्षणमेव पीडितो गाढम् । ज्वररोगेन न किंचिदपि चेतयते स कण्ठगतप्राणः ॥ १० ॥
ततो राज्ञो ज्ञापयति वैद्येन सह समायातः । तत्क्षणमेव च राजा दृष्टो वैद्येन तदवस्थः ॥ ११ ॥
पृष्टो निदानमेष लज्जया न किञ्चित्कथयितुं शक्नोति । भणति च कन्द-फलानामाहारो तापसजनस्य ॥ १२ ॥

---

१. एकत्र मधुमासप्रियः वसन्तमासप्रियः, अन्यत्र मधुमांसप्रियः

तो सो वायजरं बुज्झिऊण नेहोवयारमारद्धो । जा काउं ते ताव य दुगुणतरं पीडिओ रोगी ॥ १३ ॥
ता परिभावइ वेज्जो नियाणतत्तं न नज्जए सम्मं । तो एगंते काउं पुट्ठो वेज्जेण सो एवं ॥ १४ ॥
वेज्जो गुरुणो तुल्ला भवंति नायम्मि कीरइ चिगिच्छा । ता भद्द ! साहसु तुमं सम्मं पउणो भवसि जेणं ॥ १५ ॥
तो लज्जं मोत्तूणं कहियं सव्वं जहट्ठियं तस्स । तेण वि य तयणुरूवं किरियं काउं कओ पउणो ॥ १६ ॥

॥ मरुकाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९० ॥

अधुना ऋषिदत्ताख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्—

अत्थि अदिट्ठोवद्दवधण-धन्नसमिद्धगामरमणीओ । निस्सेसदेसअवयंससन्निभो मज्झदेसो त्ति ॥ १ ॥
तत्थऽत्थि विलसिररहं रहंगकयसोहसरवराइन्नं । अद्दिट्ठसयणविरहं रहमद्दणनाम नयरं ति ॥ २ ॥
जिणमंदिराइं डिंडीरपिंडपरिपंडुराइं रम्माइ । जसपडलाइं व तस्समियाण रेहंति जम्मि सया ॥ ३ ॥
जम्मि य मुणिणो पुरिमुणियसमयसब्भावसुंदरसहावा । विहरंति पायफरिसणपवित्तियासेसधरणिलया ॥ ४ ॥
नियभुयविढत्तधणवियरणेक्करसिया विसायरहियमणा । अहरीकयकप्पद्दुममाहप्पा सावया जत्थ ॥ ५ ॥
को वन्निऊण सक्कइ गुणनियरं तस्स पवरनयरस्स । सव्वं पि जत्थ दीसइ वसुमइअच्छेरयब्भूयं ॥ ६ ॥
तत्थ य समत्थि पत्थिवसमत्थजयलच्छिल्लालसेक्कमणो । निस्सेसगुणावसहो वसुंधराभारधरणसहो ॥ ७ ॥
जस्स गुरुविक्कमऽक्कंतवइरिणो विक्कमारुणनहेसु । संकंता पउरत्तं पावन्ति नमंतसामंता ॥ ८ ॥

तदा स वातज्वरं बोधयित्वा स्नेहोपचारमारब्धः । यावत्कर्तुं ये तावच्चद्विगुणतरं पीडितो रोगी ॥ १३ ॥
ततः परिभावयति वैद्यो निदानतत्त्वं न ज्ञायते सम्यक् । तत एकान्ते कृत्वा पृष्टो वैद्येन स एवम् ॥ १४ ॥
वैद्या गुरवस्तूल्या भवन्ति ज्ञाते क्रियते चिकित्सा । ततो भद्र ! कथय त्वं सम्यक् प्रगुणो भवसि येन ॥ १५ ॥
ततो लज्जां मुक्त्वा कथितं सर्वं यथास्थितं तस्य । तेनापि च तदनुरूपां क्रियां कृत्वा कृतः प्रगुणः ॥ १६ ॥

॥ मरुकाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९० ॥

ऋषिदत्ताख्यानकम् ॥ ९१ ॥

अस्त्यदृष्टोपद्रवधनधान्यसमृद्धग्रामरमणीयः । निःशेषदेशावतंससन्निभो मध्यदेश इति ॥ १ ॥
तत्रास्ति विलसद्रथं रथाङ्गकृतशोभसरोवराकीर्णम् । अद्दष्टस्वजनविरहं रथमर्दननाम नगरमिति ॥ २ ॥
जिनमन्दिराणि डिण्डीरपिण्डपरिपाण्डुराणि रम्याणि । यशःपटलानीव तत्स्वामिनां राजन्ते यस्मिन् सदा ॥ ३ ॥
यस्मिंश्च मुनयः परिमुणितसमयस्वभावसुंदरस्वभावाः । विहरन्ति पादस्पर्शनपवित्रिताशेषधरणितलाः ॥ ४ ॥
निजभुजार्जितधनवितरणैकरसिका विषादरहितमनाः । अधरीकृतकल्पद्रुममाहात्म्याः श्रावका यत्र ॥ ५ ॥
को वर्णयितुं शक्यते गुणनिकरं तस्य प्रवरनगरस्य । सर्वमपि यत्र दृश्यते वसुमत्याश्चर्यभूतम् ॥ ६ ॥
तत्र समस्ति पार्थिवसमर्थजयलक्ष्मीलालसैकमनाः । निःशेषगुणावसथो वसुन्धराभारधरणसहः ॥ ७ ॥
यस्य गुरुविक्रमाक्रान्तवैरिणो विक्रमारूणनखेषु । सङ्क्रान्ताः पौरत्वं प्राप्नुवन्ति नमत्सामन्ताः ॥ ८ ॥

हेमरहो नरनाहो समुद्दपज्जंतमेइणिसणाहो । रिउवंसजणियदाहो सव्वत्थवियंभियसलाहो ॥ ९ ॥
तस्सऽत्थि रूवलावन्नअमयकुल्ला विसालवरनयणा । वित्थरियमहीसुजसा सुजसा नामं महादेवी ॥ १० ॥
केलिगिहं सयलकलाकलावकुलबालियाए वररूवो । तेसिं समत्थि पुत्तो कणयरहो कणयसमवन्नो ॥ ११ ॥
विसयसुहमणुहवंतो तिवग्गसारं समयं पिययमाए । पालंतो नियरज्जं गमेइ कालं महीवालो ॥ १२ ॥
एत्तो कावेरिपुरी कावेरितरंगिणी जणियसोहो । अंबरलिहपासाया धण-धन्नसमिद्धजणकलिया ॥ १३ ॥
विप्फुरियपउमरायाणि सोत्तिया-संख-विद्दुमजुयाणि । जत्थ जणस्स कुलाइं तुल्लाइं नईए कूलेहिं ॥ १४ ॥
तत्थऽत्थि नरवरिंदो सुंदरपाणी जहत्थकयनामो । निस्सेसनमिरनिवमउडरयणकिरणच्छुरियचरणो ॥ १५ ॥
वासुलदेवी नामेण पणइणी तस्स अत्थि नरवइणो । निम्नलसीलाहरणालंकियदेहा सुहनिहाणं ॥ १६ ॥
तीए समत्थि बाला मुहपरिमलहसियकमलवरमाला । सुसिणिद्धकसिणवाला नवरंभागब्भसुकुमाला ॥ १७ ॥
कंकेल्लिपल्लवारुणकर-चरणा छणमियंकवरवयणा । लावन्नकंतिपरिपुन्नरूविणी रुप्पिणी नाम ॥ १८ ॥
सा जोव्वणमणुपत्ता सव्वालंकारभूसियसरीरा । पिउपायपणमणत्थं जणणीए पेसिया बाला ॥ १९ ॥
दट्ठुण तयं तारुन्नसरललायन्नसुंदरसरीरं । चिंतइ अणुरूवो को इमीए होही गुणेहिं वरो ? ॥ २० ॥
अणुरूववराभावे संबंधो वि हु न सोहमावहइ । ता किं सयंवरं सुत्तिऊण दूएहिं रायसुए ॥ २१ ॥
जाणावेमि सपणयं ? उयाहु कुलदेवयं पसत्तमणो । आराहेउं पुच्छामि वंछियं ? सा सयं कहिही ॥ २२ ॥

हेमरथो नरनाथः समुद्रपर्यन्तमेदिनिसनाथः । रिपुवंशजनितदाहः सर्वत्र विजृम्भितश्लाघः ॥ ९ ॥
तस्यास्ति रूपलावण्यामृतकूल्या विलासवरनयना । विस्तरितमहीसुयशा सुयशा नामा महादेवी ॥ १० ॥
केलिगृहं सकलकलाकलापकुलबालिकाया वररूपः । तयोः समस्ति पुत्रः कनकरथः कनकसमवर्णः ॥ ११ ॥
विषयसुखमनुभवंस्त्रिवर्गसारं समं प्रियतमायाः । पालयन्निजराज्यं गमयति कालं महीपालः ॥ १२ ॥
इतः कावेरिपुरी कावेरितरङ्गिणीजनितशोभा । अम्बरालीढप्रसादा धन-धान्यसमृद्धजनकलिता ॥ १३ ॥
विस्फुरितपद्मरागाणि सौत्रिका - शङ्ख - विद्रुमयुतानि । यत्र जनस्य कुलानि तूल्यानि नद्याः कुलैः ॥ १४ ॥
तत्रास्ति नरवरेन्द्रः सुन्दरपाणि र्यथार्थकृतनामा । निःशेषनमन्नृपमुकुटरत्नकिरणच्छूरितचरणः ॥ १५ ॥
वासुलदेवी नाम्ना प्रणयिनी तस्यास्ति नरपतेः । निर्मलशीलाभरणालङ्कृतदेहा सुखनिधानम् ॥ १६ ॥
तस्याः समस्ति बाला मुखपरिमलहसितकमलवरमाला । सुस्निग्धकृष्णबाला नवरम्भागर्भसुकुमाला ॥ १७ ॥
कङ्केलिपल्लवारुणकरचरणा क्षणमृगाङ्कवरवदना । लावण्यकान्तिपरिपूर्णरुपिणी रुक्मिणी नामा ॥ १८ ॥
सा यौवनमनुप्राप्ता सर्वालङ्कारभूषितशरीरा । पितृपादप्रणमनार्थं जनन्या प्रेषिता बाला ॥ १९ ॥
दृष्ट्वा तकांरुण्यसरललावण्यसुन्दरशरीराम् । चिन्तयत्यनुरुपः क एतस्या भविष्यति गुणैर्वरः ? ॥ २० ॥
अनुरूपवराभावे सम्बन्धोऽपि हु न शोभामावहति । ततः किं स्वयंवरं सूत्रयित्वा दूतै राजसुतान् ॥ २१ ॥
ज्ञापयामि सप्रणयं ? उताहो कुलदेवतां प्रसक्तमनाः । आराध्य पृच्छामि वाञ्छितं ? सा स्वयं कथयिष्यति ॥ २२ ॥

एवं दुहियाचिंतासमुद्दवसणममि निवडिओ राया । अहवा मूलाओ चेव होइ दुहदाइया नारी ॥ २३ ॥
एवं नाऊण विसन्नमाणसं नरवइं सुमइनामा । मंती पुच्छइ उव्विग्गमाणसा देव ! किं तुब्भे ॥ २४ ॥
तत्तो कहियं रन्ना कुमरीवरलाभसंभवं दुक्खं । तेणुत्तं होसु थिरो कयाइ लद्धोऽणुरूववरो ॥ २५ ॥
जेण मएऽईयदिणे निसुओ तक्कयजणेण गिज्जंतो । हेमरहरायतणओ कणगरहो नाम कुमरवरो ॥ २६ ॥
चाई सूरो दक्खिन्नमंदिरं सीलवं कलानिउणो । ता तस्स देसु जुज्जउ सीहकिसोरेण सह सीही ॥ २७ ॥
रन्ना भणियं जइ एवमेत्थ कज्जम्मि ता तुमं चेव । सिग्घं वच्चसु चिंताभारं अवणेसु मह एयं ॥ २८ ॥
एवं वुत्तो मंती पसत्थदिवसम्मि पत्थिओ तत्थ । पत्थुयरायपओयणपसाहणत्थं समणुपत्तो ॥ २९ ॥
दिट्ठो य गोरवेणं मंती हेमरहनरवरिंदेण । भणियं च तेण सविणयमागमणपओयणं रन्नो ॥ ३० ॥
देव ! मह सामिसालोतुमए सद्धिं समीहए काउं । आजम्ममेव संगयमणुरूवाऽवच्चजोयणओ ॥ ३१ ॥
जओ भणियं–
इयरह वि सिणेहो सज्जणाण जाओ जणेइ संतोसं । किं पुण अवच्चसंबंधबद्धमूलो महाराय ! ॥ ३२ ॥
ता जइ कुलाणुरूवं वयाणुरूवं च महसि वा मेत्तिं । ता किज्जउ मह वयणं पडउ घयं सूयमज्झम्मि ॥ ३३ ॥
ताहे हेमरहेणं कणयरहो पेसिओ सह बलेण । गच्छंतो संपत्तो अरिदमणनिवस्स वियसम्मि ॥ ३४ ॥
अरिदमणेणं कुमरो भणाविओ वज्जिऊण मह विसयं । वच्चसु होसु व सज्जो मए समं समरसंरंभे ॥ ३५ ॥

एवं दुहितृचिन्तासमुद्रव्यसने निपतितो राजा । अथवा मूलाच्चैव भवति दुःखदायिका नारी ॥ २३ ॥
एवं ज्ञात्वा विषण्णमानसं नरपतिं सुमतिनामा । मन्त्री पृच्छत्युद्विग्नमानसा देव ! किं यूयम् ॥ २४ ॥
ततः कथितं राज्ञा कुमारीवरलाभसम्भवं दुःखम् । तेनोक्तं भव स्थिरः कदाचिल्लब्धोऽनुरूपवरः ॥ २५ ॥
येन मयातीतदिने निश्रुतः स्वजनजनेन गीयमानः । हेमरथराजतनयः कनकरथो नाम कुमारवरः ॥ २६ ॥
त्यागी शूरो दाक्षिण्यमन्दिरं शीलवान् कलानिपुणः । ततस्तस्य देहि युज्यतु सिंहकिशोरेण सह सिंही ॥ २७ ॥
राज्ञा भणितं यद्येवमत्र कार्ये तावत्त्वं चैव । शीघ्रं व्रज चिन्ताभारमपनय ममैतत् ॥ २८ ॥
एवमुक्तो मन्त्री प्रशस्तदिवसे प्रस्थितस्तत्र । प्रस्तुतराजप्रयोजनप्रसाधनार्थं समनुप्राप्तः ॥ २९ ॥
दृष्टश्च गौरवेण मन्त्री हेमरथनरवरेन्द्रेण । भणितं च तेन सविनयमागमनप्रयोजनं राज्ञः ॥ ३० ॥
देव ! मम स्वामिशालस्त्वया सार्धं समीहते कर्तुम् । आजन्मैव सङ्गतमनुरुपापत्ययोजनतः ॥ ३१ ॥
यतो भणितम् -
इतरथापि स्नेहः सज्जनानां जातो जनयति संतोषम् । किं पुनरपत्यसम्बन्धमूलो महाराज ! ॥ ३२ ॥
ततो यदि कुलानुरुपां वयोऽनुरुपां चेच्छसि वा मैत्रीम् । ततः क्रियतां मम वचनं पततु घृतं सूपमध्ये ॥ ३३ ॥
तदा हेमरथेन कनकरथः प्रेषितः सह बलेन । गच्छन्सम्प्राप्तोऽरिदमननृपस्य विषये ॥ ३४ ॥
अरिदमनेन कुमारो भाणितो वर्जयित्वा मम विषयम् । व्रज भव वा सज्जो मया समं समरसंरम्भे ॥ ३५ ॥

कुमरो वि फरुसवयणेण तेण धणियं मणम्मि परिकुविओ । कंडारिओ व्व सीहो सामरिसं भणिउमाढत्तो ॥ ३६ ॥
रायपहेणं गंतुं न लब्भए केरिसो इमो नाओ ? । न मुयामि रायमग्गं आगच्छसु जुज्झसज्जो हं ॥ ३७ ॥
तं सोऊणं अरिदमणनरवई नियबलेण परियरिओ । जुज्झेण संपलग्गो समं कुमारेण समरम्मि ॥ ३८ ॥
अब्भिडियनिबिडगुडगडियगयघडाडोयभीसणमयंडे । हयनिवहतिक्खखुरखणियखोणिरयपिहियरविबिंबं ॥३९॥
रयचलियतुरय[खरखुर]रहवररवपसरबहिरियदियंतं । लग्गक्कपक्कपाइक्कचक्कपम्मुक्कदढहक्कं ॥ ४० ॥
जयसिरिसंगमलुद्धाण ताण सपसायसामिभत्ताणं । दोण्ह वि बलाण जुद्धं बहुजीवखयंकरं लग्गं ॥ ४१ ॥
निद्दयखग्गवियारियकरिकुंभत्थलगलंतरुहिरेण । पवहन्तनईवुब्भंतजाण-जंपाणदुप्पेच्छं ॥ ४२ ॥
कत्थवि य मंस-वसलुद्धसाइणी-पेयसयसमाइन्नं । कत्थइ सुरवररमणीनिवहवरिज्जंतवीरगणं ॥ ४३ ॥
कत्थवि करालकरवालछिन्नसिरभमिरभीसणकबंधं । कत्थवि य नरामिसलुद्धगिद्ध-जंवुयगणाइन्नं ॥ ४४ ॥
इय असमंजरूवं बहुजीवरखयंकरं रणं दट्ठुं । अरिदमणो कुमरेणं दयालुणा एवमालविओ ॥ ४५ ॥
किं निरवराहजणमारणेण एएण कज्जमम्हाणं ? । तुममहयं चिय नरवर ! जुज्झामो बाहुजुज्झेण ॥ ४६ ॥
अणुमन्नियम्मि तेणं महीए होऊण बाहुजुद्धेण । कुमरेण विबंधेउं वसीकओ नागपासेहिं ॥ ४७ ॥
जिणिऊणेवं भणिओ कुमरेणं सो विपक्खनरनाहो । गिन्हसु रज्जं दिन्नं तुज्झ मए मन्नसु ममाऽऽणं ॥ ४८ ॥
सो वि हु माणधणो भणइ मज्झ सीसं जिणेसर-मुणिंदे । मोत्तुं न नमइ अन्नस्स निच्छओ एस जाजीवं ॥ ४९ ॥

कुमारोऽपि परुषवचनेन तेनात्यन्तं मनसि परिकुपितः । कण्डारित इव सिंहः सामर्षं भणितुमराब्धः ॥ ३६ ॥
राजपथा गन्तुं न लभ्यते कीदृशोऽयं न्याय ? । न मुञ्चामि राजमार्गमागच्छ युद्धसज्जोऽहम् ॥ ३७ ॥
तत् श्रुत्वारिदमननरपति र्निजबलेन परिवारितः । युद्धेन संप्रलग्नः समं कुमारेण समरे ॥ ३८ ॥
आक्रान्तनिबिडगुडगडितगजघटाटोपभीषणमकाण्डे । हयनिवहतीक्ष्णक्षुरखनितक्षोणिरजःपिहितरविबिम्बम् ॥ ३९ ॥
रजश्चलिततुरग (खरखुर) रथवररवप्रसरबधिरितदिगन्तम् । भयंकरपक्वपादातिचक्रप्रमुक्तदृढहक्काम् ॥ ४० ॥
जयश्रीसंगमलुब्धानां तेषां सप्रसादस्वामिभक्तानाम् । द्वयोरपि बलानां युद्धं बहुजीवक्षयंकरम् लग्नम् ॥ ४१ ॥
निर्दयखड्गविदारितकरिकुम्भस्थलगलद्रुधिरेण । प्रवहन्नदीब्रुडन्यान-जंम्पानदुष्प्रेक्ष्यम् ॥ ४२ ॥
क्वापि च मांस-वशालुब्धशाकिनी-प्रेतशतसमाकीर्णम् । क्वापि सुरवररमणीनिवहवर्यमाणवीरगणम् ॥ ४३ ॥
क्वापि करालकरवालछिन्नशिरोभ्रमद्भीषणकबन्धम् । क्वापि च नरामिषलुब्धगृध्रजम्बुकगणाकीर्णम् ॥ ४४ ॥
इत्यसमञ्जसरूपं बहुजीवक्षयंकरं रणं दृष्ट्वा । अरिदमनः कुमारेण दयालुनैवमालपितः ॥ ४५ ॥
किं निरापराधजनमारणेनैतेन कार्यमस्माकम् ? । त्वमहं चैव नरवर ! युध्यावहे बाहुयुद्धेन ॥ ४६ ॥
अनुमन्यमाने तेन मह्यां भूत्वा बाहुयुद्धेन । कुमारेण विबध्य वशीकृतो नागपाशैः ॥ ४७ ॥
जित्वैवं भणितः कुमारेण स विपक्षनरनाथः । गृहाण राज्यं दत्तं तुभ्यं मया मन्यस्व ममाज्ञाम् ॥ ४८ ॥
सोऽपि हु मानधनो भणति मम शीर्षं जिनेश्वर-मुनीन्द्रान् । मुक्त्वा न नमत्यन्यस्य निश्चय एष यावज्जीवम् ॥ ४९ ॥

ताहे अरिदमणनिवो अचयंतो माणगंजणं दुसहं । मोत्तुं तणं व रज्जं पव्वइओ गुरुसमीवम्मि ॥ ५० ॥
ठविऊण तस्स रज्जे तत्तणयं पत्थिओ पुरो कुमरो । वच्चंतो य कमेणं पत्तो भीमाडविं एगं ॥ ५१ ॥
सा य केरिसा ?–
कत्थइ सज्ज-ऽज्जुण-तरल-तमाल-हिंताल-सरलसोहिल्ला । कत्थइ करीर-कणवीर-जंबु-जंबीररमणीया ॥ ५२ ॥
कत्थवि य सरह-सद्दूल-सीह-गुरुगवय-गंडयाइन्ना । कत्थवि य तरच्छ-मय-ऽच्छभल्लवहुसंचररउद्दा ॥ ५३ ॥
तत्थ य निवेसिउं सिबिरमेगदेसे दिसाए एगाए । पट्टविया नियपुरिसा पाणीयन्नेसणनिमित्तं ॥ ५४ ॥
महईए वेलाए समागया पुच्छिया कुमारेण । कालविलंबो तुम्हाण किंनिमित्तो इमो जाओ ॥ ५५ ॥
एवं ते परिपुट्ठा नीरन्नेसयनरा निवेइंति । कुमरऽम्हे ताव गया तुह पासाओ तुरियगमणा ॥ ५६ ॥
जलजोयणत्थमेत्तो जोयणमेत्ते सरोवरं दिट्ठं ! बहुतरुवरसंकिन्नं तप्पेरंतेसु वणमेगं ॥ ५७ ॥
तीरम्मि देवकुलिया अवरं पि हु कुमर ! दिट्ठमच्छरियं । अंदोलंती वडपायवम्मि कन्ना सुतारुन्ना ॥ ५८ ॥
तीए रूवऽक्खित्ता पेच्छंता तं ठिया वणंतरिया । सा वि हु खणंतरेणं विज्जु व्व अदंसणीहूया ॥ ५९ ॥
पुरओ जा वच्चामो ता तीए कुमर ! देवकुलियाए । फल-पुप्फ-कंदहत्थो संपत्तो तावसो एगो ॥ ६० ॥
सा वि हु बाला सह तावसेण कंदाइयं तमाहारं । आहारेउं कत्थइ सहस त्ति अदंसणं पत्ता ॥ ६१ ॥
तत्तो वयं वलेउं समागया कुमर ! तुज्झ पासम्मि । एयं विलंबकारणमावन्नं तत्थ अम्हाणं ॥ ६२ ॥

तदारिदमननृपोऽपार्यन्मानगञ्जनं दुःसहम् । मुक्त्वा तृणमिव राज्यं प्रव्रजितो गुरुसमीपे ॥ ५० ॥
स्थापयित्वा तस्य राज्ये तत्तनयं प्रस्थितः पुरः कुमारः । व्रजंश्च क्रमेण प्राप्तो भीमाटवीमेकाम् ॥ ५१ ॥
सा च कीदृशा ? -
कुत्रचित् सज्जार्जुन-तरल-तमाल-हिन्ताल-सरल शोभमाना । कुत्रचित् करीर-कणबीर-जम्बु-जम्बीररमणीया ॥५२॥
कुत्रापि च शरभ-शार्दुल-सिंह-गुरुगवय-गण्ड काकीर्णा । कुत्रापि च तरच्क्ष-मृग-भल्लुकबहुसञ्चाररौद्रा ॥ ५३ ॥
तत्र च निवेश्य शिबिरमेकदेशे दिश्येकस्याम् । प्रस्थापिता निजपुरुषाः पानीयमन्वेषणनिमित्तम् ॥ ५४ ॥
महत्या वेलया समागताः पृष्टाः कुमारेण । कालविलम्बो युष्माकं किंनिमित्तोऽयं जातः ॥ ५५ ॥
एवं ते परिपृष्टा नीरान्वेषकनरा निवेदयन्ति । कुमार ! वयं तावद्गतास्तव पार्श्वात्त्वरितगमनाः ॥ ५६ ॥
जलदर्शनार्थमितो योजनमात्रे सरोवरं दृष्टम् । बहुतरुवरसङ्कीर्णं तत्पर्यन्तेषु वनमेकम् ॥ ५७ ॥
तीरे देवकुलिकापरमपि हु कुमार ! दृष्टमाश्चर्यम् । आन्दोलयन्ती वटपादपे कन्या सुतारुण्या ॥ ५८ ॥
तस्या रुपाक्षिप्ताः पश्यन्तस्तां स्थिता वनान्तरिताः । सापि हु क्षणान्तरेण विद्युदिवादर्शनीभूता ॥ ५९ ॥
पुरतो यावद्व्रजामस्तावत्तस्याः कुमार ! देवकुलिकायाः । फल-पुष्प-कन्दहस्तः सम्प्राप्तस्तापस एकः ॥ ६० ॥
साऽपि हु बाला सह तापसेन कन्दादिकं तमाहारम् । आहार्य क्वचित् सहसेत्यदर्शनं प्राप्ता ॥ ६१ ॥
ततो वयं वलित्वा समागताः कुमार ! तव पार्श्वे । एतद्विलम्बकारणमापन्नं तत्रास्माकम् ॥ ६२ ॥

---

१. गुरुवग्घगंड० रं० ।

बीयम्मि दिणे कुमरो पयाणढक्कं दवाविउं सिबिरे । तुरयारूढो वेगेण तत्थ पुरिसेहिं सह पत्तो ॥ ६३ ॥
दिट्ठं तहेवसुसिणिद्धपत्तसहिएहिं सुहयफलएहिं । संतावहरेहि समस्सियाण वित्थिन्नसाहेहिं ॥ ६४ ॥
सुयणेहिं व नाणाविहतरुवरनिवहेहिं जणियसंतोसं । नंदणवणमिव सग्गम्मि नयण-मणहरणमुज्जाणं ॥ ६५ ॥
तस्स य मज्झम्मि सरं बाहुलयाहिं व नीरलहरीहिं । आलिंगइ व्व कुमरं समागयं जं सिणेहेण ॥ ६६ ॥
निम्मलदलहत्थाहिं नलिणीविलयाहिं भवणपत्तस्स । अग्घं व जं पयच्छइ सररुहविसरं कुमारस्स ॥ ६७ ॥
कलहंस-कुरर-सारस-कारंडवमहुरमणहररवेण । सुहसागयं व पुच्छइ कुमरस्स गिहागयस्स सयं ॥ ६८ ॥
महुपाणरत्तमहुयरसुमहुररुणझुणियसुंदररवेण । जं गायइ व्व कुमरस्स गुणगणं जायगुरुहरिसं ॥ ६९ ॥
तीरम्मि देवकुलियं नियइ सुतारं नहंगणसिरिं व । समयरमुहं सकन्नं सतुलं कुंभाभिरामं च ॥ ७० ॥
पच्चासन्ने वडपायवम्मि अंदोलयम्मि कीलंतिं । पेच्छइ तहेव पुरिसेहिं वन्नियं कन्नयं एगं ॥ ७१ ॥
सुरवइसावादुत्तोलियं व सग्गंगणा [पुढवि]वासं । रमणीयवणे रमणत्थमागयं नायकन्नं व ॥ ७२ ॥
उज्जाणनिवासिणिदेवयं व सुंदरसरोवरसिरिं व । तत्थतवोवणलच्छिं व ललियविज्जाहरसुयं व ॥ ७३ ॥
तीए य रूव-लायन्नपुन्नतारुन्नपुन्नमण भवणो । जा नियइ तयं निप्फंदलोयणो वणलयंतरिओ ॥ ७४ ॥
ताव सहस त्ति निप्पुन्नपुरिससंपत्तभवणलच्छि व्व । कत्थवि गया न नज्जइ सपिवासस्स वि कुमारस्स ॥ ७५ ॥
तत्तो तट्ठाणाओ उट्ठेउं विसइ देवकुलियाए । दिट्ठो य तत्थ कुमरेण मणहरो तावसो एंतो ॥ ७६ ॥

द्वितीये दिने कुमारः प्रयाणढक्कां दापयित्वा शिबिरे । तुरगारूढो वेगेन तत्र पुरुषैः सह प्राप्तः ॥ ६३ ॥
दृष्टं तथैव सुस्निग्धपत्रसहितैः सुभगफलैः । सन्तापहरैः समाश्रितानां विस्तीर्णशाखाभिः॥ ६४ ॥
सुजनैरिव नानाविधतरुवरनिवहै र्जनितसंतोषम् । नन्दनवनमिव स्वर्गे नयन-मनोहरणमुद्यानम् ॥ ६५ ॥
तस्य च मध्ये सरो बाहुलताभिरिव नीरलहरिभिः । आलिङ्गतीव कुमारं समागतं यं स्नेहेन ॥ ६६ ॥
निर्मलदलहस्ताभि र्नलिनीवनिताभिर्भवनप्राप्तस्य । अर्घ्यमिव यत्प्रयच्छति सरोरुहविसरं कुमाररस्य ॥ ६७ ॥
कलहंस-कुरर-सारस-कारण्डवमधुरमनोहररवेण । सुखस्वागतमिव पृच्छति कुमारस्य गृहागतस्य स्वयम् ॥ ६८ ॥
मधुपानरक्तमधुकरसुमधुररणझणितसुन्दररवेण । यद्गायतीव कुमारस्य गुणगणं जातगुरुहर्षम् ॥ ६९ ॥
तीरे देवकुलिकां पश्यति सुतारां नभोङ्गनश्रियमिव । समकरमुखां सकर्णां सतुलां कुम्भाभिरामां च ॥ ७० ॥
प्रत्यासन्ने वटपादप आन्दोलके क्रीडन्तीम् । पश्यति तथैव पुरुषैर्वर्णितां कन्यकामेकाम् ॥ ७१ ॥
सुरपतिशापादुच्छलितैर्[१] व स्वर्गाङ्गना (पृथिवी) वासम् । रमणीयवने रमणार्थमागतां नागकन्यामिव ॥ ७२ ॥
उद्याननिवासिनिदेवतामिव सुन्दरसरोवरश्रियमिव । तथ्यतपोवनलक्ष्मीमिव ललितविद्याधरसुतामिव ॥ ७३ ॥
तस्याश्च रुप-लावण्यपूर्णतारुण्यमनोभवनः । यावत्पश्यति तकांन्निःस्पन्दलोचनो वनलतान्तरितः ॥ ७४ ॥
तावत्सहसेति निष्पुण्यपुरुषसम्प्राप्तभवनलक्ष्मीरिव । क्वापि गता न ज्ञायते सपिपासस्यापि कुमारस्य ॥ ७५ ॥
ततस्तत्स्थानादुत्थाय विशति देवकुलिकायाम् । दृष्टश्च तत्र कुमारेण मनोहरस्तापस आयान् ॥ ७६ ॥

---

१. પડેલી

सणियमहामहदिट्ठी जराए जज्जरियसिढिलसव्वंगो । सारयससहरनिप्पंकपलियसंपुन्नपुन्नतणू ॥ ७७ ॥
उब्बद्धजडाजूडो पभूयफल-पुप्फसिरिसमाउत्तो । सउणसमस्सियमुत्ती पच्चक्खो कप्परुक्खो व्व ॥ ७८ ॥
निब्भिच्चसमुद्धूलियदेहो सरयब्भ[सरिस]भूईए । नं नज्जइ सव्वंगं समस्सिओ पुन्नलच्छीए ॥ ७९ ॥
विप्फुरियासमसत्ती रवि व्व पयडियपयत्थसब्भावो सुहसोमयाए भवणं अमयकरो सारयससि व्व ॥ ८० ॥
पालियनियमज्जाओ बहुसत्तसमस्सिओ जलनिहि व्व । मेरु व्व गरुयमुत्ती गिरिपवरो लोयमज्झत्थो ॥ ८१ ॥
पच्चासन्ने पत्तो सहसा अब्भुट्ठिओ कुमारेण । पणमिय पाए भणियं भयवं ! वड्ढउ तवो तुज्झ ॥ ८२ ॥
सुहभागी होसु तुमं कुमार ! दाऊणमेवमासीसं । उवचिट्ठो वित्थारियसियपउमे रायहंसो व्व ॥ ८३ ॥
कुमरो वि हु तप्पुरओ पवित्तपउमासणे समासीणो । पुट्ठो य तावसेणं कुमार ! कत्तो तुहागमणं ? ॥ ८४ ॥
कत्थवि किर गंतव्वं ? इय पुट्ठे तेण पणइपवणेणं । सव्वो नियवुत्तंतो कहिओ कणगरहकुमरेण ॥ ८५ ॥
तो तावसेण भणियं वट्टइ देवच्चणस्स मह वेला । इय जंपियम्मि मुणिणा पणमित्तु समुट्ठिओ कुमरो ॥ ८६ ॥
तं चेव कन्नयं नियइ निद्धनयणेहिं तरुलयंतरिओ । पेच्छइ भक्खंतिं वणफलाणि सह तावसेण तयं ॥ ८७ ॥
खणदिट्ठनट्ठरूवं एवं तं पइदिणं पि पेच्छंतो । अच्चणियं कुणमाणो निरंतरं देवकुलियाए ॥ ८८ ॥
विणयाइएहिं तं विद्धतावसं किमवि पज्जुवासंतो । अणुजाणावियं कइयवि दिणाणि तत्थेव संवसिओ ॥ ८९ ॥
अन्नम्मि दिणे सो विन्नवेइ तं तावसं विणयपुव्वं । भयवं ! निवसइ इह कावि कन्नया तावसवणम्मि ॥ ९० ॥

शनैर्महामहदृष्टी जरया जर्जरितशिथिलसर्वाङ्गः । शारदशशधरनिष्पङ्कपलितसम्पूर्णपूर्णतनूः ॥ ७७ ॥
उद्बद्धजटाजटः प्रभूतफल-पुष्पश्रीसमायुक्तः । शकुनसमाश्रितमूर्तिः प्रत्यक्षकल्पवृक्ष इव ॥ ७८ ॥
निर्भृतसमुद्धौतदेहः शरदाभ्र (सदृश) भूत्या । इव ज्ञायते सर्वाङ्गं समाश्रितः पुण्यलक्ष्म्या ॥ ७९ ॥
विस्फुरितासमशक्ती रविरिव प्रकटितपदार्थसद्भावः । सुखसौम्यताया भवनममृतकरः शारदशशीव ॥ ८० ॥
पालितनिजमर्यादो बहुसत्त्वसमाश्रितो जलनिधिरिव । मेरुरिव गुरुकमूर्ति र्गिरिप्रवरो लोकमध्यस्थः ॥ ८१ ॥
प्रत्यासन्ने प्राप्तः सहसाभ्युत्थितः कुमारेण । प्रणम्य पादौ भणितं भगवन् ! वर्धतां तपस्तव ॥ ८२ ॥
सुखभागी भव त्वं कुमार ! दत्वैवमाशीषम् । उपविष्टो विस्तारितसितपद्मे राजहंस इव ॥ ८३ ॥
कुमारोऽपि हु तत्पुरतः पवित्रपद्मासने समासीनः । पृष्टश्च तापसेन कुमार ! कुतस्तवागमनम् ? ॥ ८४ ॥
कुत्रापि किल गन्तव्यमिति पृष्टे तेन प्रणतिप्रवणेन । सर्वो निजवृत्तान्तः कथितः कनकरथकुमारेण ॥ ८५ ॥
ततस्तापसेन भणितं वर्तते देवार्चनस्य मम वेला । इति जल्पिते मुनिना प्रणम्य समुत्थितः कुमारः ॥ ८६ ॥
तां चैव कन्यां पश्यति स्निग्धनयनाभ्यां तरुलतान्तरितः । प्रेक्षते भक्षयति वनफलानि सह तापसेन तकत् ॥ ८७ ॥
क्षणदृष्टनष्टरुपामेवं तां प्रतिदिनमपि प्रेक्षमाणः । अर्चनीयं कुर्वाणो निरंतरं देवकुलिकायाः ॥ ८८ ॥
विनयादिकैस्तं वृद्धतापसं किमपि पर्युपासयन् । अनुज्ञाप्य कत्यपि दिनानि तत्रैव संवसितः ॥ ८९ ॥
अन्यस्मिन् दिने स विज्ञापयति तं तापसं विनयपूर्वम् । भगवन् ! निवसतीह कापि कन्यका तापसवने ॥ ९० ॥

सा कइया वि हु दीसइ खणेण विज्जु व्व होइ अदिस्सा । ता कहसु तीए वइयरमिय पुट्ठो चिंतइ मुणी वि ॥ ९१ ॥
नूणमिमीए रोयइ एस कुमारो मणम्मि ससिणेहं । तेणऽप्पाणं पयडइ कहेमि तो तत्तमेयस्स ॥ ९२ ॥
भणियं च तावसेणं इमीए कन्नाए वइयरं सोउं । जइ अत्थि कोउयं तुह ता अवहियमाणसो सुणसु ॥ ९३ ॥
अत्थि धण-धन्न-मणि-रयणपुन्नपुन्नावणा वणियसुहया । नट्ठावया वि सह मत्तियावया नाम नयरि त्ति ॥ ९४ ॥
तत्थ य राया निसिउग्गखग्गदारियविपक्खसंघाओ । नामेण नयगुणन्नियमणुस्ससेणो वि हरिसेणो ॥ ९५ ॥
पेच्छयजणाण रूवाइएहिं सययं पियाणि जणयंती । निम्मलगुणेहिं नामेण तस्स पियदंसणा भज्जा ॥ ९६ ॥
विसयसुहमणुहवंतस्स तस्स सह तीए हिययदइयाए । निज्जियविपक्खवग्गस्स जंति दिवसाणि नरवइणो ॥९७॥
नवरं दुक्खमसज्झं समत्थि तस्सेगमेव सुहनिहिणो । जं दुव्वहरज्जधुराधरणखमो नत्थि से पुत्तो ॥ ९८ ॥
तत्तो तं सुयचिंतादुहदुहियं पासिऊण नरनाहं । पियदंसणाए भणियं सामि ! तुमं किं समुव्विग्गो ? ॥ ९९ ॥
कहियं दुक्खनिमित्तं थेवमिमं तीए सामि ! संलत्तं । आराहसु कुलदेविं पुन्नंतु मणोरहा तुज्झ ॥ १०० ॥
सोउं पियाए वयणं सुइभूओ सुद्धबंभयारी य । करकलियनिसियखग्गो धवलाहरणो धवलवसणो ॥ १०१ ॥
सुयलाभनिच्छयमई पुरओ कुलदेवयाए पुहईसो । संथरियदब्भसयणो थक्को कुलदेवएक्कमणो ॥ १०२ ॥
जा जंति तिन्नि दिवसा वज्जियपाणा-ऽसणस्स नरवइणो । तो सियवत्था-ऽऽभरणा पुरओ कुलदेवया पत्ता ॥१०३॥
किं वच्छ ! ववसियं ते साहसमेयारिसं विसमकज्जं ? । जंपइ राया तं चेव मुणसि मणवंछियं मज्झ ॥ १०४ ॥

सा कदापि हु दृश्यते क्षणेन विद्युदिव भवत्यदृश्या । ततः कथय तस्या व्यतीकरमिति पृष्टश्चिन्तयति मुनिरपि ॥ ९१ ॥
नूनमेतस्या रोचयत्येषकुमारो मनसि सस्नेहम् । तेनात्मानं प्रकटयति कथयामि ततस्तत्त्वमेतस्य ॥ ९२ ॥
भणितं च तापसेनेतस्याः कन्याया व्यतिकरं श्रोतुम् । यद्यस्ति कौतुकं तव तदावहितमानसः शृणु ॥ ९३ ॥
अस्ति धन-धान्य-मणि-रत्नपूर्णपूर्णापणा वणिक्सुभगा । नष्टापदपि सदा मृत्तिकापदा नामा नगरीति ॥ ९४ ॥
तत्र च राजा निशीतोग्रखड्गदारितविपक्षसङ्घातः । नाम्ना नयगुणान्वितमनुष्यसेनोऽपि हरिषेणः ॥ ९५ ॥
प्रेक्षकजनानां रुपादिकैःसततं प्रियाणि जनयन्ती । निर्मलगुणै र्नाम्ना तस्य प्रियदर्शना भार्या ॥ ९६ ॥
विषयसुखमनुभवतस्तस्य सह तया हृदयदयितया । निर्जितविपक्षवर्गस्य यान्ति दिवसानि नरपतेः ॥ ९७ ॥
नवरं दुःखमसाध्यं समस्ति तस्यैकमेव सुखनिधेः । यद्दुर्वहराज्यधुराधरणक्षमो नास्ति तस्य पुत्रः ॥ १८ ॥
ततस्तं सुतचिन्तादुःखदुःखितं दृष्ट्वा नरनाथम् । प्रियदर्शनया भणितं स्वामिन् ! त्वं किं समुद्विग्नः ? ॥ ९९ ॥
कथितं दुःखनिमित्तं स्तोकमिदं तया स्वामिन् ! संलप्तम् । आराधय कुलदेवीं पूर्यन्तु मनोरथास्तव ॥ १०० ॥
श्रुत्वा प्रियाया वचनं शुचीभूतः शुद्धब्रह्मचारी च । करकलितनिशीतखड्गो धवलाभरणो धवलवसनः ॥ १०१ ॥
सुतलाभनिश्चितमतिः पुरतः कुलदेवतायाः पृथिवीशः । संस्तारितदर्भशयनः स्थितः कुलदेवतैकमनाः ॥ १०२ ॥
यावद्यान्ति त्रिणि दिवसानि वर्जितपानाशनस्य नरपतेः । तदा सितवस्त्राभरणा पुरतः कुलदेवता प्राप्ता ॥ १०३ ॥
किं वत्स ! व्यवसितं त्वया साहसमेतादृशं विषमकार्यम् ? । जल्पति राजा त्वं चैव मुणसि मनोवाञ्छितं मम ॥ १०४ ॥

तीयुत्तं जमविहियं सुरा वि सत्ता न चेव तं दाउं । जं पुण विहियं तं वच्छ ! होइ एमेव पुरिसाण ॥ १०५ ॥
राया वि वज्जरइ बक्करस्स न हु देवि ! एस पत्थावो । सज्जो पडिच्छसु सिरं वियरसु वा मज्झ वरपुत्तं ॥१०६ ॥
इय भणिऊणं दाहिणकरेणमाकरिसिऊण करवालं । वामेण केसपासं धरिउं वाहरइ सामरिसं ॥ १०७ ॥
जइ मह चिरंतणाणं सुमरसि कुलदेवि ! कमवि भत्तिगुणं । ता देसु सुयं इय जंपिऊण कंठे कओ खग्गो ॥१०८ ॥
मा साहसं ति भणिरीए थंभिओ भूवइस्स भुयदंडो । पयहीडोउं भणियं होही तुह वच्छ ! अंगरुहो ॥ १०९ ॥
तो उट्ठिओ नरिंदो महापसाओ त्ति भणिय नियभवणं । पत्तो पभायसमए पेच्छइ पियदंसणा सुमिणं ॥ ११० ॥
किर मह सीहकिसोरो उच्छंगगओ सुहं थणं पियइ । इय पेच्छिय पडिबुद्धा सुमिणं साहइ नरिंदस्स ॥ १११ ॥
तेणावि हु भज्जाए कहिओ सव्वो वि रयणिवुत्तंतो । सा वि हु तुट्ठा जंपइ दिन्नो देवीए मह पुत्तो ॥ ११२ ॥
तत्तो सुहंसुहेणं गब्भं परिवहइ जायसंतोसा । अद्धट्ठमदिवसाणं नवन्ह मासाणमुवरिं सा ॥ ११३ ॥
पसवइ पहाणपुत्तं सोहणतिहि-गह-मुहुत्त-रिक्खेसु । बद्धावणयं काउं दिन्नं नामं अजियसेणो ॥ ११४ ॥
अन्नम्मि दिणे राया जिओ व्व कम्मेण गुविलभवगहणे । एयम्मि वणे खित्तो अणप्पवसएण तुरएण ॥ ११५ ॥
दिट्ठो य बिस्सभूई नामेणं तावसो परमजोगी । राया वि तस्स पासे धम्मं सोऊण पडिबुद्धो ॥ ११६ ॥
एत्थंतरम्मि पत्तं तयाणुसारेण राइणो सेन्नं । तो तेण देवउलिया कारविया गुरुकए एसा ॥ ११७ ॥
तत्तो य विस्मभूई विन्नत्तो राइणा वलंतेण । भयवं ! खमसु विरूवं तवोवणे जं मए विहियं ॥ ११८ ॥

तयोक्तं यदविहितं सुरा अपि शक्ता न चैव तद् दातुम् । यत्पुन र्विहितं तद्वत्स ! भवत्येवमेव पुरुषाणाम् ॥ १०५ ॥
राजापि कथयति बर्करस्य[1] न हु देवि ! एष प्रस्तावः । सज्जः प्रतीच्छ शिरो वितर वा मम वरपुत्रम् ॥ १०६ ॥
इति भणित्वा दक्षिणकरेणाकृष्य करवालम् । वामेन केशपाशं धृत्वा व्याहरति सामर्शम् ॥ १०७ ॥
यदि मम चिरंतनानां स्मरसि कुलदेवि ! कमपि भक्तिगुणम् । तदा देहि सुतमिति जल्पित्वा कण्ठे कृतः खड्गः ॥ १०८ ॥
मा साहसमिति भणन्त्या स्तम्भितो भूपते र्भुजदण्डः । प्रकटीभूत्या भणितं भविष्यति तव वत्स ! अङ्गरुहः ॥ १०९ ॥
तत उत्थितो नरेन्द्रो महाप्रसाद इति भणित्वा निजभवनम् । प्राप्तः प्रभातसमये प्रेक्षते प्रियदर्शना स्वप्नम् ॥ ११० ॥
किल मम सिंहकिशोर उत्सङ्गगतः सुखं स्तनं पिबति । इति प्रेक्ष्य प्रतिबुद्धा स्वप्नं कथयति नरेन्द्रस्य ॥ १११ ॥
तेनापि हु भार्यायाः कथितः सर्वोऽपि रजनीवृत्तान्तः । सापि हु तुष्टा जल्पति दत्तो देव्या मम पुत्रः ॥ ११२ ॥
ततः सुखं सुखेन गर्भं परिवहति जातसन्तोषा । अर्धाष्टमदिवसानां नवानां मासानामुपरि सा ॥ ११३ ॥
प्रसवति प्रधानपुत्रं शोभनतिथि-ग्रह-मुर्हूत-ऋक्षेषु । वर्धापनं कृत्वा दत्तं नामाजितसेनः ॥ ११४ ॥
अन्यस्मिन् दिने राजा जित इव कर्मणा गुपिलभवगहने । एतस्मिन् वने क्षिप्तोऽनात्मवशगेन तुरगेण ॥ ११५ ॥
दृष्टश्च विश्वभूति र्नाम्ना तापसः परमयोगी । राजापि तस्य पार्श्वे धर्मं श्रुत्वा प्रतिबद्धः ॥ ११६ ॥
अत्रान्तरे प्राप्तं तदनुसारेण राज्ञः सैन्यम् । ततस्तेन देवकुलिका कारिता गुरुकृत एषा ॥ ११७ ॥
ततश्च विश्वभूतिर्विज्ञप्तो राज्ञा वलयता । भगवन् ! क्षमस्व विरुपं तपोवने यन्मया विहितम् ॥ ११८ ॥

---

१. बककर - बर्कर (परिहास)

दिन्नो य तेण रन्नो गारुडमंतो अचिंतमाहप्पो । पत्तो य मत्तियावइनियनयरिं नरवरिंदो वि ॥ ११९ ॥
अह अन्नया य पेच्छइ करभीजुयलं दुवारदेसम्मि । तत्तो उत्तरिऊणं दोन्नि नरा विन्नविंति इमं ॥ १२० ॥
देवऽम्हे तुह पासे रन्ना पियदंसणेण पट्ठविया । दट्ठा कहवि पमाया मह कन्ना उग्गभुयगेण ॥ १२१ ॥
ता काऊण पसायं गारुडमंतेण कुणसु तं पउणं । तं सुणिय मंजुलावइनयरिं संपत्थिओ राया ॥ १२२ ॥
पत्तो य तेहिं समयं तन्नयरीए खणेण नरनाहो । दिट्ठो य रायलोगो सह नरवइणा विसन्नमणो ॥ १२३ ॥
अह भणइ नरवरिंदो तुह कन्नं पन्नवेमि विसपुन्नं । इय धीरविओ राया तेण वि मंतप्पओगेण ॥ १२४ ॥
उट्ठविया निवधूया उच्छंगे ठाविऊण नियपिउणा । पुट्ठा पसन्नवयणा किं तुह बाहइ सरीरम्मि ? ॥ १२५ ॥
ताय ! न किंपि हु बाहइ परमेसो किं बहू जणो मिलिओ ? । तूररवो वि किमेसो ? तोभणियं तीए जणएण ॥१२६॥
वच्छे ! तं भुयगेणं अहेसि दट्ठा मय त्ति काऊण । आणीया पेयवणे चियाइयं पउणियं एयं ॥ १२७ ॥
दिन्ना य तुज्झ पाणा निक्कारणवच्छलेण नरवइणा । एएण मज्झ पुन्नाणुभावओ भणियमेईए ॥ १२८ ॥
जइ एवं ताय ! मए वि नियपाणा महाणुभावस्स । दिन्ना इमस्स जणएण जंपियं जुत्तमेयं ति ॥ १२९ ॥
हरिसेणेण वि भणियं सुणसु महाभाग ! गुरुसयासम्मि । पव्वइउमणो अहयं तवोवणं गंतुमिच्छामि ॥ १३० ॥
तं नियधूयं वियरसु कस्स वि अन्नस्स तं निसामेउं । भणियं पियमइनामाए तीए कन्नाए वयणमिणं ॥ १३१ ॥
मज्झ सरीरे एसो लग्गइ जलणो व तइयओ नत्थि । तं निच्छयं वियाणिय दिन्ना तेणावि परिणीया ॥ १३२ ॥

दत्तश्च तेन राज्ञे गारुडमन्त्रोऽचिन्त्यमाहात्म्यः । प्राप्तश्च मृतिकावतीं निजनगरीं नरवरेन्द्रोऽपि ॥ ११९ ॥
अथान्यदा च पश्यति करभीयुगलं द्वारदेशे । तत उत्तीर्य द्वौ नरौ विज्ञापयत इदम् ॥ १२० ॥
देवावां तव पार्श्वे राज्ञा प्रियदर्शनेन प्रस्थापितौ । दृष्टा कथमपि प्रमादान्मम कन्योग्रभुजगेन ॥ १२१ ॥
ततः कृत्वाप्रसादं गारुडमन्त्रेण कुरुष्व तां प्रगुणाम् । तत श्रुत्वा मञ्जुलावतीनगरीं संप्रस्थितो राजा ॥ १२२ ॥
प्राप्तश्च ताभ्यां समकं तन्नगर्यां क्षणेन नरनाथः । दृष्टश्च राजलोक सह नरपतिना विषण्णमनाः ॥ १२३ ॥
अथ भणति नरवरेन्द्रस्तव कन्यां प्रज्ञापयामि विषपूर्णाम् । इति धीरितो राजा तेनापि मन्त्रप्रयोगेण ॥ १२४ ॥
उत्थापिता नृपदुहितोत्सङ्गे स्थापयित्वा निजपित्रा । पृष्टा प्रसन्नवदना किं तव बाधते शरीरे ? ॥ १२५ ॥
तात ! न किमपि खलु बाधते परमेष किं बहुजनो मिलितः ? । तूर्यरवः किमेषः ? ततो भणितं तस्या जनकेन ॥१२६॥
वत्से ! त्वं भुजगेनासी दष्टा मृतेति कृत्वा । आनीता प्रेतवने चितादिकं प्रगुणितमेतत् ॥ १२७ ॥
दत्ता च तव प्राणा निष्कारणवत्सलेन नरपतिना । एतेन मम पुण्यानुभावाद्भणितमेतस्याः ॥ १२८ ॥
यद्येवं तात ! मयापि निजकप्राणा महानुभावाय । दत्तैस्मै जनकेन जल्पितं युक्तमेतदिति ॥ १२९ ॥
हरिषेणेनापि भणितं शृणु महाभाग ! गुरुसकाशे । प्रव्रजितुमना अहं तपोवनं गन्तुमिच्छामि ॥ १३० ॥
तां निजदुहितरं वितर कस्याप्यन्यस्य तन्निश्रुत्य । भणितं प्रियमतिनामया तया कन्यया वचनमिदम् ॥ १३१ ॥
मम शरीर एष लगति ज्वलनो वा तृतीयो नास्ति । तं निश्चयं विज्ञाय दत्ता तेनापि परिणीता ॥ १३२ ॥

तं धेत्तुणं नियनयरिमागओ तीए सह सिणेहेणं । विसयसुहं भुंजंतो गमेइ कालं निरुव्विग्गो ॥ १३३ ॥
अह अन्नया य सुमरियगुरुवयणो भणइ पियमइं राया । तं गिण्हसु पउरधणं चिट्ठसु गेहम्मि पसयच्छि ! ॥१३४॥
अहयं भवनिव्विन्नो संपइ तावसवयं पवज्जामि । अंसुजलभरियनयणा सा वि इमं भणिउमाढत्ता ॥ १३५ ॥
तरुविरहे कइया वि हु चिट्ठइ किं तरुसमस्सिया छाया ? । अहमवि तुह पिय ! विरहे निवसामि गिहे न कइया वि ॥१३६॥
ता पुणरवि वयणमिमं दुहजणयं सव्वहा न वत्तव्वं । इण्हिं तं चेव गई मई वि मह सामि ! तं चेव ॥ १३७ ॥
इय तीए मुणिऊणं विणिच्छयं नेहपासपडिबद्धो । सकलत्तो संपत्तो एयम्मि वणम्मि सो कुमर ! ॥ १३८ ॥
दिट्ठो य विस्सभूइ भणिओ संविग्गमाणसेण इमो । देसु मह तावसवयं भवयं ! संसारभीओ हं ॥ १३९ ॥
तेणावि हु सो राया विहिणा पव्वाविओ कुणइ किरियं । सव्वं पि तावसाणं तवोवणे एत्थ भवभीरू ॥१४०॥
अह देवीए अनाओ गब्भो आगमणसमयसंभूओ । परिवड्ढिउं पवत्तो सा पुट्ठा किं इमं भद्दे ! ? ॥ १४१ ॥
तीए वि हु संलत्तं वयं पवन्नाए सामि ! न हु एसो । ता किं कीरउ इण्हिं ? कम्मगई का वि मह एसा ॥ १४२ ॥
तेणावि तावसेणं विचिंतियं मज्झ ताव संजायं । गरुयं कलंकमेयं धिरत्थु ! मह जीवियव्वस्स ॥ १४३ ॥
जओ–
अलियं पि हु वयणिज्जं गरुयाणं दूमए हिययमहियं । ता किं करेमि संपइ ? जामि न नज्जामि जत्थ अहं ॥१४४॥
मुणिधिक्कारहएणं पओयणं किं ठिएण एत्थ मए ? । चिंताउरस्स एवं समागया भीसणा रयणी ॥ १४५ ॥

तां गृहीत्वा निजनगरीमागतस्तया सह स्नेहेन । विषयसुखं भुञ्जन् गमयति कालं निरुद्विग्नः ॥ १३३ ॥
अथान्यदा च स्मृतिगुरुवचनो भणति प्रियमतिं राजा । त्वं गृहाण प्रचुरधनं तिष्ठ गृहे प्रसन्नाक्षि ! ॥ १३४ ॥
अहं भवनिर्विण्णः सम्प्रति तापसव्रतं प्रव्रजामि । अश्रुजलभृतनयना सापीदं भणितुमारब्धा ॥ १३५ ॥
तरुविरहे कदापि हु तिष्ठति किं तरुसमाश्रिताच्छाया ? । अहमपि तव प्रिय ! विरहे निवसामि गृहे न कदापि ॥१३६॥
ततः पुनरपि वचनमिदं दुःखजनकं सर्वथा न वक्तव्यम् । इदानीं त्वं चैव गति र्मतिरपि मम स्वामिन् ! त्वं चैव ॥१३७॥
इति तस्या मुणित्वा विनिश्चयं स्नेहपाशप्रतिबद्धः । सकलत्रः सम्प्राप्त एतस्मिन् वने स कुमार ! ॥ १३८ ॥
दृष्ट्श्च विश्वभूतिर्भणितः संविग्नमानसेनायम् । देहि मम तापसव्रतं भगवन् ! संसारभीतोऽहम् ॥ १३९ ॥
तेनापि हु स राजा विधिना प्रवाजितः करोति क्रियाम् । सर्वामपि तापसानां तपोवनेऽत्र भवभीरूः ॥ १४० ॥
अथ देव्या अज्ञातो गर्भ आगमनसमयसम्भूतः । परिवर्धितुं प्रवृत्तः सा पृष्टा किमिदं भद्रे ! ? ॥ १४१ ॥
तयापि हु संलप्तं व्रतप्रपन्नायाः स्वामिन् ! न स्वल्वेषः । ता किं क्रियतामिदानीं ? कर्मगतिः कापि ममैषा ॥ १४२ ॥
तेनापि तापसेन विचिन्तितं मम तावत् सञ्जातम् । गुरुकं कलङ्कमेतद्धिगस्तु ! मम जीवितव्यस्य ॥ १४३ ॥
यतः -
अलिकमपि खलु वचनीयं गुरुकाणां खिद्यते हृदयमधिकम् । ततः किं करोमि सम्प्रति ? यामि न ज्ञाये यत्राहम् ॥ १४४ ॥
मुनिधिक्कारहतेन प्रयोजनं किं स्थितेनात्र मया ? । चिन्तातूरस्यैवं समागता भीषणा रजनी ॥ १४५ ॥

नाओ एस कओ वि हु कुलवइणा गब्भसंभवो तस्स । चइउं वणं सयं चिय अन्नत्थ गओ सपरिवारो ॥ १४६ ॥
ताहे सो अहिययरं मणम्मि संतावमुव्वहइ गरुयं । पेच्छह पावेण मए मुणिओ निव्वासिया गुणिणो ॥ १४७ ॥
ता किं करेमि संपइ ? कत्थ गओ निव्वुइं लहिस्सामि ? । अहवा वि पावियव्वं अवस्स पावइ धुवं जीवो ॥ १४८ ॥
जआ–
दूरं वच्चइ पुरिसो तत्थ गओ निव्वुइं लहिस्सामि । तत्थ वि पुव्वकयाइं पुव्वगयाइं पडिक्खंति ॥ १४९ ॥
जं जेण पावियव्वं सुहं व दुक्खं व कम्मनिम्मवियं । तं सो तहेव पावइ कयस्स नासो जओ नत्थि ॥ १५० ॥
धीराण कायराण व अणत्थरिंछोलिया पडइ देहे । सा सहियव्वा न सहइ बला वि दइवो सहावेइ ॥ १५१ ॥
ता किं वियप्पिएणं एत्थेव तवोवणम्मि निवसंतो । पालेमि सुद्धसीलं विहिणा नियपणइणिं एयं ॥ १५२ ॥
अह सव्वगुणविसुद्धेदिवसे वणदेवयं व दित्तीए । उज्जोयंती वणदसदिसाउ वरदारियं देवी ॥ १५३ ॥
सा पियमई पसूया पसत्थलक्खणविराइयावयवं । अह तत्थ कम्मवसओ जं जायं तं निसामेह ॥ १५४ ॥
अणुचियऽवत्थाणाओ अणुचियपावरण-भोयणाओ य । परिचारयविरहाओ पंचत्तं पियमई पत्ता ॥ १५५ ॥
तत्तो विसन्नचित्तो तइया सो तावसो समाहीए । किंकायव्वविमूढो पडिओ चिंतासमुद्दम्मि ॥ १५६ ॥
रे जीव ! तए भवभीयमाणसेणं इमं वयं पत्ते । जाव य धम्मगुरूहिं धम्मसहाएहिं य विउत्तो ॥ १५७ ॥
एसा वि पेमपत्तं समाहिहेऊ पिया मया जीव ! । इण्हिं कह कुणसि तुमं तद्दिणजायं इमं बालं ? ॥ १५८ ॥

ज्ञात एष कुतोऽपि खलु कुलपतिना गर्भसम्भवस्तस्य । त्यक्त्वा वनं स्वयं चैवान्यत्र गतः सपरिवारः ॥ १४६ ॥
तदा सोऽधिकतरं मनसि सन्तापमुद्वहति गुरुकम् । पश्यत पापेन मया मुनयो निर्वासिता गुणिनः ॥ १४७ ॥
ततः किं करोमि सम्प्रति ? क्व गतो निर्वृत्तिं लप्स्ये । अथवापि प्राप्तव्यमवश्यं प्राप्नोति ध्रुवं जीवः ॥ १४८ ॥
यतः –
दूरं गच्छति पुरुषस्तत्र गतो निर्वृत्तिं लप्स्ये । तत्रापि पूर्वकृतानि पूर्वगतानि प्रतिस्खलन्ति ॥ १४९ ॥
यद्येन प्राप्तव्यं सुखं वा दुःखं वा कर्मनिर्मापितम् । तं स यथैव प्राप्नोति कृतस्य नाशो यतो नास्ति ॥ १५० ॥
धीराणां कातराणां वानर्थपङ्क्तिः पतति देहे । सा सोढव्या न सहते बलादपि दैवः साहयति ॥ १५१ ॥
ततः किं विकल्पितेनात्रैव तपोवने निवसन् । पालयामि शुद्धशीलां विधिना निजप्रणयिनीमेनाम् ॥ १५२ ॥
अथ सर्वगुणविशुद्धदिवसे वनदेवतामिव दिप्त्या । उद्योतन्तीं वनदशदिशो वरदारिकां देवी ॥ १५३ ॥
सा प्रियमतिः प्रसूता प्रशस्तलक्षणविराजितावयवाम् । अथ तत्र कर्मवशाद्यज्जातं तन्निशामय ॥ १५४ ॥
अनुचितावस्थानादनुचितप्रावरण-भोजनाच्च । परिचारकविरहात् पञ्चत्वं प्रियमतिः प्राप्ता ॥ १५५ ॥
ततो विषण्णचित्तस्तदा स तापसः समाधिना । किं कर्तव्यव्यामूढः पतितश्चिन्तासमुद्रे ॥ १५६ ॥
रे जीव ! त्वया भवभीतमानसेनेदं व्रतं प्राप्तम् । यावच्च धर्मगुरुभि र्धर्मसाहाय्यैश्च वियुक्तः ॥ १५७ ॥
एषापि प्रेमप्राप्ता समाधिहेतुः प्रिया मृता जीव ! । इदानीं कथं करोषि त्वं तद्दिनजातामिमां बालाम् ॥ १५८ ॥

अहवा—

जं एइ अवसरेणं परिवाडीए सुहं व दुक्खं वा । तं सहह अदीणमणा जाव पसायं विही कुणइ ॥ १५९ ॥
इय भाविंतो संठाविऊण अप्पाणमप्पण च्चेय । मणयं समाहिवसओ देइ मणं पत्थुयत्थम्मि ॥ १६० ॥
पालइ महुररसेहिं पहाणतरुसंभवेहिं य फलेहिं । तं बालियं पयत्ता वसीकओ नेहपासेहिं ॥ १६१ ॥
अह कम्मि वि पत्थावे पसत्थरूवे निवेसियं नामं । जमिमा रिसिप्पसाया जाया ता होउ रिसिदत्ता ॥ १६२ ॥
सा वि हु कम्मोदयओ कुमार ! विद्धिं गया इमम्मि वणे । जणयमणाणंदयरी संजाया अट्ठवारिसिया ॥१६३॥
लायन्नकंतिकलिया अहिणवतारुन्नसुन्दरावयवा । मा कोवि हु अवहरिही इमं ति संजायसंकेण ॥ १६४ ॥
नियगुरुविस्सभूईसिक्खवियंजणपओगकरणेण ! विहिया अद्दिस्सतणू वणम्मि कीलइ जहिच्छाए ॥ १६५ ॥
भणिया तेणेसा कुमर ! बालिया तुज्झ कोवि जो पुरिसो । रुच्चइ तं मह साहसु जेण पयच्छामि तं वच्छे ॥१६६॥
कुमर ! तयं हरिसेणं मं चेव य तावसं वियाणाहि । एयं पि निव्वियप्पं मह धूयं चेव रिसिदत्तं ॥ १६७ ॥
तं सोउं मुणिवयणं कुमरो आणंदनिब्भरो भणइ । भयवं ! तं रिसिदत्तं दंससु मणवल्लहं अज्ज ॥ १६८ ॥
वयणाणंतरमेव य सव्वालंकारमणहरं काउं । हरिसेणो नियधूयं दंसइ कणगरहकुमरस्स ॥ १६९ ॥
दिट्ठा य तेण बाला रइ व्व मयणेण निद्धदिट्ठीए । सो वि हु ससिणेहाए दिट्ठीए तीए सच्चविओ ॥ १७० ॥
सुसिणिद्धदिट्ठिपसरं परोप्परं ताणि पेच्छमाणाणि । वच्छत्थलम्मि विद्धाणि मयणभिल्लेण भल्लीहिं ॥ १७१ ॥

अथवा -

यदेत्यवसरेण परिपाट्या सुखं दुःखं वा । तत्सहध्वमदीनमना यावत्प्रसादं विधिः करोति ॥ १५९ ॥
इति भावयन् संस्थाप्यात्मानमात्मना चैव । मनाक् समाधिवशाद्दाति मनः प्रस्तुतार्थे ॥ १६० ॥
पालयति मधुररसैः प्रधानतरुसम्भवैश्च फलैः । तां बालिकां प्रयत्नाद्वशीकृतः स्नेहपाशैः ॥ १६१ ॥
अथ कस्मिन्नपि प्रस्तावे प्रशस्तरुपे निवेशितं नाम । यदिमार्षिप्रसादाज्जाता ततो भवत्वर्षिदत्ता ॥ १६२ ॥
सापि हु कर्मोदयात् कुमार ! वृद्धिं गतैतस्मिन् वने । जनकमनानन्दकरी सञ्जाताष्टवार्षिका ॥ १६३ ॥
लावण्यकान्तिकलिताभिनवतारुण्यसुन्दरावयवा । मा कोऽपि खल्वपहरिष्यतीमामिति सञ्जातशङ्केन ॥ १६४ ॥
निजकगुरुविश्वभूतिशिक्षयिताञ्जनप्रयोगकरणेन । विहितादृश्यतनुर्वने क्रीडति यथेच्छया ॥ १६५ ॥
भणिता तेनैषा कुमार ! बालिका तव कोऽपि यः पुरुषः । रोचयति तं मम कथय येन प्रयच्छामि त्वां वत्से ॥१६६॥
कुमार ! तकद्धर्षेण मां चैव च तापसं विजानाहि । एनामपि निर्वकल्पं मम दुहितरं चैवर्षिदत्ताम् ॥ १६७ ॥
तत् श्रुत्वा मुनिवचनं कुमार आनन्दनिर्भरोभणति । भगवन् ! तामृषिदत्तां दर्शय मनोवल्लभामद्य ॥ १६८ ॥
वचनान्तरमेव च सर्वालङ्कारमनोहरां कृत्वा । हरिषेणो निजदुहितरं दर्शयति कनकरथकुमारस्य ॥ १६९ ॥
दृष्टा च तेन बाला रतिरिव मदनेन स्निग्धदृष्ट्या । सोऽपि हु सस्नेहया दृष्ट्या तया दृष्टः ॥ १७० ॥
सुस्निग्धदृष्टिप्रसरं परस्परं तौ प्रेक्षमाणौ । वक्षःस्थले विद्धौ मदनभिल्लेन भल्लिभिः ॥ १७१ ॥

तो तावसेण नायं नूणमिमीए इमो मणे रुइओ । कहमन्नहाऽणुराएणपेसए दिट्ठिमेयम्मि ? ॥ १७२ ॥
जओ–
जं मणरुइए छेया दिट्ठिं दूइं भणंति मिहुणाणं । जं हिययस्स न रुच्चइ तत्थ गया कुणउ किं दिट्ठी ? ॥ १७३ ॥
गुरुणो पेच्छंतस्स वि तेसिं पढमे वि संगमे दूरं । पेच्छसु केरिसमेयस्स विलसियं मयणहयगस्स ॥ १७४ ॥
तह कहवि नेहवसओ परोप्पर ताण निवडिया दिट्ठी । निव्वत्तरइसुहाणीव तीए जायाणि ताणि जहा ॥ १७५ ॥
भणियं च–
दिट्ठीएच्चिय सा तेण पिययमा नेहनिब्भररसाए । आभासिय व्व आलिंगिय व्व रमिय व्व पीय व्व ॥ १७६ ॥
जओ–
दरहसियं सरसकडक्खियं च वन्नंति पेमसव्वस्सं । मिहुणाणमेगसयणेऽवत्थाणं लोगववहारो ॥ १७७ ॥
तत्तो य तावसेणं पाणिग्गहणं कराविओ तीए । तत्थेव कइवयदिणे वसिओ तावससमाहिकए ॥ १७८ ॥
रिसिदत्ताए लाभे संजाए चिंतियं कुमारेण । अवराए भज्जाए न संपयं किंपि मह कज्जं ॥ १७९ ॥
तो नियनयराभिमुहं वच्चेतेणं विणीयविणएणं । भणिओ तावससासुरो मुयसु ममं ताय ! नियनयरे ॥ १८० ॥
देसु मह किंपि सिक्खं पओयणं रुप्पिणीए मह सिद्धं । संपइ कलत्तविसए तुह धूयाए कयत्थोऽहं ॥ १८१ ॥
तत्तो भणियं रिसिणा लच्छीए मा छलिज्जसु कुमार ! । बहवो इमीए छलिया अथिरसहावाए पावाए ॥ १८२ ॥

ततस्तापसेन ज्ञातं नूनमेतस्या अयं मनसि रुचितः । कथमन्यथानुरागेण प्रेषयति दृष्टिमेतस्मिन् ? ॥ १७२ ॥
यतः –
यन्मनोरुचिते छेका दृष्टिं दूतिं भणन्ति मिथुनानाम् । यद्धृदयस्य न रोचते तत्र गता करोतु किं दृष्टिः ? ॥ १७३ ॥
गुरोः पश्यतोऽपि तयोः प्रथमेऽपि संगमे दूरम् । प्रेक्षष्व कीदृशमेतस्य विलसितं मदनहतकस्य ॥ १७४ ॥
तथा कथमपि स्नेहवशात् परस्परं तयो र्निपतिता दृष्टिः । निवर्त्तरतिसुखानीव तस्या जातानि तानि यथा ॥ १७५ ॥
भणितंच –
दृष्ट्वा चैव सा तेन प्रियतमा स्नेहनिर्भररसात् । आभाषितेवालिङ्गितेव रतेव पीतेव ॥ १७६ ॥
यतः –
ईषद्धसितं सरसकटाक्षितं च वर्णयन्ति प्रेमसर्वस्वम् । मिथुनयोरेकशयनेऽवस्थानं लोकव्यवहारः ॥ १७७ ॥
ततश्च तापसेन पाणिग्रहणं कारितस्तस्याः । तत्रैव कतिपयदिनांस्तापससमाधिकृते ॥ १७८ ॥
ऋषिदत्ताया लाभे सञ्जाते चिन्तितं कुमारेण । अपराया भार्याया न साम्प्रतं किमपि मम कार्यम् ॥ १७९ ॥
ततो निजनगराभिमुखं व्रजता विनीतविनीतेन । भणितस्तापसश्वसुरः मुञ्च मां तात ! निजनगरे ॥ १८० ॥
देहि मह्यं किमपि शिक्षां प्रयोजनं रुकिमण्या मम सिद्धम् । सम्प्रति कलत्रविषये तव दुहित्रा कृतार्थोऽहम् ॥ १८१ ॥
ततो भणितमृषिणा लक्ष्म्या माच्छल कुमार ! । बहवोऽनया छलितास्थिरस्वभावया पापया ॥ १८२ ॥

मा मज्जसु विज्जाए जम्हा विज्जा मयस्स पडिवक्खो । विनडिज्जंति अणेगे एईए वि वच्छ ! तुच्छमई ॥ १८३ ॥
एयं पुण तारुन्नं विवेयवियलाणमंधया भणिया । रूवं पि हु उम्माओ रज्जसिरी वि हु कुगइहेऊ ॥ १८४ ॥
किं बहुणा वायावित्थरेण सगुणेसु वहसु मा गव्वं । मइलिज्जंति मएणं गरुयाण वि जेण वच्छ ! गुणा ॥ १८५ ॥
तह एयं रिसिदत्तं मज्झ पसाया अदिट्ठदुहलेसं । मा मुंचसु नियछायं व वच्छ ! विहियावराहं पि ॥ १८६ ॥
एवं गमणावसरे धूया वि हु तावसेण सिक्खविया । पइणो सरीरकिच्चं सयमणुचिट्ठसु सया वच्छे ! ॥ १८७ ॥
मा कइया वि हु मज्जसु पियपणएणं वियारिया वच्छे ! । पइपणएणं भुल्ला महिलाओ धुवं विणस्संति ॥ १८८ ॥
तहा–
वच्छे ! विणओ च्चिय होइ भूसणं इह नरस्स वि जयम्मि । नारीण पुण विसेसा निच्चपराहीणजम्माणं ॥ १८९ ॥
एत्तो च्चिय कायव्वो निच्चं चिय उवसमो इमाहिं जओ । अन्नो वि अणुवसंतो न नंदए किं पुणित्थीओ ? ॥ १९० ॥
अविसिट्ठसंगमेणं सुपुरिसमग्गं चयंति धीरा वि । अबलाण वराईणं ताण विणासम्मि किं चोज्जं ? ॥ १९१ ॥
अणुयत्तिविरहियाणं विहडंति सुयाइणो पहूणं पि । ससुरकुलायत्ताणं निच्चं पि हु किं पुणित्थीणं ? ॥ १९२ ॥
दिंताण दाणमेव हि संकेइ न य परिभवं कुणइ कोइ । दाणेण विरहियाणं न टलइ लोओ करीणं पि ॥ १९३ ॥
लोयट्ठिइमेत्तं चिय विभूसणं कणय-रयणमाईहिं । सीलालंकारो च्चिय पसाहणं कुलपसूयाणं ॥ १९४ ॥
इय पुत्ति ! विणय-उवसम-सुसंग-अणुवित्ति-दाण-सत्तीसु । निच्चं पि समुज्जुत्ता रक्खेज्जसु सीलसंपत्तिं ॥१९५॥

मा मज्ज विद्यायां यस्माद्विद्या मदस्य प्रतिपक्षः । विनट्यन्तेऽनेकेऽनयापि वत्स ! तुच्छमतयः ॥ १८३ ॥
एतत्पुनस्तारुण्यं विवेकविकलानामन्धता भणिता । रुपमपि खलून्मादो राज्यश्रीरपि खलु कुगतिहेतुः ॥ १८४ ॥
किं बहुना वाचाविस्तारेण स्वगुणेषु वह मा गर्वम् । मलीयन्ते मदेन गुरुकाणामपि येन वत्स ! गुणाः ॥ १८५ ॥
तथैनामृषिदत्तां मम प्रसाददृष्टदुःखलेशाम् । मा मुञ्च निजच्छायामिव वत्स ! विहितापराधामपि ॥ १८६ ॥
एवं गमनावसरे दुहितापि खलु तापसेन शिक्षियिता । पत्युः शरीरकृत्यं स्वयमनुतिष्ठ सदा वत्से ॥ १८७ ॥
मा कदापि खलु मज्ज प्रियप्रणयेन वितारिता वत्से ! । पतिप्रणयेन च्युता महिला ध्रुवं विनश्यन्ति ॥ १८८ ॥
तथा -
वत्से ! विनयश्चैव भवति भूषणमिह नरस्यापि जगति । नारीणां पुनर्विशेषान्नित्यपराधीनजन्मनाम् ॥ १८९ ॥
इतश्चैव कर्तव्यो नित्यं चैवोपशम इमाभिर्यतः । अन्योऽप्यनुपशान्तो न नन्दति किं पुनःस्त्रियः ॥ १९० ॥
अविशिष्टसङ्गमेन सुपुरुषमार्गं त्यजन्ति धीरा अपि । अबलानां वराकीनां तासां विनाशे किमाश्चर्यम् ? ॥ १९१ ॥
अनुवृत्तिविरहितानां विघटयन्ति सुतादय प्रभूनामपि । श्वसुरकुलायत्तानां नित्यमपि हु किं पुनःस्त्रीणाम् ? ॥ १९२ ॥
ददतां दानमेव हि शङ्कते न च परिभवं करोति कोऽपि । दानेन विरहितानां न टलति लोकः करीणामपि ॥ १९३ ॥
लोकस्थितिमात्रं चैव विभूषणं कनक-रत्नादिभिः । शीलालङ्कारश्चैव प्रसाधनं कुलप्रसूतानाम् ॥ १९४ ॥
इति पुत्रि ! विनयोपशम-सुसङ्गानुवृत्ति-दान शक्तिषु । नित्यमपि समुद्युक्ता रक्षय शीलसम्पत्तिम् ॥ १९५ ॥

सा एवं सिक्खविया पणमिय पिउणो पिएण सह चलिया । कुमरे दढमणुरत्ता सिढिलियनेहा य जणयम्मि ॥१९६॥
भणियं च–
बालत्तणम्मि पिइ-माइ-भइणि-सहियायणो पिओ होइ । आरूढजोव्वणाणं जुवईण पिओ पिओ एक्को ॥१९७॥
अह पणमिऊण जणयं तवोवणाओ विणिग्गया बाला । मणयं पडिबंधाओ वलियग्गीवं पलोयंती ॥ १९८ ॥
जओ भणियं–
अच्छंतु निरंतरनेहगब्भसब्भावसुंदरा सुयणा । सहवासवड्ढिया तरुवरा वि दुक्खेहिं मुच्चंति ॥ १९९ ॥
तत्तो तवोवणं तीए विरहियं किमवि जणइ रणरणियं । सहस च्चिय परिचत्तं असेसजणमाणणिज्जाए ॥२००॥
भवणं व भवणलच्छीए साहुचित्तं व पसमवित्तीए । विज्जाए विउसमणं व निवसिरीए व निवभवणं ॥२०१॥
अणवरयपयाणेहिं पत्ताइं पमोयनिब्भरमणाइं । रन्ना पवेसियाइं महाविभूईए नयरम्मि ॥ २०२ ॥
पिउणा परितुट्ठेणं, समप्पिओ ताण पवरपासाओ । परिवारो य विणीओ दासी-दासाइओ सव्वो ॥ २०३ ॥
तत्तो पइभत्ताए भुंजइ भोए गुणाणुरत्ताए । समयं रिसिदत्ताए कणगरहो सुद्धचित्ताए ॥ २०४ ॥
कीलइ गीयकलाए कइया वि हु चित्तकम्मकीलाए । कइया वि हु पण्हुत्तर-पहेलियाणं विणोएण ॥ २०५ ॥
लोयणनिमेसमेत्तं विरहं सोढुं अपारयंतेहिं । दोहिं पि तेहिमइवाहियाइं वरिसाणि पंच तहिं ॥ २०६ ॥
एत्तो कावेरीए सिरिसुंदरपाणिणा सुयं रन्ना । जह किर तावसकन्नं परिणेउं कणगरहकुमरो ॥ २०७ ॥

सैवं शिक्षियिता प्रणम्य पितरं प्रियेण सह चलिता । कुमारे दृढमनुरक्ता शिथिलितस्नेहा च जनके ॥ १९६ ॥
भणितं च -
बालत्वे पितृ-मातृ-भगिनि-सखीकाजनः प्रियो भवति । आरूढयौवनानां युवतीनां प्रियः प्रियः एकः ॥ १९७ ॥
अथ प्रणम्य जनकं तपोवनाद्विनिर्गता बाला । मनाक् प्रतिबन्धाद्वलितग्रीवं प्रलोकयन्ती ॥ १९८ ॥
यतो भणितम् -
आस्तां निरन्तरस्नेहगर्भ स्वभावसुन्दराः स्वजनाः । सहवासवर्धितास्तरुवरा अपि दुःखै र्मुञ्चन्ति ॥ १९९ ॥
ततस्तपोवनं तस्या विरहितं किमपि जनयति रणरणितम् । सहसा चैव परित्यक्तमशेषजनमाननीयया ॥ २०० ॥
भवनमिव भवनलक्ष्म्या साधुचित्तमिव प्रशमवृत्या । विद्यया विद्वद्मन इव नृपश्रियेव नृपभवनम् ॥ २०१ ॥
अनवरतप्रयाणैः प्राप्तौ प्रमोदनिर्भरमनसौ । राज्ञा प्रवेशितौ महाविभूत्या नगरे ॥ २०२ ॥
पित्रा परितुष्टेन समर्पितस्ताभ्यां प्रवरप्रासादः । परिवारश्च विनीतो दासी-दासादयः सर्वः ॥ २०३ ॥
ततः पतिभक्तया भुनक्ति भोगान् गुणानुरक्त्या । समकमृषिदत्तया कनकरथः शुद्धचित्तया ॥ २०४ ॥
क्रीडति गीतकलया कदापि हु चित्रकर्मक्रीड्या । कदापि हु प्रश्नोत्तरप्रहेलिकानां विनोदेन ॥ २०५ ॥
लोचननिमेषमात्रं विरहं सोढुमपारयद्भ्यांम् । द्वाभ्यामपि ताभ्यामतीवाहितानि वर्षाणि पञ्च तत्र ॥ २०६ ॥
इतः कावेर्यां श्रीसुन्दरपाणिना श्रुतं राज्ञा । यथा किल तापसकन्यां परिणीय कनकरथकुमारः ॥ २०७ ॥

वलिओ नियनयरीए ताहेसो रुप्पिणीए चिंताए । कोड़ीकओ किलेसेण गमइ कह कहवि दिवसाणि ॥ २०८ ॥
एयावसरे पत्ता सुलसा पव्वाइया परिभमंती । बहुकूडकवडभरिया पावा परलोयनिरवेक्खा ॥ २०९ ॥
कइया वि हु कन्नंतेउरम्मि सा रुप्पिणीए पासम्मि । संपत्ता परिपुच्छइ पणइपरं रुप्पिणिं कन्नं ॥ २१० ॥
वच्छे ! किं तुममज्ज वि वररहिया रइसमा वि रूवेण । देवाणं पि हु दुलहं निरत्थयं नेसि तारुन्नं ? ॥ २११ ॥
तीए भणियं भयवइ ! मह भत्तारो वसीकओ कहवि । कीए वि तावसकन्नाए संपयं किं करेमि अहं ? ॥२१२॥
सा वि हु जंपइ जइ भणसि तुज्झ वसवत्तिणिं करेमि तयं । तो रुप्पिणीए वुत्तं भयवइ ! भुवणे वि तुह कज्जं ॥२१३॥
नत्थि असज्झं किंचि वि ता मह उवरिं करेवि कारुन्नं । तह कहवि जयसु संपइ समीहियं होइ जह मज्झ ॥२१४॥
एवं तीए वुत्ता अणवरयपयाणएहि संपत्ता । रहमद्दणम्मि नयरे दिट्ठो कुमरो सह पियाए ॥ २१५ ॥
तो चिंतियमेयाए रिसिदत्तारूवसंपयं दट्ठुं । एवंविहरूवेणं मोहिज्जइ को न एयाए ? ॥ २१६ ॥
जीवंतीए इमीए सुमिणे वि न रुप्पिणिं महइ कुमरो । को अमयपाणतित्तो कंजियमहिलसइ मुक्खो वि ? ॥२१७॥
परमेयारिसपावं नरयदुहावहमणज्जचरिया हं । गुणवंतं पत्तमिमं मारिय कहमायरिस्सामि ? ॥ २१८ ॥
इय पुण करुणं काउं ववसामि न साहसं इमं कहवि । ता भट्ठपइन्ना हं कह तीए पुरो भविस्सामि ? ॥ २१९ ॥
इय चिंतिऊण तीए करुणावियलाए कूरकम्माए । सव्वजणक्खयकारी विज्जाए विउव्विया मारी ॥ २२० ॥
मणमोहणीए विज्जाए मारिउं रायसम्मयं पुरिसं । रुहिरेणं हत्थमुहे रिसिदत्ताए विलिंपेइ ॥ २२१ ॥

वलितो निजनगर्यां तदा स रुक्मिण्याश्चिन्तया । क्रोडीकृतः क्लेशेन गमयति कथं कथमपि दिवसानि ॥ २०८ ॥
एतदवसरे प्राप्ता सुलसा परिव्राजिका परिभ्रमन्ती । बहुकूटकपटभृता पापा परलोकनिरपेक्षा ॥ २०९ ॥
कदापि हु कन्यान्तःपुरे सा रुक्मिण्याः पार्श्वे । सम्प्राप्ता परिपृच्छति प्रणतिपरां रुक्मिणिं कन्याम् ॥ २१० ॥
वत्से ! किं त्वमद्यापि वररहिता रतिसमापि रुपेण । देवानामपि हु दुर्लभं निरर्थकं नयसि तारुण्यम् ? ॥ २११ ॥
तया भणितं भगवति ! मम भर्ता वशीकृतः कथमपि । कयापि तापसकन्यया साम्प्रतं किं करोम्यहम् ? ॥ २१२ ॥
सापि हु जल्पति यदि भणसि तव वशवर्तिनिं करोमि तकम् । ततो रुक्मिण्योक्तं भगवति ! भुवनेऽपि तव कार्यम् ॥२१३॥
नास्त्यसाध्यं किञ्चिदपि ततो ममोपरि कृत्वा कारुण्यम् । तथा कथमपि यतस्व सम्प्रति समीहितं भवति यथा मम ॥ २१४॥
एवं तयोक्ताऽनवरतप्रयाणकैः सम्प्राप्ता । रथमर्दने नगरे दृष्टः कुमारः सह प्रियया ॥ २१५ ॥
ततश्चिन्तितमनयार्षिदत्तारुपसंपदं दृष्ट्वा । एवंविधरुपेण मुह्यते को नैतस्याः ? ॥ २१६ ॥
जीवन्त्या एतस्या स्वप्नेऽपि न रुक्मिणिंकाङ्क्षति कुमारः । कोऽमृतपानतृप्तः काञ्जिकमभिलषति मुर्खोऽपि ? ॥२१७॥
परमेतादृशपापं नरकदुःखावहमनार्यचरिताहम् । गुणवतीं प्राप्तामिमां मारयित्वा कथमाचरिष्यामि ? २१८ ॥
इति पुनः करुणां कृत्वा व्यवसामि न साहसमिदं कथमपि । ततो भ्रष्टप्रतिज्ञाहं कथं तस्याः पुरो भविष्यामि ? ॥२१९॥
इति चिन्तयित्वा तया करुणाविकलया क्रूरकर्मया । सर्वजनक्षयकारी विद्यया विकुर्विता मारी ॥ २२० ॥
मनोमोहन्या विद्यया मारयित्वा राजसंमतपुरुषम् । रुधिरेण हस्तमुखे ऋषिदत्ताया विलिम्पति ॥ २२१ ॥

दट्ठुणं तं वइयरममसरूवं जणो पयंपेइ । कुमरऽत्थाणे पावस्स कस्स किर ववसियं एयं ? ॥ २२२ ॥
कुमरो पियाए वयणं दट्ठुं संजायविम्हओ भणइ । किं तुह चेट्ठियमेयं ? ति सा वि जंपइ न याणामि ॥ २२३ ॥
बीयम्मि दिणे तह चेव रायपुरिसं विणासिउं पावा । मुंचइ रिसिदत्ताए सयणे नरमंसखंडाइं ॥ २२४ ॥
कुमरो वि तयं दट्ठुं चिंतइ नणु रक्खसी पिया मज्झ । सा वि हु पुट्ठा सुद्धस्सहावओ भणइ तं चेव ॥ २२५ ॥
कुमरो वि ताणि धरणीए गोवए हडु-मंसखंडाइं । तइए विं दिणे तह चेव मारिउं कुणइ तं चेव ॥ २२६ ॥
नवरं कुमारछुरियं रुहिरेण विलिंपिउं वयइ गेहे । विज्जाए न सा नज्जइ निग्गच्छंती न पविसंती ॥ २२७ ॥
कुमरो वि तयं छुरियं रिसिदत्ताए पयासिउं भणइ । अज्ज पिए ! किं जंपसि ? सा जंपइ पुच्छ मह कम्मं ॥ २२८ ॥
पुणरवि य मोहमोहियमणेण सा दढयरं रहे पुट्ठा । कहसु पिए ! सब्भावं तुज्झ हियत्थं भणेमि अहं ॥ २२९ ॥
जह तुह माणुसमंसे कुओ वि कम्मोदयाओ रसगिद्धी । ता हं पच्छन्नं पि हु एयं संपाडइस्सामि ॥ २३० ॥
एवं भणिया लज्जाए किं पि ओणयमुही परुन्ना सा । किं तुह पिययम ! पच्छन्नमेरिसं किं कयावि कयं ? ॥ २३१ ॥
तुमए चिय सच्चवियं तवोवणे मज्झ भत्त-पाणाई । जइ पुण पच्छन्नं को वि कुणइ पहु ! तं न याणेमि ॥ २३२ ॥
कुमरो वि तीए दुस्सहविओगजणयं दुहं असहमाणो । सव्वं गोवइ पुट्ठो य भणइ नाहं वियाणामि ॥ २३३ ॥
ताहे रुट्ठो राया पुच्छइ नियमंतिणो नयरमज्झे । वइससमेयं न मुणह तुम्हाणं केरिसा बुद्धी ? ॥ २३४ ॥
तेहिं वि सविणसमुत्तं तहकह वि हु संपयं जइस्सामो। जह कज्जमिणं जायइ विन्नायं देवपायाण ॥ २३५ ॥

दृष्ट्वा तद्वयतीकरमस्वरुपं जनः प्रजल्पति । कुमारास्थाने पापस्य कस्य किल व्यवसितमेतत् ? ॥ २२२ ॥
कुमारः प्रियाया वदनं दृष्ट्वा सञ्जातविस्मयो भणति । किं तव चेष्टितमेतदिति सापि जल्पति न जानामि ॥ २२३ ॥
द्वितीयेदिने तथा चैव राजपुरुषं विनाश्य पापा । मुञ्चति ऋषिदत्तायाः शयने नरमांसखण्डानि ॥ २२४ ॥
कुमारोऽपि तकद् दृष्ट्वा चिन्तयति ननु राक्षसी प्रिया मम । सापि हु पृष्टा शुद्धस्वभावाद्भणति तच्चैव ॥ २२५ ॥
कुमारोऽपि तानि गृहिण्या गोपयत्यस्थिमांसखण्डानि । तृतीयेऽपि दिने तथा चैव मारयित्वा करोति तच्चैव ॥ २२६ ॥
नवरं कुमारच्छूरिकां रुधिरेण विलिम्प्य व्रजति गृहे । विद्यया न सा ज्ञायते निर्गच्छन्ती न प्रविशन्ती ॥ २२७ ॥
कुमारोऽपि तकच्छूरिकामृषिदत्तायाः प्रकाश्य भणति । अद्य प्रिये ! किं जल्पसि ? सा जल्पति पृच्छ मम कर्म ॥ २२८ ॥
पुनरपि च मोहमोहितमनसा सा दृढतरं रहसि पृष्टा । कथय प्रिये ! सद्भावं तव हृदयस्थं भणाम्यहम् ॥ २२९ ॥
यदि तव मनुष्यमांसे कुतोऽपि कर्मोदयाद्रसगृद्धिः । तदाहं प्रच्छन्नमपि खल्वेतत्सम्पादयिष्यामि ॥ २३० ॥
एवं भणिता लज्जया किमप्यवनतमुखी प्ररोदिता सा । किं तव प्रियतम ! प्रच्छन्नमीदृशं किं कदापि कृतम् ? ॥ २३१ ॥
त्वया चैव दृष्टं तपोवने मम भक्त-पानादयः । यदि पुनः प्रच्छन्नं कोऽपि करोति प्रभो ! तन्न जानामि ॥ २३२ ॥
कुमारोऽपि तस्या दुःसहवियोगजनकं दुखमसहमानः । सर्वं गोपयति पृष्टश्च भणति नाहं विजानामि ॥ २३३ ॥
तदा रुष्टो राजा पृच्छति निजमन्त्रिणो नगरमध्ये । वैषम्यमेतन्न मुणुत युष्माकं कीदृशा बुद्धिः ? ॥ २३४ ॥
तैरपि सविनयमुक्तं तथा कथमपि हु साम्प्रतं यतिष्यामहे । यथा कार्यमिदं जायते विज्ञातं देवपादानाम् ॥ २३५ ॥

इय भणिऊण पवीणा पव्वाया होइ एरिसे कज्जे । सायरमओ तयं चिय गंतुं पुच्छंति पव्वाइं ॥ २३६ ॥
तीए भणिए सव्वं सुत्थमहं संपयं करिस्सामि । रयणीए देवयं पुच्छिऊण तत्तं कहिस्सामि ॥ २३७ ॥
रयणीए रुहिरेणं रिसिदत्ताए मुहं विलिंपेउं । अवसोयणिं च दाउं रन्नो पासं गया पावा ॥ २३८ ॥
अभयं मग्गिय जंपइ रिसिदत्ताचेट्ठियं इमं राय ! । जा जोयावइ राया ता पेच्छइ तं तह च्चेव ॥ २३९ ॥
तो जायपच्चाएणं रन्ना निस्सारिऊण सा बाला । पाणाणमप्पिया मारणत्थमकयावराहा वि ॥ २४० ॥
पाणेहिं वज्झमंडलपुव्वं सा विनडिऊण नयरीए । नीया निद्दयहियएहिं तेहिं भीमे मसाणम्मि ॥ २४१ ॥
कत्थइ भल्लुंकियरुद्दसद्दविद्दवियकायरजणोहं । कत्थवि य कूरकोल्हुयदाढाविक्कत्तियकरंकं ॥ २४२ ॥
कत्थवि य मडयवस-मंसपुट्ठवेयालभूरिभयजणयं । कत्थवि य विहियसंकुद्धसाइणीकिलिकिलारावं ॥२४३॥
कत्थवि य पयडडज्झंतमडयदुग्गंधभरियादिसिविवरं । कत्थवि य दूरमूब्भवियबाहुनच्चंतभूयगणं ॥ २४४ ॥
कत्थवि य वीरविक्किज्जमाणनियदेहमंसखंडलयं । कत्थवि कावालियकीरमाणवरविज्जसाहणयं ॥ २४५ ॥
इय एरिसविहभीसणमसाणमज्झम्मि मुक्किया बाला । सुमरिय कुमरं पलवइ पमुक्कलल्लकपोक्कारं ॥ २४६ ॥
हा पाणदइय ! हा अमयमइय ! हा निद्धहियय ! हा नाह ! । हा जीवियसम ! हा परममहिम ! हा पत्तजयपउम ॥२४७॥
सुसरय ! तुमं पि सहसा संजाओ कीस निग्घिणो ? कहसु । एक्क च्चिय पाणपिया जेणाहं तुज्झ सुयभज्जा ॥२४८॥
कत्तो वि हु आगंतुं मंभीसमु संपयं तुमवि ताय ! । आजम्मं पाणपिया जेणाहं तुज्झ नियधूया ॥ २४९ ॥

इति भणित्वा प्रवीणा प्रव्राजा भवदीदृशे कार्ये । सादरमतस्तकांचैव गत्वा पृच्छन्ति प्रव्राजिम् ॥ २३६ ॥
तया भणितं सर्वं सुस्थमहं करिष्यामि । रजन्यां देवतां पृष्ट्वा तत्त्वं कथयिष्यामि ॥ २३७ ॥
रजन्यां रुधिरेणर्षिदत्ताया मुखं विलिम्प्य । अवस्वापिनीं च दत्त्वा राज्ञः पार्श्वं गता पापा ॥ २३८ ॥
अभयं मार्गयित्वा जल्पति ऋषिदत्ता चेष्टितमिदं राजन् ! । यावद्दर्शयति राजा तावत्पश्यति तां तथा चैव ॥ २३९ ॥
ततो जातप्रत्ययेन राज्ञा निःसार्य सा बाला । पाणानामर्पिता मारणार्थमकृतापराधापि ॥ २४० ॥
पाणै र्वध्यमण्डनपूर्वं सा विनट्या नगर्याम् । नीता निर्दयहृदयैस्तैर्भीमे श्मशाने ॥ २४१ ॥
कुत्रचित् श्रृगालिरौद्रशब्दविद्रावितकातरजनौघम् । कुत्रापि च क्रूरशृगालदंष्ट्राविकर्तितकरङ्कम् ॥ २४२ ॥
कुत्रापि च मृतकवशामान्सपृष्टवैतालभूरिभयजनकम् । कुत्रापि च विहितसंक्रुद्धशाकिनीकिलकिलारावम् ॥ २४३ ॥
कुत्रापि च प्रकटदह्यमानमृतकदुर्गन्धभृतदिग्विवरम् । कुत्रापि च दूरमुर्ध्वितबाहुनृत्यद्भूतगणम् ॥ २४४ ॥
कुत्रापि च वीरविक्रीयमाणनिजदेहमांसखण्डलकम् । कुत्रापि च कापालिकक्रियमाणविद्यासाधनकम् ॥ २४५ ॥
इतीदृशविधभीषणस्मशानमध्ये मुक्ता बाला । स्मृत्वा कुमारं प्रलपति प्रमुक्तभयंकरपुत्कारम् ॥ २४६ ॥
हा प्राणदयित ! हाऽमयमतिक ! हा स्निग्धहृदय ! हा नाथ ! । हा जीवितसम ! हा परममहिम ! हा प्राप्तजयपद्म ॥ २४७ ॥
श्वसुरक ! त्वमपि सहसा सञ्जातः कथं निर्घृणः ? कथय । एका चैव प्राणप्रिया येनाहं तव सुतभार्या ॥ २४८ ॥
कुतोऽपि खल्वागत्य माबिभेः साम्प्रतं त्वमपि तात ! । आजन्मं प्राणप्रिया येनाहं तव निजदुहिता ॥ २४९ ॥

हा माए ! माए ! पियमइ ! कुओ वि सग्गालयाओ आगंतुं । भयसंभंतमसरणं परितायसु दुहियरं दुहियं ॥ २५० ॥
इय एवं विलवंती भीया भयभेरवे मसाणम्मि । तायारमविंदंती पडिया वसणंधकूवम्मि ॥ २५१ ॥
तयणंतरमनुब्भडभिउडीमासुरनिडालवट्टेहिं । उक्खायनिसियकत्तियविहत्थहत्थेहिं पाणेहिं ॥ २५२ ॥
आ पावे ! कूडकुहेडगाइदोसेहिं भरिय ! हयहियए !। भक्खसि रन्नो पुरिसे मारेउं रोवसि इयाणिं ॥ २५३ ॥
रे रे ! एयाए पावियाए निक्करुणकूरहिययाए । छिंदह नासा-कन्ने खग्गेणं लुणह सिरकमलं ॥ २५४ ॥
एवं भीसणवयणेहिं तेहिं निब्भच्छिया विवन्नमुही । खरपवणाहयतरुवरलय व्व परिकंपिउं लग्गा ॥ २५५ ॥
हा ताय ! ताय ! हा भाय ! भाय ! मा हणह पायवडिया हं । घेत्तूणाऽऽहरणाइं कुणह दयं मुयह जीवंती ॥ २५६ ॥
एत्थंतरम्मि पाणाण मज्झयारम्मि भणियमेगेण । एवंविहमेयाए संभवइ न निग्घिणं कम्मं ॥ २५७ ॥
अन्नं च सूरमिमं (?) गुणकलियं बालियं हणंताणं । केणावि कारणेणं न वहंति करा किमन्नेण ? ॥ २५८ ॥
अणुकूलकम्मपरिणामपेरिओ तीए चेव मायंगो । एगो जंपइ जीएण मज्झ जीवउ चिरं एसा ॥ २५९ ॥
तत्तो य तेहिं वुत्ता तुममेएणं विमोइया भद्दे ! । गच्छसु जत्थ न नज्जसि जइ पुण तं कह वि दीसिहसि ॥ २६० ॥
तो राय अम्हाणं कुलसंहारं करिस्सइ पउट्ठो । इय तज्जिऊण पाणा पेयवणाओ नियत्तंति ॥ २६१ ॥
सारिक्खमडयमत्थयमेगं छेत्तूण दंसियं रन्नो । पच्चयनिमित्तमेत्तो रिसिदत्ता जाइ भयभीया ॥ २६२ ॥
चलियस्स वाउवसओ तरुपत्तस्स वि पकंपमाणमणा । भीसणमसाणमज्झे धीराण वि तासंजणए ॥ २६३ ॥

हा मात ! मात ! प्रियमति ! कुतोऽपि स्वर्गालयादागत्य । भयसम्भ्रान्तामशरणां परित्रायस्व दुहितरं दुःखिताम् ॥ २५० ॥
इत्येवं प्रलपन्ती भीता भयभैरवे श्मशाने । त्रातारमविन्दन्ती पतिता व्यसनान्धकूपे ॥ २५१ ॥
तदनन्तरमनुद्भटभृकुटिभासुरनिडालपृष्टैः । उत्खातनिशितकर्त्रिकाव्यग्रहस्तैः पाणैः ॥ २५२ ॥
आ पापे ! कूटकुहेटकादिदोषै र्भृते ! हतहृदये ! । भक्षयसि राज्ञः पुरुषान् मारयित्वा रोदिषीदानीम् ॥ २५३ ॥
रे रे ! एतस्याः पापिकाया निष्करुणक्रुरहृदयायाः । छिन्द्ध नाशा-कर्णान् खड्गेन लुनीत शिरःकमलम् ॥ २५४ ॥
एवं भीषणवचनैस्तै र्निभर्त्सिता विवर्णमुखी । खरपवनाहततरुवरलतेव परिकम्पितुं लग्ना ॥ २५५ ॥
हा तात ! तात ! हा भ्रात ! भ्रात ! माध्नत पादपतिताहम् । गृहीत्वाऽऽभरणानि कुरुत दयां मुञ्चत जीवन्ती ॥ २५६ ॥
अत्रान्तरे पाणानां मध्ये भणितमेकेन । एवंविधायां सम्भवति न निर्घृणं कर्म ॥ २५७ ॥
अन्यच्च सुरममिमां (?) गुणकलितां बालिकां घ्नताम् । केनापि कारणेन न वहन्ति कराः किमन्येन ? ॥ २५८ ॥
अनुकूलकर्मपरिणामप्रेरितस्तस्याश्चैव मातङ्गः । एको जल्पति जीवेन मम जीवतु चिरमेषा ॥ २५९ ॥
ततश्च तैरुक्ता त्वमेतेन विमोचिता भद्रे ! । गच्छ यत्र न ज्ञायसे यदिपुनस्त्वं कथमपि द्रक्ष्यसि ॥ २६० ॥
तदा राजास्माकं कुलसंहारं करिष्यति प्रद्विष्टः । इति तर्जयित्वा पाणाः प्रेतवनान्निवर्तन्ते ॥ २६१ ॥
सादृक्ष्यमृतकमस्तकमेकं छित्वा दर्शितं राज्ञः । प्रत्ययनिमित्तमितो ऋषिदत्ता याति भयभीता ॥ २६२ ॥
चलितस्य वायुवशात्तरुपत्रादपि प्रकम्पमानमना । भीषणस्मशानमध्ये धीराणामपि त्राससञ्जनके ॥ २६३ ॥

---

१. मच्चब्भुयभिउडी० रं० ।

एगागिणी असरणा धीरत्तणवज्जिया सहावेण । पयचारेणं गच्छइ सिरीसपुप्फं व सुकुमारा ॥ २६४ ॥
न तहा सा दूमिज्जइ नियतणुसुकुमारयाए गच्छंती । जह मिच्छारोवियदूसणेण हिययम्मि भणियं च ॥ २६५ ॥
संतगुणविप्पणासे असंतदोसुब्भवे य जं दुक्खं । तं सोसेइ समुद्दं किं पुण हिययं मणुस्साणं ? ॥ २६६ ॥
अहवा वि भवावट्टम्मि वट्टमाणं सकम्मुणा जीवं । तं नत्थि किंपि विसमं जं न सहावइ विही एसो ॥ २६७ ॥
तथा हि–
एयम्मि पराहुत्ते जियाण जणओ वि वइरिओ होइ । बहुदुक्खलक्खजणणी जणणी वि हु जायए वग्धी ॥२६८॥
मित्तो वि सत्तुभावं पडिवज्जइ संपया वि विवयसमा । सच्चं पि होइ अलियं नओ वि अनओ गुणो दोसो ॥२६९॥
एवं परिभावंती विसन्नहियया विमूढदिसियक्का । दक्खिणदिसाए चलिया साहसमवलंबिय मणागं ॥ २७० ॥
कत्थवि य वीसमंती तरुवरछायासु कयफलाहारा । विसहंती तिस-भुक्खं निवसंती देसियकुडीसु ॥ २७१ ॥
पत्ता पभूयकालेण कह वि किच्छेण तम्मि चेव वणे । दट्ठुण तं पएसं जणयं सरिउं गया मुच्छं ॥ २७२ ॥
हा ताय ! किं न पेच्छसि नियदुहियं निवडियं दुहसमुद्दे ? । संभाससि किं न तुमं ? तुह पाणपिया अहं आसि ॥२७३॥
इय पलवंती असमंजसाइं संधीरिऊणमप्पाणं । रे जीव ! किं न बुज्झसि ? किं मुज्झसि ? कत्थ सो ताओ ? ॥२७४॥
कत्थ तुमं ? किं मूढा ? जमेस एवंविहो विहिनिओगो । ता नियकयस्स मोक्खो संपइ सम्मं सहंतस्स ॥ २७५ ॥
जइ पविससि पायालं लुक्कसि गिरिकंदरेसु विसमेसु । तह वि हु पुव्वकयाओ न मुच्चसे जीव ! किं बहुणा ? ॥२७६॥

एकाकिन्यशरणा धीरत्ववर्जिता स्वभावेन । पदचारेण गच्छति शिरीषपुष्पमिव सुकुमारा ॥ २६४ ॥
न तथा सा दूयते निजतनुसुकुमारतया गच्छन्ती । यथा मिथ्यारोपितदूषणेन हृदये भणितं च ॥ २६५ ॥
सद्गुणविप्रणाशेऽसद्दोषोद्भवे च यद् दुःखम् । तत् शोषयति समुद्रं किं पुनर्हृदयं मनुष्याणाम् ? ॥ २६६ ॥
अथवापि भवावर्ते वर्तमानं स्वकर्मणा जीवम् । तन्नास्ति किमपि विषमं यन्न साहयति विधिरेषः ॥ २६७ ॥
तथाहि –
एतस्मिन् परांमुखे जीवानां जनकोऽपि वैरीको भवति । बहुदुःखलक्षजननी जनन्यपि खलु जायते व्याघ्री ॥२६८॥
मित्रमपि शत्रुभावं प्रतिपद्यते संपदपि विपत्समा । सत्यमपि भवत्यलिकं नयोऽप्यनयो गुणो दोषः ॥ २६९ ॥
एवं परिभावयन्ती विषण्णहृदया विमूढदिक्चक्रा । दक्षिणदिशि चलिता साहसमवलम्ब्य मनाक् ॥ २७० ॥
कुत्रापि विश्राम्यन्ती तरुवरछायासु कृतफलाहारा । विसहमाना तृषा-बुभुक्षां निवसन्ती दैशिककुटीषु ॥ २७१ ॥
प्राप्ता प्रभूतकालेन कथमपि कृच्छ्रेण तस्मिंश्चैव वने । दृष्ट्वा तं प्रदेशं जनकं स्मृत्वा गता मूर्च्छाम् ॥ २७२ ॥
हा तात ! किं न प्रेक्षसे निजदुहितरं निपतितां दुःखसमुद्रे ?। सम्भाषसे किं न त्वं ? तव प्राणप्रियाऽहमासीत् ॥ २७३ ॥
इति प्रलपन्त्यसमञ्जसानि संधीर्यात्मानम् । रे जीव ! किं न बुध्यसे ? किं मुह्यसि ? कुत्र स तातः ? ॥ २७४ ॥
क्व त्वं ? किं मूढा ? यदेष एवंविधो विधिनियोगः । ततो निजकृतस्य मोक्षः सम्प्रति सम्यक् सहमानस्य ॥ २७५ ॥
यदि प्रविशसि पातालं निलीनासि गिरिकन्दरेषु विषमेषु । तथापि खलु पूर्वकृतान्नमुञ्चसि जीव ! किं बहुना ? ॥ २७६ ॥

एवं विवेयवसओ वल्लहभावाओ जम्मभूमीए । मणयं पत्तसामाही सा वसइ तवोवणे तम्मि ॥ २७७ ॥
अह अन्नया य तीए विचिंतियं पढमजोव्वणत्था हं । ता सीलरयणमेयं रक्खेयव्वं कहं नु मए ? ॥ २७८ ॥
जम्हा महिला महुरत्तणेण पयईए पत्थणिज्जगुणा । चिंचापक्कफलं पिव वड्ढियवंछा जयस्सावि ॥ २७९ ॥
सीलं च मएऽवस्सं रक्खेयव्वं सपाणचाए विं । एयम्मि विणट्ठम्मि नो इहलोओ न परलोओ ॥ २८० ॥
सीलं महानिहाणं सुकुलुप्पन्नाण भावभंडारो । वसणसयसल्लियाणं सरणमिमं जेण भणियं च ॥ २८१ ॥
सीलं सासयवित्तं परमपवित्तं अकित्तिमं मित्तं । उत्तमकित्तिनिमित्तं मुत्तिसुहपसाहणपसत्थं ॥ २८२ ॥
अधणाण धणं सीलं भूसणरहियाण भूसणं परमं । परदेसे नियगेहं सयणविमुक्काण नियसयणो ॥ २८३ ॥
ता केण पओगेणं आजम्ममगंजियं इमं होही । ता सुमरियमुवइट्ठं जणएणं मूलियावत्थुं ॥ २८४ ॥
जणएण मज्झ कहियं वि हु कोउयं जइ हवेज्जा । ता एयाए तरुमूलियाए माहप्पमेयं ति ॥ २८५ ॥
जइ महिला वामे ऊरुयम्मि पक्खिवइ फालिऊणमिमं । तो पुरिसो जायइ नीणियाए जायइ पुणो महिला ॥२८६॥
एयं चिय विवरीयं नारीभवणम्मि जाण पुरिसस्स । नवरं दाहिणऊरुम्मि तं वियड्ढा ववइसंति ॥ २८७ ॥
तह चेव तीए विहिए जाओ सहस त्ति सोहणो पुरिसो । पयईए दुद्धरिसो मणुन्नलायन्नरूवधरो ॥ २८८ ॥
चक्कंकुस-कलसंकियकर-चरणतलो वियड्ढिमानिलओ । मणि-मंत-ओसहीणं अचिंतमाहप्पजोगाओ ॥ २८९ ॥
तो जणयवयं घेत्तुं तावसवयवेसधारओ कुमरो । चिट्ठइ वक्कलवसणो तवोवणे कंदफलभोई ॥ २९० ॥

एवं विवेकवशाद्वल्लभभावाज्जन्मभूमेः । मनाक् प्राप्तसमाधिः सा वसति तपोवने तस्मिन् ॥ २७७ ॥
अथान्यदा च तया विचिन्ततं प्रथमयौवनस्थाहम् । ततः शीलरत्नमेतद्रक्षितव्यं कथं नु मया ? ॥ २७८ ॥
यस्मान्महिला मधुरत्वेन प्रकृत्या प्रार्थनीयगुणा । चिञ्चापक्वफलमिव वर्धितवाञ्छा जगतोऽपि ॥ २७९ ॥
शीलं च मयावश्यं रक्षितव्यं स्वप्राणत्यागेऽपि । एतस्मिन् विनष्टे नेहलोको न परलोकः ॥ २८० ॥
शीलं महानिधानं सुकुलोत्पन्नानां भावभण्डागारः । व्यसनशतशल्यितानां शरणमिदं येन भणितं च ॥ २८१ ॥
शीलं शाश्वतवित्तं परमपवित्रमकृत्रिमं मित्रम् । उत्तमकीर्तिनिमित्तं मुक्तिसुखप्रसाधनप्रशस्तम् ॥ २८२ ॥
अधनानां धनं शीलं भूषणरहितानां भूषणं परमम् । परदेशे निजगृहं स्वजनविमुक्तानां निजस्वजनः ॥ २८३ ॥
ततः केन प्रयोगेणाजन्माखण्डितमिदं भविष्यति । ततः स्मृत्वोपदिष्टं जनकेन मूलिकावस्तु ॥ २८४ ॥
जनकेन मम कथितं कदापि खलु कौतूकं यदि भवेत् । तदैतस्यास्तरुमूलिकाया माहात्म्यमेतदिति ॥ २८५ ॥
यदि महिला वामे उरौ प्रक्षिपति स्फाटित्वेदम् । तदा पुरुषो जायते नीताया जायते पुनर्महिला ॥ २८६ ॥
एतच्चैव विपरितं नारीभवने जानीहि पुरुषस्य । नवरं दक्षिणोरौ तं विदग्धा व्यपदिश्यन्ति ॥ २८७ ॥
तथा चैव तया विहिते जातः सहसेति शोभनः पुरुषः । प्रकृत्या दुर्धर्षो मनोज्ञलावण्यरुपधरः ॥ २८८ ॥
चक्राङ्कुश-कलशांकितकर-चरणतलो विदग्धिमानिलयः । मणि-मन्त्रौषधीनामचिन्त्यमाहात्म्ययोगात् ॥ २८९ ॥
ततो जनकव्रतं गृहीत्वा तापसव्रतवेशधारकः कुमारः । तिष्ठति वल्कलवसनस्तपोवने कन्दफलभोजी ॥ २९० ॥

एवं सा रिसिदत्ता तावसवेसेण सुत्थिया वसइ । एत्तो य तीए विरहे कणगरहो जायरणरणओ ॥ २९१ ॥
न लहइ रइं निसाए न य दिवसे न य गिहे न वि य सयणे । न य कीलावावीए न य उज्जाणे न यऽत्थाणे ॥२९२॥
न य कीलइ न य भुंजइ न सुयइ न कुणइ कलाणमब्भासं । नवरं हसइ वियंभइ गायइ रोयइ नियइ सुन्नं ॥२९३॥
नावेक्खइ गय-तुरए न कुणइ गुरु-जणय-जणणिपडिवत्तिं । नवरं सुमरिय दइयं कुणइ पलावे विविहरूवे ।२९४।
हा तारुन्नयसिहिणे ! हा ससिवयणे ! सरोयदलनयणे ! । कलकंठिमहुरवयणे ! वित्थयरमणे ! ललियगमणे ! ॥२९५॥
नियरूवविजियविलए ! रमणीतिलए ! समग्गगुणनिलए ! । हरिसेणजणयदइए ! तं दइए ! कत्थ दच्छीहं ? ॥२९६॥
अम्मा-पिऊहिं किच्छेण कारिओ पत्थुयं सरीरठिइं । अच्छइ तहेव तग्गयचित्तो परिचत्तवावारो ॥ २९७ ॥
एत्तो कावेरीओ सुंदरपाणिस्स संतिओ दूओ । संपत्तो सो संपइ देवाहं पेसिओ पहुणा ॥ २९८ ॥
भणियं च तेण एसा मह कन्ना रुप्पिणी महाराय ! । पुरिसंतरस्स सुंदर ! सुविणे वि न गिण्हए नामं ॥ २९९ ॥
रन्ना भणियं कुमरो तावसकन्नं विवाहिउं वलिओ । सा पंचत्तं पत्ता संपइ तह तं भणिस्सामि ॥ ३०० ॥
जह तुज्झ सुयं परिणइ मा एयं अन्नहा वियप्पेसु । इय भणिऊणं दूओ विसज्जिओ हेमरहरन्ना ॥ ३०१ ॥
तत्तो कुमरो भणिओ मुंचसु सोयं समुज्झसु विसायं । नट्ठविणट्ठे कज्जे गुरुया एवं न सोयंति ॥ ३०२ ॥
ता वच्चसु तुममिण्हिं कावेरीए विवाहिउं कन्नं । आगच्छ वच्छ ! पच्छा परिचिंतसु रज्जकज्जाइं ॥ ३०३ ॥
उवरोहसीलयाए संचलिओ सबलवाहणोकुमरो । हियए समुव्वहंतो रिसिदत्तं देवयं व सया ॥ ३०४ ॥

एवं सार्षिदत्ता तापसवेशेन सुस्थिता वसति । इतश्च तस्या विरहे कनकरथो जातरणरणकः ॥ २९१ ॥
न लभते रतिं निशि न च दिवसे न गृहे नापि च शयने । न च क्रीडावाप्यां न चोद्याने न चास्थाने ॥ २९२ ॥
न च क्रीडति न च भुङ्क्ते न च स्वपिति न करोति कलानामभ्यासम् । नवरं हसति विजृम्भति गायति रोदिति पश्यति शून्यम् ।२९३।
नापेक्षते गज-तुरगान्न करोति गुरु-जनक-जननी प्रतिपत्तिम् । नवरं स्मृत्वा दयितां करोति प्रलापान् विविधरुपान् ॥ २९४ ॥
हा तारुण्यकशिखिने ! हा शशिवदने ! सरोजदलनयने ! । कलकण्ठीमधुरवदने ! विस्तृतरमणे ! ललितगमने ! ॥ २९५ ॥
निजरुपविजितवनिते ! रमणीतिलके ! समग्रगुणनिलये ! । हरिषेणजनकदयिते ! त्वां दयिते ! कुत्र द्रक्ष्यामि ? ॥ २९६ ॥
अम्मा-पितृभ्यां कृच्छ्रेण कारितः प्रस्तुतं शरीरस्थितिः । आस्ते तथैव तद्गतचित्तः परित्यक्तव्यापारः ॥ २९७ ॥
इतः कावेर्याः सुन्दरपाणेः सत्को दूतः । सम्प्राप्तः स सम्प्रति देवाहं प्रेषितः प्रभुणा ॥ २९८ ॥
भणितं च तेनैषा मम कन्या रुक्मिणी महाराज ! । पुरुषान्तरस्य सुन्दर ! स्वप्नेऽपि न गृह्णाति नाम ॥ २९९ ॥
राज्ञा भणितं कुमारस्तापसकन्यां विवाह्य वलितः । सा पञ्चत्वं प्राप्ता सम्प्रति तथा तं भणिष्यामि ॥ ३०० ॥
यथा तव सुतां परिणयति मैनमन्यथा विकल्पय । इति भणित्वा दूतो विसर्जितो हेमरथराज्ञा ॥ ३०१ ॥
ततः कुमारो भणितो मुञ्च शोकं समुज्झ विषादम् । नष्टविनष्टे कार्ये गुरुका एवं न शोचन्ति ॥ ३०२ ॥
ततो व्रज त्वमिदानीं कावेर्यां विवाह्य कन्याम् । आगच्छ वत्स ! पश्चात् परिचिन्तय राज्यकार्याणि ॥ ३०३ ॥
उपरोधशीलतया सञ्चलितः सबलवाहनः कुमारः । हृदये समुद्वहन् ऋषिदत्तां देवतामिव सदा ॥ ३०४ ॥

पत्तो कयवयदिवसेहिं तं वणं जत्थ आसि रिसिदत्ता । तव्विरहे तं चेव य उव्वेयकरं मसाणं व ॥ ३०५ ॥
एत्थंतरम्मि फुरियं दाहिणनयणेण तस्स कुमरस्स । नायं च तेण सूयइ पियमेलयमेयमुत्तं च ॥ ३०६ ॥
सिरफुरणे किर रज्जं पियमेलो होइ अच्छिफुरणम्मि । बाहुफुरणम्मि पियजणभुयालयालिंगणं जाण ॥३०७॥
दिट्ठो तावसकुमरो परिब्भमंतेण तेण कुमरेण । तद्दंसणेण जाओ तस्स अउव्वो पमोयभरो ॥ ३०८ ॥
हरिसाऊरियमणसा तावसकुमरेण पच्चभिन्नाओ । पणमिय सो तप्पुरओ उवविट्ठो अमयसित्तो व्व ॥ ३०९ ॥
पुट्ठं च कुमारेणं भयवं ! तुह पढमजोव्वणत्थस्स । एगाणिणो अरन्ने केत्तियकालं वसंतस्स ॥ ३१० ॥
तेण वि भणियं सुंदर ! हरिसेणो एत्थ तावसो आसि ! । रिसिदत्ता तद्धूया कत्थइ सा परिणिउं नीया ॥३११॥
केण वि कुमरेण रिसी सो जलणं साहिउं गओ सग्गं । अहयं पुण संपत्तो अन्नंतो कुमर ! कइया वि ॥ ३१२ ॥
सुन्नमिमं रमणीयं नाउं एत्थेव ताव निवसामि । असमसमाहाणजुओ कुणमाणो नियमणुट्ठाणं ॥ ३१३ ॥
कुमरेण चिंतियमिणं तावसकुमरं अहं नियच्छंतो । पच्चक्खं रिसिदत्तं नियदइयं चेव पेच्छामि ॥ ३१४ ॥
कुमरेणं सो भणिओ केणावि हु कारणेण तं भयवं ! । अवलोयंतो मन्ने नयणनिमेसं पि विग्घमहं ॥ ३१५ ॥
तो जाव वसामि अहं तवोवणे ताव मज्झ पासम्मि । वसियव्वं सुयणु ! तए महापसायं विहेऊण ॥ ३१६ ॥
तावसकुमरेणुत्तं तवोहणाणं समं गिहत्थेहिं । केरिसओ संबंधो ?, न संगयं ता इमं कुमर ! ॥ ३१७ ॥
चलणेसु निवडिऊणं तं मन्नाविय विणिग्गए कुमरे । सा पावा पव्वाया परिब्भमंती तहिं पत्ता ॥ ३१८ ॥

प्राप्तः कतिपयदिवसैस्तद्वनं यत्रासीदृषिदत्ता । तद्विरहे तां चैव चोद्वेगकरं स्मशानमिव ॥ ३०५ ॥
अत्रान्तरे स्फुरितं दक्षिणनयनेन तस्य कुमारस्य । ज्ञातं च तेन सूचयति प्रियमेलकमियमुक्तं च ॥ ३०६ ॥
शिरः स्फुरणे किल राज्यं प्रियमेलो भवत्यक्षिस्फुरणे । बाहुस्फुरणे प्रियजनभुजालतालिङ्गनं जानीहि ॥ ३०७ ॥
दृष्टस्तापसकुमारः परिभ्रमता तेन कुमारेण । तद्दर्शनेन जातस्तस्यापूर्वः प्रमोदभरः ॥ ३०८ ॥
हर्षापूरितमनसा तापसकुमारेण प्रत्यभिज्ञातः । प्रणम्य स तत्पुरत उपविष्टोऽमृतसिक्त इव ॥ ३०९ ॥
पृष्टं च कुमारेण भगवन् ! तव प्रथमयौवनस्थस्य । एकाकिनोऽरण्ये कियत्कालं वसतः ॥ ३१० ॥
तेनापि भणितं सुन्दर ! हरिषेणोऽत्र तापस आसीत् । ऋषिदत्ता तद् दुहिता कुत्रचित् सा परिणीय नीता ॥ ३११ ॥
केनापि कुमारेण ऋषि स ज्वलनं साध्य गतः स्वर्गम् । अहं पुनः संप्राप्तोऽन्यतः कुमार ! कदापि ॥ ३१२ ॥
शून्यमिदं रमणीयं ज्ञात्वात्रैव तावन्निवसामि । असमसमाधानयुतः कुर्वाणो नियमानुष्ठानम् ॥ ३१३ ॥
कुमारेण चिन्तितमिदं तापसकुमारमहं पश्यन् । प्रत्यक्षमृषिदत्तां निजदयितां चैव प्रेक्षे ॥ ३१४ ॥
कुमारेण स भणितः केनापि हु कारणेन त्वां भगवन् ! । अवलोकयन् मन्ये नयननिमेषमपि विघ्नमहम् ॥ ३१५ ॥
ततो यावद्वसाम्यहं तपोवने तावन्मम पार्श्वे । उषितव्यं सुतनु ! त्वया महाप्रसादं विधाय ॥ ३१६ ॥
तापसकुमारेणोक्तं तपोधनानां समं गृहस्थैः । कीदृशः सम्बन्धः ? न संगतं तत इदं कुमार ! ॥ ३१७ ॥
चरणयो र्निपत्य तं मानयित्वा विनिर्गते कुमारे । सा पापा प्रव्राजा परिभ्रमन्ती तत्र प्राप्ता ॥ ३१८ ॥

पुट्ठो तावसकुमरो तीए नमिऊण भयवमेगागी । कह कुणसि तवं रन्न[म्मि]भीसणे पढमतारुन्ने ? ॥ ३१९ ॥
तेणावि चिंतियमिमं कइया वि हु सा वि संभवइ एसा । निग्घिणसिरोमणीए जीए निव्वासिया अहयं ॥३२०॥
तो तावसेण भणियं ओसहिविज्जा-तवाणु भावाओ । पभवइ न किं पि मज्झं गुरूवइट्ठं कुणंतस्स ॥ ३२१ ॥
पुणरवि य तीए भावावगमनिमित्तं पयंपियं मुणिणा । तुममवि भद्देगागिणी कहं भमसि किसि[यका]या य ॥३२२॥
किं सिस्सिणी वि बीया न अत्थि ? कत्तो य आगया इहइं ? । तीए वि एसो जइ किंचि तावसो मज्झ विज्जाइ ॥३२३॥
देइ इय चिंतिऊणं भणियं भयवं ! ममावि विज्जाओ । अवसोयणि-तालुग्धाडणीओ विज्जंति विविहाओ ॥३२४॥
तो तं मज्झ पयच्छसु अहं तु तुह देमि अप्पणिज्जाओ । मुणिणा भणियं विज्जाण केरिसं तुज्झ माहप्पं ? ॥३२५॥
तीए अमुणंतीए तच्चं[1] सव्वं पयासियं तस्स । जह कावेरिपुरीओ पत्ता रहमद्दणपुरम्मि ॥ ३२६ ॥
अह कुमरपिययमाए रक्खसिवायं पुरम्मि पयडेउं । कुमरपियं मारावि य कुमरेण समं समायाया ॥ ३२७ ॥
रुप्पिणिपरिणयणत्थं इमो मए चेव चालिओ कुमरो । एयं मह विज्जाणं माहप्पं तावसकुमार ! ॥ ३२८ ॥
मुणिणा भणियं कज्जं न मज्झमेयाहिं पाववि़ज्जाहिं । इय भणियम्मि निरासा सट्ठाणं सा गया पावा ॥ ३२९ ॥
एत्थंतरम्मि भाणू अत्थमणमिसेण दुयमइक्कंतो । पव्वाइयाए तीसे कुचेट्ठियं दट्ठुमचयंतो ॥ ३३० ॥
कुमरोवि सुइरमब्भत्थिओ वि किं नाऽऽगओ कुमारमुणी ? । इय भावितो पुणरवि तस्स सयासम्मि संपत्तो ॥३३१॥
पेच्छइ झाणारूढं झाणसमत्तीए गरुयविणएणं । अब्भत्थिऊण नीओ नियसेन्ने तावसकुमारो ॥ ३३२ ॥

पृष्ट तापसकुमारस्तया नत्वा भगवन्नेकाकी । कथं करोषि तपोऽरण्ये भीषणे प्रथमतारुण्ये ? ॥ ३१९ ॥
तेनापि चिन्तितमिदं कदापि हु सापि सम्भवत्येषा । निर्घृणशिरोमण्या यया निर्वासिताऽहम् ॥ ३२० ॥
ततस्तापसेन भणितमौषधिविद्या-तपानुभावात् । प्रभवति न किमपि मम गुरूपदिष्टं कुर्वतः ॥ ३२१ ॥
पुनरपि च तस्या भावावगमनिमित्तं प्रजल्पितं मुनिना । त्वमपि भद्रे एकाकिनी कथं भ्रमसि कृशितकाया च ॥ ३२२ ॥
किं शिष्यिण्यपि द्वितीया नास्ति ? कुतश्चागतेह ? । तयाप्येष यदि किञ्चित्तापसो मम विद्यादयः ॥ ३२३ ॥
ददातीति चिन्तयित्वा भणितं भगवन् ! ममापि विद्येः । अवस्वापिनी - तालोद्घाटिन्यौ विद्येते विविधे ॥ ३२४ ॥
ततस्त्वं मह्यं प्रयच्छाहं तु तुभ्यं ददाम्यात्मनीयाः । मुनिना भणितं विद्यानां कीदृशं तव माहात्म्यम् ? ॥ ३२५ ॥
तयामुणन्त्या तत्त्वं सर्व प्रकाशितं तस्य । यथा कावेरिपुर्याः प्राप्ता रथमर्दनपुरे ॥ ३२६ ॥
यथा कुमारप्रियतमाया राक्षसीवादं पुरे प्रकटयित्वा । कुमारप्रियां मारयित्वा कुमारेण समं समायाता ॥ ३२७ ॥
रुक्मिणि परिणयनार्थमयं मया चैव चालितः कुमारः । एतन्मम विद्यानां माहात्म्यं तापसकुमार ! ३२८ ॥
मुनिना भणितं कार्यं न ममैताभिः पापविद्याभिः । इति भणिते निराशा स्वस्थानं गता पापा ॥ ३२९ ॥
अत्रान्तरे भानुरस्तमनमिषेण द्रुतमतिक्रान्तः । प्रव्राजिकायास्तस्याः कुचेष्टितं द्रष्टुमपारयन् ॥ ३३० ॥
कुमारोऽपि सुचिरमभ्यर्थितोऽपि किं नागतः कुमारमुनिः ? । इति भावयन् पुनरपि तस्य सकाशे सम्प्राप्तः ॥ ३३१ ॥
पश्यति ध्यानारूढं ध्यानसमाप्तौ गुरुकविनयेन । अभ्यर्थ्य नीतो निजसैन्ये तापसकुमारः ॥ ३३२ ॥

---

१. तत्त्वम् खं० टिप्पणी ।

पच्चासन्ने रयणीए दो वि सयणेसु तावस-कुमारा । ससिणेहसंकहासुहियमाणसा तत्थ परिवसिया ॥ ३३३ ॥
भणियं तावसकुमरेण कुमर ! किर केरिसाऽऽसि रिसिदत्ता ? । जीए कए परितम्मसि तुममेवं निब्भरसिणेहो ॥३३४॥
कुमरेणुत्तं तीए वन्निज्जइ किर किमेगजीहाए ? । सा जेण पयावइणा गुणमइया चेव निम्मविया ॥ ३३५ ॥
रूवं रइरूवनिभं लायन्नं गिरिसुयाए अब्भहियं । सुंदेरं देवीण वि न दीसए तारिसं मित्त ! ॥ ३३६ ॥
अवरे वि महुरभासण-दाण-दया-विणयपमुहगुणनिवहा । जोइज्जंता वि जणे दीसंति न अन्ननारीणं ॥ ३३७ ॥
तीए सह सरसजंपिय-उवगूहिय-ललियसुरयरमियाइं । सुमरंतस्स न विदलइ मह हिययं वज्जनिम्मवियं ? ॥३३८॥
किंतु मह तुज्झ पासे मणयं संपज्जए सुहं मित्त ! । इयरह भुयणमसेसं विसं व मन्नामि तीए विणा ॥ ३३९ ॥
किं बहुणा ? दहदियहे रयणनिहिं दंसिऊणं तं दइयं । उद्दालिऊण विहिणा विडंबिओ किं करेमि अहं ? ॥ ३४० ॥
भणियं मुणिणा सुंदर ! मा तम्मसु एत्तियं कए तीसे । अवहरियं जं विहिणा सोयंति तयं न सप्पुरिसा ॥ ३४१ ॥
इय एवं जाव तहिं परोप्परं हुंति तेसिमालावा । ताव पहाया रयणी समागया[1] मंतिणो तत्थ ॥ ३४२ ॥
भणियं च कुमर ! दिज्जउ पयाणयं बहु विलंबियं एत्थ । पुणरवि य नियत्तेहिं एस मुणी एत्थ दट्ठव्वो ॥३४३॥
भणियं च कुमारेणं जइ एस मुणी मए समं चलइ । ता होइ पयाणयमिहरहा उ मह नियमओ नत्थि ॥ ३४४ ॥
इय कुमरनिच्छयं जाणिऊण तह कहवि तावसकुमारो । भणिओ मंतीहिं जहा संचलिओ सह कुमारेण ॥३४५॥
कावेरीए पुरीए अणवरयपयाणएहिं कणगरहो । संपत्तो तप्पहुणा पवेसिओ परमभूईए ॥ ३४६ ॥

प्रत्यासन्ने रजन्यां द्वावपि शयनेषु तापस - कुमारौ । सस्नेहसङ्कथासुखितमानसौ तत्र पर्युषितौ ॥ ३३३ ॥
भणितं तापसकुमारेण कुमार ! किल कीदृशाऽऽसीद्रुषिदत्ता ?। यस्याः कृते परिताम्यसि त्वमेवं निर्भरस्नेहः ॥ ३३४ ॥
कुमारेणोक्तं तस्या वर्ण्यते किल किमेकजीव्ह्या ?। सा येन प्रजापतिना गुणमतिका चैव निर्मापिता ॥ ३३५ ॥
रुपं रतिरुपनिभं लावण्यं गिरिसुताया अभ्यधिकम् । सौन्दर्यं देवीनामपि न दृश्यते तादृशं मित्र ! ॥ ३३६ ॥
अपरेऽपि मधुरभाषण-दान-दया विनयप्रमुखगुणनिवहाः । दर्शयन्तोऽपि जने पश्यन्ति नान्यनारीणाम् ॥ ३३७ ॥
तया सह सरसजल्पितोपगूहित-ललितसुरतरन्तानि । स्मरतो न विदलयति मम हृदयं वज्रनिर्मापितम् ? ॥ ३३८ ॥
किंतु मम तव पार्श्वे मनाक् संपद्यते सुखं मित्र ! । इतरथा भुवनमशेषं विषमिव मन्ये तया विना ॥ ३३९ ॥
किं बहुना ? दशदिवसान् रत्ननिधिं दर्शयित्वा तां दयिताम् । उत्क्षिप्य विधिना विडम्बितः किं करोम्यहम् ? ॥ ३४० ॥
भणितं मुनिना सुन्दर ! मा ताम्येतावन्तं कृते तस्याः । अपहृतं यद्विधिना शोचन्ति तकन्न सत्पुरुषाः ॥ ३४१ ॥
इत्येवं यावत्तत्र परस्परं भवन्ति तेषामुल्लापाः । तावत्प्रभाता रजनी समागता मन्त्रिणस्तत्र ॥ ३४२ ॥
भणितं च कुमार ! दीयतां प्रयाणकं बहु विलम्बितमत्र । पुनरपि च निवर्तयद्भिरेष मुनिरत्र दृष्टव्यः ॥ ३४३ ॥
भणितं च कुमारेण यद्येष मुनि र्मया समं चलति । तदा भवति प्रयाणमितरथा तु मम नियमतो नास्ति ॥ ३४४ ॥
इति कुमारनिश्चयं ज्ञात्वा तथा कथमपि तापसकुमारः । भणितो मन्त्रिभि र्यथा सञ्चलितः सह कुमारेण ॥ ३४५ ॥
कावेर्यां पूर्यामनवरतप्रयाणकैः कनकरथः । सम्प्राप्तस्तत्प्रभुना प्रवेशितः परमभूत्या ॥ ३४६ ॥

---

१. समगया - प्रतौ ।

परिवाराइपरिगओ समप्पिओ तस्स पवरपासाओ । तो जोइसियविसोहियसुहकरण-मुहुत्त-लग्गम्मि ॥ ३४७ ॥
मंगलतूररवेणं नच्चिरवरविलयसत्थसुहएणं । वित्तं पाणिग्गहणं सह कुमरेणं कुमारीए ॥ ३४८ ॥
तत्थेव ठिओ कइय वि दिणाणि कुमरो सुहेण ससुरकुले । समयं तावसकुमरेण विविहसंगयविणोएण ॥ ३४९ ॥
अह अन्नया य सो रुप्पिणीए संजायपोढपणयाए । भणिओ सा केरिसिया रिसिकन्ना कहसु रिसिदत्ता ? ॥ ३५० ॥
जीए तुममंतराले वसीकओ आसि मं विमोत्तूण । तेणुत्तं जइ तीए का वि समा दीसए नारी ॥ ३५१ ॥
ता तुज्झ पिए ! साहेमि इहरहा कह णु तीरए कहिउं ? । किं बहुणा ? तारिसिया न लब्भए मंदपुन्नेहिं ॥ ३५२ ॥
विहिणो वसेण तीए हत्थुत्तिन्नाए जणयवयणाओ । तुज्झ पिए ! परिणयणत्थमागओ मुणसु सच्चमिमं ॥ ३५३ ॥
तो रिसिदत्ताअणुकूलकम्मपरिणइवसेण तीयुत्तं । पिययम ! तुमं न जाणसि जहा मए एत्थ आणीओ ॥ ३५४ ॥
कहमिव ? तीए सव्वो वि वइयरो साहिओ सुणंताणं । कणगरह-तावसाणं गुरुविम्हयमुव्वहंताणं ॥ ३५५ ॥
चिंतियमिसिदत्ताए विहियमिमं साहणं जमेयाए । पच्चक्खं दोण्हं पि हु महऽलीयकलंकमवणीयं ॥ ३५६ ॥
तं सोउं कणगरहो कोहहुयासणपलित्तसव्वंगो । दट्ठोट्ठभिउडिभीसणवयणो रत्तच्छिदुप्पेच्छो ॥ ३५७ ॥
अवसर दिट्ठिपहाओ तमेरिसं जइ तए समायरियं । मेच्छाणं चिय निंदियमिइ कडुयं रुप्पिणिं भणइ ॥ ३५८ ॥
संपइ रिसिदत्ताए इय मरणे किं मए जियंतेण ? । साहेमि जलणमिण्हि कट्ठह कट्ठे चियाजोग्गे ॥ ३५९ ॥
तं सोउं सव्वो वि हु मंतिजणो गुरुविसायमावन्नो । गुरुसोयसल्लियंगो निवेयए रायपायाण ॥ ३६० ॥

परिवारादिपरिगतः समर्पितस्तस्य प्रवरप्रासादः । तदा ज्योतिषिकविशोधितशुभकरणमुहूर्तलग्ने ॥ ३४७ ॥
मङ्गलतूर्यरवेण नृत्यद्वरवनितासार्थसुभगेन । वृत्तं पाणिग्रहणं सह कुमारेण कुमार्याः ॥ ३४८ ॥
तत्रैव स्थितः कत्यपि दिनानि कुमारसुखेन श्वसुरकुले । समकं तापसकुमारेण विविधसंगतविनोदेन ॥ ३४९ ॥
अथान्यदा च स रुक्मिण्या सञ्जातप्रौढप्रणयया । भणितः सा कीदृशी ऋषिकन्या कथयर्षिदत्ता ? ॥ ३५० ॥
यया त्वमन्तराले वशीकृत आसीन्मां विमुच्य । तेनोक्तं यदि तस्याः कापि समा दृश्यते नारी ॥ ३५१ ॥
तदा तव प्रिये ! कथयामीतरथा कथं नु तीर्यते कथयितुम् ? । किं बहुना ? तादृशी न लभ्यते मन्दपुण्यैः ॥ ३५२ ॥
विधेर्वशेन तस्या हस्तोतीर्णाया जनकवचनात् । तव प्रिये ! परिणयनार्थमागतो मुण सत्यमिदम् ॥ ३५३ ॥
ततो ऋषिदत्तानुकूलकर्मपरिणतिवशेन तयोक्तम् । प्रियतम ! त्वं न जानासि यथा मयात्रानीत ३५४ ॥
कथमिव ? तया सर्वोऽपि व्यतीकरः कथित शृण्वतोः । कनकरथ-तापसयो र्गुरुविस्मयमुद्वहतोः ॥ ३५५ ॥
चिन्तितमृषिदत्तया विहितमिदं कथनं यदेतया । प्रत्यक्षं द्वयोरपि हु ममालीककलङ्कमपनीतम् ॥ ३५६ ॥
तत् श्रुत्वा कनकरथः क्रोधहुताशनप्रदीप्तसर्वाङ्गः । दष्टौष्ठभृकुटिभीषणवदनो रक्ताक्षिदुष्प्रेक्ष्यः ॥ ३५७ ॥
अपसर दृष्टिपथात्त्वमीदृशं यदि त्वया समाचरितम् । म्लेच्छानामिव निन्दितमिति कटुकं रुक्मिणं भणति ॥ ३५८ ॥
सम्प्रति ऋषिदत्ताया इति मरणे किं मया जीवता ?। कथयामि ज्वलनमिदानीं कर्षत काष्ठान् चित्तायोग्यान् ॥ ३५९ ॥
तत् श्रुत्वा सर्वोऽपि हु मन्त्रिजनो गुरुविषादमापन्नः । गुरुशोकशल्यिताङ्गो निवेदयति राजपादानाम् ॥ ३६० ॥

तेणावि हु परिचिंतियमहो ! हु कुडिलत्तणं महेलाणं । जेण मए वि न नायं पच्छन्नं पेच्छ पावमिमं ॥ ३६१ ॥
धिद्धी ! एयाए पावियाए बहुकूडकवडभरियाए । नरयगइगामिणीए निंदियसच्चरियचेट्ठाए ॥ ३६२ ॥
एयं पि वयमिमीए सिरम्मि निवडउ अणज्जहिययाए । रक्खसिवायकयं पुण डहइं पि हु मत्थए पडियं ॥ ३६३ ॥
एवं खिंसिज्जंती पुरलोएणं पए पए पावा । लुयपुच्छ-कन्न-धूसरखरपिट्ठाऽऽरोवियसरीरा ॥ ३६४ ॥
विग्गोविऊण नयरे रन्ना निव्वासिया परिव्वाया । नारी जणे अवज्झ त्ति तेण जीवंतिया मुक्का ॥ ३६५ ॥
कुमरोवि हु जा न मुयइ कहिं पि भणिओ वि मरणनिब्बंधं । नायरजणेण रइया चिया तओ सारकट्ठेहिं ॥ ३६६ ॥
तत्तो वारंतस्स वि रन्नो नायरसमग्गलोयस्स । हाहारवमुहलस्स वि चित्तं चलिओ चियाए सो ॥ ३६७ ॥
सियवत्थ-विलेवण-कुसुमदास-ऽलंकारसेयमुत्ती वि । कणगरहो रिसिदत्ताणुरायगुणओ दढं रत्तो ॥ ३६८ ॥
तव्वयणाओ हुयासो जा किर पउणीकओ चियापासे । ता रन्ना विन्नत्तो विणएणं तावसकुमारो ॥ ३६९ ॥
भयवं ! तुह वयणमिमो न कयावि हु लंघए तओ एयं । तह कह वि हु भणसु जहा विरमइ एयाओ पावाओ ॥ ३७० ॥
भणिओ तावसकुमरेण भद्द ! किमिमं तए समारद्धं । नीयजणोच्चियमइनिंदियं च सुकुलप्पसूयाणं ॥ ३७१ ॥
अन्नं च तया तुमए तवोवणाओ ममाणयंतेण । भणियं कयकिच्चो हं तुममाणेऊण मुच्चिस्सं ॥ ३७२ ॥
तं विस्सरियं संपइ पारद्धं अवरमेव किं पि तए । कज्जं जइ जुत्तमिमं ता कुमर ! तमेव जाणासि ॥ ३७३ ॥
अहुणा अणुहूयमिणं पावं पावाइयाए जं विहियं । सा वि हु सुह-दुक्खाणं तुह भज्जा भायणं जाया ॥ ३७४ ॥

तेनापि हु परिचिन्ततमहो ! हु कुटिलत्वं महिलानाम् । येन मयापि न ज्ञातं प्रच्छन्नं पश्य पापमिदम् ॥ ३६१ ॥
धिग्धिगेतया पापया बहुकूटकपटभृतया । नरकगतिगामिन्या निन्दितसच्चरित्रचेष्टया ॥ ३६२ ॥
एतदपि व्रतमेतस्याः शिरसि निपतत्वनार्यहृदयायाः । राक्षसिवादकृतं पुनरिहापि हु मस्तके पतितम् ॥ ३६३ ॥
एवं खिंस्थ्यमाना पुरलोकेन पदे पदे पापा । लुतपृच्छ-कर्ण-धूसरखरपृष्ठाऽऽरोपितशरीरा ॥ ३६४ ॥
विगोप्य नगरे राज्ञा निर्वासिता परिव्राजा । नारी जनेऽवध्येति तेन जीवन्ती मुक्ता ॥ ३६५ ॥
कुमारोऽपि हु यावन्न मुञ्चति कुत्रापि भणितोऽपि मरणनिर्बन्धम् । नागरजनेन रचिता चिता ततः सारकाष्टैः ॥ ३६६ ॥
ततो वार्यमाणस्यापि राज्ञो नागरसमग्रलोकस्य । हाहारावमुखरस्यापि चित्तं चलितश्चित्तायाः सः ॥ ३६७ ॥
श्वेतवस्त्रविलेपनकुसुमदामालङ्कारश्वेतमूर्तिरपि । कनकरथो ऋषिदत्तानुरागगुणाद् दृढं रक्तः ॥ ३६८ ॥
तद्वचनाद्भुताशो यावत्किल प्रगुणीकृतश्चित्तापार्श्वे । तावद्राज्ञा विज्ञप्तो विनयेन तापसकुमारः ॥ ३६९ ॥
भगवन् ! तव वचनमयं न कदापि हु लङ्घयति तत एनम् । तथा कथमपि हु भण यथा विरम्त्येतस्मात् पापात् ॥ ३७० ॥
भणितस्तापसकुमारेण भद्र ! किमिदं त्वया समारब्धम् । नीचजनोचितमतिनिन्दितं च सुकुलप्रसूतानाम् ? ॥ ३७१ ॥
अन्यच्च तदा त्वया तपोवनान्मामानयता । भणितं कृतकृत्योऽहं त्वामानीय मोक्ष्यामि ॥ ३७२ ॥
तद्विस्मृतं सम्प्रति प्रारब्धमपरमेव किमपि त्वया । कार्यं यदि युक्तमिदं ततः कुमार ! त्वमेव जानासि ॥ ३७३ ॥
अधुनानुभूतमिदं पापं प्राव्राजिकया यद्विहितम् । सापि हु सुख-दुःखानां तव भार्या भाजनं जाता ॥ ३७४ ॥

ता विरमसु एयाओ दुरज्झवसियाओ सिट्ठवज्जाओ । परलोयबाहयाओ अप्पवहाओ महाभाग ! ॥ ३७५ ॥
अन्नं च–
सगुणं व निग्गुणं वा कज्जकलावं समायरंतेण । परिणामो सव्वत्थ वि चिंतेयव्वो चउरमइणा ॥ ३७६ ॥
अवरं च तुहाऽऽकूयं मरिऊण मिलामि नियय्दइयाए । सव्वमिमं पि महायस ! मुणसु महामोहललियं ति ॥३७७॥
जम्हा उ भवावट्टे सकम्मफलभोइणो जिया सव्वे । ता तीए सह जोगो होही तुह भद्द ! चित्तमिमं ॥ ३७८ ॥
चुलसीइजोणिलक्खेक्कसंकडे भववणम्मि भवडंतो । को जाणइ को वि कहिं कहसु महाभाग ! जाइ जिओ ? ॥ ३७९ ॥
ता जइ तुज्झ ममोवरि को वि सिणेहो समत्थि ता मुयसु । मरणकयमसग्गाहं विवेइणो तुह न जुत्तमिमं ॥ ३८० ॥
अवरं च जइ पियाए निमित्तमग्गिम्मि पविससि कुमार ! । ता इहइं चिय तं तुह भज्जं दंसेमि रिसिदत्तं ॥ ३८१ ॥
तं सोउं कणगरहो पच्चागयजीविओ पयंपेइ । भयवं ! तुज्झमसज्झं कज्जं भुवणे वि नत्थि फुडं ॥ ३८२ ॥
ता जइ तं पाणपियं रिसिदत्तं कहवि पुन्नजोएणं । पेच्छामि ता महायस ! जलंजलिं देमि मरणस्स ॥ ३८३ ॥
अन्नं च जीवियं पि हु तुज्झ पयच्छामि जइ इमं कुणसि । तेणुत्तं एस वरो चिट्ठउ पासे तुह कुमार ! ॥ ३८४ ॥
तत्तो तुट्ठो तावसभरवसगेणं इमेण जं वुत्तं । तं होइ तहेव तओ पत्तो कुमरो सपासायं ॥ ३८५ ॥
तत्तो तावसमुणिणा कहिओ तेसिं सविम्हयमणाणं । रहमद्दणपुरनिस्सारणाइओ नियय्वुत्तंतो ॥ ३८६ ॥
ताहे कुमरच्छुरियं घेत्तुं वामं वियारिउं ऊरुं । कड्ढियमोसहिवलयं जाया रमणीसहावत्था ॥ ३८७ ॥

ततो विरमेतस्माद्दुराध्यवसितात् शिष्टवर्ज्यात् । परलोकबाधकादात्मवधान्महाभाग ! ॥ ३७५ ॥
अन्यच्च –
सगुणं वा निर्गुणं वा कार्यकलापं समाचरता । परिणामः सर्वत्रापि चिन्तितव्यश्चतुरमतिना ॥ ३७६ ॥
अपरं च तवाकूतं मृत्वा मिलयामि निजकदयिताम् । सर्वमिदमपि महायशः ! मुण महामोहललितमिति ॥ ३७७ ॥
यस्मात्तुभवावर्त्ते स्वकर्मफलभोगिनो जीवाः सर्वे । ततस्तस्याः सह योगो भविष्यति तव भद्र ! चित्रमिदम् ॥ ३७८ ॥
चतुरशीतियोनिलक्षैकसङ्कीर्णे भववने भ्रमन् । को जानाति कोऽपि कुत्र कथय महाभाग ! याति जीवः ? ॥ ३७९ ॥
ततो यदि तव ममोपरि कोऽपि स्नेहः समस्ति तदा मुञ्च । मरणकृतमसद्ग्राहं विवेकिनस्तव न युक्तमिदम् ॥ ३८० ॥
अपरं च यदि प्रियाया निमित्तमग्नौ प्रविशसि कुमार ! । तदेहचैव तां तव भार्यां दर्शयामि ऋषिदत्ताम् ॥ ३८१ ॥
तत् श्रुत्वा कनकरथः प्रत्यागतजीवितः प्रजल्पति । भगवन् ! तवासाध्यं कार्यं भुवनेऽपि नास्ति स्फुटम् ॥ ३८२ ॥
ततो यदि तां प्राणप्रियामृषिदत्तां कथमपि पुण्ययोगेन । पश्यामि तदा महायशः ! जलाञ्जलिं ददामि मरणस्य ॥ ३८३ ॥
अन्यच्च जीवितमपि हु तुभ्यं प्रयच्छामि यदीदं करोषि । तेनोक्तमेष वरस्तिष्ठतु पार्श्वे तव कुपार ! ॥ ३८४ ॥
ततस्तुष्टस्तापसभरवशकेनानेन यदुक्तम् । तद्भवति तथैव ततः प्राप्तः कुमारः सप्रसादम् ॥ ३८५ ॥
ततस्तापसमुनिना कथितस्तेषां सविस्मयमनसाम् । रथमर्दनपुरनिस्सारणादयो निजकवृत्तान्तः ॥ ३८६ ॥
तदा कुमारच्छूरिकां गृहीत्वा वामं विदार्योरुम् । कर्षितमौषधिवलयं जाता रमणी स्वभावस्था ॥ ३८७ ॥

आणंदमुव्वहंतेण तेण निज्झाइया कुमारेण । भणियं भो भो ! पेच्छह एस पिया मज्झ रिसिदत्ता ॥ ३८८ ॥
किं एसा सा गउरी ? रई व किं वा ? सरस्सई किं वा ? । किं वा रंभा ? पायालकन्नया का वि किं होज्जा ? ॥ ३८९ ॥
इय एवं ते विम्हइयमाणसा सहरिसं पलोयंता । अनिमिसनयणा तित्तिं पावंति न तम्मि पत्थावे ॥ ३९० ॥
रुप्पिणि-रिसिदत्ताणंदीसइ पच्चक्खमंतरं गरुयं । सुणया-सीहीण व काइ-रायहंसीण वयणेण ॥ ३९१ ॥
अन्नं च जणो जंपइ ठाणे कुमरस्स एत्थ पडिबंधो । एईए रूवेणं मोहिज्जइ को न भुवणम्मि ? ॥ ३९२ ॥
तो रन्ना सा ण्हविया सव्वालंकारभूसियसरीरा । देवंगनिवसणधरा विहिया कप्पद्दुमलय व्व ॥ ३९३ ॥
संजायगरुयहरिसो तीए सह भुंजिउं समारद्धो । पंचप्पयारभोए अवगन्निय रुप्पिणिं रमणिं ॥ ३९४ ॥
तं दट्ठुं रिसिदत्ता चिंतइ एसो इमीए निन्नेहो । दिट्ठविलीओ एवं अवन्नवाओ धुवं मज्झ ॥ ३९५ ॥
एसा जइ वि वराई कयावराहा परोवरोहेण । तह वि हु मए इमीए उवयरियव्वं किमन्नेण ? ॥ ३९६ ॥
उवयरिए उवयारो जो सो वणियाण होइ ववहारो । अवरत्थ जमुवयरियं तं पुण गरुया पसंसंति ॥ ३९७ ॥
तो कइया वि सहरिसं निययवरं पत्थिओ पयत्तेण । रिसिदत्तपणइणीए तेणुत्तं भणसु जं देमि ॥ ३९८ ॥
जइ एवं ता एसा दट्ठव्वा मज्झ सरिसया सामि ! । एवं तुज्झ वि मज्झ वि मज्झत्थगुणेण माहप्पं ॥ ३९९ ॥
जइ एयाए कहमवि तीए पावाए पेरियाए कयं । तह वि हु मह खमियव्वं विसिट्ठकुलसंभवो तं सि ॥ ४०० ॥
इत्थी निद्दयहिययया ईसाविसमोहिया सकज्जपरा । फुसिओ एस कलंको एवं तीए कुणंतीए ॥ ४०१ ॥

आनन्दमुद्वहता तेन निध्याता कुमारेण । भणितं भो भो ! पश्यतैष प्रिया ममर्षिदत्ता ॥ ३८८ ॥
किमेषा सा गौरी ? रति र्वा किं वा ? सरस्वती किं वा ?। किं वा रम्भा ? पातालकन्यका कापि किं भवेत् ? ॥ ३८९ ॥
इत्येवं ते विस्मितमानसा सहर्षं प्रलोकयन्तः । अनिमिषनयनास्तृप्तिं प्राप्नुवन्ति न तस्मिन् प्रस्तावे ॥ ३९० ॥
रुक्मिणि-ऋषिदत्तयो र्दृश्यते प्रत्यक्षमन्तरं गुरुकम् । शुनका-सिंह्यो र्वा काकी-राजहंस्यो र्वचनेन ॥ ३९१ ॥
अन्यच्च जनो जल्पति स्थाने कुमारस्यैष प्रतिबन्धः । एतस्या रूपेण मोहयते को न भुवने ? ॥ ३९२ ॥
ततो राज्ञा सा स्नपिता सर्वालङ्कारभूषितशरीरा । देवाङ्गनिवसनधरा विहिता कल्पद्रुमलतेव ॥ ३९३ ॥
सञ्जातगुरुकहर्षस्तया सह भोक्तुं समारब्धः । पञ्चप्रकारभोगान्नवगण्य रुक्मिणीं रमणिम् ॥ ३९४ ॥
तद्दृष्टवार्षिदत्ता चिन्तयत्येष एतस्यां निस्स्नेहः । दृष्टविलिन एवमवर्णवादो ध्रुवं मम ॥ ३९५ ॥
एषा यद्यपि वराकी कृतापराधा परोपरोधेन । तथापि हु ममैतस्या उपचरितव्यं किमन्येन ? ॥ ३९६ ॥
उपचरित उपकारो यः स वणिजां भवति व्यवहारः । अपरत्र यदुपचरितं तत्पुन र्गुरुका प्रशंसन्ति ॥ ३९७ ॥
ततः कदापि सहर्षं निजकवरं प्रार्थितः प्रयत्नेन । ऋषिदत्ताप्रणयिन्या तेनोक्तं भण यद् ददामि ॥ ३९८ ॥
यद्येवं तदैषा द्रष्टव्या मम सदृशा स्वामिन् ! । एवं तवापि ममापि माध्यस्थ्यगुणेन माहात्म्यम् ॥ ३९९ ॥
यद्येतया कथमपि तया पापया प्रेरितया कृतम् । तथापि हु मम क्षन्तव्यं विशिष्टकुलसम्भवस्त्वमसि ॥ ४०० ॥
स्त्री निर्दयहृदयेर्ष्याविषमोहिता स्वकार्यपरा । स्पृष्ट एष कलङ्क एवं तया कुर्वन्त्या ॥ ४०१ ॥

अह अन्नया य भणिओ कणगरहो मंतिपमुहलोएण । मोयाविज्जउ राया गम्मउ संपइ नियपुरीए ॥ ४०२ ॥
कुमरेण वि सप्पणयं तहेव विहियम्मि नरवरिंदेण । संवाहिया सहरिसं विभवं दाऊण नियधूया ॥ ४०३ ॥
तत्तो सुंदरदिवसे अणवरयपयाणएहिं संपत्तो । पविसइ नियपुरीए पेच्छिज्जंतो पुरजणेण ॥ ४०४ ॥
सव्वेयरपासट्ठियरिसिदत्ता-रुप्पिणीहिं परियरिओ । सव्वमयसमयबंधुरसिंधुरखंधे समभिरूढो ॥ ४०५ ॥
भणियं केणावि हु मेत्त ! पेच्छ एयं महंतमच्छरियं । एया किर रिसिदत्ता विणासिया पाणपुरिसेहिं ॥ ४०६ ॥
जाव य सक्खं अक्खंडसुंदरावयवरेहिरसरीरा । दीसइ दाहिणपासम्मि संठिया सुहयकुमरस्स ॥ ४०७ ॥
अहवा विहिराए माणुसस्स तं नत्थि जं न संभवइ । अणुकूले कल्लाणं जह जायमिमीए किं बहुणा ? ॥ ४०८ ॥
एवं वियड्ढपुरिसेहिं विसइ वन्निज्जमाणगुणनिवहो । पियपरपरिवायत्ता विसेसओ तरुणरमणीहिं ॥ ४०९ ॥
सहइ सुहाहाराहिं पियाहिं व वहुप्पिओ गइंदगओ । रंभा-तिलोत्तमाहिं हरि व्व कुमरो भणइ कावि ॥ ४१० ॥
मयरद्धओ व्व कुमरो रइ-पीईहिं व पियाहिं परियरिओ ।
भणियमवराइ [इह हिरि-]सिरिदइओ समयणाहि इमो ॥ ४११ ॥
अहवा वि भरहखेत्तस्स मज्झदेसो व्व धम्मकम्मनिही । सरसाहिं गंग-सिंधूहिं सहइ कुमरो सह पियाहिं ॥४१२॥
अवराए भणियमेसो हु भागसाराहिं भारियाहिं समं । उत्तर-देवकुरूहिं व ससुवन्नो सहइ मेरु व्व ॥ ४१३ ॥
सीया-सीओयाहि व विदेहभागो व्व रेहइ सुवासो । सुपओहराहिं सह पिययमाहिमेसोऽवरा भणइ ॥ ४१४ ॥

अथान्यदा च भणितः कनकरथो मन्त्रिप्रमुखलोकेन । मोचयतु राजा गम्यतां सम्प्रति निजपूर्याम् ॥ ४०२ ॥
कुमारेणापि सप्रणयं तथैव विहिते नरवरेन्द्रेण । संवाहिता सहर्षं विभवं दत्त्वा निजकदुहिता ॥ ४०३ ॥
ततः सुन्दरदिवसेऽनवरतप्रयाणकैः सम्प्राप्तः । प्रविशति निजकपूर्यां प्रेक्ष्यमाणः पुरजनेन ॥ ४०४ ॥
सव्येतरपार्श्वस्थितार्षिदत्ता-रुक्मिणिभ्यां परिवारितः । सर्वमदसमकान्धुरसिन्धुरस्कन्धे समभिरुढः ॥ ४०५ ॥
भणितं केनापि हु मित्र ! पश्येदं महान्तमाश्चर्यम् । एषा किलर्षिदत्ता विनाशिता पाणपुरुषैः ॥ ४०६ ॥
यावच्च साक्षादखण्डसुन्दरावयवराजमानशरीरा । दृश्यते दक्षिणपार्श्वे संस्थिता सुभगकुमारस्य ॥ ४०७ ॥
अथवा विधिराज्ञि मनुष्यस्य तन्नास्ति यन्न सम्भवति । अनुकूले कल्याणं यथा जातमेतस्याः किं बहुना ? ॥ ४०८ ॥
एवं विदग्धपुरुषै र्विशति वर्ण्यमानगुणनिवहः । प्रियपरपरिवादत्त्वाद्विशेषतस्तरुणरमणिभिः ॥ ४०९ ॥
राजते शुभाहाराभिः प्रियाभिरपि वधूप्रियो गजेन्द्रगतः । रम्भा-तिलोत्तभ्याम् हरिरिव कुमारो भणति कापि ॥ ४१० ॥
मकरध्वज इव कुमारो रति-प्रीतिभ्यामिव प्रियाभ्यां परिवारितः ।
भणितमपराभिरिह ह्री-श्री-दयितः समदनाभिरयम् ॥ ४११ ॥
अथवापि भरतक्षेत्रस्य मध्यदेश इव धर्मकर्मनिधिः । सरसाभ्यां गङ्गा-सिन्धुभ्यां राजते कुमारः सह प्रियाभ्याम् ॥ ४१२ ॥
अपरया भणितमेष हु भागसाराभ्यां भार्याभ्यां समम् । उत्तर-देवकुरुभ्यामिव ससुवर्णः राजते मेरुरिव ॥ ४१३ ॥
सीता-सीतोदाभ्यामिव विदेहभाग इव राजते सुवर्षः । सुपयोधराभ्यां सह प्रियतमाभ्यामेषोऽपरा भणति ॥ ४१४ ॥

अन्ना भणइ सुदिट्ठीहिं संगओ सहइ पिययमाहिमिमो । दंसण-नाणसिरीहिं व चरित्तराओ व्व सिवजणओ ॥ ४१५ ॥
इय नायरनर-नारीनिवहेणं नंदणो नरिंदस्स । वन्निज्जंतो पविसइ पए पए कोउयक्खित्तो ॥ ४१६ ॥
पत्तो य रायभवणं रुइरुललोयं ललामल्लणोहं । विरइयवंदणमालं पूरियमुत्ताहलचउक्कं ॥ ४१७ ॥
विहियं वद्धावणयं रण्णा कुमरागमम्मि हरिसेणं । हरिसपणच्चिरवरवारविलयतुट्टंतहारलयं ॥ ४१८ ॥
वज्जंततूरनिवहं गायणगिज्जंतरायगुणनिवहं । विद्धाजणनिव्वत्तियकुमरोयारणयरमणीयं ॥ ४१९ ॥
चलणेसु पाडियाओ सासुय-ससुराइयाण वहुयाओ । रिसिदत्ताए कहिओ सव्वो कुमरेण वुत्तंतो ॥ ४२० ॥
ससुराइएहिं तत्तो खमाविया आयरेण रिसिदत्ता । खमसु महासइ ! जं तुज्झ विहियमसमंजसं किंपि ॥४२१॥
पव्वाइयाए चरियं नाऊणं विम्हिया नयरलोया । पेच्छ जहा धुत्तीए अम्हे वि हु वंचिया तीए ॥ ४२२ ॥
अणुरायपरवसाहिं दोहिं वि [भज्जाहिं] सह कुमारस्स । विसयसुहमणुहवंतस्स कोइ कालो वइक्कंतो ॥४२३॥
अह अन्नया य चउनाणसंजुओ सगुणसमणपरियरिओ । सिरिभद्दजसो सूरी विहरंतो तत्थ संपत्तो ॥ ४२४ ॥
तत्तो राया नायरजणेण चउरंगबलविभूईए । कुमरेण य परियरिओ वंदणवडियाए नीहरिओ ॥ ४२५ ॥
सोऊण सूरिमुहकुहरनिग्गयं धम्मतत्तममयसमं। पडिबुद्धो हेमरहो संजायचरित्तपरिणामो ॥ ४२६ ॥
अभिवंदिऊण मुणिनाहचरणतामरसमसमसंवेगो । सव्वेसिं मंतीणं निवेइउं नियमभिप्पायं ॥ ४२७ ॥
सव्वंगलक्खणधरं नियए रज्जम्मि सुहमुहुत्तम्मि । डविऊणं हेमरहो कणगरहं धरणधोरेयं ॥ ४२८ ॥

अन्या भणति सुदृष्टिभ्यां संगतः राजते प्रियतमाभ्यामयम् । दर्शन-ज्ञानाश्रीभ्यामिव चारित्रराजेव शिवजनकः ॥ ४१५ ॥
इति नागर नर-नारी निवहेन नन्दनो नरेन्द्रस्य । वर्ण्यमानः प्रविशति पदे पदे कौतूकाक्षिप्तः ॥ ४१६ ॥
प्राप्तश्च राजभवनं रुचिरोल्लोचं ललामललनौधम् । विरचितवन्दनमालं पूरितमुक्ताफलचतुष्कम् ॥ ४१७ ॥
विहितं वर्धापनकं राज्ञा कुमारागमे हर्षेण । हर्षप्रनृत्यद्वरवारवनितात्रुटद्धारलतम् ॥ ४१८ ॥
वाद्यत्तूर्यनिवहं गायनगीयमानराजगुणनिवहम् । वृद्धाजननिवर्तितकुमारौवारणकरमणीयम् ॥ ४१९ ॥
चरणेषु पतिते श्वश्रु-श्वसुरयो र्वधूके । ऋषिदत्तायाः कथितः सर्वः कुमारेण वृत्तान्तः ॥ ४२० ॥
श्वसुरादिकैस्ततः क्षामिताऽऽदरेणर्षिदत्ता । क्षमस्व महासति ! यत्तव विहितमसमञ्जसं किमपि ॥ ४२१ ॥
प्रव्राजिकायाश्चरित्रं ज्ञात्वा विस्मिता नगरलोकाः । पश्य यथा धुर्तया वयमपि हु वञ्चिता तया ॥ ४२२ ॥
अनुरागपरवशाभ्यां द्वाभ्यामपि (भार्याभ्यां) सह कुमारस्य । विषयसुखमनुभवतः कोऽपि कालो व्यतीक्रान्तः ॥ ४२३ ॥
अथान्यदा च चतुर्ज्ञान संयुक्तः सगुणश्रमणपरिवारितः । श्रीभद्रयशाः सूरी विरहन् तत्र सम्प्राप्तः ॥ ४२४ ॥
ततो राजा नागरजनेन चतुरङ्गबलविभूत्या । कुमारेण च परिवारितो वन्दनप्रत्ययया निःसृतः ॥ ४२५ ॥
श्रुत्वा सूरिमुखकुहरनिर्गतं धर्मतत्त्वममृतसमम् । प्रतिबुद्धो हेमरथः सञ्जातचारित्रपरिणामः ॥ ४२६ ॥
अभिवन्द्य मुनिनाथचरणतामरसमसमसंवेगः । सर्वेषां मन्त्रीणां निवेद्य निजमभिप्रायम् ॥ ४२७ ॥
सर्वांगलक्षणधरं निजके राज्ये शुभमुर्हूते । स्थापयित्वा हेमरथः कनकरथं धरणधौरेयम् ॥ ४२८ ॥

दीणाईणं दाणं दाउं घोसाविउं अभयदाणं । विहिणा जिणभवणेसुं काऊणऽट्ठाहियामहिमं ॥ ४२९ ॥
चइऊणं रज्जसिरिं निरुवमविप्फुरियजीवविरियगुणा । गरुईए विभूईए निक्खंतो निम्मलजसोहो ॥ ४३० ॥
अब्भसियदुविहसिक्खो खंतिखमो महियमोहपडिवक्खो ।पंचसमिओ तिगुत्तो विहरह गुरुवयणपडिबद्धो ॥४३१॥
कणगरहो वि य राया अप्पडिहयसासणो महीवीढे । असमपयावपरक्कमवसीकयासेसवइरिगणो ॥ ४३२ ॥
वित्थरियकोस-कोट्ठायारो निट्ठवियकंटयसमूहं । उवसंतडिंब-डमरं पालइ रज्जं जणाण मओ ॥ ४३३ ॥
अह अन्नया य महरिहविसिट्ठसुसिलिट्ठकट्ठघडियम्मि । सुपसत्थवत्थविरइयमहल्लउल्लोयलडहम्मि ॥ ४३४ ॥
रुइरपणवन्नविरइयविचित्तविच्छित्तिचित्तयम्मम्मि । डज्झंतंधूयघडियासुगंधिगंधाभिरामम्मि ॥ ४३५ ॥
तंबूल-पुप्फपडलयसमग्गभोगंगगरुयगामम्मि । भुवणऽच्चब्भुयभूईभ वणम्मि सुवासभवणम्मि ॥ ४३६ ॥
सुकुमालतूलिकलियम्मि मउयगंडोवहाणसुहयम्मि । आलिंगिणि-गल्लमसूरियाइसामग्गिरुइरम्मि ॥ ४३७ ॥
उस्सीसयपंचसमुन्नयम्मि मज्झे गभीरविणयम्मि । नवणीयतूलफासम्मि सुरनईपुलिणसरिसम्मि ॥ ४३८ ॥
सुहसयणम्मि सुत्ता चिंता-संताव-सोयरहियमणा । निवपट्टमहादेवी रिसिदत्ता नियइ सुमिणमिमं ॥ ४३९ ॥
किर मह उच्छंगगओ सारयरयणियरधवलसव्वंगो । खंधप्पएसपारूढकविलकेसरसडासुहओ ॥ ४४० ॥
वियडकडिभायरुइरो तणूयरो तिक्ख-वियडदाढालो । सीहकिसोरो सुपसन्नलोयणो पियइ थणछीरं ॥ ४४१ ॥
दट्ठुण तयं सुमिणं निवेयए निवइणो पहिट्ठमणा । सो वि य गरुयपरक्कमसुयलाभेणं सुहावेइ ॥ ४४२ ॥

दीनादीनां दानं दत्त्वा घोषयित्वाभयदानम् । विधिना जिनभवनेषु कृत्वाऽष्टाह्निकामहिमानम् ॥ ४२९ ॥
त्यक्त्वा राज्यश्रियं निरुपमविस्फुरितजीववीर्यगुणाद् । गुरुक्या विभूत्या निष्क्रान्तो निर्मलयशौघः ॥ ४३० ॥
अभ्यसितद्विविधशिक्षः क्षान्तिक्षमो मथितमोहप्रतिपक्षः । पञ्चसमितस्त्रिगुप्तो विहरति गुरुवचनप्रतिबद्धः ॥ ४३१ ॥
कनकरथोऽपि च राजाऽप्रतिहतशासनो महीपीठे । असमप्रतापपराक्रमवशीकृताशेषवैरीगणः ॥ ४३२ ॥
विस्तारित कोष-कोष्टागारो निष्ठापितकण्टकसमूहम् । उपशान्तडिम्ब-डमरं पालयति राज्यं जनानां मतः ॥ ४३३ ॥
अथान्यदा च महार्हविशिष्टसुश्लिष्टकाष्ठघटिते । सुप्रशस्तवस्त्रविरचितमहदुल्लोचसुन्दरे ॥ ४३४ ॥
रुचिरपञ्चवर्णविरचितविचित्रविच्छितिचित्रकर्मणि । दह्यमानधूपघटिकासुगन्धिगन्धाभिरामे ॥ ४३५ ॥
तंबोल-पुष्पपटलक समग्रभोगाङ्गगुरुकग्रामे । भुवनाश्चर्यभूतभूतिभवने सुवासभवने ॥ ४३६ ॥
सुकुमारतूलिकलिते मृदुगण्डोपधानसुभगे । आलिङ्गनि-गण्डमसूरिकादिसामग्रीरुचिरे ॥ ४३७ ॥
उच्छीर्षकपञ्चसमुन्नते मध्ये गम्भीरविनते । नवनीततूलस्पर्शे सुरनदीपुलिनसदृशे ॥ ४३८ ॥
सुखशयने प्रसुप्ता चिन्ता-सन्ताप-शोकरहितमना । नृपपट्टमहादेवी ऋषिदत्ता पश्यति स्वप्नमिमम् ॥ ४३९ ॥
किल ममोत्सङ्गात् शारदरजनीकरधवलसर्वाङ्गः । स्कन्धप्रदेशप्रारुढकपिलकेसरसटासुभगः ॥ ४४० ॥
विकटकटिभाररुचिरस्तनूतरस्तीक्ष्ण-विकटदंष्ट्रालः । सिंहकिशोरः सुप्रसन्नलोचनः पिबति स्तनक्षीरम् ॥ ४४१ ॥
दृष्ट्वा तकत्स्वप्नं निवेदयति नृपतेः प्रहृष्टमना । सोऽपि च गुरुकपराक्रमसुतलाभेन सुखायति ॥ ४४२ ॥

तत्तो नवण्ह मासाणमुवरि अद्धट्ठमाण य दिणाण । उच्चट्ठाणगएसुं गहेसु सुपसत्थदिवसम्मि ॥ ४४३ ॥
विप्फुरियंतेयपब्भारपयडियासेसदिसिवहूवयणं । पुव्वदिसारविर्बिबं व सा पसूया सुयं देवी ॥ ४४४ ॥
वद्धाविओ य पियवयणियाए दासीए कणगरहराया । दाऊण तीए निवो वंछाअइरित्तवसुदाणं ॥ ४४५ ॥
कारावइ नयरम्मिं कुमारजम्ममम्मि गरुयरिद्धीए । पडहयपयाणपुव्वं वद्धावणयं पुहइनाहो ॥ ४४६ ॥
तं च केरिसं ?–
वज्जिरगहिरमणोहरतूरारवमुहलु, जहिं नवरंगयनिवसणु नारीयणु सहलु ।
रभसपणच्चिरसुंदरवारविलयनिवहु, जहिं सवु सम्माणिज्जइ नायरजणु सवहु ॥ ४४७ ॥
ठाँवि ठाँवि जहि गिज्जइ चच्चर सवणसुह, मग्गि मग्गि मग्गिज्जहिं जहिं नरवइ पमुह ।
भवणि भवणि उब्भिज्जहिं जहिं जूवय-मुसल, पइ पइ जहिं पूइज्जहि सत्था-ऽऽगमकुसल ॥ ४४८ ॥
वंदणमालालंकिय तोरण जहिं सहहिं,वत्था-ऽऽहरण परोप्पर जहिं नायर लहहिं ।
चट्टथट्ट जहिं दीसइ तेल्लचुयंतसिर, वद्धावणउं त वन्निउ सक्कहिं कवण किर ? ॥ ४४९ ॥
'जीव नंदय नंदय' रव सुव्वहिं जहिं वयण, जहिं संतुट्ठउ नरवइ वियरइ रह रयण ।
अभयदाणु जहिं दिज्जइ मणइ सुहावणउं, तं तहिं हरिसिं वित्तउं निरु वद्धावणउं ॥ ४५० ॥
एवं वद्धावणए सुहेण वित्ते सुहम्मि दिवसम्मि । सीहरहो त्ति विइन्नं कुलविद्धाहिं कुमरनामं ॥ ४५१ ॥

ततो नवानां मासानामुपर्यर्द्धाष्टमानां च दिनानाम् । उच्चस्थानगतेषु ग्रहेषु सुप्रशस्त दिवसे ॥ ४४३ ॥
विस्फुरिततेजाः प्राग्भारप्रकटिताशेषदिग्वधूवदनम् । पूर्वदिशारविबिम्बमिव सा प्रसूता सुतं देवी ॥ ४४४ ॥
वर्द्धापितश्च प्रियवदनीयया दास्या कनकरथराजा । दत्वा तस्यै नृपो वाञ्छातिरिक्तवसुदानम् ॥ ४४५ ॥
कारयति नगरे कुमारजन्मनि गुरुकर्द्धया । पटहकप्रदानपूर्वं वर्धापनकं पृथिवीनाथः ॥ ४४६ ॥
तच्च कीदृशम् ? –
वाद्यद्गभीरमनोहरतूर्यारवमुखरम्, यत्र नवरंगकनिवसनं नारीजनं सफलम् ।
रभसप्रनृत्यत्सुन्दरवारवनितानिवहम्, यत्र सः सन्मान्यते नागरजनः सवधुः ॥ ४४७ ॥
स्थाने स्थाने यत्र गीयते चत्वरश्रवणसुखं, मार्गे मार्गे मार्गयेते यत्र नरपतिप्रमुखम् ।
भवने भवने उद्भिद्यते यत्र यूपक-मुशलम्, पदे पदे यत्र पूज्येते शास्त्रा-गमकुशलम् ॥ ४४८ ॥
वन्दनमालालङ्कितं तोरणं यत्र राजते, वस्त्राऽऽभरणं परस्परं यत्र नागरो लाति ।
चट्टसमूहो यत्र दृश्यते तैलचुम्बच्छिरः, वर्धापनकं तद्धर्णयितुं शक्यते केन किल ? ॥ ४४९ ॥
'जीव नन्द नन्द' रवः श्रूयते यत्र वदने, यत्र संतुष्ठो नरपति र्वितरति रथरत्नम् ।
अभयदानं यत्र दीयते मनसः सुखावनम्, तत्तत्र हर्षं वृक्षं निश्चितवर्धापनकम् ॥ ४५० ॥
एवं वर्धापनके सुखेन वृत्ते शुभे दिवसे । सिंहरथ इति वितीर्णं कुलवृद्धाभिः कुमारनाम ॥ ४५१ ॥

एवं सो पइदिवसं वित्थयकुलनहयलम्मि वड्ढंतो । चंदो व्व सुक्कपक्खे सयलजणाणंदणो कुमरो ॥ ४५२ ॥
विज्जागहणसमत्थो संजाओ अट्ठवरिसपरिमाणो । लेहायरियसयासे कलाण सव्वाण पारगओ ॥ ४५३ ॥
अह अन्नया य राया रिसिदत्ताए पियाए परियरिओ । पासायोवरि वायायणम्मि लीलाए ललइ सुहं ॥४५४॥
पेच्छइ य गयणभागे सुहुमं सम्मुच्छियं जलयखंडं । पच्छा विद्धिं पत्तं तहेव रन्नो नियंतस्स ॥ ४५५ ॥
पणवन्नरुइरवत्तावयवं मण-नयणसुहयरं जायं । दीसइ नहलच्छीए कंचुयलीलं विडंबंतं ॥ ४५६ ॥
तत्तो पेच्छंतस्स वि पयंडपवणाहयं कुओ वि गय । पुच्छइ देविं दइए ! दिट्ठं फुडमिंदियालमिमं ॥ ४५७ ॥
जह एयं तह सव्वं भवम्मि पडिबंधकारणं मुणसु । पिय-माइ-कलत्त-सुमित्त-पुत्त-बल-रूव-रज्जाइ ॥४५८॥
पेच्छ पिए ! एवंविहभवस्सरूवं वियाणमाणा वि । न कुणंति धम्मतत्तिं विसयामिसमोहिया जीवा ॥ ४५९ ॥
मायन्हियाहिं नडिओ जलबुद्धीए जहा भमइ कोइ । तह जीवो विसयवसो भवगहणे भमइ सुहबुद्धी ॥ ४६० ॥
जह किंपागतरुफलं मुहम्मि महुरं कुणंति खज्जंतं । तह आवाए सुहया परिणामे दारुणा विसया ॥ ४६१ ॥
जह वा मुहम्मि महुरं मारइ हालाहलं विसं भुत्तं । तह विसया वि हु पावा मारंति जियं भवावट्टे ॥ ४६२ ॥
जह चेव विसमसल्लेण सल्लिओ कोवि दुक्खिओ होइ । तह विसयसल्लिओ वि हु भवम्मि जीवो वसइ दुहिओ ॥ ४६३ ॥
अन्नाणमोहमूढा तुच्छामिसविसयमोहिया जीवा । न मुणंति आयइदुहं विवागरूवं जओ भणियं ॥ ४६४ ॥
जह किर दुद्धं पेच्छइ मज्जारी न उण लउडयं मुद्धा । तह मूढो विसयसुहं पेच्छइ नो नरयदुक्खाइं ॥ ४६५ ॥

एवं स प्रतिदिवसं विस्तृतकुलनभःस्थले वर्धमानः । चन्द्र इव शुक्लपक्षे सकलजनानंदनः कुमारः ॥ ४५२ ॥
विद्याग्रहणसमर्थः सञ्जातोऽष्टवर्षपरिमाणः । लेखाचार्यसकाशे कलानां सर्वासां पारगतः ॥ ४५३ ॥
अथान्यदा च राजार्षिदत्तया प्रियया परिवारितः । प्रासादोपरि वातायने लीलया ललति सुखम् ॥ ४५४ ॥
पश्यति च गगनमार्गे सूक्ष्मं सम्मुर्च्छितं जलदखण्डम् । पश्चाद्वृद्धिं प्राप्त तथैव राज्ञः पश्यतः ॥ ४५५ ॥
पञ्चवर्णरुचिरवृत्तावयवं मनोनयनसुखकरं जातम् । दृश्यते नभोलक्ष्म्याः कञ्चुकलीलां विडम्बयन्तम् ॥ ४५६ ॥
ततः पश्यतोऽपि प्रचण्डपवनाहतं कुतोपि गतम् । पृच्छति देविं दयिते ! दृष्टं स्फुटमिन्द्रजालमिदम् ॥ ४५७ ॥
यथैतत्तथा सर्वं भवे प्रतिबन्धकारणं मुण । पितृ-मातृ-कलत्र-सुमित्र-पुत्र-बल-रुप-राज्यादिम् ॥ ४५८ ॥
पश्य प्रिये ! एवंविद्यभवस्वरुपं विजानन्तोऽपि । न कुर्वन्ति धर्मचिन्तां विषयामिषमोहिता जीवाः ॥ ४५९ ॥
मृगतृष्णिकाभि र्नटितो जलबुद्धया यथा भ्रमति कोऽपि । तथा जीवो विषयवशो भवगहने भ्रमति सुखबुद्धिः ॥ ४६० ॥
यथा किम्पाकतरुफलं मुखे मधुरं कुर्वन्ति खाद्यमानम् । तथापाते सुखदाः परिणामे दारुणा विषयाः ॥ ४६१ ॥
यथा वा मुखे मधुरं मारयति हालाहलं विषं भुक्तम् । तथा विषया अपि हु पापा मारयन्ति जीवं भवावर्ते ॥ ४६२ ॥
यथा चैव विषमशल्येन शल्यितः कोऽपि दुःखितो भवति । तथा विषयशल्यितोऽपि हु भवे वसति दुःखितः ॥ ४६३ ॥
अज्ञानमोहमूढास्तुच्छामिषविषयमोहिता जीवाः । न मुणन्त्यायतिदुःखं विपाकरुपं यतो भणितम् ॥ ४६४ ॥
यथा किल दुग्धं पश्यति मार्जारी न पुनर्लकुटं मुग्धा । तथा मूढो विषयसुखं पश्यति न नरकदुःखानि ॥ ४६५ ॥

ता उज्झउं दुरंते एए विसए अणत्थफलजणए । सुगुरुसमीवे कुणिमो परलोगसुहावहं धम्मं ॥ ४६६ ॥
एवं वेरग्गगओ राया सह पिययमाए ओयरिओ । काऊण रज्जचिंतं सुत्तो रयणीए सुहसयणे ॥ ४६७ ॥
तत्थ वि वेरग्गगओ गुरु-धम्मियसंकहाहिं सुहलेसो । अइवाहिऊण रयणिं सुणइ पहाए पढिज्जंतं ॥ ४६८ ॥
जन्मेदं न चिराय भूरिभयदा लक्ष्म्योऽपि नैव स्थिराः, किम्पाकान्तफला नितान्तकटवः कामाः क्षणध्वंसिनः ।
आयुः शारदमेघचञ्चलतरं ज्ञात्वा तथा यौवनं, हे लोकाः ! कुरुताऽऽदरं प्रतिदिनं धर्मेऽघविध्वंसिनि ॥ ४६९ ॥
तं सोऊणं भणियं पिए ! सुभासियमिमं पढइ कोइ । मह चिंतियत्थसरिसं ता कुणिमो उज्जमं धम्मे ॥ ४७० ॥
इय राया सह नियपिययमाए संवेयभावियमईओ । काऊण गोसकिच्चं उवविट्ठो रायअत्थाणे ॥ ४७१ ॥
एत्थंतरम्मि उज्जाणपालएणं कयंजलिउडेणं । विन्नत्तो देव ! तुमं वद्धाविज्जसि सपरिवारो ॥ ४७२ ॥
उज्जाणे संपत्तो विहरंतो तुह गुरू जणयसहिओ । दाऊण पारितोसियदाणं वद्धावयनरस्स ॥ ४७३ ॥
संचलिओ भत्तीएवंदणवडियाए सहरिसो राया । काउं पयाहिणतियं उवविट्ठो रइय करकमले ॥ ४७४ ॥
गुरुणा वि हु पारद्धा जलहरगंभीरसुस्सररवेण । भवियाण बोहत्थं धम्मकहा धम्मबुद्धीए ॥ ४७५ ॥
पंचिंदियत्तणं माणुसत्तणं आरिए जणे सुकुलं । साहुसमागम सुणणा सद्दहणाऽऽरोग पव्वज्जा ॥ ४७६ ॥
इय एवं भो भव्वा ! सुदुल्लहो एरिसो गुणकलावो । ता पाविय सामग्गिं जिणधम्मे उज्जमं कुणह ॥ ४७७ ॥
एत्थंतरम्मि भवभमणभीयहियएणधम्मरसिएण । सिवसोक्खलालसेणं मुणिनाहो पुच्छिओ रन्ना ॥ ४७८ ॥

तत उज्झित्वा दुरन्तानेतान्विषयाननर्थफलजनकान् । सुगुरुसमीपे कुर्वः परलोक सुखावहं धर्मम् ॥ ४६६ ॥
एवं वैराग्यगतो राजा सह प्रियतमाया अवातरितः । कृत्वा राज्यचिन्तां सुप्तो रजन्यां सुखशयने ॥ ४६७ ॥
तत्रापि वैराग्यगतो गुरु-धर्मिकसंकथाभिः शुभलेश्यः । अतिवाह्य रजनीं शृणोति प्रभाते पठ्यमानम् ॥ ४६८ ॥
तत्श्रुत्वा भणितं प्रिये ! सुभाषितमिदं पठति कोपि । मम चिन्तितार्थसदृशं ततः कुर्व उद्यमं धर्मे ॥ ४७० ॥
इति राजा सह निजप्रियतमायाः संवेगभावितमतिकः । कृत्वा प्रत्युषकार्यामुपविष्टो राजास्थाने ॥ ४७१ ॥
अत्रान्तर उद्यानपालकेन कृताञ्जलिपुटेन । विज्ञप्तो देव ! त्वं वर्द्धाप्यसे सपरिवारः ॥ ४७२ ॥
उद्याने सम्प्राप्तो विहरंस्तव गुरु जनकसहितः । दत्वा पारितोषिकदानं वर्द्धापकनरस्य ॥ ४७३ ॥
सञ्चलितो भक्त्या वन्दनवर्तिकायाः सहर्षो राजा । कृत्वा प्रदक्षिणात्रिकमुपविष्टो रचयित्वा करकमलयोः ॥ ४७४ ॥
गुरुणापि हु प्रारब्धा जलधरगम्भीरसुस्वररवेण । भविकानां बोधार्थं धर्मकथा धर्मबुद्ध्या ॥ ४७५ ॥
पञ्चिन्द्रियत्वं मनुष्यत्वमार्ये जने सुकुलम् । साधुसमागम श्रवणा श्रद्धानाऽऽरोग्यं प्रव्रज्या ॥ ४७६ ॥
इत्येवं भो भव्याः ! सुदुर्लभ ईदृशो गुणकलापः । ततः प्राप्य सामग्रीं जिनधर्मे उद्यमं कुरुत ॥ ४७७ ॥
अत्रान्तरे भवभ्रमणभीतहृदयेन धर्मरसिकेन । शिवसौख्यलालसेन मुनिनाथः पृष्टो राज्ञा ॥ ४७८ ॥

भयवं चउगइरूवे भमइ जिओ केण भीमभवगहणे ? । सासयसोक्खे वच्चइ केण व कम्मेण विहुयमलो ? ॥ ४७९ ॥
तो मुणिवइणा भणियं आयन्नसु भद्द ! अवहिओ होउं । हिंडइ भवम्मि जीवो कम्मेणऽट्ठप्पयारेण ॥ ४८० ॥
तं च इमं–
नाणस्स दंसणस्स [य] आवरणं वेयणीय मोहणियं । आउय नामं योगं तहंतरायं च कम्ममिमं ॥ ४८१ ॥
पंच नव दोन्नि अट्ठावीसं चउरो तहेव बायाला । दोन्नि य पंच य भणिया पयडीओ उत्तरा चेव ॥ ४८२ ॥
बंधस्स मिच्छ-अविरइ-कसाय-जोगा य हेयवो चउरो । पंच दुवालस पणुवीस पनरस कमेण भेया सिं ॥ ४८३ ॥
आभिग्गहियमणाभिग्गहं च तह अभिनिवेसियं चेव । संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा एवं ॥ ४८४ ॥
बारसविहा अविरई मण-इंदियअनियमो छक्कायवहो । सोलस नव य कसाया पणुवीसं पन्नरस जोगा ॥ ४८५ ॥
सामन्नेणं एए विसेसओ बंधहेउणो तस्स । नाणपडणीययाई पइकम्मं सुत्तओ णेया ॥ ४८६ ॥
तत्थ वि आरंभेणं गरुएण परिग्गहेण पावेण । कुणिमाहारेणं अहमरूवपंचिंदियवहेणं ॥ ४८७ ॥
निव्वत्तियनरयाऊ जीवा गुरुकम्मभारिया नरए । निवडंति सरणरहिया जलम्मि अयगोलउ व्व अहे ॥ ४८८ ॥
तत्थ य छिंदण-भिंदण उक्कत्तण-दहण-दंभणाईयं । विसहंति तिव्ववियणं तेत्तीसं सागरा जाव ॥ ४८९ ॥
तत्तो वि य उव्वट्टा जीवा तिरिएसु जंति विविहेसु । मायाबहुला बहुकवडकूडपरवंचणुज्जुत्ता ॥ ४९० ॥
तत्थ वि वाहण-दोहण-दहणंकण-छुह-पिवास-सहणाइं । भारारोवण-सीया-ऽऽयवाणसहणं सहंति दुहं ॥४९१॥

भगवंश्चतुर्गतिरूपे भ्रमति जीवः केन भीमभवगहने ? । शाश्वतसौख्ये व्रजति केन वा कर्मणा विधुतमलः ? ॥ ४७९ ॥
ततो मुनिपतिना भणितमाकर्णय भद्र ! अवहितो भूत्वा । हिण्डते भवे जीवः कर्मणाष्टप्रकारेण ॥ ४८० ॥
तच्चेदम् -
ज्ञानस्य दर्शनस्य चावरणं वेदनीयं मोहनीयम् । आयु र्नामं गोत्रं तथान्तरायं च कर्मेदम् ॥ ४८१ ॥
पञ्च नव द्वेऽष्टाविंशतिश्चत्वारस्तथैव द्वाचत्वारिंशत् । द्वे च पञ्च च भणिता प्रकृतय उत्तरा चैव ॥ ४८२ ॥
बन्धस्य मिथ्या-ऽविरति-कषाय-योगाश्च हेतवश्चत्वारः । पञ्च द्वादश पञ्चविंशतिः पञ्चदशः क्रमेण भेदास्तेषाम् ॥ ४८३ ॥
आभिग्रहिकमनाभिग्रहं च तथाभिनिवेशिकं चैव । सांशयिकमनाभोगं मिथ्यात्वं पञ्चधैवम् ॥ ४८४ ॥
द्वादशविद्याऽविरति र्मन-इन्द्रियानियमः षट्कायवधः । षोडश नव च कषायाः पञ्चविंशतिः पञ्चदश योगाः ॥ ४८५ ॥
सामान्येनैते विशेषतो बन्धहेतवस्तस्य । ज्ञानप्रत्यनीकतादयः प्रतिकर्म सूत्रतो ज्ञेया ॥ ४८६ ॥
तत्राप्यारम्भेण गुरुकेण परिग्रहेण पापेन । कुणिमाहारेणाधमरुप पञ्चेन्द्रियवधेन ॥ ४८७ ॥
निवर्त्तितनरकायु र्जीवा गुरुकर्मभारिता नरके । निपतन्ति शरणरहिता जलेऽयोगोलक इवाधः ॥ ४८८ ॥
तत्र च छिन्दन-भिन्दनोत्कर्तन-दहन-दम्भनादिकम् । विसहन्ते तीव्रवेदनां त्रयस्त्रिंशत् सागरा यावत् ॥ ४८९ ॥
ततोऽपि चोद्धर्त्ता जीवास्तिर्यक्षु यान्ति विविधेषु । मायाबहुला बहुकपटकूटपरवञ्चनोद्युताः ॥ ४९० ॥
तत्रापि वाहन-दोहन-दहनाङ्कन-क्षुधा-पिपासा-सहनादि । भारारोपण-शीताऽऽतपानामसहनं सहन्ते दुःखम् ॥ ४९१ ॥

तत्तो वि खवियकम्मा पयईए पयणुमाण-मय-कोहा । अज्जवगुणभावियमाणसा य मणुया पयायंति ॥४९२॥
तत्थ वि दारिद्दहया दोहग्गकलंकदूसियसरीरा । कुकलत्तपराभूया अपत्तपुत्ताइसंताणा ॥ ४९३ ॥
मुक्खत्तसिरोमणिणो कुवन्न-कुस्सर-कुरूवयाभिहया । आजम्मं बहुविहकास-सास-रोगाभिहयतणुणो ॥४९४॥
तम्हा तेसु वि सोक्खं न किंपि परमत्थओ महाराय ! । नवरमिमो मणुयभवो धम्मगुणाराहणाओ सुहो ॥४९५॥
जम्हा मणुयभवे च्चिय पडिवन्नो संजमो तवो होइ । दव्वत्थओ य परमो विसिट्ठसग्गोऽपवग्गो य ॥ ४९६ ॥
परमेयम्मि वि बहवो निव्वित्ताणा सिणेहपडिबद्धा । बहुविहपावपरिग्गहमुच्छियहियया कुबुद्धीया ॥ ४९७ ॥
जोव्वणमयउम्मत्ता परलोयपरम्मुहा पमायपरा । विसयासत्ता अजरामर व्व चिट्ठंति मूढऽप्पा ॥ ४९८ ॥
देवेसु वि नत्थि सुहं चिंतिज्जंतं सतत्तबुद्धीए । ईसाविसायपरपरवसित्तदुहदूमियमणेसु ॥ ४९९ ॥
ते वि हु कोहाभिहया माणमहासेलचंपियावयवा । मायासल्लियहियया लोहमहाजलहिणिव्वुड्डा ॥ ५०० ॥
विज्जंति कसाया जत्थ निव्वुइं तत्थ राय ! मा मुणसु । पज्जलइ जत्थ जलणो जाण कओ तत्थ सुत्थत्तं ? ॥५०१॥
किं बहुणा भणिएणं ? पभवंति कसायसत्तुणो जत्थ । गयणे अरविंदं पिव मा जोयसु तत्थ सुहसत्तं ॥ ५०२ ॥
इय चउगइभवरूवे संसारे दुक्खिओ भमइ जीवो । संपय सासयसोक्खे मोक्खे जह वसइ तह सुणसु ॥५०३॥
मोक्खो असेसकम्मस्स संखए सो य संवहेऊण । मिच्छत्ता-ऽविरइ-कसाय-दुट्ठजोगाण सव्वेसिं ॥ ५०४ ॥
होइ विपक्खासेवणदारेण नरिंद ! सो उण विवक्खो । सम्मत्त-णाण-दंसण-चरणाणि विसुद्धरूवाणि ॥५०५॥

ततोऽपि क्षपितकर्माणः प्रकृत्या प्रतनुमान-मद-क्रोधाः । आर्जवगुणभावितमानसाश्च मनुष्याः प्रजायन्ते ॥ ४९२ ॥
तत्रापि दारिद्रहता दोर्भाग्यकलङ्कदूषितशरीराः । कुकलत्रपराभूता अप्राप्तपुत्रादिसन्ताना ॥ ४९३ ॥
मूर्खत्वशिरोमणयः कुवर्ण-कुस्वर-कुरुपताभिहताः । आजन्म बहुविधकास-श्वास-रोगाभिहततनवः ॥ ४९४ ॥
तस्मात्तेष्वपि सौख्यं न किमपि परमार्थतो महाराज ! । नवरमयं मनुष्यभवो धर्मगुणाराधनात् शुभः ॥ ४९५ ॥
यस्मान्मनुष्यभवे चैव प्रतिपन्नः संयमस्तपो भवति । द्रव्यस्तवश्च परमो विशिष्टस्वर्गाऽपवर्गश्च ॥ ४९६ ॥
परमेतस्मिन्नपि बहवो निर्विन्नाणाः स्नेहप्रतिबद्धाः । बहुविधपापपरिग्रहमूर्च्छितहृदयाः कुबुद्धिकाः ॥ ४९७ ॥
यौवनमदोन्मत्ताः परलोकपराङ्मुखाः प्रमादपराः । विषयासक्ता अजरामरा इव तिष्ठन्ति मूढात्मानः ॥ ४९८ ॥
देवेष्वपि नास्ति सुखं चिन्त्यमानं सतत्त्वबुद्धया । इर्षाविषादपरपरवशित्वदुःखखिन्नमनस्सु ॥ ४९९ ॥
तेऽपि हु क्रोधाभिहता मानमहाशैलस्पृष्टावयवाः । मायाशल्यितहृदया लोभमहाजलधिनिमग्नाः ॥ ५०० ॥
विद्यन्ते कषाया यत्र निवृत्तिं तत्र राजन् ! मा मुण । प्रज्वलति यत्र ज्वलनो जानीहि कुतस्तत्र सुस्थत्वम् ? ॥ ५०१ ॥
किं बहुना भणितेन ? प्रभवन्ति कषायशत्रवो यत्र । गगनेऽरविन्दमिव मा पश्य तत्र सुखसत्त्वम् ॥ ५०२ ॥
इति चतुर्गतिभवरूपे संसारे दुःखितो भ्रमति जीवः । संप्रति शाश्वतसौख्ये मोक्षे यथा वसति तथा शृणु ॥ ५०३ ॥
मोक्षोऽशेषकर्मणः संक्षये स च संवध्य । मिथ्यात्वाविरति-कषाय-दुष्ट योगानां सर्वेषाम् ॥ ५०४ ॥
भवति विपक्षासेवनद्वारेण नरेन्द्र ! स पुन र्विपक्षः । सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-चरणानि विशुद्धरूपाणि ॥ ५०५ ॥

जह वत्थाईण मलो सुज्झइ सुहवारिसंपओगेण । तह सम्माइपओगा कम्ममलोऽवेइ [१]जीवाणं ॥ ५०६ ॥
तो सव्वकम्मविगमे सरूवलाभम्मि निच्चओ जीवो । सासयसोक्खे मोक्खे अणाइनिहणं वसइ कालं ॥५०७॥
सो तम्मि निराबाहो केवलवरनाण-दंसणपईवो । अणुभवमाणो निवसइ निरुवमसोक्खं जओ भणियं ॥५०८॥
न वि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं न वि य सव्वदेवाणं । जं सोक्खं सिद्धाणं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥ ५०९ ॥
जह नाम कोइ मेच्छो नयरगुणे बहुविहे वियाणंतो । न चएइ परिकहेउं उवमाए तहिं असंतीए ॥ ५१० ॥
इय सिद्धाणं सोक्खं अणोवमं नत्थि तस्स ओवम्मं । किंचि विसेसेणेत्तो सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं ॥ ५११ ॥
जह सव्वकामगुणियं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ । तण्हा-छुहाविमुक्को अच्छेज्ज जहा अमयतित्तो ॥ ५१२ ॥
इय सव्वकालतित्ता अउलं निव्वाणमुवगया सिद्धा । सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥ ५१३ ॥
इय सोउं उवएसं सवणसुहामयपवाहसारिच्छं । भवभयसंभंतो भणइ भूवई भव्वपरिणामो ॥ ५१४ ॥
भयवं ! जं तुब्भे भणह भीमभवभयमिमेसिं भव्वाणं । भवभयभीयाणं तत्थ विब्भमो मह मणे नत्थि ॥ ५१५ ॥
ता एयं मणुयभवं सफलं काहामि तुम्ह पासम्मि । पडिवज्जिय पव्वज्जं काऊणं रज्जसुत्थत्तं ॥ ५१६ ॥
एत्थंतरम्मि मत्थयनिहित्तकरकोससंपुडा देवी । रिसिदत्ता मुणिनाहं परिपुच्छइ पउरपच्चक्खं ॥ ५१७ ॥
भयवं ! रक्खसिवाओ मह जाओ केण कम्मुणा ? कहह । नाऊणऽइसयनाणेण कोउयं मज्झ अइगरुयं ॥ ५१८ ॥

यथा वस्त्रादीनां मलः शुध्यते शुभवारिसंप्रयोगेण । तथा सम्यक्त्वादिप्रयोगात् कर्ममलोऽपैति जीवानाम् ॥ ५०६ ॥
ततः सर्वकर्मविगमे स्वरूपलाभे नित्यो जीवः । शाश्वतसौख्ये मोक्षेऽनादिनिधनं वसति कालम् ॥ ५०७ ॥
स तस्मिन्निराबाधः केवलवरज्ञान - दर्शनप्रदीपः । अनुभवन् निवसति निरुपमसौख्यं यतो भणितम् ॥ ५०८ ॥
नाप्यस्ति मनुष्याणां तत्सौख्यं नापि च सर्वदेवानाम् । यत्सौख्यं सिद्धानामव्याबाधमुपगतानाम् ॥ ५०९ ॥
यदि नाम कोऽपि म्लेच्छो नगरगुणान् बहुविधान् विजानन् । न पार्यते परिकथयितुमुपमया तत्रासन्त्या ॥ ५१० ॥
इति सिद्धानां सौख्यमनोपमं नास्ति तस्यौपम्यम् । किञ्चिद्विशेषेणेतः सादृश्यमिदं शृणुत वक्ष्ये ॥ ५११ ॥
यथा सर्वकामगुणितं पुरुषो भुक्त्वा भोजनं कोऽपि । तृष्णा-क्षुधाविमुक्त आस्ते यथामृततृप्तः ॥ ५१२ ॥
इति सर्वकालतृप्ता अतुलं निर्वाणमुपगताः सिद्धाः । शाश्वतमव्याबाधं तिष्ठन्ति सुखिनः सुखं प्राप्ताः ॥ ५१३ ॥
इति श्रुत्वोपदेशं श्रवणसुखामृतप्रवाहसदृशम् । भवभयसम्भ्रान्तो भणति भूपति र्भव्यपरिणामः ॥ ५१४ ॥
भगवन् ! यद्यूयं भणत भीमभवभयमेतेषां भव्यानाम् । भवभयभीतानां तत्र विभ्रमो मम मनसि नास्ति ॥ ५१५ ॥
तत एनं मनुष्यभवं सफलं करिष्यामि युष्माकं पार्श्वे । प्रतिपद्य प्रव्रज्यां कृत्वा राज्यसुस्थत्वम् ॥ ५१६ ॥
अत्रान्तरे मस्तकनिहितकरकोशसंपूटा देवी । ऋषिदत्ता मुनिनाथं परिपृच्छति पौरप्रत्यक्षम् ॥ ५१७ ॥
भगवन् ! राक्षसीवादो मम जातः केन कर्मणा ? कथयत । ज्ञात्वातिशयज्ञानेन कौतूकं ममातिगुरुकम् ॥ ५१८ ॥

---

१. जीवस्स रं० ।

तो पारद्धो कहिउं भद्दजसो गणहरो मिउगिराए । अवहियचित्ता होउं खणमेक्कं सुणसु तं भद्दे ! ॥ ५१९ ॥
अत्थि इह जंबुदीवे नयरं गंगाउरं मणभिरामं । चित्तमिमं जं न तयं कयाइ विसमक्खपरिभुत्तं ॥ ५२० ॥
तं पालइ नरनाहो अरिवग्गकुरंगसंहरणवाहो । नामेण गंगदत्तो रिवुगयघडदलणथिरसत्तो ॥ ५२१ ॥
सव्वंतेउरसारा गंगा नामेण तस्स पियभज्जा । नामेण गंगसेणा तस्स सुया सव्वगुणदइया ॥ ५२२ ॥
चंदजससाहुणीए पासे तीए जिणिंदपन्नत्तो । पत्तो धम्मो सा तं परिपालइ सुद्धपरिणामा ॥ ५२३ ॥
धम्मामयतित्तमणा दूरं परिचत्तविसमविसयतिसा । वज्जियपरिणयणकहा चिट्ठइ सा धम्मगयबुद्धी ॥ ५२४ ॥
अवरा वि तत्थ एगा संगा नामेण साविया अत्थि । दारिद्दभरक्कंता निक्खंता साहुणिसयासे ॥ ५२५ ॥
सा कुणइ तवं उग्गं वयमाहप्पेण पूयए लोगो । रायसुया वि हु तप्पइ किंपि तवं अंबिलाईयं ॥ ५२६ ॥
नवरं न कोवि वन्नं कुणइ गिहत्थ त्ति काउमेईए । तत्तो सा निवधूया मच्छरमुव्वहइ संगाए ॥ ५२७ ॥
भणइ य एसा वइणी रयणीए बलेण खाइ मडयाणि । ताहे सव्वो वि जणो पत्तिन्तो रायधूयाए ॥ ५२८ ॥
सा वि हु सकयफलमिमं ति सम्ममहियासए विवेयवसा । तीए तं पुण कम्मं बद्धमभक्खाणसंजणियं ॥५२९॥
भमिऊणं संसारे दुहपउरे एत्थ चेव गंगउरे । जाया नरिंदतणया पत्तो जिणदेसिओ धम्मो ॥ ५३० ॥
गहिऊणं पव्वज्जं तवोविहाणं समायमायरइ । तो मायाणुट्ठाणं अब्भक्खाणं च संगाए ॥ ४३१ ॥
सुगुरूणमणालोइय नरिंदधूया तहेव य ससल्ला । मरिऊणमग्गमहिसी ईसाणिंदस्स संजाया ॥ ४३२ ॥

ततः प्रारब्धः कथयितुं भद्रयशा गणधरो मृदुगिरा । अवहितचित्ता भूत्वा क्षणमेकं शृणु त्वं भद्रे ! ॥ ५१९ ॥
अस्तीह जम्बूद्वीपे नगरं गङ्गापुरं मनोभिरामम् । चित्रमिदं यन्न तकत्कदाचिद्विषमक्षपरिभुक्तम् ॥ ५२० ॥
तं पालयति नरनाथोऽरिवर्गकुरङ्गसंहरणव्याघ्रः । नाम्ना गङ्गदत्तो रिपुगजघटदलनस्थिरचितः ॥ ५२१ ॥
सर्वान्तःपुरसारा गङ्गा नाम्ना तस्य प्रियभार्या । नाम्ना गङ्गसेना तस्य सुता सर्वगुणदयिता ॥ ५२२ ॥
चन्द्रयशासाध्व्याः पार्श्वे तया जिनेन्द्रप्रज्ञप्तः । प्राप्तो धर्मः सा तं परिपालयति शुद्धपरिणामा ॥ ५२३ ॥
धर्मामृततृप्तमना दूरं परित्यक्तविसमविषयतृषा । वर्जितपरिणयनकथा तिष्ठति सा धर्मगतबुद्धिः ॥ ५२४ ॥
अपरापि तत्रैका सङ्गा नाम्ना श्रावकास्ति । दारिद्रभराक्रान्ता निष्क्रान्ता साध्वीसकाशे ॥ ५२५॥
सा करोति तप उग्रं व्रतमाहात्म्येन पूजयति लोकः । राजसुतापि हु तप्यते किमपि तप आचाम्लादिकम् ॥ ५२६ ॥
नवरं न कोऽपि वर्णं करोति गृहस्थेति कर्तुमेतस्याः । ततः सा नृपदुहिता मत्सरमुद्वहति सङ्गायाम् ॥ ५२७ ॥
भणति चैषा व्रतिनी रजन्यां बलेन खादति मृतकानि । तदा सर्वोऽपि जनः प्रत्यायितो राजदुहित्रा ॥ ५२८ ॥
साऽपि हु स्वकृतफलमिदमिति सम्यगध्यासते विवेकवशात् । तया तत्पुनः कर्म बद्धमभ्याख्यानसञ्जनितम् ॥ ५२९ ॥
भ्रान्त्वा संसारे दुःखप्रचूरेऽत्र चैव गङ्गपुरे । जाता नरेन्द्रतनया प्राप्तो जिनदेशितो धर्मः ॥ ५३० ॥
गृहीत्वा प्रव्रज्यां तपोविधानं समायमाचरति । ततो मायानुष्ठानमभ्याख्यानं च सङ्गायाः ॥ ५३१ ॥
सुगुरुणमनालोच्य नरेन्द्रदुहिता तथैव च सशल्या । मृत्वाग्रमहिषीशानेन्द्रस्य सञ्जाता ॥ ५३२ ॥

तत्तो चविउं जाया तुममेसा इहभवम्मि रिसिदत्ता । इय सुणिउं नियचरियं जाईसरणेण संबुद्धा ॥ ५३३ ॥
चलणेसु निवडिऊणं गुरुणो संजायगरुयसंवेगा । भणइ गुरुं भयवमिमं सव्वं सच्चं भणह तुब्भे ॥ ५३४ ॥
रायाई सयलजणो विम्हइओ निसुणिऊण गुरुभणियं । रिसिदत्ताए चरियं जाओ दुच्चरियभयभीओ ॥ ५३५ ॥
कणगरहो वि य राया रज्जे अभिसिंचिऊण सीहरहं । महया विच्छड्डेणं कारविय जिणिदपूयाओ ॥ ५३६ ॥
सिबियाए समारूढो कुणमाणो सासणुन्नइं परमं । सकलत्तो निक्खंतो विहिणा गुरुपायमूलम्मि ॥ ५३७ ॥
अब्भसियदुविहसिक्खो तवसा संखवियघाइकम्मंतो । उप्पन्नविमलनाणो वियाणियासेसनायव्वो॥ ५३८ ॥
केवलिपरियायं पालिऊण पडिबोहिऊण भवियजणं । सासयसोक्खे मोक्खे संपत्तो सह कलत्तेण ॥ ५३९ ॥

॥ ऋषिदत्ताऽऽख्यानकं समाप्तम् ॥ ९१ ॥

इदानीं मक्षिकामल्लाख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्–

उज्जेणीनयरीए जियसत्तुनराहिवस्स रज्जम्मि । नामेणं मल्लमरट्टकट्टणो अट्टणो मल्ले ॥ १ ॥
सो उण समुद्दतीरे गेन्हइ सोपारयम्मि नयरम्मि । गंतूण जयवडायं सीहगिरिनिवस्स रज्जम्मि ॥ २ ॥
चिंतियमिमिणा रज्जंतराउ आगम्म मज्झ मल्लमहे । घेत्तूण जयवडायं जाइ इमो परिभवो मज्झ ॥ ३ ॥
तो अहमिण्हि मल्लं महाबलं चिंतयामि नियरज्जे । एवं जा गविसावइ ता पेच्छइ पुरिसमेगं सो ॥ ४ ॥
उवचियसोणियमंसं वियडकडिं पिहुलवच्छयलभायं । पीण-समुन्नयखंधं करिसुंडायारभुयदंडं ॥ ५ ॥

ततश्च्युत्वा जाता त्वमेषेह भवे ऋषिदत्ता । इति श्रुत्वा निजचरित्रं जातिस्मरणेन सम्बुद्धा ॥ ५३३ ॥
चरणयो र्निपत्य गुरोः सञ्जातगुरुकसंवेगा । भणति गुरुं भगवन्निदं सर्वं सत्यं भणत यूयम् ॥ ५३४ ॥
राजादिः सकलजनो विस्मितो निश्रुत्य गुरुभणितम् । ऋषिदत्तायाश्चरित्रं जातो दुश्चरित्रभयभीतः ॥ ५३५ ॥
कनकरथोऽपि राजा राज्येऽभिषिञ्च्य सिंहरथम् । महता विभवेन कारितो जिनेन्द्रपूजाः ॥ ५३६ ॥
शिबिकायां समारुढः कुर्वाणः शासनोन्नतिं परमाम् । सकलत्रो निष्क्रान्तो विधिना गुरुपादमूले ॥ ५३७ ॥
अभ्यसितद्विविधशिक्षस्तपसा संक्षपितघातिकर्मांशः । उत्पन्नविमलज्ञानो विज्ञाताशेषज्ञातव्यः ॥ ५३८ ॥
केवलिपर्यायं पालयित्वा प्रतिबोध्य भविकजनम् । शाश्वतसौख्ये मोक्षे सम्प्राप्तः सह कलत्रेण ॥ ५३९ ॥

॥ ऋषिदत्ताऽऽख्यानकं समाप्तम् ॥ ९१ ॥

मक्षिकामल्लाख्यानकम् ॥ ९२ ॥

उज्जैनीनगर्यां जितशत्रुनराधिपस्य राज्ये । नाम्ना मल्लगर्वकर्तनोऽट्टनो मल्लः ॥ १ ॥
स पुनः समुद्रतीरे गृह्णाति सोपारके नगरे । गत्वा जयपताकां सिंहगिरिनृपस्य राज्ये ॥ २ ॥
चिन्ततमनेन राज्यान्तरादागत्य मम मल्लमहसि । गृहीत्वा जयपताकां यात्ययं परिभवो मम ॥ ३ ॥
ततोऽहमिदानीं मल्लं महाबलं चिन्तयामि निजराज्ये । एवं यावद्गवेषयति तावत्पश्यति पुरुषमेकं सः ॥ ४ ॥
उपचितशोणितमांसं विकटकटिं पृथुलवक्षःस्थलभागम् । पीन-समुन्नतस्कन्धं करिसुण्डाकार भुजदण्डम् ॥ ५ ॥

महु-मंसभक्खणरयं सुराए मत्तं सरेहि विज्झंतं । लग्गंतेवि हु न मुणइ बाणपहारे मयवसेणं ॥ ६ ॥
भणइ य कुओ वि लग्गंति मच्छियाओ सतिक्खतुंडाओ । तो सो रण्णा ठविओ मच्छियमल्लो निए रज्जे ॥ ७ ॥
अन्निम्मि महे जाए मच्छियमल्लेण अट्टणो जित्तो । तेणावि चिंतियमहं जित्तो वुड्ढतणेणिमिणा ॥ ८ ॥
एसो पढमवयत्थो अहयं तु जराए चउविहबलेणं । अक्कमिओ सव्वत्तो पराभिभूओ जओ भणियं ॥ ९ ॥
सयणपराभव-सुन्नत-वाउ-सिंभाइयं जरासेन्नं । गरुयाणं पि हु बलमाण-खंडणं कुणइ वुड्ढत्ते ॥ १० ॥
तो तेण तरुणमल्लं सुरट्ठविसए निरूवयंतेण । दूरुल्लकूवियाए सच्चविओ हालिओ एगो ॥ ११ ॥
एगेण वाहइ हलं करेण फलहीउ लुणइ अवरेणं । तं दट्ठूणं तुट्ठो एसो मह वंछियं काही ॥ १२ ॥
जं बलमाहाराओ तेण परिक्खामि भोयणमिमस्स । एत्थंतरम्मि भज्जा भत्तं गहिऊण संपत्ता ॥ १३ ॥
कूरस्स भरिय पिडयं कुडयं कुसणस्स सव्वमवि भुत्तं । भुत्तस्स वि परिणामं जा जोयइ ता तयं पि सुहं ॥१४॥
तो भणियं किं खिज्जसि ? आगच्छ करेमि ईसरं जेण । पडिवन्ने भज्जाए निव्वाहं चिंतिउं नीओ ॥ १५ ॥
काऊण कायसुद्धिं आहाराईहिं पोसिओ विहिणा । सिक्खविओ य निजुद्धं कयकरणो जाव संपत्तो ॥ १६ ॥
मल्लमहे संजाए मच्छियमल्लेण जोहिओ तेण । पढमे दिणम्मि न जओ पराजओ न वि य मल्लाणं ॥ १७ ॥
बीयम्मि दिणे फलहियमल्लो दुक्खंतयं सरीरम्मि । पुट्ठो य अट्टणेणं तेण वि कहियं जहावत्तं ॥ १८ ॥
अब्भंगण-मद्दण-सेयणेहिं विहिओ पुणन्नवो तेण । मच्छियमल्लो पुट्ठो भणइ ममं तस्स पिउणो वि ॥ १९ ॥

मधु-मांसभक्षणरतं सुरयामत्तं शरै र्विध्यमानम् । लगन्तोऽपि हु न मुणोति बाणप्रहारान् मदवशेन ॥ ६ ॥
भणति च कुतोऽपि लगन्ति मक्षिकाः सतीक्ष्णतुण्डाः । तदा स राज्ञा स्थापितो मक्षिकमल्लो निजे राज्ये ॥ ७ ॥
अन्यस्मिन् महसि जाते मक्षिकमल्लेनाट्टनो जितः । तेनापि चिन्तितमहं जितो वृद्धत्वेनानेन ॥ ८ ॥
एष प्रथमवयस्थोऽहं तु जरया चतुर्विधबलेन । आक्रामितः सर्वतः पराभिभूतो यतो भणितम् ॥ ९ ॥
स्वजनपराभव-शून्यत्व-वायु-श्लेष्मादिकं जरासैन्यम् । गुरुकाणामपि हु बलमानखण्डनं करोति वृद्धत्वे ॥ १० ॥
ततस्तेन तरुणमल्लं सौराष्ट्रविषये निरुपयता । दूरार्द्रकूपिकायां दृष्टो हालिक एकः ॥ ११ ॥
एकेन वाह्यति हलं करेण फलहीकं लुनात्यपरेण । तद्दृष्ट्वा तुष्ट एष मम वाञ्छितं करिष्यति ॥ १२ ॥
यद्बलमाहारात्तेन परीक्षे भोजनमेतस्य । अत्रान्तरे भार्या भक्तं गृहीत्वा सम्प्राप्ता ॥ १३ ॥
कूरस्य भृतं पिटकं कुटकं कुसनस्य सर्वमपि भुक्तम् । भुक्तस्यापि परिणामं यावत्पश्यति तावत्तकदपि शुभम् ॥ १४ ॥
ततो भणितं किं खिद्यसे ? आगच्छ करोमीश्वरं येन । प्रतिपन्ने भार्याया निर्वाहं चिन्तयित्वा नीतः ॥ १५ ॥
कृत्वा कायशुद्धिमाहारादिभिः पोषितो विधिना । शिक्षियतश्च निर्युद्धं कृतकरणो यावत् सम्प्राप्तः ॥ १६ ॥
मल्लमहसि सञ्जाते मक्षिकमल्लेन योधितस्तेन । प्रथमे दिने न जयपराजयो नापि च मल्लयोः ॥ १७ ॥
द्वितीये दिने फलहिकमल्लो दूयमानः शरीरे । पृष्टश्चाट्टनेन तेनापि कथितं यथावृत्तम् ॥ १८ ॥
अभ्यङ्गन-मर्दन-सेचनै र्विहितः पुनर्नवस्तेन । मक्षिकामल्लः पृष्टो भणति मम तस्य पितुरपि ॥ १९ ॥

गन्नं न किंपि तइए दिणम्मि अंबाडिए सरीरम्मि । न चयइ चलिउं थंभो व्व संठिओ अचलठाणेणं ॥ २० ॥
सुमराविएण फलहियपओगमियरेण तोडियं सीसं । पत्ता फलहियमल्लेण रंगमज्झे जयवडाया ॥ २१ ॥
अट्टणसरिसा गुरुणो मल्लसमा साहुणो समक्खाया । अवराहा य पहारा आराहणया जयवडाया ॥ २२ ॥

॥ मक्षिकामल्लाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९२ ॥

अन्नाणाओ जहेसिं गुरुणो णाऽऽलोइयं सदुच्चरियं । जायं अणिट्ठफलयं तह अन्नस्सावि दट्ठव्वं ॥

नानर्थमङ्गिनिवहस्स रिपुर्विवृद्धस्तादृक्षमुग्रकरवालकरः करोति ।
यादृक्षमेतदिह शल्यमनुद्धृतं सत्, कुर्यादतस्तदलमुद्धरताऽऽशु सम्यक् ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे भावशल्यानालोचनदोषप्रकटन एकोनत्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ २६ ॥

गणितं न किमपि तृतीये दिने तिरष्कृते शरीरे । न पार्यते चलितुं स्तम्भ इव संस्थितोऽचलस्थानेन ॥ २० ॥
स्मारयित्वा फलहिकप्रयोगमितरेण त्रोटितं शीर्षम् । प्राप्ता फलहिकमल्लेन रंगमध्ये जयपताका ॥ २१ ॥
अट्टनसदृशा गुरवो मल्लसमाः साधवः समाख्याताः । अपराधाश्च प्रहारा आराधनया जयपताका ॥ २२ ॥

॥ मक्षिकामल्लाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९२ ॥

अज्ञानाद्यथैभि र्गुरो र्नालोचितं स्वदुश्चरित्रम् ।
जातमनिष्टफलकं तथान्यस्यापि द्रष्टव्यम् ॥

• • •

[३०. मोहार्त्तमृतकुगतिपातदर्शकाधिकारः]

सम्यगनालोचनमरणे दोषोऽभिहितः । एतच्च मोहवशगस्य भवतीत्याह–

मोहेणऽट्टवसट्टो जो कालं कुणइ जाइ सो कुगइं ।
तावस-सागरदत्त व्व नंद-ललियंगजणणि व्व ॥ ३९ ॥

व्याख्या - 'मोहेन' मोहनीयकर्मणा 'आर्तवशार्तः' इति आर्तस्य-आर्तध्यानस्य वशः - आयत्तता तेन कृतः - पीडितः आर्तवशार्तः यः कश्चित् 'कालं' मरणं 'करोति' विधत्ते 'याति' गच्छति स प्राणी कुगतिं नरक-तिर्यग्गतिरूपाम् । दृष्टान्तानाह-तापसश्च श्रेष्ठी सागरदत्तश्च-वणिक् ताविव तद्वत्, नन्दश्च-मणिकारः ललिताङ्गजननी च वासुदेवपूर्वभवमाता ते तथोक्ते, ते इव तद्वदिति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्र तावत् क्रमागतं तापसाख्यानकमभिधीयते । तच्चेदम्–

आसी कोसंबिपुरीए तावसो नाम विस्सुओ सेट्ठी । मोहवसट्टो मरिउं सगिहे च्चिय सूयरो जाओ ॥ १ ॥
दट्ठुण नियभवणं जाओ संजायजाइसरणो सो । तं न मुयइ मणयं पि हु अहऽन्नया तस्स [दिवस त्ति ?] ॥२॥
[तक्कज्जे तस्स] सुएण सयणवग्गो निमंतिओ सव्वो । विहिया मंसाईया महुररसा रसवई तत्थ ॥ ३ ॥
मज्जारेण महाणसगिहाओ नीयम्मि संभिए मंसे । दिट्ठो रसोयणीए भीयाए सूयरो तत्थ ॥ ४ ॥

तापसाख्यानकम् ॥ ९३ ॥

आसीत्कौशाम्बीपूर्यां तापसो नाम विश्रुतः श्रेष्ठी । मोहवशार्तो मृत्वा स्वगृहे चैव शूकरो जातः ॥ १ ॥
दृष्टवा निजकभवनं जातः सञ्जातजातिस्मरणः सः । तन्न मुञ्चति मनागपि खल्वथान्यदा तस्य (दिवस इति ?) ॥२॥
(तत्कार्ये तस्य) सुतेन स्वजनवर्गो निमंत्रितः सर्वः । विहिता मांसादिका मधुररसा रसवती तत्र ॥ ३ ॥
माजरिण महानसगृहान्नीते संभिते मांसे । दृष्टः सूपकारिण्या भीतया शूकरस्तत्र ॥ ४ ॥

नीओ य तओ विजणम्मि मारिओ विरसमारसंतो सो । पइऊण तस्स मंसं दिन्नं सयणाण सव्वेसिं ॥ ५ ॥
सो पुण अट्टज्झाणेण विसहरो तत्थ भीसणो जाओ । दट्ठुण गिहं संजायजाइसरणो न तं मुयइ ॥ ६ ॥
दिट्ठो य पीढिविवरे भवणब्भंतरगएण पुत्तेणं । विद्धो तहट्ठिओ सो झड त्ति कुंताइणा तेण ॥ ७ ॥
मरिउं सुण्हाए सुओ जाओ विद्धिं गओ गिहं दट्ठुं । संजाइजाइसरणो विचिंतए किह भणिस्सामि ॥ ८ ॥
ताय त्ति पुत्तमेयं सुण्हं जणणि त्ति लज्जमाणो सो । जाओ मूओ पियरेहिं कारिया मंतवाया से ॥ ९ ॥
मोणट्ठिओ न पउणो जायइ सो अन्नया समोसरिओ । सूरी ओहिन्नाणेण संजुओ नयरिउज्जाणे ॥ १० ॥
भिक्खावेलासमए मुणिणो गुरुणा पयंपिया एवं । अमुगाहिनाणसंजुत्तभवणदारप्पएसम्मि ॥ ११ ॥
पेच्छिस्सह वणियसुयं तं पइ वत्तव्वमेरिसं वयणं । तावस ! मोत्तुं मोणव्वयं इमं कुणासु जिणधम्मं ॥ १२ ॥
मरिऊण सूयरो तं जाओ तह विसहरो सुयसुओ य । इय भणिए से होही पडिबोहो तयणु ते मुणिणो ॥ १३ ॥
इच्छं ति भणिय भिक्खाए निग्गया पइगिहं भमंतेहिं । तेहिं सडिंभो डिंभो दिट्ठो भणियं च गुरुभणियं ॥ १४ ॥
सोऊण इमं चलणेसु निवडिओ मुणिवराण सो झत्ति । अम्मा-पियरो दट्ठूण चेट्ठियं तस्स चिंतंति ॥ १५ ॥
नूणं मंतपओगो कोइ कओ मुणिवरेहिं एयस्स । ताणमिमं चिंतंताण तेण ते पुच्छिया मुणिणो ॥ १६ ॥
किह भयवं मह चरियं नायं ? गुरुवयणओ त्ति तेहुत्ते । भणियमिमेण कहिं ते ? ठाणं सिट्ठं तओ तेहिं ॥ १७ ॥
पडिलाभिऊण मुणिणो डिंभो अम्मा-पिऊहिं संजुत्तो । पत्तो गुरूण पासम्मि पणमिउं तत्थ उवविट्ठो ॥ १८ ॥

नीतश्च ततो विजने मारितो विरसमारटन् सः । पक्त्वा तस्य मांसं दत्तं स्वजनानां सर्वेषाम् ॥ ५ ॥
स पुनरार्तध्यानेन विषधरस्तत्र भीषणो जातः । दृष्टवा गृहं सञ्जातजातिस्मरणो न तं मुञ्चति ॥ ६ ॥
दृष्टश्च पीठीविवरे भवनाभ्यन्तरगतेन पुत्रेण । विद्धस्तथास्थितः स झटिति कुन्तादिना तेन ॥ ७ ॥
मृत्वा श्नुषायाः सुतो जातो वृद्धिं गतो गृहं दृष्ट्वा । सञ्जातजातिस्मरणो विचिन्तयति कथं भणिष्यामि ॥ ८ ॥
तातेति पुत्रमेनं श्नुषां जननीति लज्जमानः सः । जातो मूकः पितृभ्यां कारिता मन्त्रवादास्तस्य ॥ ९ ॥
मौनस्थितो न प्रगुणो जायते सोऽन्यदा-समवसृतः । सूरिरवधिज्ञानेन संयुक्तो नगर्युद्याने ॥ १० ॥
भिक्षावेलासमये मुनयो गुरुणा प्रजल्पिता एवम् । अमुकाभिज्ञानसंयुक्तभवनद्वारप्रदेशे ॥ ११ ॥
प्रेक्षिष्यध्वे वणिक्सुतं प्रति वक्तव्यमीदृशं वचनम् । तापस ! मुक्त्वा मौनव्रतमिदं कुरुष्व जिनधर्मम् ॥ १२ ॥
मृत्वा शूकरस्त्वं जातस्तथा विषधरः सुतसुतश्च । इति भणिते तस्य भविष्यति प्रतिबोधस्तदनु तौ मुनी ॥ १३ ॥
इच्छमिति भणित्वा भिक्षायां निर्गतौ प्रतिगृहं भ्रमद्भ्याम् । ताभ्यां सडिम्भो डिम्भो दृष्टो भणितं च गुरुभणितम् ॥ १४ ॥
श्रुत्वेदं चरणयो र्निपतितो मुनिवरयोः स झटिति । अम्बा-पितरौ दृष्टवा चेष्टितं तस्य चिन्तयतः ॥ १५ ॥
नूनं मन्त्रप्रयोगः कोऽपि कृतो मुनिवराभ्यामेतस्य । तयोरिदं चिन्तयन्तोस्तेन तौ पृष्टौ मुनी ॥ १६ ॥
कथं भगवन् ! मम चरित्रं ज्ञातं ? गुरुवचनादिति ताभ्यामुक्ते । भणितमनेन कुत्र ते ? स्थानं शिष्टं ततस्ताभ्याम् ॥१७॥
प्रतिलाभ्य मुनी डिम्भोऽम्बा - पितृभ्यां संयुक्तः । प्राप्तो गुरुणां पार्श्वे प्रणम्य तत्रोपविष्टः ॥ १८ ॥

गुरुणा वि तस्स चरियं कहियं विहिया य देसणा परमा । सम्मत्तं संपत्तं अम्मा-पिउजुत्तडिंभेण ॥ १९ ॥

॥ तापसाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९३ ॥

सागरदत्ताख्यानकमाख्यायते—

उड्डुमरसमररिउकरडिकरडतडपाडणेक्कखरनहरो । कुसुमपुरम्मि पुरम्मि अत्थि निवो डमरसिंहो त्ति ॥ १ ॥
तत्थ य सागरदत्तो सेट्ठी निवसइ पभूयधणकलिओ । गुणचंदो नामेणं तस्स सुओ अन्नदिवसम्मि ॥ २ ॥
भणिओ सागरदत्तेण नियसुओ वच्छ ! दुक्खलक्खेहिं । लच्छी एसा संकलइ सा वि गेहम्मि संठविया ॥ ३ ॥
सज्झा जायइ तक्कर-निव-गोत्तिय-मित्त-जलणमाईण । तो सुन्नमसाणम्मि एसा किज्जउ निखाय त्ति ॥ ४ ॥
जेणावइसिंधुवईए निवडियाणं सुजाणवत्तं व । नित्थरणत्थं जायइ एवमिई पभणिए पुत्ते ॥ ५ ॥
नियतणएणं सहिओ कलसे भरिउं सुवन्नटंकाणं । रयणीए संपत्तो सागरदत्तो मसाणम्मि ॥ ६ ॥
निक्खणिउं तेहिं तहिं तं दव्वं विरइयाइं चिन्हाइं । एत्तो य नाइदूरट्ठिएण कप्पडियपुरिसेण ॥ ७ ॥
पहसंतेणं[1] सुत्तेणं पेच्छिउं तं विचिंतियं तेण । जइ कहवि इमे नियमंदिरम्मि गच्छंति तो पच्छा ॥ ८ ॥
अहयं घेत्तूणमिमं करेमि विविहे समीहियविलासे । सागरदत्तेणावि हु भणिओ पुत्तो जह्म वच्छ ! ॥ ९ ॥
आगच्छ तुमं आसावलोयणं काउमिह सुओ तयणु । अइनिउणो ताय ! तुमं ति जंपिउं काउमारद्धो ॥ १० ॥

गुरुणापि तस्य चरित्रं कथितं विहिता च देशना परमा । सम्यक्त्वं सम्प्राप्तमम्बा-पितृयुक्तडिम्भेन ॥ १९ ॥

॥ तापसाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९३ ॥

सागरदत्ताख्यानकम् ॥ ९४ ॥

उत्कृष्टसमररिपुकरटिकरतटपाटनैकखरनखरः । कुसुमपुरे पुरेऽस्ति नृपो डमरसिंह इति ॥ १ ॥
तत्र च सागरदत्तः श्रेष्ठी निवसति प्रभूतधनकलितः । गुणचन्द्रो नाम्ना तस्य सुतोऽन्यदिवसे ॥ २ ॥
भणितः सागरदत्तेन निजसुतो वत्स ! दुःखलक्षैः । लक्ष्मीरेषा संकलयति सापि गृहे संस्थापिता ॥ ३ ॥
साध्या जायते तस्कर-नृप-गोत्रिक-मित्र-ज्वलनादीनाम् । ततः शून्यस्मशान एषा क्रियतां निखातेति ॥ ४ ॥
येनापत्तिसिन्धुपतौ निपतितानां सुयानपात्रमिव । निस्तरणार्थं जायते एवमिति प्रभणिते पुत्रे ॥ ५ ॥
निजतनयेन सहितः कलशं भृत्वा सुवर्णटङ्कानाम् । रजन्यां सम्प्राप्तः सागरदत्तः स्मशाने ॥ ६ ॥
निखन्य ताभ्यां तत्र तद्द्रव्यं विरचितानि चिह्नानि । इतश्च नातिदूरस्थितेन कार्पटिकपुरुषेण ॥ ७ ॥
पथश्रान्तेन सुप्तेन दृष्ट्वा तं विचिन्ततं तेन । यदि कथमपीमौ निजमन्दिरे गच्छेतांततः पश्चात् ॥ ८ ॥
अहं गृहीत्वेदं करोमि विविधान् समीहितविलासान् । सागरदत्तेनापि हु भणितः पुत्रो यथा वत्स ! ॥ ९ ॥
आगच्छ त्वमाशावलोकनं कृत्वेह सुतस्तदनु । अतिनिपुणस्तात ! त्वमिति जल्पित्वा कर्तुमारब्धः ॥ १० ॥

---

१. पथश्रान्तेन ।

हिंडंतेणं दिट्ठो कप्पडिओ विगयसासनिस्सासो । सुत्तो धणलोभाओ कवडेणं मडयसारिच्छो ॥ ११ ॥
चिंतियमिमिणा एसो मओ य जीवइ व इय परिक्खाए । तो तस्स सवणजुयलं छिन्नं जणयस्स तं कहियं ॥१२॥
जंपइ सो ताय ! मओ इय लिंगा लिक्खओ भणइ जणओ । धणलोभेणं तं नत्थि जं न विसहंति इह जीवा ॥१३॥
सम्मं निरूवऊणं पुणरवि आगच्छ तो गओ तत्थ । नासावंसं मूलाओ छिंदिउं आगओ पुत्तो ॥ १४ ॥
नायं जहा मओ सो पत्तो सेट्ठी गिहम्मि सो वि पुणो । कप्पडिओ तं दव्वं घेत्तूणऽन्नत्थ गोवेउं ॥ १५ ॥
गिण्हित्तु तयं थोवं लेइ तओ वत्थ-आभरणमाई । भुंजइ अणंगसेणापणंगणाए समं भोए ॥ १६ ॥
अन्नम्मि दिणे तेणं विहिया उज्जाणिया वरुज्जाणे । दिन्नं दीणाईणं दाणं वित्थारियं तेहिं ॥ १७ ॥
नयरम्मि जहा अहिणवधणओ दाणं पयच्छए अज्ज । अइमसिणवसण-संविहियसवणजुय-नासियाविवरो ॥१८॥
निसुणित्तु जणाओ इमं सागरदत्तो विचिंतए एवं । सोऽयं पुरिसो होही निरूविओ जो मसाणम्मि ॥ १९ ॥
ता इमिणा मम दव्वं गहियं होहि त्ति चिंतिऊण तओ । कहिउं पुत्तस्स तयं गओ निसाए मसाणम्मि ॥ २० ॥
जाव निहालइ सम्मं न हु पेच्छइ ताव तत्थ तं कलसं. । तो जायनिच्छएणं निवेइयं राइणो एवं ॥ २१ ॥
अज्जं जेणुज्जाणी विहिया सो दव्वहारओ मज्झं । अवहरियं सव्वस्सं इमिणा ता सामि ! वालेसु ॥ २२ ॥
तो रन्ना रुट्ठेणं आहूओ सो निउत्तपुरिसेहिं । आगंतुं निवपुरओ पणामपुव्वं समुवविट्ठो ॥ २३ ॥
तत्तो रन्ना सेट्ठी पयंपिओ भणसु तुज्झ जं हरियं । इमिणा सो आह सुवन्नटंकपरिपूरिओ कलसो ॥ २४ ॥

हिण्डमानेन दृष्टः कार्पटिको विगतश्वासनिःश्वासः । सुप्तो धनलोभात् कपटेन मृतकसाद्रक्ष्यः ॥ ११ ॥
चिन्तितमनेनैष मृतश्च जीवतिचेति परीक्षया । ततस्तस्य श्रवणयुगलं छिन्नं जनकस्य तत्कथितम् ॥ १२ ॥
जल्पति स तात ! मृत इति लिङ्गाल्लक्षितो भणति जनकः । धनलोभेन तन्नास्ति यन्न विसहन्त इह जीवाः ॥ १३ ॥
सम्यग् निरुप्य पुनरप्यागच्छ ततो गतस्तत्र । नासावंशं मूलाच्छित्वागतः पुत्रः ॥ १४ ॥
ज्ञातं यथा मृत स प्राप्तः श्रेष्ठी गृहे सोऽपि पुनः । कार्पटिकस्तद्द्रव्यं गृहीत्वान्यत्र गोपयित्वा ॥ १५ ॥
गृहीत्वा तकत् स्तोकं लाति ततो वस्त्राऽऽभरणादयः । भुनक्त्यनङ्गसेनापणाङ्गनायाः समं भोगान् ॥ १६॥
अन्यस्मिन् दिने तेन विहतोद्यानिका वरोद्याने । दत्तं दीनादिभ्यो दानं विस्तारितं तैः ॥ १७ ॥
नगरे यथाभिनवधनदो दानं प्रयच्छत्यद्य । अतिमसृणवसन-संविहितश्रवणयुग-नासिकाविवरः ॥ १८ ॥
निश्रुत्य जनादिमं सागरदत्तो विचिन्तयत्येवम् । सोऽयं पुरुषो भविष्यति निरुपितो यःश्मशाने ॥ १९ ॥
यावन्निभालयति सम्यङ्न खलु प्रेक्षते तावत्तत्र तं कलशम् । ततो जात निश्चयेन निवेदितं राज्ञ एवम् ॥ २१ ॥
अद्य येनोद्यानी विहिता स द्रव्यहारको मम । अपहृतं सर्वस्वमनेन ततः स्वामिन् ! वालय ॥ २२ ॥
ततो राज्ञा रुष्टेनाहूतः सो नियुक्तपुरुषैः । आगत्य नृपपुरतः प्रणामपूर्वं समुपविष्टः ॥ २३ ॥
ततो राज्ञा श्रेष्ठी प्रजल्पितो भण तव यद्धृतम् । अनेन स आह सुवर्णटङ्कपरिपूरितः कलशः ॥ २४ ॥

नरवइणा पुट्ठेणं कहिओ चोरेण सव्ववुत्तंतो । आमूलनासियाछेयणाइओ भणियमवरं च ॥ २५ ॥
नियअंगाइं विक्किंत्तु गिण्हियं जं मए दविणजायं । तं कहमप्पेमि ? निवेण भणियमन्नायरसिएणं ॥ २६ ॥
तस्सत्तरंजिएणं भद्दय ! जइया समप्पए सेट्ठी । सवणाई अंगाइं तइया तुमए वि एयस्स ॥ २७ ॥
अप्पेयव्वो अत्थो त्ति जंपिउं दो वि नरवरिंदेण । सट्ठाणे पट्ठविया चोरो विलसइ जहिच्छाए ॥ २८ ॥
सेट्ठी विहु तं अत्थं अलहंतो मोहमोहिओ तम्मि । अट्टवसट्टोवगओ मरिऊणमहोगइं पत्तो ॥ २९ ॥

॥ सागरदत्ताख्यानकं समाप्तम् ॥ ९४ ॥

इदानींनन्दाख्यानकमारभ्यते । तच्चेदम्–

रमणीयदेउला-ऽऽरामराइए पुरवरम्मि रायगिहे । सिरिवीरनाहकमकमलमहुयरो सेणिओ राया ॥ १ ॥
मणियारवणियवग्गस्स अग्गणी गुणमणीनईनाहो । सेट्ठी नंदो नामेण माणणीओ निवस्सऽत्थि ॥ २ ॥
अह अन्नया य भुवणेक्कबंधवं वद्धमाणजिणनाहं । समवसरियं निसामिय समागओ वंदणत्थमिमो ॥ ३ ॥
भूमीमिलंतभालोऽभिवंदिउं जिणवरं समुवविट्ठो । विहिया तिलोयगुरुणा तत्तो सद्देसणा तस्स ॥ ४ ॥
तं निसुणिऊण नंदो गिहत्थधम्मं दुवालसविहं पि । पडिवज्जिऊण तह पग्गमिऊण सामिं गिहं पत्तो ॥ ५ ॥
सम्मं गिहत्थधम्मं परिपालइ वड्ढमाणपरिणामो । संसारुत्तिन्नं पिव अप्पाणं मन्नमाणो सो ॥ ६ ॥
अह अन्नया असंजयजणस्स संसग्गओऽणुदिवसं पि । विरहम्मि सुविहियाणं सिढिलीहूयम्मि सम्मत्ते ॥ ७ ॥

नरपतिना पृष्टेन कथितश्चौरेण सर्ववृत्तान्तः । आमूलनासिकाच्छेदनादिको भणितमपरं च ॥ २५ ॥
निजाङ्गानि विक्रिय गृहीतं यन्मया द्रविणजातम् । तं कथमर्पयामि ? नृपेण भणितमज्ञातरसिकेन ॥ २६ ॥
तस्यार्त्तरञ्जितेन भद्रक ! यदा समर्पयति श्रेष्ठी । श्रवणादयोऽङ्गानि तदा त्वयाप्येतस्य ॥ २७ ॥
अर्पयितव्योऽर्थ इति जल्पित्वा द्वावपि नरवरेन्द्रेण । स्वस्थाने प्रस्थापिताश्चौरो विलसति यथेच्छया ॥ २८ ॥
श्रेष्ठयपि हु तमर्थमलभमानो मोहमोहितस्तस्मिन् । आर्तवशार्त्तोपगतो मृत्वाधोगतिं प्राप्तः ॥ २९ ॥

॥ सागरदत्ताख्यानकं समाप्तम् ॥ ९४ ॥

नन्दाख्यानकम् ॥ ९५ ॥

रमणीय देवकुला-ऽऽरामराजिते पुरवरे राजगृहे । श्री वीरनाथक्रमकमलमधुकरः श्रेणिको राजा ॥ १ ॥
मणिकारवणिग्वर्गस्याग्रणी गुणमणिनदीनाथः । श्रेष्ठी नन्दो नाम्ना माननीयो नृपस्यास्ति ॥ २ ॥
अथान्यदा च भुवनैकबान्धवं वर्धमानजिननाथम् । समवसृतं निशम्य समागतो वन्दनार्थमयम् ॥ ३ ॥
भूमिमिलद्भालोऽभिवन्द्य जिनवरं समुपविष्टः । विहिता त्रिलोकगुरुणा ततः सद्देशना तस्य ॥ ४ ॥
तन्निशृत्य नन्दो गृहस्थधर्मं द्वादशविधमपि । प्रतिपद्य तथा प्रणम्य स्वामिनं गृहं प्राप्तः ॥ ५ ॥
सम्यग्गृहस्थधर्मं परिपालयति वर्धमानपरिणामः । संसारात्तीर्णमिवात्मानं मन्यमानः सः ॥ ६ ॥
अथान्यदाऽसंयतजनस्य संसर्गादनुदिदवसमपि । विरहे सुविहितानां शिथिलीभूते सम्यक्त्वे ॥ ७ ॥

जायम्मि जेट्ठमासे पोसहसालाए पोसहपरस्स । कयअट्ठमतवचरणस्स नंदमणियारसेट्ठिस्स ॥ ८ ॥
तन्हा-छुहाकिलंतस्स वासणा एरिसा समुप्पन्ना । ते धन्ना सप्पुरिसा ते च्चिय जीवंतु जियलोए ॥ ९ ॥
काराविआओ जेहिं पुक्खरिणीओ सुसीयलजलाओ । जासु जणो वहइ जलं पियइ तहा मज्जइ जहिच्छं ॥ १० ॥
ता अहमवि नरनाहं आपुच्छिय कारवेमि पोक्खरिणिं । इय चिंतिउं पभाए पारित्ता पोसहं सेट्ठी ॥ ११ ॥
परिहियवलक्खवत्थो पाहुडहत्थो निवं समल्लीणो । तप्पुरओ उवणेउं उवायणं तेण विन्नत्तं ॥ १२ ॥
देव ! तुहाणुन्नाए पुरपरिसरमेइणीए पोक्खरिणिं । काउमभिप्पाओ मे तोऽणुन्नाओ नरिंदेण ॥ १३ ॥
तत्तो य तेण हिंताल-ताल-ताली-तमालपमुहेण । सुसिणिद्धबहलसच्छायवच्छनियरेण परियरिया ॥ १४ ॥
मुत्ताहलावलीविमलसलिलसंभारपूरिया परमा । कलहंसावलिविलसंतबहलकल्लोलपरिकलिया ॥ १५ ॥
कल्हार-कमल-कुवलयपरायविच्छुरियनीरसंभारा । मयरंदमत्तभमरउलरोलमुहलियदिसावलया ॥ १६ ॥
परिभमिरगरुयकरिमयर-मच्छ-मंडुक्क-कच्छवऽच्छन्ना । कारविया पोक्खरिणी नंदा नामेण नंदेणं ॥ १७ ॥
पहियजणदाणसाला वि परिसरे तीए कारिया रम्मा । अप्पाणं कयकिच्चं तक्करणे मन्नमाणेण ॥ १८ ॥
मज्जंतो भुंजंतो जलं पियंतो य तत्थ कीलंतो । कुणइ गुणग्गहणं से समग्गलोगो वि अन्नोन्नं ॥ १९ ॥
नंदमणियारसेट्ठी सो च्चिय धन्नो जयम्मि सो जियउ । जेणेसा कारविया पोक्खरिणी सिसिरजलभरिया ॥ २० ॥
इय निसुणंतो नंदो मन्नइ अप्पाणममयसित्तं व । अहवा सगुणथुईए हरिसिज्जइ को न जियलोए ? ॥ २१ ॥

जाते ज्येष्टमासे पौषधशालायां पौषधपरस्य । कृताष्टमतपश्चरणस्य नन्दमणिकारश्रेष्ठिनः ॥ ८ ॥
तृष्णा-क्षुधाक्लान्तस्य वासनेदृशा समुत्पन्ना । ते धन्याः सत्पुरुषास्ते चैव जीवन्तु जीवलोके ॥ ९ ॥
कारिता यैः पुष्करिण्यः सुशीतलजलाः । यासु जनो वहति जलं पिबति तथा मज्जति यथेच्छम् ॥ १० ॥
ततोऽहमपि नरनाथमापृच्छ्य कारयामि पुष्करिणीम् । इति चिन्तयित्वा प्रभाते पारयित्वा पौषधं श्रेष्ठी ॥ ११ ॥
परिहितश्वेतवस्त्रः प्राभृतहस्तो नृपं समालीनः । तत्पुरत उपनीयोपायनं तेन विज्ञप्तम् ॥ १२ ॥
देव ! तवानुज्ञया पुरपरिसरमेदिन्यां पुष्करिणीम् । कर्तुमभिप्रायो मे ततोऽनुज्ञातो नरेन्द्रेण ॥ १३ ॥
ततश्चतेन हिन्ताल-ताल-ताली-तमालप्रमुखेन । सुस्निग्धबहलसच्छायवृक्षनिकरेण परिवारिता ॥ १४ ॥
मुक्ताफलवलीविमलसलिलसम्भारपूरिता परमा । कलहंसावलिविलसद्बहलकल्लोलपरिकलिता ॥ १५ ॥
कल्हार-कमल-कुवलयपरागविच्छुरितनीरसंम्भारा । मकरन्दमत्तभ्रमरकुलरोलमुखरितदिग्वलया ॥ १६ ॥
परिभ्रमद्रुरुककरिमकर-मत्स्य-मण्डुक-कच्छपाच्छन्ना । कारिता पुष्करिणी नन्दा नाम्ना नन्देन ॥ १७ ॥
पथिकजनदानशालापि परिसरे तस्याः कारिता रम्या । आत्मानं कृतकृत्यं तत्करणे मन्यमानेन ॥ १८ ॥
मज्जन् भुञ्जानो जलं पिबन् च तत्र क्रीडन् । करोति गुणग्रहणं तस्य समग्रलोकोऽप्यन्योन्यम् ॥ १९ ॥
नन्दमणिकारश्रेष्ठी स चैव धन्यो जगति स जीवतु । येनैषा कारिता पुष्करिणी शिशिरजलभृता ॥ २० ॥
इति निशृण्वन्नन्दो मन्यत आत्मानममृतसिक्तमिव । अथवा स्वगुणस्तुत्या हर्ष्यंते को न जीवलोके ? ॥ २१ ॥

एवं वच्चंते केत्तियम्मि कालम्मि असुहदोसेण । तस्स सरीरे सोलस संकंता दुस्सहा रोगा ॥ २२ ॥
पच्चक्खाओ वेज्जेहिं तयणु गुरुरोगवेयणक्कंतो । मरिउं नियपोक्खरिणीए दद्दुरो सन्निओ जाओ ॥ २३ ॥
धन्नो स नंदसेट्ठी पोक्खरिणी जेण कारिया एसा । इय जणसाहुक्कारं सोउं सो सुमरए जाइं ॥ २४ ॥
विन्नायपुव्वजम्मो विचिंतए फुरियगरुयसंवेगो । अहह ! अणज्जेण मए कह अप्पा पाडिओ पावे ? ॥ २५ ॥
लद्धूण वि भुवणनमिज्जमाणपयपंकयं जिणं वीरं । धम्ममवि भुवणगुरुणो सयासओ तस्स नाऊण ॥ २६ ॥
सव्वं पि हारियं नियमईए मूढेण किह मए तइया ? । एयं तु मज्झ जायं मिच्छत्तफलं अहन्नस्स ॥ २७ ॥
ता अज्ज वि किंपि सुहं करेमि जह होइ सुगइगमणं मे । इय चिंतिय छट्ठतवोऽभिग्गहमेसो सया कुणइ ॥ २८ ॥
पारइ य फासुएणं आहारेणं सजाइजोग्गेण । इय धम्मज्झाणपरस्स तस्स कालो वइक्कंतो ॥ २९ ॥
अवरम्मि अवसरे वद्धमाणसामी समोसढो तत्थ । मज्जंतो पोक्खरिणीए तीए लोओ समुल्लवइ ॥ ३० ॥
गुणसिलए उज्जाणे चलह लहुं वीरवंदणनिमित्तं । इय निसुणिऊण सो दद्दुरो वि संजायभत्तिभरो ॥ ३१ ॥
समवसरणम्मि चलिओ समुल्ललंतो इमं विचिंतंतो । भूमिलियभालवट्टो वीरजिणिंदं नमिस्सामि[1] ॥ ३२ ॥
तत्तो य रह-तुरंगम-गयघड-सुहडोहघडियपरिवेढो । नमणत्थं वीरजिणस्स निग्गओ सेणिओ राया ॥ ३३ ॥
तस्सेगयरतुरंगमखुरेण पहओ स दद्दुरो मग्गे । तग्घायपीडिओ सो सरिऊण जिणेसरं वीरं ॥ ३४ ॥

एवं व्रजति कियति कालेऽशुभदोषेण । तस्य शरीरे षोडश सङ्क्रान्ता दुःसहा रोगाः ॥ २२ ॥
प्रत्याख्यातो वैद्यैस्तदनु गुरुरोगवेदनाक्रान्तः । मृत्वा निजपुष्करिण्यां दर्दुरः संज्ञी जातः ॥ २३ ॥
धन्यः स नन्दश्रेष्ठी पुष्करिणी येन कारितैषा । इति जनसाधुकारं श्रुत्वा स स्मरति जातिम् ॥ २४ ॥
विज्ञातपूर्वजन्मा विचिन्तयति स्फुरितगुरुकसर्वाङ्गः । अहह ! अनार्येण मया कथमात्मा पातितः पापे ? ॥ २५ ॥
लब्ध्वापि भुवननम्यमानपदपङ्कजं जिनं वीरम् । धर्ममपि भुवनगुरोः सकाशात्तस्य ज्ञात्वा ॥ २६ ॥
सर्वमपि हारितं निजमत्या मूढेन कथं मया तदा ? । एतत्तु मम जातं मिथ्यात्वफलमधन्यस्य ॥ २७ ॥
ततोऽद्यापि किमपि शुभं करोमि यथा भवति सुगतिगमनं मे । इति चिन्तयित्वा षष्टतपोऽभिग्रहमेष सदा करोति ॥ २८ ॥
पारयति च प्रासुकेनाहारेण स्वजातियोग्येन । इति धर्मध्यानपरस्य तस्य कालो व्यतीक्रान्तः ॥ २९ ॥
अपरेऽवसरे वर्धमानस्वामी समवसृतस्तत्र । मज्जन् पुष्करिण्यां तदा लोकः समुल्लपति ॥ ३० ॥
गुणशिलक उद्याने चलत लघु वीरवन्दननिमित्तम् । इति निश्रुत्य स दर्दुरोऽपि सञ्जातभक्तिभारः ॥ ३१ ॥
समवसरणे चलितः समुल्ललन्निदं विचिन्तयन् । भूमिलितभालपृष्ठो वीरजिनेन्द्रं नंस्यामि ॥ ३२ ॥
ततश्च रथ-तुरंगम-गजघट-सुभटौघघटितपरिवेष्टः । नमनार्थं वीरजिनस्य निर्गतः श्रेणिको राजा ॥ ३३ ॥
तस्यैकतरतुरंगमखुरेण प्रहतः स दर्दुरो मार्गे । तद्घातपीडितः स स्मृत्वा जिनेश्वरं वीरम् ॥ ३४ ॥

---

१. नमंसामि रं० ।

विहियाणसणो मरिउं जाओ दद्दुरवडिंसयविमाणे । सो दद्दुरंकदेवो तओ य सिज्झिस्सइ विदेहे ॥ ३५ ॥

॥ नन्दाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९५ ॥

अधुना ललिताङ्गजनन्याख्यानकं व्याख्यायते । तच्चेदम्–

निवसंतनिव्वुयजणं निवसंतइताइयं समत्थि पुरं । भोगिद्धमंडलमयं वसंतउरमिव वसंतउरं ॥ १ ॥
तत्थ य नयरे निवसंति मायरो दोन्नि दाणधम्मरया । पयईए तेसि जेट्ठो दयावरो दुत्थिमजणम्मि ॥ २ ॥
लहुओ य लहुप्पयई पमाय-मयपरवसो किलिट्ठमणो । एगुयरसंभवा वि हु न हुंति कइया वि समसीला ॥ ३ ॥
ते अन्नया कयाई सगडारूढा पओयणवसेणं । गाममि पत्थिया सुत्थमाणसा जाव गच्छंति ॥ ४ ॥
तत्तो ते वित्थयवत्तिणीए सुकुमालसीयलरयाए । गड्डीए गंडहाराए सुहपसुत्तं पसत्थमणं ॥ ५ ॥
पयईए पमाया-ऽऽलस्ससहिय सुकुमार-मंसलावयवं । सप्पविसेसं लोयम्मि विस्सुयं चक्कुलंड त्ति ॥ ६ ॥
पासंति तओ जेठ्ठेण जंपियं जायजीवकरुणेण । वच्छ ! वराई एसा निस्सहदेहा सुयइ मग्गे ॥ ७ ॥
सिग्धं चलिउमसत्ता ता तं उव्वट्टिऊण वट्टाए । उम्मग्गेणं खेडसु वसहे सइ सोक्खसुहियस्स ॥ ८ ॥
एयस्स जियस्स जहा न विणासो होइ वच्छ ! इय वयणं । जेट्ठस्स संतियं विसइ तीए सवणेसु अमयं व ॥ ९ ॥
जओ-
मरु वायाए वुतो रूसइ हिययम्मि मंडणं कुणइ । जइ पुण जिओ त्ति वुच्चइ तो तूसइ मन्नए अमयं ॥ १० ॥

विहितानशनो मृत्वा जातो दर्दुरावतंसकविमाने । स दर्दुरांकदेवस्ततश्च सेत्स्यति विदेहे ॥ ३५ ॥

॥ नन्दाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९५ ॥

ललिताङ्गजनन्याख्यानकम् ॥ ९६ ॥

निवसन्निवृतजनं नृपसन्ततितातीतं समस्तिपुरम् । भोगेद्धमण्डलमयं वसन्तपुरमिव वसन्तपुरम् ॥ १ ॥
तत्र च नगरे निवसन्ति भ्रातरौ द्वौ दानधर्मरतौ । प्रकृत्या तयो र्ज्यैष्ठो दयापरो दुस्थितजने ॥ २ ॥
लघुकश्च लघुप्रकृतिः प्रमाद-मदपरवशः क्लिष्टमनाः । एकोदरसम्भवावपि हु न भवतः कदापि समशीलौ ॥ ३ ॥
तावन्यदा कदाचिच्छकटारूढौ प्रयोजनवशेन । ग्रामे प्रस्थितौ सुस्थमानसौ यावद्गच्छतः ॥ ४ ॥
ततस्तौ विस्तृतवर्तिन्यां सुकुमारशीतलरजसि । गर्तायां शकटवर्त्मनि सुखप्रसुप्तां प्रशस्तमनाम् ॥ ५ ॥
प्रकृत्या प्रमादाऽऽलससहितां सुकुमार-मांसलावयवाम् । सर्पविशेषां लोके विश्रुतां चक्कुलण्डामिति ॥ ६ ॥
पश्यतस्ततो ज्येष्ठेन जल्पितं जातजीवकरुणेन । वत्स ! वराक्येषा निःसहदेहा स्वपिति मार्गे ॥ ७ ॥
शीघ्रं चलितुमशक्ता ततस्तामुद्वर्त्य गर्तायाः । उन्मार्गेण खेटय वृषभान् सदा सौख्यसुहितस्य ॥ ८ ॥
एतस्य जीवस्य यथा न विनाशो भवति वत्स ! इति वचनम् । ज्येष्ठस्य सत्कं विशति तस्याः श्रवणयोरमृतमिव ॥ ९ ॥
यतः-
मर वाचयोक्तो रोषयति हृदये कलहं करोति । यदि पुनर्जीव इत्युच्यते तदा तुष्यते मन्यतेऽमृतम् ॥ १० ॥

---

१. सर्पविशेषः

बीएण भणियमेईए, केरिसो चंपियाए किर होइ । करडक्कयसद्दो ? भाय ! कोउयं कज्जइ मणस्स ॥ ११ ॥
सगडं खेडिस्समहं तम्हा एएण चेव मग्गेणं । वारंतस्स वि जेट्ठस्स खडइ वेगेण सो वसहे ॥ १२ ॥
एयं पि तीए निसुयं विसं व सवणाण दुहयरमकन्तं । सा वि य मगयं सच्चरियवासणा चूरियावयवा ॥ १३ ॥
मरिऊण हत्थिणउरे कम्माण विचित्तपरिणइवसेण । धूययणेण जाया कस्स वि इब्भस्स भवणम्मि ॥ १४ ॥
विहिओ महूसवो से जम्मे जणएण गरुयविहवेण । चंपयलव व्व गिरिकंदरम्मि अह विद्धिमणुपत्ता ॥ १५ ॥
एवं तीए कमेणं पत्थावे थीजणस्स जोग्गाओ । महागुणकलियाए कलाओ सव्वाओ गहियाओ ॥ १६ ॥
पत्ता य तओ तारुन्नमुत्तमं तरुणनयणमोहणयं । कमणीयकंतिकुलकमनिकेयणं कामनरवइणो ॥ १७ ॥
परिणीया तत्थेव य विसालविहवेणमिब्भतणएण ।.....॥ १८ ॥
तो तेसि पुन्नवसओ परोप्परं दढपरूपेम्माणं । पंचप्पयारविसए भुंजंताणं वयइ कालो ॥ १९ ॥
तत्तो य तीए गब्भे सो जेट्ठसहोयरो समुप्पन्नो । भवियव्वयानिओगेण सुकयसंपुन्नपुन्नभरो ॥ २० ॥
सा गब्भपभावेणं सव्वंगसुहेल्लिसंगया जाया । आणंदनिब्भरंगी आसाइयचक्किरज्ज व्व ॥ २१ ॥
चिरविरहियपियजणमीलिय व्व सुविसिट्ठपत्तसग्ग व्व । अमयरससित्तगत्त व्व पत्तअपग्गसोक्ख व्व ॥ २२ ॥
किंपि अणक्खेयसुहं संपत्ता जह न माइ अंगेसु । होइ च्चिय पुन्नवसा जीवाणं एरिससरूवं ॥ २३ ॥
संपुन्नदोहला सा मणचिंतियसंघडंतसयलत्था । रयणनिहिं व महग्धं साणंदा वहइ तं गब्भं ॥ २४ ॥

द्वितीयेन भणितमेतस्याः कीदृशः स्पृष्टायाः किल भवति । करटकृतशब्दो ? भ्रात ! कौतूकं करोति मनसः ॥ ११ ॥
शकटं खेटयिष्याम्यहं तस्मादेतेन चैव मार्गेण । वार्यमाणोऽपि ज्येष्ठस्य खेटयति वेगेन स वृषभान् ॥ १२ ॥
एतदपि तया निश्रुतं विषमिव श्रवणयो दुःखकरमकान्तम् । सापि च मनाक् सञ्चरितवासना चूरितावयवा ॥ १३ ॥
मृत्वा हस्तिनापुरे कर्माणां विचित्रपरिणतिवशेन । दुहितृत्वेन जाता कस्यापीभ्यस्य भवने ॥ १४ ॥
विहितो महोत्सवस्तस्या जन्मनि जनकेन गुरुकविभवेन । चम्पकलतेव गिरिकन्दरेऽथ वृद्धिमनुप्राप्ता ॥ १५ ॥
एवं तया क्रमेण प्रस्तावे स्त्रीजनस्य योग्याः । मेघागुणकलितया कलाः सर्वा गृहीताः ॥ १६ ॥
प्राप्ता च ततस्तारुण्यमुत्तमं तरुणनयनमोहनकम् । कमनीयकान्तिकुलक्रमनिकेतं कामनरपतेः ॥ १७ ॥
परिणीता तत्रैव च विशालविभवेनेभ्यतनयेन ।.....॥ १८ ॥
ततस्तयोः पुण्यवशात् परस्परं दृढप्ररुढप्रेम्णोः । पञ्चप्रकारविषयान् भुञ्जतो व्रजति कालः ॥ १९ ॥
ततश्च तस्या गर्भे स ज्येष्ठसहोदरः समुत्पन्नः । भवितव्यतानियोगेन सुकृतसंपूर्णपुण्यभारः ॥ २० ॥
सा गर्भप्रभावेन सर्वाङ्गसुखकेलिसङ्गता जाता । आनन्दनिर्भराङ्ग्यासादितचक्रिराज्येव ॥ २१ ॥
चिरविरहितप्रियजनमिलितेव सुविशिष्टप्राप्तस्वर्गेव । अमृतरससिक्तगात्रेव प्राप्तापवर्गसौख्येव ॥ २२ ॥
किमप्यनाख्येयसुखं सम्प्राप्ता यथा न मात्यङ्गेषु । भवेच्चैव पुण्यवशाज्जीवानमीदृशस्वरुपम् ॥ २३ ॥
सम्पूर्णदोहदा सा मनश्चिन्तितसंघटत्सकलार्था । रत्ननिधिरिव महार्ध्यसानन्दा वहति तं गर्भम् ॥ २४ ॥

तत्तो पसत्थदिवसे अद्धट्ठमदिणनवण्ह मासाणं । उवरि पसत्थतिहि-करण-लग्ग-होरा-मुहुत्तेसु ॥ २५ ॥
जाओ नियदेहपहापयासियासेसभवणदिसियक्को । सुपसत्थलक्खणधरो तीए सव्वुत्तमो पुत्तो ॥ २६ ॥
तो रभसवससमुत्तालगमणविहहड्डाफडाए दासीए । वंछियसुयजम्मणवइयरेण वद्धाविओ इब्भो ॥ २७ ॥
तो तीसे हरिसवसुल्लसंतरोमंचकंचुइयतणुणा । नियययंगलग्गवरवत्थमणहराभरणमइरम्मं ॥ २८ ॥
दारिद्दगरुयपव्वयमत्थयनिद्दलणवज्जदंडसमं । तेण परितुट्ठिदाणं दिन्नं दासित्तमवणेउं ॥ २९ ॥
पियभासिणि त्ति काऊण दाविया तीए, कणयमयजीहा । सुकुडुंबनिव्विसेसं तं पेच्छइ सव्वकज्जेसु ॥ ३० ॥
तयणंतरमिब्भो पुत्तजम्मपाउब्भवंतपरितोसो । नायरयाणंदयरं वद्धावणयं पवत्तेइ ॥ ३१ ॥
तं च केरिसं ?-

वज्जतंचारुतूररयं नच्चंतनारिपूरयं, गायंततारगायणं ढुक्कंतसाहुवायणं ।
तुप्पिज्जमाणचट्टयं पढंतभूरिभट्टयं, आवन्तअक्खवत्तयं हीरंतपुन्नवत्तयं ॥
किज्जंतबालरक्खयं पूइज्जमाणपक्खयं, सुव्वंतविद्धिसद्दयं संतुट्ठपीढमद्दयं ।
ओलग्गमाणसेवयं संथुव्वमाणदेवयं, आवन्तभूरिपाउलं तोसिज्जमाणराउलं ॥
सिज्झंतभत्त-पाणयं दिज्जंतदीणदाणयं, मुञ्चंतगोत्तिबंधणं किज्जंतरुट्ठसंधणं ।
वग्गंतचारुचारणं संजायलोकसारणं, तुप्पंतसाहुपत्तयं लब्भन्तभूरिभत्तयं ।

ततः प्रशस्तदिवसेऽर्द्धाष्टमदिननवानां मासानाम् । उपरि प्रशस्ततिथि-करण-लग्न-होरा-मुहूर्तेषु ॥ २५ ॥
जातो निजदेहप्रभाप्रकाशिताशेषभवनदिक्चक्रः । सुप्रशस्तलक्षणधरस्तस्याः सर्वोत्तमः पुत्रः ॥ २६ ॥
ततो रभसवशमुत्तालगमनविघटकट्या दास्या । वाञ्छितसुतजन्मव्यतीकरेण वर्द्धापित इभ्यः ॥ २७ ॥
ततस्तस्यै हर्षवशोल्लसद्रोमाञ्चकञ्चुकिततनुना । निजकाङ्गलग्नवरवस्त्रमनोहराभरणमतिरम्यम् ॥ २८ ॥
दारिद्र्यगुरुकपर्वतमस्तकनिर्दलनवज्रदण्डसमम् । तेन परितुष्टिदानं दत्तं दासीत्वमपनीय ॥ २९ ॥
प्रियभाषिणीति कृत्वा दापिता तया कनकमयजीव्हा । सर्वकुटुम्बनिर्विशेषं तां प्रेक्षते सर्वकार्येषु ॥ ३० ॥
तदन्तरमिभ्यः पुत्रजन्मप्रादूर्भवत्परितोषः । नागरकानंदकरं वर्द्धापनकं प्रवर्तयति ॥ ३१ ॥
तच्च कीदृशम् ?-

वाद्यच्चारूतूर्यरवं नृत्यन्नारिपूरकम्, गायत्तारगायनं, ढोक्यत्साधुवादनम् ॥
तर्प्यमाणचट्टकं पठद्भूरिभट्टकम्, आयादक्षपत्रकं, ह्रियमानपुण्यपात्रकम् ॥
क्रियमाणबालरक्षकं पूज्यमानपक्षकम्, श्रूयमाणविद्धिशब्दकं, संतुष्टपीठमर्दकम् ।
अवलग्यमानसेवनं संस्तूयमानदेवकम्, आयाद्भूरिपादातिं तुष्यमाणराजकुलम् ।
सिध्यद्भक्त-पानकं दीयमानदीनदानकम्, मुञ्चद्गोत्रिबन्धनं क्रियमाणरुष्टसन्धनम् ।
वल्गच्चारुचारणं सञ्जातलोकसारणम्, तर्पयत्साधुपात्रकं, लभ्यमानभूरिभक्तकम् ।

इय बहुविहविच्छड्डिण रंजियसयलजणु, विलसिरकित्तिकुलंगणनिम्मलकुलभवणु ।
नर-नारियण-नेरसरमणह सुहावणउं, विहवमहाभरिमिब्भि किउ वद्धावणउं ॥ ३२ ॥
रमणीयंगत्तणओ जणाणमाणंदकारगत्तेण । ललियंगओ त्ति नामं कारियमिब्भेण तणयस्स ॥ ३३ ॥
जा वय-तणुबंधएणं जाओ (सो) अट्ठवरिसदेसीओ । वड्ढंतो पइदियहं सह जणयमणोरहसएहिं ॥ ३४ ॥
तो सोहणतिहि-वारे समप्पिओ सो कलाण गहणत्थं । लेहायरियस्स कलाकलावविउणो विणयपुव्वं ॥ ३५ ॥
सम्माणिऊण सम्मं वत्था-ऽलंकारमपभिइणा भणिओ । इब्भेणमुवझाओ तह सम्मं जयसु एस जहा ॥ ३६ ॥
थेवेण वि कालेणं समग्गसत्थत्थपारगो होउं । विउसाण वन्नणिज्जो जायइ मह मणसमाहिकरो ॥ ३७ ॥
जओ -
अणहुंतो वि हु अम्मा-पिऊण ता दुक्खमावहइ तणओ । होऊण विवज्जंतो बहुययरं कुणइ सो दुक्खं ॥ ३८ ॥
परमेए अप्पयरं तेसिं जणयंति दुक्खरिंछोलिं । अवियाणियपरमत्थो मुक्खो बहुदुक्खसंजणओ ॥ ३९ ॥
अत्राप्युक्तम् -
अजात-मृत-मूर्खेभ्यो, मृता-ऽजातौ वरं सुतौ । तौ किञ्चिच्छोकदौ पित्रोर्मूर्खस्त्वत्यन्तशोकदः ॥ ४० ॥
तेण वि भणियं मा कुणसु खेयमेयं तहाऽहमित्थऽत्थे । भद्द ! जइस्सं जह बुहसिरोमणी तुह सुओ होही ॥ ४१ ॥
एवं सो नियगुणजोग्गयाए तह जणयतज्जणाओ य । निउणकलायरियपयत्तसंभवाओ य निच्चं पि ॥ ४२ ॥
थेवेहिं वि दिवसेहिं निम्मलमइविउसजणपसिद्धाणं । बावत्तरीकलाणं पारगओ पुन्नलम्भाणं ॥ ४३ ॥

इति बहुविधसमूहेनरञ्जितसकलजनम्, विलसत्कीर्तिकुलाङ्गनानिर्मलकुलभवनम् ।
नर-नारीजन-नरेश्वरमनः सुखावनकम्, विभवमहाभारमिभ्यकृतवर्धापनकम् ॥ ३२ ॥
रमणीयाङ्गत्वेन जनानामानन्दकारकत्वेन । ललिताङ्गक इति नाम कारितमिभ्येन तनयस्य ॥ ३३ ॥
यावद्वयस्तनुबन्धकेन जातः (सो) ऽष्टवर्षदेश्यः । वर्धमानः प्रतिदिवसं सह जनकमनोरथशतैः ॥ ३४ ॥
ततः शोभनतिथि-वारे समर्पितः स कलानां ग्रहणार्थम् । लेखाचार्यस्य कलाकलापविदो विनयपूर्वम् ॥ ३५ ॥
सन्मान्य सम्यग्वस्त्रा-ऽलङ्कारप्रभृतिना भणितः । इभ्येनोपाध्यायस्तथा सम्यग्यतध्वमेष यथा ॥ ३६ ॥
स्तोकेनापि कालेन समग्रशास्त्रार्थपारगो भूत्वा । विदुषां वर्णनीयो जायते मम मनः समाधिकरः ॥ ३७ ॥
यतः -
अभवन्नपि खल्वम्मा-पित्र्योस्ततो दुःखमावहति तनयः । भूत्वा विवर्जयन्बहुकतरं करोति स दुःखम् ॥ ३८ ॥
परमेतेऽल्पतरं तेषां जनयन्ति दुःखपङ्क्तिम् । अविज्ञातपरमार्थो मोक्षो बहुदुःखसञ्जनकः ॥ ३९ ॥
तेनापि भणितं मा कुरु खेदमेतत्तथाऽहमत्रार्थे । भद्र ! यतिष्ये यथा बुधशिरोमणी तव सुतो भविष्यति ॥ ४१ ॥
एवं स निजगुणयोग्यतया तथा जनकतर्जनाच्च । निपूणकलाचार्यप्रयत्नसम्भवाच्च नित्यमपि ॥ ४२ ॥
स्तोकैरपि दिवसै र्निमलमतिविदूषजनप्रसिद्धानाम् । द्वासप्ततिकलानां पारगतः पुण्यलभ्यानाम् ॥ ४३ ॥

तो सो सोवज्झाओ पसत्थदिवसम्मि जणयभवणम्मि । संपत्तो कारविओ महो य पुणरुत्तमिब्भेण ॥ ४४ ॥
मणि-रयण-हेम-वत्थाइएहिं परिपूइऊण पज्जतं । सप्पणयमुवज्झाओ विसज्जिओ नियभवणम्मि ॥ ४५ ॥
सो वि हु जम्मंतरलहुसहोयरो कम्मपरिणइवसेण । तज्जणणीए गब्भे पुत्तताए समुप्पन्नो ॥ ४६ ॥
तो तन्निमित्तदुव्वयणसवणमरणाणुभावजणिएण । वइरेण तीए देहे महई अरई समुप्पन्ना ॥ ४७ ॥
पक्खित्ता पाहाणा किं मह उयरम्मि तिव्वदुहजणया । किं वा वि कप्परिज्जह मह उयरं तिक्खछूरियाए ? ॥४८॥
पज्जलियजलणजालाचियाए किं वाऽहमेत्थ पक्खित्ता ? । किं वा वि कोइ वाही संजाओ अप्पडीयारो ? ॥४९॥
जेणेयं मह दुक्खं अजायपुव्वं समागयमयंडे । इय सा दुक्खसमुद्दे पक्खिता गमइ दियहाइं ॥ ५० ॥
तत्तो पाडण-साडणकारयपाणाइयाणऽणेगाइं । कारावियाणि तीए तह वि हु सो कम्मदोसेण ॥ ५१ ॥
न मओ तत्तो कालक्कमेण सो वि हु तहेव संजाओ । जणयंतो जणणीए दुहमतुलं दुक्खपसवेण ॥ ५२ ॥
सुयणो व्व तओ दुज्जणसंसग्गीए गयाए सा सुहिया । उयराओ तेण विणिग्गएण सहस त्ति संजाया ॥ ५३ ॥
तो सो तक्खणमुक्कुरुडियाए वइराणुभावदोसेण । दासीए हत्थेणं समुज्झिओ जायरोसाए । ५४ ॥
तप्पुन्नपभावाओ कुओ वि विन्नायमेयमिब्भेण । संगोविओ य तेणं परुसं भणिया य तज्जणणी ॥ ५५ ॥
केत्तियमेत्ता पावे ! तुज्झ घरे संति संपयं पुत्ता । छड्डावसि निव्विन्ना जं तुच्छमणोरहा एवं ॥ ५६ ॥
इब्भेण सुहमुहुत्ते सव्वं भोयाविऊण बंधुयणं । विहियं विहाणपुव्वं नामं से गंगदत्तो त्ति ॥ ५७ ॥

ततः सः सोपाध्यायः प्रशस्तदिवसे जनकभवने । सम्प्राप्तः कारितो महश्च पुनरुक्तमिभ्येन ॥ ४४ ॥
मणि-रत्न-हेम-वस्त्रादिकैः परिपूज्य पर्यन्तम् । सप्रणयमुपाध्यायो विसर्जितो निजकभवने ॥ ४५ ॥
सोऽपि हु जन्मान्तरलघुसहोदरः कर्मपरिणतिवशेन । तज्जनन्या गर्भे पुत्रत्वेन समुत्पन्नः ॥ ४६ ॥
ततस्तन्निमित्तदुर्वचनश्रवणमरणानुभावजनितेन । वैरेण तस्या देहे महत्यरतिः समुत्पन्ना ॥ ४७ ॥
प्रक्षिप्ताः पाषाणाः किं ममोदरे तीव्रदुःखजनकाः । किं वापि कर्त्यते ममोदरं तीक्ष्णच्छूरिकया ? ॥ ४८ ॥
प्रज्वलितज्वलनज्वालाचितायां किं वाऽहमत्र प्रक्षिप्ता ? । किं वापि कोऽपि व्याधिः सञ्जातोऽप्रतिकारः ? ॥ ४९ ॥
येनेदं मम दुःखमजातपूर्वं समागतमकाण्डे । इति सा दुःखसमुद्रे प्रक्षिप्ता गमयति दिवसानि ॥ ५० ॥
ततः पाटनशाटनकारकपानादिकानामनेकानि । कारितानि तया तथापि हु स कर्मदोषेण ॥ ५१ ॥
न मृतस्ततः कालक्रमेण सोऽपि हु तथैव सञ्जातः । जनयञ्जनन्या दुखमतुलं दुःखप्रसवेन ॥ ५२ ॥
सुजन इव ततो दुर्जनसंसर्ग्या गतायाः सा सुखिता । उदरात्तेन विनिर्गतेन सहसेति सञ्जाता ॥ ५३ ॥
ततः स तत्क्षणमुत्कुरुटिकायां वैरानुभावदोषेण । दास्या हस्तेन समुज्झितो जातरोषया ॥ ५४ ॥
तत्पुण्यप्रभावात्कुतोऽपि विज्ञातमेतदिभ्येन । संगोपितश्चतेन परुषं भणिता च तज्जननी ॥ ५५ ॥
कियन्मात्राः पापे ! तव गृहे सन्ति साम्प्रतं पुत्राः । मोचयसि निर्विण्णा यत्तुच्छमनोरथैवम् ॥ ५६ ॥
इभ्येन शुभमुहूर्ते सर्वं भोजयित्वा बन्धुजनम् । विहितं विधानपूर्वं नाम तस्य गङ्गदत्त इति ॥ ५७ ॥

तो सो धावीए समप्पिऊण वद्धारिओ पयतेण । जाओ कइवयवरिसो पच्छन्नं तीए मायाए ॥ ५८ ॥
तत्तो सो जणय-सहोयरेहिं कम्मि वि महूसवे जाए । नेहेण समाणीओ भोयविओ तीए पच्छन्नं ॥ ५९ ॥
सो जेमंतो जणणीए कह वि दिट्ठो बला वि तो तेसिं । पाएसु कड्ढिऊणं पक्खित्तो ओधसरयम्मि ॥ ६० ॥
तत्तो जणएणुत्तं किमणेणं तुज्झ बालएण कयं ? सा वि हु पभणइ किं मज्झ मंदिरे एस आणीओ ? ॥ ६१ ॥
एवं जणयाईणं कलहंताणं परोप्परं तेसिं । भिक्खट्ठाए पविट्ठो अइसयनाणी मुणी एगो ॥ ६२ ॥
तो तं बंदिय सिरकयकरंजली जायविम्हओ इब्भो । पुच्छइ वइयरमिणमो माइ-सुयाणं अधडमाणं ॥ ६३ ॥
भयवं ! किं जणणी वि हु एरिसअसमंजसं कुणइ पावं । पुत्ते जारिसमेसा मम जाया चत्तमज्जाया ? ॥ ६४ ॥
तेण वि भणियं मा कुणसु विम्हयं भद्द ! कुणइ माया वि । पुत्तम्मि अप्पियं पुव्वजम्मवेराणुभावेण ॥ ६५ ॥
एएणं पुव्वभवे अन्नाणाओ विराहिया एसा ॥ दुव्वयणभणण-मारणरूवं वइरं जणंतेण ॥ ६६ ॥
तो तेण तत्थ मुणिणा संखेवेणं निवेइओ सव्वो । पुव्वभववइयरो कडुयवयणभणणाइ-मरणंतो ॥ ६७ ॥
तो सोम ! इमीए इमो पुत्तो वि हु अप्पिओ इहं जाओ । पावमिमं भयजणयं ता भव्वा । परिहरह वइरं ॥ ६८ ॥
भीमस्मि भवे भव्वो वि भमइ कालं दुरंतमेएण । पावमिमं भयजणयं ता भव्वा ! परिहरह वइरं ॥ ६९ ॥
दोगच्च-दुग्गदोहग्गदुक्खमेएण पाउणइ जीवो । पावमिमं मयजणयं ता भव्वा ! परिहरह वइरं ॥ ७० ॥

ततः स धात्र्याः समर्प्य वर्धयितः प्रयत्नेन । जातः कतिपयवर्षः प्रच्छन्नं तस्या मातुः ॥ ५८ ॥
ततः स जनक-सहोदराभ्यां कस्मिन्नपि महोत्सवे जाते । स्नेहेन समानीतो भोजितस्तस्याः प्रच्छन्नम् ॥ ५९ ॥
स जेमन् जनन्या कथमपि दृष्टो बलादपि ततस्तेषाम् । पादयोःकृष्ट्वा प्रक्षिप्तो गृहजलप्रवाहे[१] ॥ ६० ॥
ततो जनकेनोक्तं किमनेन तव बालकेन कृतम् ?। सापि हु प्रभणति किं मम मन्दिर एष आनीतः ॥ ६१ ॥
एवं जनकादीनां कलहतां परस्परं तेषाम् । भिक्षार्थाय प्रविष्टोऽतिशयज्ञानी मुनिरेकः ॥ ६२ ॥
ततस्तं वन्दित्वा शिरःकृताञ्जलि र्जातविस्मय इभ्यः । पृच्छति व्यतीकरमयं मातृ-सुतयोरघटमानम् ॥ ६३ ॥
भगवन् ! किं जनन्यपि हु ईदृशमसमञ्जसं करोति पापम् । पुत्रे यादृशमेषा मम जाया त्यक्तमर्यादा ? ॥ ६४ ॥
तेनापि भणितं मा कुरु विस्मयं भद्र ! करोति मातापि । पुत्रेऽप्रियं पूर्वजन्मवैराणुभावेन ॥ ६५ ॥
एतेन पूर्वभवेऽज्ञानाद्विराधितैषा । दुर्वचनभणन-मारणरुपं वैरं जनयता ॥ ६६ ॥
ततस्तेन तत्र मुनिना संक्षेपेण निवेदितः सर्वः । पूर्वभवव्यतीकरः कटुकवचनभणनादि-मरणान्तः ॥ ६७ ॥
ततः सौम्य ! एतस्या अयं पुत्रोऽपि खलल्वप्रिय इह जातः । पापमिदं भयजनकं ततो भव्याः ! परिहरत वैरम् ॥ ६८ ॥
भीमे भवे भव्योऽपि भ्रमति कालं दुरन्तमेतेन । पापमिदं भयजनकं ततो भव्याः ! परिहरत वैरम् ॥ ६९ ॥
दौर्गत्य-दुर्गदौर्भाग्यदुःखमेतेन प्राप्नोति जीवः । पापमिदं भयजनकं ततो भव्याः ! परिहरत वैरम् ॥ ७० ॥

---

१. ओधसर (दे) (गृहजलप्रवाह)

लक्खण-रावणसुहडा अज्ज जि जुज्झंतिमेण नरयस्मि । पावमिमं भयजयणं ता भव्वा ! परिहरह वइरं ॥ ७१ ॥
परिवज्जह मिच्छत्तं कसायभडबग्गनिग्गहं कुणए । परिहरह राग-दोसे दुद्दमदंडत्तयं हणह ॥ ७२ ॥
परिचयह विसयसंगं मोहमई मुयह महहमयणभडं ।
उम्मग्गगमणरसियं परिरंभण करणहयवंदं ॥ ७३ ॥ (ग्रन्थाग्रम् १००००)
सम्मग्गं पडिवज्जह परिवज्जह पावमित्तसंजोयं । महिऊण मोहमल्लं सिवरज्जं जेण पाउणह ॥ ७४ ॥
इय मुणिवयणं सोउं संवेयकरं सुहं सुणंताणं । वेरग्गगया जंपंति जायचारित्तपरिणामा ॥ ७५ ॥
जाउ खयं गिहवासो निवडउ वज्जं सिरे सिणेहस्स । पविसउ पायालतले परिग्गहो वि हु महापावो ॥ ७६ ॥
वच्चउ पलयमणज्जो अणत्थजणगो इमो महारंभो । एयाए वि हु जायउ सममुत्ती विसयवंछाए ॥ ७७ ॥
संसारियभावाणं नमोत्थु एयाण मोहिया जेहिं । न मुणंति मोहविसधारिय व्व परमत्थमिह जीवा ॥ ७८ ॥
इय विविहविमलसंवेगभावणाभाविया भवावासे । रइमलहंता सिववहुसंगमरसलालसा अहियं ॥ ७९ ॥
रागाइजलणजालोलिपज्जलतं गिहासमं मोत्तुं । तिन्नि वि ते पव्वइया संविग्गमणा महासत्ता ॥ ८० ॥
अब्भसियदुविहसिक्खा गुरुकुलवासं समस्सिया सययं । परिचत्तसव्वसंगा विसुद्धलेसा समियपावा ॥ ८१ ॥
विप्फुरियगुरुयविरिया संखो व निरंजणा गयविसाया । कुलवहुय व्वऽविचारा वसुहं विहरंति विगयभया ॥ ८२ ॥
सा वि हु जम्मन्तरनेहनियलसंजमियहिययवावारा । ललियंगओ त्ति ललियंगओ त्ति वाहरइ तज्जणणी ॥८३॥

लक्ष्मण-रावणसुभटावद्यापि युध्येतेऽनेन नरके । पापमिदं भयजनकं ततो भव्याः ! परिहरत वैरम् ॥ ७१ ॥
परिवर्जयत मिथ्यात्वं कषायभटवर्गनिग्रहं कुरुत । परिहरत राग-दोषौ दुर्दमदण्डत्रयं घ्नत ॥ ७२ ॥
परित्यजत विषयसंगं मोहमतिं मुञ्चत मथयत मदनभाण्डम् ।
उन्मार्गगमनरसिकं परिरुद्धत करणहयवृन्दम् ॥ ७३ ॥
सन्मार्गं प्रतिपद्ध्वम् परिवर्जयत पापमित्रसंयोगम् । मथित्वा मोहमल्लं शिवराज्यं येन प्राप्नुत ॥ ७४ ॥
इति मुनिवचनं श्रुत्वा संवेगकरं सुखं शृण्वताम् । वैराग्यगता जल्पन्ति जातचारित्रपरिणामाः ॥ ७५ ॥
यातु क्षयं गृहवासो निपततु वज्रं शिरसि स्नेहस्य । प्रविशतु पातालतले परिग्रहोऽपि हु महापापः ॥ ७६ ॥
व्रजतु प्रलयमनार्योऽनर्थजनकोऽयं महारम्भः । एतस्या अपि हु जायतां शममूर्ति र्विषयवाञ्छायाः ॥ ७७ ॥
सांसारिकभावेभ्यो नमोऽस्त्वेतेभ्यो मोहिता यैः । न मुणन्ति मोहविषधारिता इव परमार्थमिह जीवाः ॥ ७८ ॥
इति विविहविमलसंवेगभावनाभाविता भववासे । रतिमलभमानाः शिववधुसंगमरसलालसा अधिकम् ॥ ७९ ॥
रागादिज्वलनज्वालोलिप्रज्वलन्तं गृहाश्रमं मुक्त्वा । त्रयोरपि ते प्रव्रजिताः संविग्नमनसो महासत्त्वाः ॥ ८० ॥
अभ्यसितद्विविधशिक्षा गुरुकुलवासं समाश्रिताः सततम् । परित्यक्तसर्वसङ्गा विशुद्धलेश्याः समितपापाः ॥ ८१ ॥
विस्फुरितगुरुकवीर्याः शङ्ख इव निरञ्जना गतविषादाः । कुलवधुकेवाविकारा वसुधां विहरन्ति विगतमदाः ॥ ८२ ॥
सापि हु जन्मान्तरस्नेहनिगडसंयमितहृदयव्यापारा । ललिताङ्गक इति ललिताङ्गक इति व्याहरति तज्जननी ॥ ८३ ॥

अवहरियमणसमाही विसममहामोहविलसियविसन्ना । हरिणि व्व जूहमट्ठा परिवड्ढियगरुयरणरणया ॥ ८४ ॥
न सुयइ सुहं निसाए दिवा वि जेमइ न जेमणं छुहिया । अट्टवसट्टोवगया ललियंगयमोहियमईया ॥ ८५ ॥
मरिऊण मोहवसया पत्ता कुगइं पगिट्ठिदुहदुहिया । भमिही भवकंतारे अहो ! हु मोहो अणत्थफलो ॥ ८६ ॥

॥ ललिताङ्गकजनन्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ९६ ॥

एए अट्टावसट्टा कुगइं मोहाओ पाविया मरिउं । ता सम्मं मरियव्वं समाहिलाभे सुहत्थीहिं ॥

यः स्वापतेय-गृह-पुत्र-कलत्रमूढः, कालं करोति स भवेदिह दुःखधाम ।
तस्मात् समाधिवशगेन विवेकभाजा, मर्तव्यमन्यजन्मन्यमृतत्वहेतोः (?) ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे
मोहवशार्तमरणकुगतिपातदर्शकस्त्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३० ॥

अपहृत्तमनः समाधि र्विषममहामोहविलसितविषण्णा । हरिणीव यूथभ्रष्टा परिवर्धितगुरुकरणरणका ॥ ८४ ॥
न स्वपिति सुखं निशि दिवापि जेमते न जेमनं क्षुधिता । आर्तवशार्तोपगता ललिताङ्गकमोहितमतिका ॥ ८५ ॥
मृत्वा मोहवशगा प्राप्ता कुगतिं प्रकृष्टदुःखदुःखिता । भ्रमिष्यति भवकान्तारेऽहो ! हु मोहोऽनर्थफलः ॥ ८६ ॥

॥ ललिताङ्गजनन्याख्यानकं समाप्तम् ॥ ९६ ॥

एते आर्तवशार्ताः कुगतिं मोहात्प्राप्ता मृत्वा ।
ततः सम्यग् मर्तव्यं समाधिलाभे सुखार्थिभिः ।

● ● ●

[३१. धर्मसुकरतावर्णनाधिकारः]

एतच्च गुरुकर्माणां भवति । लघुकर्माणः पुनस्तारुण्येऽपि च वर्तमानाः सुगतिगामितया तपश्चरन्तीति प्रतिपादनायाऽऽह-

साहीणसव्वभोगा वए वि पढमम्मि केई लहुकम्मा
साहंति तवच्चरणं ढंढणकुमरो व्व जंबु व्व ॥ ४० ॥

व्याख्या- स्वाधीनताः-सर्वे-शब्दादयो भोगाः येषां ते तथोक्ताः, 'वयस्यपि प्रथमे' तारुण्यावस्थायामित्यर्थः, 'केचन' न सर्वे लघुकर्माणः 'साधयन्ति' कुर्वन्ति 'तपश्चरणम्' अनशनादिरूपम् । किंवत् ? इत्याह - 'ढण्ढणकुमारवत्' वासुदेवपुत्र इव 'जम्बुवद्' इभ्यवृषभपुत्र इव इति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थस्त्वाख्यानकाभ्यामवसेयः । ते चामू ।

तत्रतावत् क्रमप्राप्तं ढण्ढणकुमाराख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

अत्थि इह दाहिणड्ढे भारहमज्झे समग्गदेसाण । चूडामणिसंकासो मगहा नामेण विसओ त्ति ॥ १ ॥
तत्थ वि समग्गगामाणमग्गणी धन्नपूरओ गामो । किसिपारासरनामो तत्थाऽऽसि बलाहिओ विप्पो ॥ २ ॥
रन्नो निमित्तेमेसो चरीउ कारइ अहऽन्नदिवसम्मि । तण्हा-छुहाकिलंता भत्ते पत्ते नरा तेण ॥ ३ ॥
नियखेते एक्केक्कं चंभं मड्डाए दाविया खीणा । तो तन्निमित्तविग्धं निकाइउं आउयस्संते ॥ ४ ॥

ढण्ढणकुमाराख्यानकम् ॥ ९७ ॥

अस्तीह दक्षिणार्धे भारतमध्ये समग्रदेशानाम् । चूडामणिसंकाशो मगधा नाम्ना विषय इति ॥ १ ॥
तत्रापि समग्रग्रामाणामग्रणी धन्यूपरको ग्रामः । कृषिपाराशरनामा तत्रासीद्बलाधिको विप्रः ॥ २ ॥
राज्ञो निमित्तमेष चारीं कारयत्यथान्यदिवसे । तृष्णा-क्षुधाक्लान्ता भक्ते प्राप्ते नरास्तेन ॥ ३ ॥
निजक्षेत्र एकैकं खेडं बलाद् दापिताः क्षीणाः । ततस्तन्निमित्तविघ्नं निकाच्यायुषोऽन्ते ॥ ४ ॥

तिरिएसु समुप्पन्नो कइय वि जम्मन्तराणि तत्थ ठिओ । केणइ सुहकम्मेणं तत्तो मरिऊण संजाओ ॥ ५ ॥
सोरट्ठविसयभूसणबारवईसामिवासुदेवस्स । पुत्तो ढंढणकुमरो नामेण कलाकलावविऊ ॥ ६ ॥
वीवाहिओ य निवकन्नयाओ नवजोव्वणाभिरामाओ । विसयसुहमणुहवंतो ताहिं समं गमइ कालं सो ॥ ७ ॥
अह अन्नया य सिरिनेमिजिणवरे रेवए समोसरिए । कन्हप्पभिइमहीवइविंदे नमिउं निविट्ठम्मि ॥ ८ ॥
कुणमाणे नवजलहरसरेण सद्देसणं भुवणनाहे । संजायगरुयवेरग्गमाणसे भव्वनिवहम्मि ॥ ९ ॥
पुच्छित्तु सयणवग्गं रज्जसिरिं उज्झिउं महासत्तो । ढंढणकुमरो गिण्हइ पव्वज्जं जायसंवेगो ॥ १० ॥
तिणमिव पडग्गलग्गं विसयसुहं उज्झिऊण निक्खंतो । अब्भसियदुविहसिक्खो कुमरो तवलच्छिसंपन्नो ॥ ११ ॥
रयणपहाकलिओ वि हु दूरं परिहरियरयणपहवत्तो । नाणाविहदेसेसुं विहरइ सो सामिणा सद्धिं ॥ १२ ॥
अह पुव्वभवसमज्जियविग्घम्मि विवागमा(ग)ए भयवं । सुइरं हिंडंतो वि हु न लहइ सो किं पि भणियं च ॥ १३ ॥
सिरिवसुदेवतणओ सीसो तेलोक्कसामिनेमिस्स । सव्वगुणाण निवासो धण-कणयसमिद्धनयरीए ॥ १४ ॥
भममाणो चि न पावइ भिक्खामेत्तं पि ढंढणकुमारो । जम्मंतरनिव्वत्तियतिव्वमहाकम्मदोसेणं ॥ १५ ॥
तस्संतरायदोसा बीओ वि हु जाव पावइ न किं पि । तो सव्वे वि हु मुणिणो गंतुं पुच्छंति नेमिजिणं ॥ १६ ॥
कहिओ य भयवया से पुव्वमवो तयणु ढंढणकुमारो । गिण्हइ नियमं नियलाभभोयणे भयवओ पुरओ ॥ १७ ॥
एवं व अलाभपरीसहं सहंतस्स तस्स अइसम्मं । समइक्कंतो कालो बहुओ अह अन्नदिवसम्मि ॥ १८ ॥

तिर्यक्षु समुत्पन्नः कत्यपि जन्मान्तराणि तत्र स्थितः । केनचिच्छुभकर्मणा ततो मृत्वा सञ्जातः ॥ ५ ॥
सुराष्ट्रविषयभूषणद्वारावतीस्वामीवासुदेवस्य । पुत्रो ढण्ढणकुमारो नाम्ना कलाकलापविदुः ॥ ६ ॥
विवाहितश्च नृपकन्या नवयौवनाभिरामाः । विषयसुखमनुभवंस्ताभिः समं गमयति कालं सः ॥ ७ ॥
अथान्यदा च श्रीनेमिजिनवरे रैवते समवसृते । कृष्णप्रभृति महीपतिवृन्दे नत्वा निविष्टे ॥ ८ ॥
कुर्वतिणे नवजलधरस्वरेण सदेशनां भुवननाथे । सञ्जातगुरुकवैराग्यमानसे भव्यनिवहे ॥ ९ ॥
पृष्ट्वा स्वजनवर्गं राज्यश्रियमुज्झित्वा महासत्त्वः । ढण्ढणकुमारो गृह्णाति प्रव्रज्यां जातसंवेगः ॥ १० ॥
तृणमिव पटाग्रलग्नं विषयसुखमुज्झित्वा निष्क्रान्तः । अभ्यसितद्विविधशिक्षः कुमारस्तपोलक्ष्मीसंपन्नः ॥ ११ ॥
रत्नप्रभाकलितोऽपि हु दूरं परिहृतरत्नप्रभावार्तः । नानाविदेशेषु विहरति स स्वामिना सार्द्धम् ॥ १२ ॥
अथ पूर्वभवसमर्जितविघ्ने विपाकमागते भगवान् । सुचिरं हिण्डमानोऽपि हु न लभते स किमपि भणितं च ॥ १३ ॥
श्रीवासुदेवतनयः शिष्यस्त्रैलोक्य स्वामिनेमेः । सर्वगुणानां निवासो धन-कनकसमृद्धनगर्याम् ॥ १४ ॥
भ्रमन्नपि न प्राप्नोति भिक्षमात्रमपि ढण्ढणकुमारः । जन्मान्तरनिवर्त्तिततीव्रमहाकर्मदोषेण ॥ १५ ॥
तस्यान्तरायदोषाद् द्वितीयोऽपि हु यावत्प्राप्नोति न किमपि । ततः सर्वेऽपि मुनयो गत्वा पृच्छन्ति नेमिजिनम् ॥ १६ ॥
कथितश्च भगवता तस्य पूर्वभवस्तदनु ढण्ढणकुमारः । गृह्णाति नियमं निजलाभभोजने भगवतः पुरतः ॥ १७ ॥
एवं चालाभपरीषहं सहमानस्य तस्यातिसम्यक् । समतिक्रान्तः कालो बहुकोऽथान्यदिवसे ॥ १८ ॥

बारवईए सिरिनेमिजिणवरो नमिय पुच्छिओ हरिणा । तुम्ह मुणिनियरमज्झे को दुक्करकारओ सामि ॥ १९ ॥
भयवं साहइ सव्वे वऽइदुक्करकारया विसेसेण । ढंढणकुमरो तं निसुणिऊण नमिऊण नेमिजिणं ॥ २० ॥
पविसइ जाव पुरीए कण्हो तो दिट्ठिगोयरे पत्तो । गोयरचरियाए गओ थिरचित्तो ढंढणकुमारो ॥ २१ ॥
ओयरिय करिवराओ भत्तीए वंदिओ तयं दट्ठुं । वंदिज्जंतं हरिणा सेट्ठी वायायणम्मि ठिओ ॥ २२ ॥
चिंतइ एस कयत्थो कोइ मुणी जो नमिज्जए रण्णा । जइ एइ मज्झ गेहे तो पडिलाभामि एयमहं ॥ २३ ॥
पत्तो कमेण तो तस्स मंदिरे तेण सिंहकेसरए । पडिलाभिओ सहरिसं भत्तिब्भरसहियहियएण ॥ २४ ॥
तत्तो नियत्तिऊणं संपत्तो नेमिपायमूलम्मि । पुच्छइ भयवं ! किं मम तमंतरायं खयं पत्तं ? ॥ २५ ॥
भयवंतेण वि भणियं अज्ज वि कम्मं न खिज्जए तुज्झ । एसा वि कण्हलद्धी तं सोउं ढंढणकुमारो ॥ २६ ॥
सव्वेसि दंसिऊणं उस्सूरत्ताओ तेहिं वि निसिद्धे । सुहचित्तो पारद्धो परिठविउं मोयगे तत्तो ॥ २७ ॥
जीव ! तुमं मा काहिसि रसगिद्धिं मोयगेसु जह एए । न मए भुत्ता जम्हा अणेगसो भुत्तपुव्व त्ति ॥ २८ ॥
तणरासीहिं च जलणो जह जलनाहो नइसहस्सेहिं । नो तिप्पए तह जीवो बहुयाहिं वि भोयणविहीहिं ॥ २९ ॥
इय सम्मं चिंतंतस्स मोयगे तस्स परिठवंतस्स । पयडियसव्वपयत्थं केवलनाणं समुप्पन्नं ॥ ३० ॥
पडिबोहिय भवियजणं पालिता केवलिस्स पज्जायं । निट्ठवियअट्ठकम्मो स महप्पा मोक्खमणुपत्तो ॥ ३१ ॥

॥ ढंढणकुमराख्यानकं समाप्तम् ॥ ९७ ॥

द्वारावत्यां श्रीनेमिजिनवरो नत्वा पृष्टो हरिणा । युष्माकं मुनिनिकरमध्ये को दुष्करकारकः स्वामिन् ॥ १९ ॥
भगवान् कथयति सर्वे वातिदुष्करकारका विशेषेण । ढण्ढणकुमारस्तं निश्रुत्य नत्वा नेमिजिनम् ॥ २० ॥
प्रविशति यावत्पुर्यां कृष्णस्तावद् दृष्टिगोचरे प्राप्तः । गोचरचर्याया गतः स्थिरचित्तो ढण्ढणकुमारः ॥ २१ ॥
अवतीर्य करिवराद्भक्त्या वन्दितस्तकं दृष्ट्वा । वन्द्यमानं हरिणा श्रेष्ठी वातायने स्थितः ॥ २२ ॥
चिन्तयत्येष कृतार्थः कोऽपि मुनि र्यो नम्यते राज्ञा । यद्येति मम गृहे तदा प्रतिलाभयाम्येनमहम् ॥ २३ ॥
प्राप्तः क्रमेण स तस्य मन्दिरे तेन सिंहकेसरकाः । प्रतिलाभितः सहर्षं भक्तिभरसहितहृदयेन ॥ २४ ॥
ततो निवर्त्य सम्प्राप्तो नेमिपादमूले । पृच्छति भगवन् ! किं मम तदन्तरायं क्षयं प्राप्तम् ? ॥ २५ ॥
भगवतापि भणितमद्यापि कर्म न क्षीयते तव । एषापि कृष्णलब्धिस्तत् श्रुत्वा ढण्ढणकुमारः ॥ २६ ॥
सर्वेषां दर्शयित्वोत्सूर्यत्त्वात्तैरपि निषिद्धे । शुभचित्तः प्रारब्धः परिष्ठाप्य मोदकान् तप्तः ॥ २७ ॥
जीव ! त्वं मा करिष्यसि रसगृद्धिं मोदकेषु यथैते । न मया भुक्ता यस्मादनेकशो भुक्तपूर्वा इति ॥ २८ ॥
तृणराशिभिरिव ज्वलनो यथा जलनाथो नदीसहस्रैः । न तृप्यति तथा जीवो बहुकाभिरपि भोजनविधिभिः ॥ २९ ॥
इति सम्यक् चिन्तयतो मोदकान् तस्य परिष्ठापयतः । प्रकटितसर्वपदार्थं केवलज्ञानं समुत्पन्नम् ॥ ३० ॥
प्रतिबोध्य भविकजनं पालयित्वा केवलिनः पर्यायम् । निष्ठापिताष्टकर्मा स महात्मा मोक्षमनुप्राप्तः ॥ ३१ ॥

॥ ढण्ढणकुमाराख्यानकं समाप्तम् ॥ ९७ ।

इदानीं जम्ब्वाख्यानकमाख्यायते-

तं च जहा रायगिहे सुधम्मसामिम्मि समवसरियम्मि । जायाविणोयत्थं पहाणरहमारुहिउमिब्भो ॥ १ ॥
संपत्तो गुरुपासे पुट्ठम्मि पियाए पुत्तजम्ममि । उसभद्देणं कहियम्मि पुतलाभम्मि जायाए ॥ २ ॥
जह ओवाइयमट्ठसयमंबिलाणं सुयस्स नामं च । जंबूदेवीए तयं तीए कयं पुत्तकामाए ॥ ३ ॥
तम्मि जहा नररयणम्मि इब्भभवणम्मि जायमेत्तम्मि । वद्धावणयविहाणेण दाण-सम्माणकरणेण ॥ ४ ॥
दुत्थियसुहेल्लिजणणेण पुन्नवंतम्मि जम्मि सव्वजणो । पमुइयपकीलिओ सइ सुही य जाओ जिणिंदे व्व ॥ ५ ॥
जह सो सव्वकलाणं मइगुणपगरिसपभावगम्माणं । जाओ सव्वपवीणो धम्मकलाए विसेसेण ॥ ६ ॥
जह सो तरुणीहरणीण वागुरासरिसमसमगुणकलियं । लायन्नललाममणंगधाम तारुन्नमणुपत्तो ॥ ७ ॥
जह सो सरोयपत्तं व कामजलसंगवज्जिओ मइमं । कंसीपत्तं व सणेहनीरपरिहरियरुइरतणू ॥ ८ ॥
संखो व्व पवित्त-सुइत्तसंगओ विरहिओ वियारेहिं । वियरइ समग्गनर-नारिहियहरणो समियकरणो ॥ ९ ॥
जह कइया वि हु मुणिवरसुहम्मगणहारिसंगइगुणेण । जाओ विसुद्धलेसो धणियं धम्मो[1] व्व पच्चक्खो ॥ १० ॥
जह सो जणणीउवरोहगुणवसा अट्ठ इब्भकन्नाओ । परिणइ मणोहराओ सुरंगणाहिं व सुरकुमरो ॥ ११ ॥
परियरिओ जह सो ताहिं वासभवणम्मि धम्मबुद्धीए । करिसगनाईहिं पडिबोहइ ताओ धम्ममि ॥ १२ ॥

जम्ब्वाख्यानकम् ॥ ७९ ॥

तच्च यथा राजगृहे सुधर्मस्वामिनि समवसृते । जायाविनोदनार्थं प्रधानरथमारुह्येभ्यः ॥ १ ॥
सम्प्राप्तो गुरुपार्श्वे पृष्टे प्रियया पुत्रजन्मनि । यशोभद्रेण कथिते पुत्रलाभे जायायाः ॥ २ ॥
यथौपयाचितमष्टशताचाम्लानां सुतस्य नाम च । जम्बूदेव्या तकत्तया कृतं पुत्रकामया ॥ ३ ॥
तस्मिन्यथा नररत्न इभ्यभवने जातमात्रे । वर्धापनकविधानेन दान-सन्मानकरणेन ॥ ४ ॥
दुस्थितसुखकेलिजननेन पुण्यवति यस्मिन् सर्वजनः । प्रमुदितप्रक्रीडितः सदा सुखी च जातो जिनेन्द्र इव ॥ ५ ॥
यथा स सर्वकलानां मतिगुणप्रकर्षप्रभावगम्यानाम् । जातः सर्वप्रवीणो धर्मकलायां विशेषेण ॥ ६ ॥
यथा स तरुणीहरणीनां वागुरासदृशमसमगुणकलितम् । लावण्यललाममनङ्गधाम तारुण्यमनुप्राप्तः ॥ ७ ॥
यथा स सरोजपत्रमिव कामजलसंगवर्जितो मतिमान् । कांस्यपात्रमिव सस्नेहनीरपरिहृतरुचिरतनुः ॥ ८ ॥
शङ्ख इव पवित्र-शुचित्वसङ्गतो विरहितो विकारैः । विचरति समग्रनर-नारिहृदयहरणः समितकरणः ॥ ९ ॥
यथा कदापि हु मुनिवरसुधर्मगणधारिसंगतिगुणेन । जातो विशुद्धलेश्योऽत्यंतं धर्म इव प्रत्यक्षः ॥ १० ॥
यथा स जनन्युपरोधगुणवशादष्टाविभ्यकन्याः । परिणयति मनोहराः सुराङ्गनाभिरिव सुरकुमारः ॥ ११ ॥
परिवारितो यथा स ताभि र्वासभवने धर्मबुद्धया । कृषकज्ञातादिभिः प्रतिबोधयति ताः धर्मे ॥ १२ ॥

---

१. धणओ व्व - खं० ।

संबोहिय रायसुयं पभवं गणहरसुधम्मपासम्मि । पव्वइयो जह छड्डिय तणं व तं लच्छिविच्छड्डं ॥ १३ ॥
जओ भणियं -
सो जयइ जंबुणामो तरुणत्ते जेण पालियं सीलं । अट्ठ कलते नवनइउकणयकोडीओ परिहरिउं ॥ १४ ॥
अब्भसियदुविहसिक्खो जिणसासणनीरनाहपारगओ । छत्तीसगुणसमन्नियनियगुरुसंपत्तसूरिपओ ॥ १५ ॥
परिपालियपरियाओ नियपयसंठवियपभवरायसुओ । संपत्तकेवलसिरी विहुयमला सिद्धिमणुवत्तो ॥ १६ ॥
तह वित्थरओ जिणनाहभणियसिद्धंतओ समुन्नेयं । इह पुण संखेवेणं भणियं भव्वाण संतिकरं ॥ १७ ॥
तथाहि-
कल्लाणं मंगल्लं चरियमिमं जयइ जंबुनामस्स । एत्तो च्चिय पच्चूसे कुणंति गुणथुइमिमस्सेवं ॥ १८ ॥
सो जयइ जंबुणामो मणपज्जवसन्नियस्स नाणस्स । मणचिंतियगुणविउणो अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ १९ ॥
सो जयइ जंबुणामो केवलरविणोऽरुणोदयसमस्स । परमोहिस्स महप्पा अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ २० ॥
सो जयइ जंबुणामो पुलायलद्धीए गुरुपभावाए । चक्किबलचूरणीए अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ २१ ॥
सो जयइ जंबुणामो विसिट्ठकज्जप्पसाहणखमस्स । आहारगस्स गुणवं अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ २२ ॥
सो जयइ जंबुणामो विसिट्ठ सुद्धिपयखवगसेढीए । कम्मक्खयजणणीए, अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ २३ ॥
सो जयइ जंबुणामो दुज्जयगुरुमोहणिज्जसमणीए । उवसमसेढीए वि हु अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ २४ ॥

संबोध्य राजसुतं प्रभवं गणधरसुधर्मपार्श्वे । प्रव्रजितो यथा त्यक्त्वा तृणमिव तं लक्ष्मीसमूहम् ॥ १३ ॥
यतो भणितम् -
स जयति जम्बूनामा तरुणत्वे येन पालितं शीलम् । अष्टौ कलत्रा नवनवतिकनककोटीन् परिहृत्य ॥ १४ ॥
अभ्यसितद्विविधशिक्षो जिनशासननीरनाथ पारगतः । षट्त्रिंशद्गुणसमन्वितनिजगुरूसंप्राप्तसूरिपदः ॥ १५ ॥
परिपालितपर्यायो निजपदसंस्थापितप्रभवराजसुतः । सम्प्राप्तकेवलश्री र्विधुतमलः सिद्धिमनुप्राप्तः ॥ १६ ॥
तथा विस्तरतो जिननाथभणितसिद्धान्तात् समुज्ज्ञेयम् । इह पुनः संक्षेपेण भणितं भव्यानां शान्तिकरम् ॥ १७ ॥
तथाहि -
कल्याणं मङ्गलं चरित्रमिदं जयति जम्बुनाम्नः । इतश्चैव प्रत्युषे कुर्वन्ति गुणस्तुतिमेतस्यैवम् ॥ १८ ॥
स जयति जम्बूनामा मनपर्यवसंज्ञिकस्य ज्ञानस्य । मनश्चिन्तिगुणर्विदाऽपश्चिमो य इह भरते ॥ १९ ॥
स जयति जम्बूनामा केवलरवेररुणोदयसमस्य । परमावधे र्महात्माऽपश्चिमो य इह भरते ॥ २० ॥
स जयति जम्बूनामा पुलाकलब्ध्या गुरुप्रभावायाः । चक्रिबलचूरणीयायाअपश्चिमो य इह भरते ॥ २१ ॥
स जयति जम्बूनामा विशिष्टकार्यप्रसाधनक्षमस्य । आहारकस्य गुणवानपश्चिमो य इह भरते ॥ २२ ॥
स जयति जम्बूनामा विशुद्धशुद्धिपदक्षपकश्रेण्याः । कर्मक्षयजनन्या अपश्चिमो य इह भरते ॥ २३ ॥
स जयति जम्बूनामा दुर्जयगुरुमोहनीयशमन्याः । उपशमश्रेण्या अपि हु अपश्चिमो य इह भरते ॥ २४ ॥

सो जयइ जंबुणामो महइमहासत्तसेवणिज्जस्स । जिणकप्पस्स वि गुरुणो अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ २५ ॥
सो जयइ जंबुणामो परिहारविसुद्धिपभिइचरणाणं । तिण्हं परमगुणाणं अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ २६ ॥
सो जयइ जंबुणामो लोयाऽलोयप्पयासणखमाए । केवलनाणसिरीए अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ २७ ॥
सो जयइ जंबुणामो असेसकम्मक्खयप्पसूयाए । सासयसुहसिद्धीए अपच्छिमो जो इहं भरहे ॥ २८ ॥
मयणकरिकेसरिणो चूडामणिणो चरित्तिचक्कस्स । अच्चब्भुयगुणनिहिणो नमो नमो जंबुणामस्स ॥ २९ ॥
एएहिं जोव्वणम्मि वि साहीणे वि हु समुज्झिउं भोए । जह चरियं सीलमिमं तह अन्नो वि हु धरइ धीरो ॥ ३० ॥

॥ जम्ब्वाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९८ ॥

आत्मप्रभावपरिभूतजगत्त्रयस्य, प्रौढप्रतापविभवैरपि दुर्जयस्य ।
दत्त्वा पदं सपदि मूर्धनि मन्मथस्य, केचित् तपः कृतिमं[1]मू इव साधयन्ति ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमदाभ्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे प्रथमवयस्यपि विवेकिनो धर्मसुकरतावर्णनो नाम एकत्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३१ ॥

स जयति जम्बूनामा महतिमहासत्त्वसेवनीयस्य । जिनकल्पस्यापि गुरोरपश्चिमो य इह भरते ॥ २५ ॥
स जयति जम्बूनामा परिहारविशुद्धिप्रभृतिचरणानाम् । त्रयाणां परमगुणानामपश्चिमो य इह भरते ॥ २६ ॥
स जयति जम्बूनामा लोकालोकप्रकाशनक्षमायाः । केवलज्ञानश्रीया अपश्चिमो य इह भरते ॥ २७ ॥
स जयति जम्बूनामाऽशेषकर्मक्षयप्रसूतायाः । शाश्वतसुखसिद्धेरपश्चिमो य इह भरते ॥ २८ ॥
मदनकरिकेसरिणे चूडामणये चारित्रिचक्रस्य । अत्यद्भूतगुणनिधये नमो नमो जम्बूनाम्ने ॥ २९ ॥
एतै यौवनेऽपि स्वाधीने ऽपि हु समुज्झ्य भोगान् । यथा चारित्रं शीलमिदं तथान्योऽपि हु धरति धीरः ॥ ३० ॥

जम्ब्वाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९८ ॥

● ● ●

---

१. अमू इव ढण्ढणकुमार-जम्बूकुमाराविवेत्यर्थः ।

[३२. धर्मविषयकुलप्राधान्यनिवारकाधिकारः]

स्यान्मतिः कस्यचित्–कुलजातत्वाद् ढण्ढणकुमारादिभिरिदं निरवाहि, न पुनरपर एतत् कर्तुमलम् इति मतमपाकुर्वन्नाह-

न कुलेण पहाणत्तं हवइ नराणं सुरा वि जं मुइया ।
हरिकेसि-नंदिसेणे वंदंति नमंति सेवंति ॥ ४१ ॥

व्याख्या– 'न' नैव 'कुलेन' शुद्धपितृपक्षेण 'प्रधानत्वं' प्रधानभावः धर्मविषये इत्यध्याहारः भवति 'नराणाम्' । 'सुरा अपि' आसतां मनुजाः 'यद्' यस्मात् कारणाद् 'मुदिताः' हृष्टाः हरिकेशि-नन्दिषेणौ 'वन्दन्ते' वाग्भिः स्तुवन्ति 'नमन्ति' कायेन प्रणिपतन्ति 'सेवन्ते' एवमेव पर्युपासन्ते इति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थस्त्वाख्यानकाभ्यामवसेयः । ते च इमे ।

तत्रापि क्रमप्राप्तं हरिकेश्याख्यानकं व्याख्यायते । तद्यथा-

सुपवित्तसुइत्तसमुद्दसंभवो सिरिनिवासगुणओ य । सव्वत्थ वि विक्खयाओ संखो संखो व्व सुहसद्दो ॥ १ ॥
वाणारसीए नयरीए नरवई सामनीइनयनिउणो । मंती नमुई नमुइ व्व दाणवो तस्स दुट्ठप्पा ॥ २ ॥
सो य अमच्चो पयईए निट्ठुरो सइधणओ व्व दोन्नमणो । पासायतले ओलोयणट्ठिओ नियइ मुणिमेगं ॥ ३ ॥
पंचसमियं तिगुत्तं भिक्खट्ठा परियडंतमुवउत्तं । तत्थ य हुयवहरच्छा पयईए जलंतरेणुकणा ॥ ४ ॥

हरिकेश्याख्यानकम् ॥ ९९ ॥

सुपवित्रशुचित्वसमुद्रसम्भवः श्रीनिवासगुणकश्च । सर्वत्रापि विख्यातः शङ्खः शङ्ख इव शुभशब्दः ॥ १ ॥
वाणारस्यां नगर्यां नरपतिः सामनीतिनयनिपुणः । मन्त्री नमुची नमुचीव दानवस्तस्य दुष्टात्मा ॥ २ ॥
स चामात्यः प्रकृत्या निष्ठुरः सइन्धनक इव दीप्तमनाः । प्रासादतलेऽवलोकनस्थितः पश्यति मुनिमेकम् ॥ ३ ॥
पञ्चसमितं त्रिगुप्तं भिक्षार्थाय पर्यटन्तमुपयुक्तम् । तत्र च हुतवहरथ्या प्रकृत्या ज्वलद्रेणुकणा ॥ ४ ॥

न य को वि हु वत्थव्वो तीए संचरइ पायदाहभया । तत्तो पुट्ठो सो तेण साहुणा मग्गमेसो य ॥ ५ ॥
चिंतइ दुट्ठत्तणओ समणगमिममुल्ललंतमेएणं । मग्गेण डज्झमाणप्पएण पिच्छामि ताव सुहं ॥ ६ ॥
निग्गच्छइब-हिमेसो ता वच्चसु समण ! सो वि सोउमिमं । गंतुं जाव पयट्टो इरियासमिओ समयविहिणा ॥ ७ ॥
ता तग्गुणभत्ताए कीए वि हु देवयाए सो मग्गो । हिमकणसीयलफासो विहिओ दट्ठुण तं नमुई ॥ ८ ॥
पच्छायावपरद्धो तेणेव पहेण गंतुमिसिपासे । निंदइ सो अप्पाणं कहिऊणं पुव्ववुत्तंतं ॥ ९ ॥
वियरसु मह पव्वज्जं जेणाऽऽराहेमि तुज्झ पयजुयलं । अवरेण पयारेणं न जाउ मह जायए सुद्धी ॥ १० ॥
पव्वाविओ य तेणं पालइ पव्वज्जमणहपरिणामो । नवरं मणे न मुंचइ कम्मवसा जाइ-रूवमयं ॥ ११ ॥
मरिऊण सुरवरेसुं पत्तो सो आउयक्खए चविउं । मयजणियकम्मदोसेण सावसेसेण मणुयभवे ॥ १२ ॥
गंगातीरे हरिकेसजाइया किर वसंति मायंगा । बलकुट्टो मायंगो गोरीनामेण से भज्जा ॥ १३ ॥
तीए गब्भे जाओ मएण हरिकेसवलऽभिहाणो त्ति । उद्दंतुरो विरूवो लंबोट्ठो वक्कनासो य ॥ १४ ॥
खर-फरुस-कवियकेसो विरूयलंबोयरो तिकोणसिरो । दुभगो बिडालनयणो विसमावयवो य पाएणं ॥ १५ ॥
पयईए अणालीओ करेइ वयणेण जंपइ बिरूवं । किं बहुणा ? सो विसपायवो व्व सव्वस्स वि य वेसो ॥ १६ ॥

न च कोऽपि हु वास्तव्यस्तस्याः सञ्चरति पाददाहभयात् । ततः पृष्टः स तेन साधुना मार्गमेष च ॥ ५ ॥
चिन्तयति दुष्टत्वात् श्रमणकमिममुल्ललन्तमेतेन । मार्गेण दह्यमानपदेन पश्यामि तावत्सुखम् ॥ ६ ॥
निर्गच्छति बहिरेष तावद्गच्छ श्रमण ! सोऽपि श्रुत्वेदम् । गन्तुं यावत्प्रवृत्त इर्यासमितः समयविधिना ॥ ७ ॥
तावत्तद्गुणभक्त्या कयापि हु देवतया स मार्गः । हिमकणशीतलस्पर्शो विहितो दृष्ट्वा तं नमुची ॥ ८ ॥
पश्चातापपरद्धस्तेनैव पथा गत्वार्षिपार्श्वे । निन्दति स आत्मानं कथयित्वा पूर्ववृत्तान्तम् ॥ ९ ॥
वितर मम प्रव्रज्यां येनाराधयामि तव पदयुगलम् । अपरेण प्रकारेण न जातु मम जायते शुद्धिः ॥ १० ॥
प्रव्राजितश्च तेन पालयति प्रव्रज्यामनघपरिणामः । नवरं मनसि न मुञ्चति कर्मवशाज्जाति-रुपमदम् ॥ ११ ॥
मृत्वा सुरवरेषु प्राप्तः स आयुः क्षये च्युत्वा । मदजनितकर्मदोषेण सावशेषेण मनुष्यभवे ॥ १२ ॥
गङ्गतीरे हरिकेशजातिकाः किल वसन्ति मातङ्गाः । बलकुट्टो मातङ्गो गौरीनाम्ना तस्य भार्या ॥ १३ ॥
तस्या गर्भे जातो मदेन हरिकेशबलाभिधान इति । उद्दन्तुरो विरुपो लम्बौष्ठो वक्रनासश्च ॥ १४ ॥
खर-परुष-कपिलकेशो विरुपलम्बोदरस्त्रिकोणशिराः । दुर्भगो बिडालनयनो विषमावयवश्च प्रायेण ॥ १५ ॥
प्रकृत्याऽनालीकः करोति वचनेन जल्पति विरुपम् । किं बहुना ? स विषपादप इव सर्वस्यापि च द्वेष्यः ॥ १६ ॥

कइया वि हु रइयावाणगाण तेसिं महुं पियंताणं । मायंगाणं महुभायणाणि भंजेइ भयरहिओ ॥ १७ ॥
तो मिलिऊणं तरुवरजडाए सो तडफडंतओ बद्धो । पेच्छइ महुं पियंते कीलंते डिंभरूवे य ॥ १८ ॥
जाव य खणंतरेणं तेसि समीवे समागओ सप्पो । तो मिलिऊणं भक्खणभयाओ सो मारिओ तेहिं ॥ १९ ॥
पुणरवि य तयागारो तयंतिए दीयडो समणुपत्तो । तो तं पि हु विसभयओ मायंगा मारिउं लग्गा ॥ २० ॥
तावेगेणं भणियं मा मारह एस निव्विसो अज्ज । अट्ठमि-चउद्दसीसुं एयस्स विसं जओ होइ ॥ २१ ॥
तयवत्थेणं तेणं हरिकेसबलेण सव्वमवि एयं । सञ्चमियं सयमेव य तो पडिबुद्धो विचिंतेइ ॥ २२ ॥
पेच्छ इमो निग्गहिओ सविसो बीओ य निव्विसो मुक्को । कीलंति इमे डिंभा अहयं दोसेण संजमिओ ॥ २३ ॥
तो मोत्तूणं दोसे संपयमहमवि समायरामि गुणे । इय वेरग्गगएणं कहमवि दिट्ठो मुणी एगो ॥ २४ ॥
तो हरिसनिब्भरेणं पणमित्ता सविणयं भणियमिमिणा । जइ अत्थि जोग्गया मह तो भयवं ! देसु पव्वज्जं ॥२५॥
पव्वाविओ य तेणं अइसयनाणेण जोग्गयं नाउं । तो सो निव्वेयाओ जाओ समणो समियपावो ॥ २६ ॥
दुक्करतवचरणरओ निस्संगो किमवि निव्वियारो य । निप्पडिकम्मसरीरो विहरइ वसुहं अपडिबुद्धो ॥ २७ ॥
कइया वि हु विहरंतो संपत्तो तिंदुगम्मि उज्जाणे । तत्थ य तिंदुयजक्खो तब्भवणे सो ठिओ भयवं ॥ २८ ॥

कदापि हु रचितापानकानां तेषां मधुपिबताम् । मातङ्गानां मधुभाजनानि भनक्ति भयरहितः ॥ १७ ॥
ततो मिलित्वा तरुवरजटायां स [१]व्याकुलितो बद्धः । पश्यति मधु पिबतः क्रीडतो डिम्भरुपांश्च ॥ १८ ॥
यावच्च क्षणान्तरेण तेषां समीपे समागतः सर्पः । ततो मिलित्वा भक्षणभयात् स मारितस्तैः ॥ १९ ॥
पुनरपि च तदाकारस्तदन्तिके [२]दीयडः समनुप्राप्तः । तदा तमपि हु विषभयान्मातङ्गा मारयितुं लग्नाः ॥ २० ॥
तावदेकेन भणितं मा म्रियध्वमेष निर्विषोऽद्य । अष्टमी-चतुर्दशीष्वेतस्य विषं यतो भवति ॥ २१ ॥
तदवस्थेन तेन हरिकेशबलेन सर्वमप्येतत् । दृष्टं स्वयमेव च ततः प्रतिबुद्धो विचिन्तयति ॥ २२ ॥
पश्यायं निगृहीतः सविषो द्वितीयश्च निर्विषो मुक्तः । क्रीडन्तीमे डिम्भा अहं दोषेण संयमितः ॥ २३ ॥
ततो मुक्त्वा दोषान् साम्प्रतमहमपि समाचरामि गुणान् । इति वैराग्यगतेन कथमपि दृष्टो मुनिरेकः ॥ २४ ॥
ततो हर्षनिर्भरेण प्रणम्य सविनयं भणितमनेन । यद्यस्ति योग्यता मम तदा भगवन् ! देहि प्रव्रज्याम् ॥ २५ ॥
प्रव्राजितश्चतेनातिशयज्ञानेन योग्यतां ज्ञात्वा । ततः स निर्वेदाज्जातः श्रमणः समितपापः ॥ २६ ॥
दुष्करतपश्चरणरतो निस्संगः किमपि निर्विकारश्च । निष्प्रतिकर्मशरीरो विहरति वसुधामप्रतिबद्धः ॥ २७ ॥
कदापि हु विहरन् सम्प्राप्तस्तिन्दुक उद्याने । तत्र च तिन्दुकयक्षस्तद्भवने स स्थितो भगवान् ॥ २८ ॥

---

१. तडफडंतओ (दे.) 'तरफडतो' ईति भाषायाम् । २. दीयड सर्पविशेषः

निस्संगयाइगुणगणरंजियहियएण तेण जक्खेण । झाइज्जइ पणमिज्जइ वंदिज्जइ सो मुणी निच्चं ॥ २९ ॥

उवरिं जह भद्दाए रायसुयाए विवाहिउं विहिओ । जक्खेणं जणपुज्जो सुयाओ सेसं पि तह नेयं ॥ ३० ॥

॥ हरिकेशाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९९ ॥

इदानीं नन्दिषेणाख्यानकस्यावसरः । तच्च पूर्वं व्याख्यातमेवेति ।

न कुलस्स पहाणत्तं लहुयकम्मया धम्मे । तो जिणवयणविऊहिं कुलाभिमाणो न कायव्वो ॥ १ ॥

प्राधान्यमल्पमपि निश्चयतो जनाः ! मा, मन्यध्वमत्र जिनधर्मविधौ कुलस्य ।

यन्नन्दिषेण-हरिकेशिमुनी गुणाढ्यौ, भक्त्या विनाऽपि कुलमङ्ग ! सुराः स्तुवन्ति ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचित्तवृत्तावाख्यानकमणिकोशे धर्मविषयकुलप्राधान्यनिवारकः द्वात्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३२ ॥

निस्संगतादिगुणगणरञ्जितहृदयेन तेन यक्षेण । ध्याय्यते प्रणम्यते वन्द्यते स मुनिर्नित्यम् ॥ २९ ॥

उपरि यथा भद्राया राजसुताया विवाह्य विहितः । यक्षेण जनपूज्यः श्रुतात् शेषमपि तथा ज्ञेयम् ॥ ३० ॥

॥ हरिकेशाख्यानकं समाप्तम् ॥ ९९ ॥

न कुलस्य प्रधानत्वं लघुकर्मतया धर्मे । ततो जिनवचनविदुभिः कुलाभिमानो न कर्तव्यः ॥१॥

[३३. एकाकिविहारदोषवर्णनाधिकारः]

एतच्च हरिकेश्यादीनामेकाकित्वमापवादिकं मन्तव्यम् । उत्सर्गतो गुरुकुलवास एव श्रेयान्, तस्य गुणहेतुत्वाद्, इतरस्य च दोषदुष्टत्वात् । तथा चाह-

एगागिणो विहारो पडिकुट्ठो साहुणो जमेगस्स ।
इत्थीमाई दोसा अरहन्नय-कूलवाल व्व ॥ ४२ ॥

व्याख्या- 'एकाकिनः' एककस्य 'विहारः' विहरणं 'प्रतिकुष्टः' निषिद्धः निराकृतः । 'यद्' यस्मात् कारणाद् एककस्य स्त्रयादयो दोषाः । कयोरिव ? अरहन्नक-कूलवालयोरिव प्रसिद्धयोरित्यक्षरार्थः ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकाभ्यामवसेयः । ते चामू ।

तत्र तावदरहन्नककथाकमाख्याते -

अत्थेत्थ पवरगच्छे गुरुगोत्तसमस्सिओ विउलसत्तो । पवरसुजाणनिवासो पाढीणपयाररमणीओ ॥ १ ॥
जं विहियरसच्चाओ मयरमणिविवज्जिओ य जं निच्चं । तं तस्स महच्छरियं संजायं जलहिरूवस्स ॥ २ ॥
तम्मि गुरुविणयनिरओ अरहन्नयनामओ वसइ खुड्डो । नियजणणि-जणयसहिओ छज्जीवहिओ सयाकालं ॥ ३ ॥
किंतु नियजणयविरइयवेयावच्चो सया वि सुहकलिओ । आबालकालओ च्चिय कया वि अद्दिट्ठदुहलेसो ॥ ४ ॥

अरहन्नककथानकम् ॥ १०० ॥

अस्त्यत्र प्रवरगच्छे गुरुगोत्रसमाश्रितो विपुलसत्त्वः । प्रवरसुध्याननिवासः पाठीनप्राकाररमणीयः ॥ १ ॥
यद्विहितरसत्यागो मदरमणिविवर्जितश्च यन्नित्यम् । तत्तस्य महाश्चर्यं सञ्जातं जलधिरुपस्य[१] ॥ २ ॥
तस्मिन् गुरुविनयरतोऽरहन्नकनामको वसति क्षुल्लकः । निज जननी-जनकसहितः षड्जीवहितः सदाकालम् ॥ ३ ॥
किन्तु निजजनकविरचितवैयावृत्त्यः सदापि सुखकलितः । आबालकालतश्चैव कदाप्यदृष्टदुःखलेशः ॥ ४ ॥

---

१. अत्र जलधिपक्षे - विपुलसत्त्वः सत्त्वः प्राणिः । प्रवरसुयाननिवासः, पाठीनप्राकाररमणीयः - पाठीन - महामत्स्यविशेषः, विहतरसात्यागः रसा-पृथिवी, मकरमणिविवर्जितः, मकराश्चमणयश्च तैः विवर्जितः

अह अन्नया य जणए पंचत्तमुवागयम्मि सुहलेसे । खरकिरणतरणितावविलभुवणयले गिम्हसमयम्मि ॥ ५ ॥
पियमरणतावियतणू भणिओ साहूहिं एरिसं वयणं । जह अरहन्नय ! इमिणा मुणिणा सह विहर अज्ज तुमं ॥ ६ ॥
पियमरणदुक्खसंभरणजायगुरुसोयसाममुहकमलो । तेण सह मुणिवरेणं गोयचरियाए नीहरिओ ॥ ७ ॥
खरकिरणतावियतणू गच्छंतं सो पमोत्तु तं साहुं । पासायच्छायाए खणमेगं जाव वीसमइ ॥ ८ ॥
ताव नियमत्तवारणपरिट्ठियाए पउत्थवइयाए । दिट्ठो सुकुमालतणू वयविसए मंदपरिणामो ॥ ९ ॥
तो तीए वाहरिओ आगच्छसु मह गिहे महाभाग ! । जेण वियरेमि भिक्खं तं सोउं जाव तग्गेहे ॥ १० ॥
पविसइ ताव पहिट्ठा दारं दाऊण पभणए एसा । अइकढिणकायजोग्गं परिहर वयमेरिसं सुहय ! ॥ ११ ॥
उबभुंजसु गुरुलच्छिं माणसु तारुन्नमसरिसं मज्झ । सहलीकुरु मणुयभवं संपत्तं पुव्वपुन्नेहिं ॥ १२ ॥
निसियकरवालधारासंचरणसमं सुदुस्सहं चरणं । परिपालिउमसमत्थो अणुमन्नइ तीए तं वयणं ॥ १३ ॥
उवभुंजइ विसयसुहं तीए समं जायगरुयअणुराओ । तन्नेहहरियहियओ गयं पि कालं न याणेइ ॥ १४ ॥
एत्तो तमपेच्छंती तम्माया नट्ठचेयणा जाया । परिचत्तसाहुवेसा उम्मत्ता वसणपरिहीणा ॥ १५ ॥
परिभमइ हसइ गायइ नच्चइ परिलुढइ धरणिवीढम्मि । डिंभसहस्सपरिवुडा भममाणी नयरमज्झम्मि ॥ १६ ॥
सव्वं पि वत्थुजायं 'अरिहन्नय पुत्तय !' त्ति भणिरी सा । नेहमहागहगहिया न य चेइ किंचि अप्पाणं ॥ १७ ॥
रुयमाणी सा दिट्ठा पासायगवक्खसंठिएणिमिणा । चिंतेइ तओ चित्ते धिरत्थु मह जीवियव्वस्स ॥ १८ ॥

अथान्यदा च जनके पञ्चत्वमुपगते सुखलेशे । खरकिरणतरणितापितभुवनतले ग्रीष्मसमये ॥ ५ ॥
पितृमरणतापिततनु र्भणितः साधुभिरीदृशं वचनम् । यथाऽहरन्नक ! अनेन मुनिना सह विहराद्य त्वम् ॥ ५ ॥
पितृमरणदुःखस्मरणजातगुरुशोकश्याममुखकमलः । तेन सह मुनिवरेण गोचरचर्यायां निःसृतः ॥ ७ ॥
खरकिरणतापिततनु र्गच्छन्तं स प्रमुच्य तं साधुम् । प्रासादच्छायायां क्षणमेकं यावद्विश्राम्यति ॥ ८ ॥
तावन्निजमत्तवारणोपरिस्थितया प्रोषितपतिकया । दृष्टः सुकुमारतनु र्व्रतविषये मन्दपरिणामः ॥ ९ ॥
ततस्तया व्याहृत आगच्छ मम गृहे महाभाग ! । येन वितरामि भिक्षां तत् श्रुत्वा यावत्तद्गृहे ॥ १० ॥
प्रविशति तावत्प्रहृष्टा द्वारं दत्वा प्रभणत्येषा । अतिकठिनकाययोग्यं परिहर व्रतमीदृशं सुभग ! ॥ ११ ॥
उपभुङ्क्ष्व गुरुलक्ष्मीं मानय तारुण्यमसदृशं मम । सफलीकुरु मनुष्यभवं संप्राप्तं पूर्वपुण्यैः ॥ १२ ॥
निशीतकरवालधारासञ्चरणसमं सुदुःषहं चरणम् । परिपालयितुमसमर्थोऽनुमन्यते तस्यास्तद्वचनम् ॥ १३ ॥
उपभुनक्ति विषयसुखं तया समं जातगुरुकानुरागः । तत्स्नेहहृतहृदयो गतमपि कालं न जानाति ॥ १४ ॥
इतस्तमपश्यन्ती तन्माता नष्टचेतना जाता । परित्यक्तसाधुवेशोन्मत्ता वसनपरिहीणा ॥ १५ ॥
परिभ्रमति हसति गायति नृत्यति परिलुठति धरणिपीठे । डिम्भसहस्रपरिवृत्ता भ्रमन्ती नगरमध्ये ॥ १६ ॥
सर्वमपि वस्तुजातमरहन्नक पुत्रकः इति भणन्ती सा । स्नेहमहाग्रहगृहीता न च चेतयति किञ्चिदात्मानम् ॥ १७ ॥
रुदन्ती सा दृष्टा प्रासादगवाक्षसंस्थितेनानेन । चिन्तयति ततश्चित्ते धिगस्तु मम जीवितव्यस्य ॥ १८ ॥

परिचत्तनियकुलक्कमसमुवज्जियअसमपावभारस्स । गयसीलरयणनिहिणो धिरत्थु मह जीवियव्वस्स ॥ १९ ॥
असहायं ससणेहं गुरुजरया जज्जरं नियं जणणिं । परिहरमाणस्स जए धिरत्थु मह जीवियव्वस्स ॥ २० ॥
आसाइयवरमुणिणो अवहत्थियसुहगुरूवएसस्स । विसयासत्तस्स जए धिरत्थु मह जीवियव्वस्स ॥ २१ ॥
उज्झियसुपुरिससुहचेट्ठियस्स परिगलियगुरुविवेयस्स । निद्दयचेट्ठस्स जए धिरत्थु मह जीवियव्वस्स ॥ २२ ॥
इय भाविऊण तत्तो पासाया ओयरित्तु सहस त्ति । उब्भडसिंगारधरो धरणीयलमिलियसिरकमलो ॥ २३ ॥
पणमित्तु भणइ अरहन्नओ अहं अंब ! वच्छलो तुज्झ । निसुणित्तु तयं सहसा सचेयणा सा वि तं भणइ ॥ २४ ॥
विउसजणनिंदणिज्जं किं ववसियमेरिसं तए वच्छ ! ? । सो भणइ मंदपुन्नो न समत्थो काउमंब ! वयं ॥ २५ ॥
अज्ज वि नियपाणे परिचयामि न चयामि वयमिमं काउं । अवरं च भग्गसीलस्स मज्झमिणमेव जुत्तं ति ॥ २६ ॥
तीए भणियं वरमिममच्चंतं दुक्करं कयं वच्छ ! । न उणो हीणजणोच्चियमसमंजसमेरिसं विहियं ॥ २७ ॥
तो गहियसाहुवेसो आलोइय निंदिऊण दुच्चरियं । गहियाणसणो सम्मं मरिसावियसयलसत्तगणो ॥ २८ ॥
अइगिम्हतावतावियसिलायले निवडिओ महासत्तो । सुहभावभावियमणो लोणियपिंडो व्व पविलीणो ॥ २९ ॥
मरिऊण समुप्पन्नो देवो वेमाणिओ महिड्ढीओ । जणणी वि वयं काउं उत्पन्ना तियसलोगम्मि ॥ ३० ॥

॥ अरिहन्नकाख्यानकं समाप्तम् ॥ १०० ॥

परित्यक्तनिजकुलक्रमसमुपार्जितासमपापभारस्य । गतशीलरत्ननिधे र्धिगस्तु मम जीवितव्यस्य ॥ १९ ॥
असहायां सस्नेहां गुरुजरयाजर्जरां निजां जननीम् । परिहरतो जगति धिगस्तु मम जीवितव्यस्य ॥ २० ॥
आसादितवरमुनेरपहस्तितसुगुरुपदेशस्य । विषयासक्तस्य जगति धिगस्तु मम जीवितव्यस्य ॥ २१ ॥
उज्झितसुपुरुषसुचेष्ठितस्य परिगलितगुरुविवेकस्य । निर्दयचेष्ठस्य जगति धिगस्तु मम जीवितव्यस्य ॥ २२ ॥
इति भावयित्वा ततः प्रासादादवतीर्य सहसेति । उद्भटशृङ्गारधर धरणीतलमिलितशिरःकमलः ॥ २३ ॥
प्रणम्य भणत्यरहन्नकोऽहमम्ब ! वत्सलस्तव । निश्रुत्य तकत्सहसा सचेतना सापि तं भणति ॥ २४ ॥
विद्वज्जननिन्दनीयं किं व्यवसितमीदृशं त्वया वत्स !? । स भणति मन्दपुण्यो न समर्थः कर्तुमम्ब ! व्रतम् ॥ २५ ॥
अद्यापि निजप्राणान् परित्यजामि न पारयामि व्रतमिदं कर्तुम् । अपरं च भग्नशीलस्य ममेदमेव युक्तमिति ॥ २६ ॥
तया भणितं वरमिदमत्यन्तं दुष्करं कृतं वत्स ! । न पुन र्हीनजनोचितमसमञ्जसमीदृशंविहितम् ॥ २७ ॥
ततो गृहीतसाधुवेश आलोच्य निन्दित्वा दुश्चरितम् । गृहीतानशनः सम्यक् मार्शितसकलसत्त्वगणः ॥ २८ ॥
अतिग्रीष्मतापतापितशीलातले निपतितो महासत्त्वः । शुभभावभावितमना नवनीतपिण्ड इव प्रविलीनः ॥ २९ ॥
मृत्वा समुत्पन्नो देवो वैमानिको महर्द्धिकः । जनन्यपि व्रतं कृत्वोत्पन्ना त्रिदशलोके ॥ ३० ॥

॥ अरहन्नकाख्यानकं समाप्तम् ॥ १०० ॥

इदानीं कूलवालाख्यानकं व्याख्यायते । तच्चेदम्-

अत्थेत्थ पवरगच्छो अणेगसत्थेसु लद्धमाहप्पो । नयरारक्किखयपुरिसो व्व लोयविणयाइसंजुतो ॥ १ ॥
परिहरियखमामारो महावराहो वि नायराओ वि । गुरुचरणपच्चणीओ पडिवज्जियसुगुरुचरणो वि ॥ २ ॥
अइमायाहारो वि हु अइमायाहारवज्जिओ निच्चं । परिवसइ तम्मि एगो साहू पब्भट्ठसुहलेसो ॥ ३ ॥
अह अन्नया य कम्मि वि गिरिम्मि तित्थाणि वंदिउं गुरुणा । सह जाव पडिनियत्तो ता चिंतइ सूरिविसयम्मि ॥४॥
एसो न देइ सोक्खं निच्चं चिय चोयणं मह कुणंतो । मारेमि ता इयाणिं इममेगागिं महापावं ॥ ५ ॥
इय चिंतिऊण मुक्को पट्टीए तेण टोलपाहाणो । आवलियखंधरेणं गुरुणा सहस त्ति तं दट्ठुं ॥ ६ ॥
ओसरिऊणं रुट्ठे(ण) साविओ तेण पच्चणीओ सो । रे पाव ! थीसयासाओ तुज्झ होही खओ नियमा ॥ ७ ॥
परिहरियं तं पावं एगागी गच्छमागओ सूरी । सो वि गुरुवयणपडिकूलणत्थमेवं विचिंतेइ ॥ ८ ॥
तत्थ मए वसियव्वं इत्थीनामंपि जत्थ न सुणेमि । तत्तो अइउग्गतवं नइकूले काउमारद्धो ॥ ९ ॥
आउट्टियाए नइदेवयाए तत्तो य वालियं कूलं । नइकूलवालओ सो संजाओ तद्दिणाऽरब्भ ॥ १० ॥
तत्तो चेडयनयरी वेसाली वेढिया गुरुबलेण । रन्ना असोगचंदेण जाव न हु भज्जए कह वि ॥ ११ ॥
तत्तो विसन्नचित्तो किं पि उवायं विचिंतए जाव । तावुच्छलिया सहसा गयणे एयारिसी वाणी ॥ १२ ॥
समणे जइ कूलवालए, मागहियं गणियं लभिस्सइ । लाया य असोगचंदए, वेसालीनगरिं गहिस्सइ ॥ १३ ॥

कुलवालकाख्यानकम् ॥ १०१ ॥

अस्त्यत्र प्रवरगच्छो लब्धमाहात्म्यः । नगरारक्षितपुरुष इव लोकविनयादिसंयुक्तः ॥ १ ॥
परिहरतक्षमाभारो महापराधोऽपि नागराजोऽपि । गुरुचरणप्रत्यनीकः प्रतिपन्नसुगुरुचरणोऽपि ॥ २ ॥
अतिमायाधारोऽप्यतिमात्राहारवर्जितो नित्यम् । परिवसति तस्मिन्नेकः साधुः प्रभ्रष्टशुभलेश्यः ॥ ३ ॥
अथान्यदा च कस्मिन्नपि गिरौ तीर्थानि वन्दित्वा गुरुणा । सह यावत्प्रतिनिवृत्तस्तावच्चिन्तयति सूरिविषये ॥ ४ ॥
एष न ददाति सौख्यं नित्यं चैव चोदनं मम कुर्वन् । मारयामि तावदिदानीमिममेकाकिनं महापापम् ॥ ५ ॥
इति चिन्तयित्वा मुक्तः पृष्ट्यां तेन टोलपाषाणः । आवलितस्कन्धरेण गुरुणा सहसेति तद् दृष्ट्वा ॥ ६ ॥
अपसर्य रुष्टेन शापितस्तेन प्रत्यनीकः सः । रे पाप ! स्त्रीसकाशात्तवभविष्यति क्षयो नियमा ॥ ७ ॥
परिहृत्य तं पापमेकाकी गच्छमागतः सूरिः । सोऽपि गुरुवचनप्रतिकूलनार्थमेवं विचिन्तयति ॥ ८ ॥
तत्र मया वसितव्यं स्त्रीनामापि यत्र न शृणोमि । ततो ऽत्युग्रतपो नदीकूले कर्तुमारब्धः ॥ ९ ॥
आकुट्टियया नदीदेवतया ततश्च वालितं कूलम् । नदीकूलवालकः स सञ्जातस्तद्दिनारभ्य ॥ १० ॥
ततश्चेटकनगरी वैशाली वेष्टिता गुरुबलेन । राज्ञाऽशोकचन्द्रेण यावन्न हु भज्यते कथमपि ॥ ११ ॥
ततो विषण्णचितः किमपि उपायं विचिन्तयति यावत् । तावदुच्छलिता सहसा गगन एतादृशी वाणी ॥ १२ ॥
श्रमणे यदि कूलवालके, मागधिकां गणिकां लप्स्यते । राज्ञा चाशोकचन्द्रेण वैशालीनगरिं ग्रहीष्यते ॥ १३ ॥

तं निसुणिऊण राया मागहियं वाहरित्तु तं भणइ । मह देवयाए कहियं कज्जं सज्झं इमं तुज्झ ॥ १४ ॥
ता कूलवालयमुणिं सवसीकाउं विहित्तु भट्ठवयं । आणेसु इहं जेणं वेसाली भज्जए नियमा ॥ १५ ॥
केत्तियमेत्त कज्जं देव ! इमं मज्झ तुह पसाएणं । सकड्क्खबाणविवसीकयससुरऽसुरसमूहाए ॥ १६ ॥
चीवंदणाइ तत्तो सिक्खित्ता कवडसाविया जाया । कयविहववेसरूवा समाणवय-रूवपरिवारा ॥ १७ ॥
वंदिउकामा तित्थाणि निग्गया किर महासइसरूवा । गच्छंती संपत्ता स कूलवालयमुणी जत्थ ॥ १८ ॥
तं दट्ठूण पहिट्ठा पणमइ परिवारसंजुया तस्स । भत्ति-बहुमाणपुव्वं आउच्छइ सुहविहाराइ ॥ १९ ॥
गुणसवण-थवण-दंसण-पणमण-भरणेहि तुज्झ धन्नाणि । जायाणि सवणी-वाणी चक्खू काओ मणं मज्झ ॥२०॥
इय थोऊणं तत्तो भणिया साहम्मिणीओ सयलाओ । अवगुंठियवयणाओ लज्जाए ओणयमुहीओ ॥ २१ ॥
जंगमतित्थुववासा तुब्भेहि पमज्जियं महापावं । [1]अज्जेह महापुन्नं अज्जेह मुणिस्स दंसणओ ॥ २२ ॥
इय एवं सो दिवसो अइकंतो पज्जुवासमाणीए । तीए अह बीयदिवसे पभायसमयम्मि पणमित्ता ॥ २३ ॥
भणियं पच्चक्खाणं तुब्भे वि हु परमियं कुणह अज्ज । काऊण संविभागं पारणयं जेण काहामो ॥ २४ ॥
तत्तो खणंतरेण वाहरिउं कूडकवडभरियाए । अइसारजोयकयमोयगेहिं पडिलाभिओ तीए ॥ २५ ॥
अन्नायतस्सरूवेण मोयगा मुणिवरेण ते भुत्ता । ताणं पभावओ से जाओ रोगो अईसारो ॥ २६ ॥

तन्निश्रुत्य राजा मागधिकां व्याहृत्य तां भणति । मम देवतया कथितं कार्यं साध्यमिदं तव ॥ १४ ॥
ततः कूलवालकमुनिं स्ववशीकृत्य विधाय भ्रष्टव्रतम् । आनयेह येन वैशाली भज्यते नियमा ॥ १५ ॥
कियन्मात्रं कार्यं देव ! इदं मम तव प्रसादेन । सकटाक्षबाणविवशीकृतससुराऽसुरसमूहायाः ॥ १६ ॥
चैत्यवन्दनादयस्ततः शिक्षित्वा कपटश्राविका जाता । कृतविधवावेशरुपा समानवयोरुपपरिवारा ॥ १७ ॥
वन्दितुकामा तीर्थाणि निर्गता किल महासतीस्वरुपा । गच्छन्ती सम्प्राप्ता स कूलवालकमुनिर्यत्र ॥ १८ ॥
तं दृष्ट्वा प्रहृष्टा प्रभणति परिवारसंयुक्ता तस्य । भक्ति-बहुमानपूर्वमापृच्छति सुखविहारादिः ॥ १९ ॥
गुणश्रवण-स्तवन-दर्शन-प्रणमन-भरणैस्तव धन्यानि । जातानि श्रवण-वाणी चक्षुःकायो मनो मम ॥ २० ॥
इति स्तुत्वा ततो भणिताः साधर्मिण्यः सकलाः । अवगुण्ठितवदना लज्जयाऽधोमुख्यः ॥ २१ ॥
जङ्गमतीर्थोपवासाद्युस्माभिः प्रमृष्टं महापापम् । अर्जयत महापुण्यमर्जयत मुने र्दर्शनात् ॥ २२ ॥
इत्येवं स दिवसोऽतिक्रान्तः पर्युपासमानायाः । तस्या अथ द्वितीयदिवसे प्रभातसमये प्रणम्य ॥ २३ ॥
भणितं प्रत्याख्यानं यूयमपि हु परमिदं कुरुतार्य ! । कृत्वा संविभागं पारणकं येन करिष्यामः ॥ २४ ॥
ततः क्षणान्तरेण व्याहृत्य कूटकपटभृतया । अतिसारयोगकृतमोदकैः प्रतिलाभितस्तया ॥ २५ ॥
अज्ञाततत्स्वरुपेण मोदका मुनिवरेण ते भुक्ताः । तेषां प्रभावात्तस्य जातो रोगोऽतिसारः ॥ २६ ॥

---

१. अद्य इहं ।

अह बीयदिणे जा किर आगच्छइ सा वि वंदणनिमित्तं । ता रोगवसविसंठुलदेहावयवं मुणिं दट्ठुं ॥ २७ ॥
पभणइ पावाए इमो अणुचियआहारदाणओ भयवं ! हा ! मंदभाइणीए विहिओ रोगो मए तुज्झ ॥ २८ ॥
तो कूलवालयमुणी पभणइ मणयं पि नत्थि तुह दोसो । किंतु मह कम्मपरिणइवसेण एसो समुब्भूओ ॥ २९ ॥
तीए पुणो वि भणियं तुज्झ अणुन्नाए गरुयजयणाए । पडिजागरेमि भयवं ! गीयत्था हं तुह सरीरं ॥ ३० ॥
पच्छा आलोएज्जसु अववायपयं गुरुस्स पयमूले । तो तेण अणुन्नाया वेयावच्चं कुणइ तम्मि ॥ ३१ ॥
तीए पइदियहमेवं वेयावच्चं ससंपरातीए (?) । पउणीकओ मुणी सो ओसह-विस्सामणाईहिं ॥ ३२ ॥
सुकुमारकरप्फंसाणुरायरत्तं मुणित्तु तं साहुं । ससिणेहं सकडकखं सविलासं भणिउमाढत्ता ॥ ३३ ॥
भयवं ! तावेस मए निस्संगस्स वि सुधम्मनिरयस्स । तुह धम्मझाणविग्घो विहिओ बहुपावकम्माए ॥ ३४ ॥
न हु एत्तिएण ठाही अज्ज वि जं मज्झ माणसमणज्जं । अहिलसइ किं पि अवरं तं संपयमवहिओ सुणसु ॥ ३५ ॥
मह आसि धम्मबुद्धी सा का वि हु जा न तीरए कहिउं । संपइ जलहिजलं पिव मे हिययं जायकल्लोलं ॥ ३६ ॥
किर तित्थजत्तमेयं काऊणऽप्पहियमायरिस्सामि । इय चिंतियं महायस ! सव्वं पि हु अन्नहा जायं ॥ ३७ ॥
भणइ मुणी मा खिज्जसु मज्झ कए जेण नीरुओ हं ति । तीयुत्तं करुणायर ! मह अन्नं सुणसु विन्नत्तिं ॥ ३८ ॥
जम्मंतरनेहाओ किं वा तुह दंसणाओ पडिबंधो । जं तुह पासं मेल्लंतियाए वच्चंति मह पाणा ॥ ३९ ॥
विदलइ हिययं निज्जाइ मह रई कप्परिज्जए अंगं । परिवड्ढइ रणरणओ तं वारिज्जइ समाहाणं ॥ ४० ॥

अथ द्वितीयदिने यावत्किलागच्छति सापि वन्दननिमित्तम् । तावद्रोगविसंस्थूलदेहावयवं मुनिं दृष्ट्वा ॥ २७ ॥
प्रभणति पापयायमनुचिताहारदानाद्भगवन् ! । हा ! मन्दभागिन्या विहितो रोगो मया तव ॥ २८ ॥
ततः कूलवालकमुनिः प्रभणति मनागपि नास्ति तव दोषः । किन्तु मम कर्मपरिणतिवशेनैष समुद्भूतः ॥ २९ ॥
तया पुनरपि भणितं तवानुज्ञया गुरुकयतनया । प्रतिजागर्मि भगवन् ! गीतार्थाऽहं तव शरीरम् ॥ ३० ॥
पश्चादालोचयापवादपदं गुरोः पादमूले । ततस्तेनानुज्ञाता वैयावृत्त्यं करोति तस्मिन् ॥ ३१ ॥
तया प्रतिदिवसमेवं वैयावृत्यं ससम्परातिकया (?) । प्रगुणीकृतो मुनिः स औषध-विश्रामणादिभिः ॥ ३२ ॥
सुकुमारकरस्पर्शानुरागरक्तं मुणित्वा तं साधुम् । सस्नेहं सकटाक्षं सविलासं भणितुमारब्धा ॥ ३३ ॥
भगवन् ! तवैष मया निस्सङ्गस्यापि सुधर्मनिरतस्य । तव धर्मध्यानविघ्नो विहितो बहुपापकर्मया ॥ ३४ ॥
न खल्वेतावता तिष्ठाद्यापि यन्मम मानसमनार्यम् । अभिलषति किमप्यपरं तं साम्प्रतमवहितः शृणु ॥ ३५ ॥
ममासीद्धर्मबुद्धिः सा कापि हु या न शक्यते कथयितुम् । सम्प्रति जलधिजलमिव मे हृदयं जातकल्लोलम् ॥ ३६ ॥
किल तीर्थयात्रामेतां कृत्वाऽऽत्महितमाचरिष्यामि । इति चिन्तयित्वा महायशः ! सर्वमपि खल्वन्यथा जातम् ॥ ३७ ॥
भणति मुनि र्मा खिद्यस्व मम कृते येन निरुगहमिति । तयोक्तं करुणाकर ! ममान्यां शृणु विज्ञप्तिम् ॥ ३८ ॥
जन्मान्तरस्नेहात् किं वा तव दर्शनात् प्रतिबन्धः । यत्तव पार्श्वं मुञ्चन्त्या व्रजन्ति मम प्राणाः ॥ ३९ ॥
विदलयति हृदयं निर्याति मम रतिः कल्प्यते ममाङ्गम् । परिवर्धते रणरणकस्तं वार्यते समाधानम् ॥ ४० ॥

तुह कोमलतणुफरिसण-दंसण-संभासणाइओ जाओ । मं दहइ मयणजलणो ता सुहयसु संगमजलेण ॥ ४१ ॥
तं मह नाहो तं मज्झ सामिओ तं गई मई चेव । तं चिय आसट्ठाणं संपइ मह मंदपुन्नाए ॥ ४२ ॥
तुह संगो अमयदहो अमयफलाइं व तुज्झ नयणाइं । तुह अंगममयकुंडं तुह वाणी अमयरसकुल्ला ॥ ४३ ॥
इय कूलवालयमुणी तीए तारिसवियड्ढभणिएहिं । अभिमाणधणो वि तया बद्धो दढनेहनियलेहिं ॥ ४४ ॥
तीए भणिए तूसइ ससिणेहं नियइ तीए मुहकमलं । परिसिढिलियधम्ममई धणियं जाओ जओ भणियं ॥ ४५ ॥
पासो व्व बंधिऊं जे महिला छेत्तुं असि व्व पुरिस्स । सल्लं व्व सल्लिउं जे विमोहिउं इंदजाल व ॥ ४६ ॥
फालेउं करवत्तं व्व होइ सूलं व्व महिलिया भेत्तु । पुरिसस्स खुप्पिउं कद्दमो व्व मच्चु व मरिउं जे ॥ ४७ ॥
खेलालीढा तुच्छ व्व मच्छिया दुक्करं विमोएउं । महिलासंसग्गीए अप्पाणो पुरिसमेत्तेण ॥ ४८ ॥
पुणरवि तीए भणियं कूडकुहेडयमहल्लखाणीए । मा तम्मसु तुह वेला महेसपासाणरेह व्व ॥ ४९ ॥
पत्थावे सममेव य सामन्नमणउत्तरं चरिस्सामो । पच्छा वि हु धम्मधणा मलिणं सोहिंति अप्पाणं ॥ ५० ॥
संपइ तारुन्नमिमं निरत्थयं सुहय ! नेसु मा एवं । दियहाइं पंच दह वा जोव्वणमिणमो बुहा बिंति ॥ ५१ ॥
इय सो किलिट्ठकम्मोदयाओ गुणनिहिगुरूण वयणस्स । अवितहभावाओ तहा खडहडिओ सीलपासाया ॥ ५२ ॥
जं न कयं गुरुवयणं इह तं तस्सेव मत्थए पडियं । अहहो ! अणत्थहेऊ आणाभंगो महापावो ॥ ५३ ॥

तव कोमलतनुस्पर्शन-दर्शन-सम्भाषणादिको जातः । मां दहति मदनज्वलनस्ततः सुखय सङ्गमजलेन ॥ ४१ ॥
त्वं मम नाथस्त्वं मम स्वामी त्वं गति र्मतिश्चैव । त्वं चैवाशास्थानं संप्रति मम मन्दपुण्यया ॥ ४२ ॥
तव सङ्गोऽमृतद्रहोऽमृतफलानीव तव नयनानि । तवाङ्गममृतकुण्डं तव वाणी अमृतरसकुल्या ॥ ४३ ॥
इति कूलवालकमुनिस्तस्यास्तादृशविदग्धभणितैः । अभिमानधनोऽपि तदा बद्धो दृढस्नेहनिगडैः ॥ ४४ ॥
तया भणिते तुष्यति सस्नेहं पश्यति तस्या मुखकमलम् । परिशिथिलितधर्ममतिरत्यन्तं जातो यतो भणितम् ॥ ४५ ॥
पाश इव बद्ध्वा ये महिलाश्छित्वासिरिव पुरुषस्य । शल्यमिव शल्यित्वा ये विमोह्येन्द्रजालमिव ॥ ४६ ॥
स्फाटयितुं करपत्रमिव भवति शूलमिव महिला भेत्तुम् । पुरुषस्य निमङ्क्तुं कर्दम इव मृत्युरिव मर्तुं ये ॥ ४७ ॥
श्लेष्मालीढा तुच्छमिव मक्षिका दुष्करं विमोचयितुम् । महिलासंसर्ग्या आत्मनः पुरुषमात्रेण ॥ ४८ ॥
पुनरपि तया भणितं कूटकुहेटकमहत्खन्या । मा ताम्य तव वेला महेशपाषाणरेखेव ॥ ४९ ॥
प्रस्तावे सममेव च श्रामण्यमनुत्तरं चरिष्यावः । पश्चादपि हु धर्मधना मलिनं शोधयत आत्मानम् ॥ ५० ॥
सम्प्रति तारुण्यमिदं निरर्थकं सुभग ! नय मैवम् । दिवसानि पञ्च दश वा यौवनमयं बुधा ब्रुवन्ति ॥ ५१ ॥
इति स क्लिष्टकर्मोदयादुणनिधिगुरुणां वचनस्य । अवितथभावात्तथा शिथिलितः शीलप्रसादात् ॥ ५२ ॥
यन्न कृतं गुरुवचनमिह तत्तस्यैव मस्तके पतितम् । अहहो ! अनर्थहेतुराज्ञाभङ्गो महापापः ॥ ५३ ॥

पेच्छसु तीए मोसारियाए तह साविया[1] होऊण । सवसीकओ वराओ अहो ! हु थीचरियगहणमिमं ॥ ५४ ॥
सो तारिसो वि निस्संगसाहुचूडामणी वि परिवडिओ । गुरुजणवयणाइक्कमतरुणो अज्ज वि कुसुममेयं ॥ ५५ ॥
पुरओ जह सा नयरी पविसित्तु खडक्किया दुवारेणं । उक्खणिय पाउयाओ सव्वा भंजाविया तेण ॥ ५६ ॥
तह सव्वं वित्थरओ नेयं गंथंतराओ चरियमिमं । इह पुण एत्तियमेत्तं पसाहगं पत्थुयत्थस्स ॥ ५७ ॥

॥ कूलवालाख्यानकं समाप्तम् ॥ १०१ ॥

जइ वि हु वज्जियसंगो कुलेण चंगो तवेण तणुयंगो । तह वि हु एगो परिवडइ वसह ता सुगुरुकुलवासे ॥ १ ॥

स्वप्रत्यनीकरमणीकृतदोषभावादेकाकिनो व्रतवतो विहृतिर्विरुद्धा ।
यस्मादनागमरुचेर्यतनावतोऽपि दोषाः कदाचिदनयोरिव सम्भवन्ति ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचित्तवृत्तावाख्यानकमणिकोशे
साधोरेकाकित्वविहारदोषवर्णनस्त्रयस्त्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३३ ॥

प्रेक्षस्व तया मृषार्यया तथाश्राविकया भूत्वा । स्ववशीकृतो वराकोऽहो ! खलु स्त्रीचरित्रग्रहणमिदम् ॥ ५४ ॥
स तादृशोऽपि निःसङ्गसाधुचूडामणिरपि परिपतितः । गुरुजनवचनातिक्रमतरुणोऽद्यापि कुसुममेनम् ॥ ५५ ॥
पुरतो यथा सा नगरिं प्रविश्य शिथिलिता द्वारेण । उत्खन्य पादुकाः सर्वाः भञ्जितास्तेन ॥ ५६ ॥
तथा सर्वं विस्तरतो ज्ञेयं ग्रन्थान्तराच्चरित्रमिदम् । इह पुनरेतावन्मात्रं प्रसाधकं प्रस्तुतस्य ॥ ५७ ॥

॥ कूलवालकाख्यानकं समाप्तम् ॥ १०१ ॥

यद्यपि हु वर्जितसङ्गः कुलेन चङ्गस्तपसा तनुकाङ्गः ।
तथापि खल्वेकः परिपतति वसत तावत्सुगुरुकुलवासे ॥

● ● ●

---

१. मृषार्यया तथाश्राविकया भूत्वा ।

[३४. साधुदर्शनमहागुणवर्णनाधिकारः]

एतच्च कूलवालकसाधुदर्शनमुभयेषामप्ययोग्यत्वाद् गुणाय नाभवत् । यत्र पुनरुभयोर्गुणवत्ता भवति तत्र साधुदर्शनं गुणाय भवतीत्येदाह-

साहूण दंसणं पि हु गुणावहं सोम-सन्तरूवाणं ।
जह तक्करस्स तह भिगु-(उ) वरोहियपुत्तजुयलस्स ॥ ४३ ॥

व्याख्या - 'साधूनां' मुनीनां 'दर्शनमपि' अवलोकनमपि आस्तां सम्भाषणादि 'गुणावहं' गुणजनकमेव । हुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् । कीदृशामित्याह- 'सौम्य-शान्तरूपाणां' सौम्यम्-आन्तरकोपनिग्रहात् शान्तं-बहिरपि कोपविकारविरहाद्-रूपम्-आकारो येषां ते तथोक्तास्तेषाम् । 'यथा' इत्युदाहरणोपन्यासार्थः । 'तस्करस्य' चौरस्य 'तथा' तेनैव प्रकारेण 'भृगूपरोहितपुत्रयुगलस्य' भृगुनामपुरोहितसुतयुग्मस्य इति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थस्तु आख्यानकाभ्यामवसेयः । ते चामू ।

तत्र तावत् तस्कराख्यानकमारभ्यते-

एगम्मि सन्निवेसे वसंति दो तक्करा असमसत्ता । परदव्वहरणवावारसंजुया निहयपरलोगा ॥ १ ॥
अह अन्नया य कम्मि वि नयरे कस्स वि य सेट्ठिगेहम्मि । खणिऊण खत्तमवहरिय दव्वमारक्खियभयाओ ॥ २ ॥
नासंति जाव पेच्छंति ताव नयरस्स परिसरे साहुं । उस्सग्गठियं निप्फंदलोयणं किं पि झायंतं ॥ ३ ॥
तत्तो ताणेगेणं भणियं धन्नो महामुणी एस । परिचत्तसयलवावारपत्तअपवग्गसुहलेसो ॥ ४ ॥

तस्कराख्यानकम् - ॥ १०२ ॥

एकस्मिन् सन्निवेशे वसतो द्वौ तस्करावसमसत्त्वौ । परद्रव्यहरणव्यापारसंयुक्तौ निहतपरलोकौ ॥ १ ॥
अथान्यदा च कस्मिन्नपि नगरे कस्यापि च श्रेष्ठिगृहे । खनित्वा क्षात्रमपहृत्य द्रव्यमारक्षितभयात् ॥ २ ॥
नश्यतो यावत्प्रेक्षेते तावन्नगरस्य परिसरे साधुम् । उत्सर्गस्थितं निःस्पन्दलोचनं किमपि ध्यायन्तम् ॥ ३ ॥
ततस्तयोरेकेण भणितं धन्यो महामुनिरेषः । परित्यक्तसकलव्यापारप्राप्तापवर्गसुखलेशः ॥ ४ ॥

बीएण पुणो भणियं कह एसो समणमुंडओ दिट्ठो ? । अवसउणसूइयावयपरंपरापेच्छणीओ त्ति ॥ ५ ॥
एवं ते नियआउं परिपालिय मरणमुवगया संता । उज्जेणीए जाया पिहु पिहु सेट्ठिस्स गेहेसु ॥ ६ ॥
पुत्तत्ताए निच्चं पुव्वभवब्भासओ महापीई । आबालकालओ च्चिय संजाया ताणमन्नोन्नं ॥ ७ ॥
अन्नं च वसण-ववहार-असण-सयणा-ऽऽसाणाइयं सव्वं । एगेण विहियमवरो वि कुणइ तह चेव नेहाओ ॥ ८ ॥
तो लोयकयभिहाणा संजाया एगचित्तया तत्तो । अह अन्नया य भयवं समोसढो तत्थ वीरजिणो ॥ ९ ॥
लोएण समं नयराउ निग्गया ते वि वंदणनिमित्तं । सुर-मणुय-तिरियपरिसाए देसणं कुणइ भयवं पि ॥ १० ॥
एगस्स कहिज्जंतं सम्मं परिणमइ धम्मसव्वस्सं । अन्नस्स पुणो मुणिवरपओसनिहयस्स न हु किं पि ॥ ११ ॥
तो लोएणं नाउं परोप्परं ताणअन्नहाभावं । पुट्ठो भयवं भेओ किमेगचित्ताणमेएसिं ॥ १२ ॥
इण्हिं जाओ ? तत्तो पुव्वभवो भयवया समाइट्ठो । इय साहुदंसणं तक्करस्स जायं महाफलयं ॥ १३ ॥

॥ इति तस्कराख्यानकं समाप्तम् ॥ १०२ ॥

इदानीं भृगूपरोहितपुत्रयुगलकाख्यानकमाख्यायते तद्यथा-

जे आसि चित्त-संभूयसहयरा पुव्वजम्मसंगइया । ते पावियसम्मत्ता सुरलोगं दो वि संपत्ता ॥ १ ॥
आउक्खयम्मि चविऊण विस्सुए खिइपइट्ठिए नयरे । इब्भकुले ते दो वि हु सहोयरा भायरो जाया ॥ २ ॥
तत्थऽन्ने इब्भसुया चउरो तेसिं वयंसया जाया । उवभुंजिय विसयसुहं छवि हु थेराण पासम्मि ॥ ३ ॥

द्वितीयेन पुन र्भणितं कथमेष श्रमणमुण्डो दृष्टः ? । अपशकूनसूचितापत्परंपराप्रेक्षणीय इति ॥ ५ ॥
एवं तौ निजायुः परिपाल्य मरणमुपगतौ सन्तौ । उज्जैन्यां जातौ पृथु पृथु श्रेष्ठिनो गृहयोः ॥ ६ ॥
पुत्रत्वेन नित्यं पूर्वभवाभ्यासान्महाप्रीतिः । आबालकालतश्चैव सञ्जाता तयोरन्योन्यम् ॥ ७ ॥
अन्यच्च वसन-व्यवहारा-ऽशन-शयनासनादिकं सर्वम् । एकेन विहितमपरोऽपि करोति तथा चैव स्नेहात् ॥ ८ ॥
ततो लोककृताभिद्यानौ सञ्जातावेकचित्तकौ ततः । अथान्यदा च भगवान् समवसृतस्तत्र वीरजिनः ॥ ९ ॥
लोकेन समं नगरान्निर्गतौ तावपि वन्दननिमित्तम् । सुर-मनुज-तिर्यक्पर्षदि देशनां करोति भगवानपि ॥ १० ॥
एकस्य कथ्यमानं सम्यक् परिणमति धर्मसर्वस्वम् । अन्यस्य पुन र्मुनिवरप्रद्वेषनिहतस्य न खलु किमपि ॥ ११ ॥
तदा लोकेन ज्ञात्वा परस्परं तयोरन्यथाभावम् । पृष्टो भगवन् ! भेदः किमेकचित्तयोरनयोः ॥ १२ ॥
इदानीं जातः ? ततः पूर्वभवो भगवता समादिष्टः । इति साधुदर्शनं तस्करस्य जातं महाफलकम् ॥ १३ ॥

॥ इति तस्कराख्यानकं समाप्तम् ॥ १०२ ॥

भृगुपुरोहित पुत्रयुगलकाख्यानकम् ॥ १०३ ॥

यावास्तां चित्र-सम्भूत सहचरौ पूर्वजन्मसङ्गतिकौ । तौ प्राप्तसम्यक्त्वौ सुरलोकं द्वावपि सम्प्राप्तौ ॥ १ ॥
आयुः क्षये च्युत्वा विश्रुते क्षितिप्रतिष्ठे नगरे । इभ्यकुले तो द्वावपि हु सहोदरौ भ्रातरौ जातौ ॥ २ ॥
तत्रान्य इभ्यसुताश्चत्वारस्तयो र्वयस्या जाताः । उपभुज्य विषयसुखं षडपि हु स्थविराणां पार्श्वे ॥ ३ ॥

पव्वइया सव्वे वि हु सामन्नं पालिऊण सुहभावा । मरिऊण पउमगुम्मे चउपलिया सुरवरा जाया ॥ ४ ॥
गोवालदारयाणं जे ते चउरो वयंसया आसि । तेसिं एगो कुरुजणवयस्सऽलंकारभूयम्मि ॥ ५ ॥
उसुयारनामयपुरे सइसभवणराइए दुहा वि तहिं । रिउविसरबाणघडणो उसुयारो गुन्नअभिहाणो ॥ ६ ॥
राया जायो बीओ तब्भज्जा नयण-वयणजियकमला । कमलावई वि नामेण किमवि कमलाए वुड्ढिकरी ॥ ७ ॥
तइओ तस्सेव य नरवइस्स विप्पो कुलक्कमायाओ । नामेण भिगू चउदसविज्जाठाणाण परगओ ॥ ८ ॥
आई-मज्झऽवसाणाहिओ वि स पुरोहिओ जणपसिद्धो । वेयभणिएक्कक्कम्मप्पिओ वि छक्कम्मकरणरओ ॥ ९ ॥
जाया जसाभिहाणा चउत्थओ तस्स चेव वरभज्जा । निरवच्चणदोसेणं ताणि य तम्मंति परमऽहियं ॥ १० ॥
यत उक्तम्-
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च । तस्मात् पुत्रमुखं दृष्ट्वा सुखं स्वर्गे प्रयास्यति ॥ ११ ॥
जे गोवदारया दो वि ओहिणा तेहिं नायमम्हे उ । उवरोहियस्स पुत्ता होहामो तो समणरूवं ॥ १२ ॥
काऊण धम्ममग्गे सभारिओ ठाविओ भिगू तेहिं । गहियाणुव्वयधम्मो पालइ धम्मं गिहत्थहियं ॥ १३ ॥
ताहे सुयस्स लाभं नमिऊणं पुच्छिया मुणी तेण । तेहिं वि नाउं भणियं होही तुह विप्प ! सुयजुयलं ॥ १४ ॥
नवरं लहुकम्मत्ता रइमलहंतं गिहम्मि विसयसुहं । विसमिव परिचइऊणं पव्वइही मा निवारेसु ॥ १५ ॥
तेणावि चिंतियं होउ ताव पच्छा वि अभिमयं काहं । भणिउं महापसायं विसज्जिया मुणिवरा तेण ॥ १६ ॥
कालक्कमेण जायं सुयजुयलं जाव अट्ठवारिसयं । संजायं ता पिउणा सिक्खवियं दुट्ठबुद्धीए ॥ १७ ॥

प्रव्रजिताः सर्वेऽपि हु श्रामण्यं पालयित्वा शुभभावात् । मृत्वा पद्मगुल्मे चतुष्पल्याः सुरवरा जाताः ॥ ४ ॥
गोपालदारकाणां ये ते चत्वारो वयस्या आसन् । तेषामेकः कुरुजनपदस्यालङ्कारभूते ॥ ५ ॥
उसुकारनामकपुरे सइशभवनराजमाने द्विधापि तत्र । रिपुसमूहबाणघटन उसुकारो गुन्नाभिधानः ॥ ६ ॥
राजा जातो द्वितीयस्तद्भार्या नयन-वदनजितकमला । कमलावत्यपि नाम्ना किमपि कमलाया वृद्धिकरी ॥ ७ ॥
तृतीयस्तस्यैव च नरपते र्विप्रः कुलक्रमायातः । नाम्ना भृगुश्चतुर्दशविद्यास्थानानां पारगतः ॥ ८ ॥
आदि-मध्या-ऽवसानाहितोऽपि स पुरोहितो जनप्रसिद्धः । वेदभणितैककर्मप्रियोऽपि षट्कर्मकरणरतः ॥ ९ ॥
जाया यशाभिधाना चतुर्थकस्तस्य चैव वरभार्या । निरपत्यदोषेण तौ च ताम्यतः परमधिकम् ॥ १० ॥
यौ गोपदारकौ द्वावप्यवधिना ताभ्यां ज्ञातमावां तु । पुरोहितस्य पुत्रौ भविष्यावस्ततः श्रमणरुपम् ॥ १२ ॥
कृत्वा धर्ममार्गे सभार्यः स्थापितो भृगुस्ताभ्याम् । गृहीताणुव्रतधर्मः पालयति धर्मं गृहस्थहितम् ॥ १३ ॥
तदा सुतस्य लाभं नत्वा पृष्टौ मुनी तेन । ताभ्यामपि ज्ञात्वा भणितं भविष्यति तव विप्र ! सुतयुगलम् ॥ १४ ॥
नवरं लघुकर्मत्वाद्रतिमलभमानं गृहे विषयसुखम् । विषमिव परित्यज्य प्रव्रजिष्यति मा निवारय ॥ १५ ॥
तेनापि चिन्तितं भवतु तावत्पश्चादप्यभिमतं करिष्यामि । भणित्वा महाप्रसादं विसर्जितौ मुनिवरौ तेन ॥ १६ ॥
कालक्रमेण जातं सुतयुगलं यावदष्टवार्षिकम् । सञ्ज्ञातं तावतपित्रा शिक्षतं दुष्टबुद्धिना ॥ १७ ॥

जे इमे दीसंति जणे पुत्तय ! कंबलयपावरियदेहा । सेयबडया इमेसिं वीससियव्वं न कइया वि ॥ १८ ॥
जमिमे रक्खसपयई माणुसमंसासिणो विसेसेणं । सिसुभावे वट्टतं सुहेण भक्खंति मारेउं ॥ १९ ॥
तो ते तह त्ति पडिवज्जिऊण कइया वि जाव रमणाणा । नीहरिया वणमज्झे नियंति ता साहुणो तत्थ ॥ २० ॥
सत्थेण समं चलिए भिक्खं गहिऊण गाममज्झाओ । वियणम्मि भोयणट्ठा वच्चंते तो इमे भीया ॥ २१ ॥
चडिया तरुम्मि भयभीयमाणसा ताव ते तमेव तरुं । संपत्ता तरुछायाए समयविहिणा समग्गं पि ॥ २२ ॥
किच्चं काउं भुंजंति भोयणं ताव चिंतियमिमेहिं । न हु होंति रक्खसा नेय ताव मंसासिणो एए ॥ २३ ॥
छज्जीवहिया उवसंतमाणसा सोममुत्तिणो समणा । परदुहजणया न हु होंति एरिसा निच्छियमिमे त्ति ॥ २४ ॥
ता नूणमम्ह जणओ न तत्तदंसी न यावि हियजणओ । एयाण दंसणं पि हु जो वारइ संतरूवाणं ॥ २५ ॥
इय चिंतिऊण तरुणो समुत्तरेउं पसंतहिययमया । संविग्गमणा सम्मं साहुसयासं समल्लीणा ॥ २६ ॥
बहुमाणभत्तिसंभारसंभमुब्भिज्जामाणरोमंचा । चरणेसु निवडिऊणं मुणीण पुरओ समुवविट्ठा ॥ २७ ॥
नाऊण जोग्गयं तेसि साहुणा मुणियसमयसारेण । जेट्ठेण जंपियं सुणह भद्दया ! सम्ममुवएसं ॥ २८ ॥
तं जहा-
जाएण जीवलोए दो चेव नरेण सिक्खियव्वाई । कम्मेण जेण जीवइ जेण मओ सोग्गइं जाइ ॥ २९ ॥
तथा-
इहलोइयम्मि कज्जे सव्वारंभेण जह जणो तणइ । ता जइ लक्खंसेण वि परलोए ता सुही होइ ॥ ३० ॥

य इमे दृश्यन्ते जनाः पुत्रक ! कम्बलप्रावरितदेहाः । श्वेतपटका एतेषां विश्वसितव्यं न कदापि ॥ १८ ॥
यदिमे राक्षसप्रकृतयो मनुष्यमांसाशिनो विशेषेण । शिशुभावे वर्तन्तं सुखेन भक्षयन्ति मारयित्वा ॥ १९ ॥
तदा तौ तथेति प्रतिपद्य कदापि यावद्रममाणौ । निःसृतौ वनमध्ये पश्यतस्तावत्साधवस्तत्र ॥ २० ॥
सार्थेन समं चलिता भिक्षां गृहीत्वा ग्राममध्यात् । विजने भोजनार्था गच्छन्ति तदेमौ भीतौ ॥ २१ ॥
आरुढौ तरुं भयभीतमानसौ तावत्ते तमेव तरूम् । सम्प्राप्तास्तरुच्छायायां समयविधिना समग्रमपि ॥ २२ ॥
कृत्यं कृत्वा भुञ्जन्ते भोजनं तावच्चिन्तितमाभ्याम् । न हु भवन्ति राक्षसा नैव तावन्मांसाशिन एते ॥ २३ ॥
षड्जीवहिता उपशान्तमानसाः सौम्यमूर्तयः श्रमणाः । परदुःखजनका न हुभवन्तीदृशा निश्चितमिमे इति ॥ २४ ॥
ततो नूनमस्मज्जनको नतत्त्वदर्शी न चापि हितजनकः । एतेषां दर्शनमपि हु यो वारयति सद्गुपाणाम् ॥ २५ ॥
इति चिन्तयित्वा तरोः समुत्तीर्य प्रशान्तहृदयमयौ । संविग्नमनसौ सम्यक् साधुसकाशं समालीनौ ॥ २६ ॥
बहुमानभक्तिसम्भारसम्भ्रमोद्भिद्यमानरोमाञ्चौ । चरणेषु निपत्य मुनीनां पुरतः समुपविष्टौ ॥ २७ ॥
ज्ञात्वा योग्यतां तयोः साधुना मुणितसमयसारेण । ज्येष्ठेन जल्पितं श्रुणुत भद्रकौ ! सम्यगुपदेशम् ॥ २८ ॥
तद्यथा - जातेन जीवलोके द्वौ चैव नरेण शिक्षितव्यौ । कर्मणा येन जीवति येन मृतः सुगतिं याति ॥ २९ ॥
तथा - इहलौकिके कार्ये सर्वारम्भेण यथा जनस्तनोति । ततो यदि लक्षांशेनापि परलोके तदा सुखी भवति ॥ ३० ॥

परलोइयकज्जमिमं गिहवासं दुच्चयं परिच्चइय । पडिवज्जिय पव्वज्जं जं कीरइ सोहणो धम्मो ॥ ३१ ॥
तेहिं वि भणियं भयवं ! सच्चमिमं तुम्ह संतियं वयणं । मोयाविऊण पियरो काहामो किं वियप्पेण ? ॥ ३२ ॥
मोयाविऊण जणयाओ सुत्तजुत्तीहिं सम्ममप्पाणं । संविग्गभावियमणा पव्वइया ते समियपावा ॥ ३३ ॥
जह एए तह राया पुरोहिओ तेसि भारियाओ वि । पव्वइउं छवि हु माणुसाणि पत्ताणि सिद्धिसुहं ॥ ३४ ॥

॥ भृगूपरोहितसुतयुग्माख्यानकं समाप्तम् ॥ १०३ ॥

जह एएसिं जायं साहूणं दंसणं पि हु गुणाय । तह अन्नस्स वि जायइ तो बहुमाणाओ तं कुणह ॥ १ ॥

कल्याणकारनिरवद्यगुणैरनल्पं, शश्वत्पवित्रपरपावनतीर्थकल्पम् ।
धन्यस्य कस्यचिदिदं शुभजन्मभाजः, पुण्यात्मनः सुमुनिदर्शनमाविरस्ति ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे साधुदर्शनमहागुणप्रतिपादकश्चतुस्त्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३४ ॥

परलौकिककार्यमिदं गृहवासं दुस्त्यज्यं परित्यज्य । प्रतिपद्य प्रव्रज्यां यत्क्रियते शोभनो धर्मः ॥ ३१ ॥
ताभ्यामपि भणितं भगवन् ! सत्यमिदं तव सत्कं वचनम् । मोचयित्वा पितरौ करिष्यावः किं विकल्पेन ? ॥ ३२ ॥
मोचयित्वा जनकात् सूत्रयुक्तिभिः सम्यगात्मानम् । संविग्नभावितमनसौ प्रव्रजितौ तौ समितपापौ ॥ ३३ ॥
यथैतौ तथा राजा-पुरोहितस्तयोः भार्येऽपि । प्रव्रज्य षडपि हु मनुष्याः प्राप्ताः सिद्धिसुखम् ॥ ३४ ॥

॥ भृगुपुरोहितसुतयुग्माख्यानकं समाप्तम् ॥ १०३ ॥

यथैतेषां जातं साधूनां दर्शनमपि हु गुणाय । तथान्यस्यापि जायते ततो बहुमानात्तं कुरुत ।

● ● ●

[३५. अवश्यप्राप्तव्यप्राप्त्यधिकारः]

साधुदर्शनं गुणावहमित्युक्तम् । इदं च पूर्वपुण्यजनितमेव गुणावहमनयोर्यथा जातं तथाऽपरमपि विभूत्यादिकं यद् यस्य पूर्वपुण्यजनितं तत् तस्यावश्यमेव जायते इत्येतदाह-

जं जस्स पुव्वविहियं सो तं पावेइ एत्थुदाहरणा ।
करकंडु-नमी तह चारुदत्त-वणिबंधुदत्ता य ॥ ४४ ॥

व्याख्या-'यत्' किमपि विभवादिकं 'पूर्वविहितं' पूर्वकर्मोपात्तं तत् 'सः' प्राणी 'प्राप्नोति' लभते । अत्रोदाहरणानि-करकण्डुश्च-दधिववाहनपुत्रः नमिश्च-राजपुत्र एव तौ तथौक्तौ । तथा इति समुच्चये । चारुदत्तश्च-बन्धुदत्ताभिधानो वाणिजकः तौ च । चः समुच्चये इत्यक्षरार्थः ॥ भावार्थस्त्वाख्यानकगम्यः । तानि चामूनि ।

तत्रापि परिपाटीप्राप्तं करकण्ड्वाख्यानकमाख्यायते । तच्चेदम्-

उत्तुंगविसालेणं सालेणं परिगया पुरी चंपा । निस्सेसभुवणलच्छीए मंदिरं अत्थि सुपसिद्धा ॥ १ ॥
लायन्नलच्छिकलिओ मयरहिओ धणरसाणुगयदेहो । रयणायरो व्व निवसइ अलद्धमज्झो जणो जत्थ ॥ २ ॥
उड्डमरसमरसंरंभभिडियभडकोडिसंकडे समरे । वइरियजयसिरि-जसगहणलालसो जस्स करवालो ॥ ३ ॥
ससहरसमजसधवलियसधरधरावलय-कंदराभोगो । तं परिपालइ नयरिं राया दहिवाहणो नाम ॥ ४ ॥

करकण्ड्वाख्यानकम् ॥ १०४ ॥

उत्तुङ्गविशालेन शालेन परिगता पूरी चम्पा । निःशेषभुवनलक्ष्म्या मन्दिरमस्ति सुप्रसिद्धा ॥ १ ॥
लावण्यलक्ष्मीकलितो मदरहितः धनरसानुगतदेहः । रत्नाकर इव निवसत्यलब्धमध्यो जनस्तत्र ॥ २ ॥
उत्कृष्टसमरसंरम्भयोधितभटकोटिसङ्कीर्णे समरे । वैरिकजयश्री-यशोग्रहणलालसो यस्य करवालः ॥ ३ ॥
शशधरसमयशोधवलितसधरधरावलयकन्दराभोगः । तां परिपालयति नगरिं राजा दधिवाहनो नाम ॥ ४ ॥

तस्स उवरोहसीला मणहरजोव्वणविभूसियसरीरा । सयलावरोहसारा भज्जा पउमावई नाम ॥ ५ ॥
आरोविय रज्जं रज्जकज्जसज्जम्मि पयइपुज्जम्मि । मंतिम्मि विसयसोक्खं सो भुंजंतो गमइ कालं ॥ ६ ॥
पुव्वभवोवज्जियपुन्नपगरिसब्भूयगब्भवसयाए । देवीए दोहलओ संजाओ अक्खियो रन्नो ॥ ७ ॥
जइ तुमए धारियधवलछत्तरयणा रणंतमणिघंटं । जयवारणमारूढा कंदुज्जलचलियचमरजुया ॥ ८ ॥
आरामुज्जाण-विहार-गरुयगिरिकंदरासु विहरामि । इय भणिए देवीए रन्ना विहियं तहेव तयं ॥ ९ ॥
एत्थंतरम्मि हरिचाव-विज्जु-गुरुगज्जिभरियभुवणयलो । पहिययणुम्मायकरो वासारत्तो समणुपत्तो ॥ १० ॥
एवंविहम्मि पाउसपारंभे नवघणालिसोहिल्ले । नीलतिणंकुररेहिरधरणीवलएण रमणीए ॥ ११ ॥
सीरवियारियखोणी-जलहरजलसंगमाओ सुरहेण । गंधेण हत्थिराया धाणिंदियपरवसो विहिओ ॥ १२ ॥
सरिऊण विंझवंसग्गकरलअइसरलसल्लइप्पभिइ । मयमत्तो चत्तजणो वणसमुहो गंतुमारद्धो ॥ १३ ॥
गंतुमसत्तो संतो वलिओ सामंत-मंतिपभिइजणो । हत्थी उण संपत्तो वणम्मि जलसिसिरपवणम्मि ॥ १४ ॥
तत्थ वि गच्छंतेणं दट्ठुं वडपायवं पुरो भणिया । देवी निवेण गच्छइ तलेण एयस्स जइ हत्थी ॥ १५ ॥
तो तं वडवाययलग्गणम्मि जत्तं करेज्ज इय भणिए । राया दक्खत्तणओ गिण्हित्तु तयं समुत्तिन्नो ॥ १६ ॥
दहिवाहणो वि तत्तो वलिउं चंपं गओ निराणंदो । पउमावई गएणं नीया निम्माणुसं अडविं ॥ १७ ॥
दट्ठुणं तत्थ सरं हत्थी कीलानिमित्तमोयरिओ । देवी समुत्तरेउं सणियं अडवीए भमडंती ॥ १८ ॥

तस्यान्तःपुरशीला मनोहरयौवनविभूषितशरीरा । सकलान्तःपुरसारा भार्या पद्मावती नाम ॥ ५ ॥
आरोप्य राज्यं राज्यकार्यसज्जे प्रकृतिपूज्ये । मन्त्रिणि विषयसौख्यं स भुञ्जन् गमयति कालम् ॥ ६ ॥
पूर्वभवोपार्जितपुण्यप्रकर्षभूतगर्भवशगायाः । देव्या दोहदकः सञ्जात आख्यातो राज्ञे ॥ ७ ॥
यदि त्वया धारितधवलछत्ररत्ना रणन्मणिघण्टम् । जयवारणमारुढा कंदोज्जवलचलितचामरयुग्मा ॥ ८ ॥
आरामोद्यान-विहार-गुरुकगिरिकन्दराषु विहरामि । इति भणिते देव्या राज्ञा विहितं तथैव तकत् ॥ ९ ॥
अत्रान्तरे हरिचाप-विद्युदुरुगर्जिभृतभुवनतलः । पथिकजनोन्मादकरो वर्षार्तुः समनुप्राप्तः ॥ १० ॥
एवंविद्ये प्रावृट् प्रारम्भे नवघनालिशोभमाने । नीलतृणाङ्कुरराजमानधरणिवलयेन रमणीये ॥ ११ ॥
सीरविदारितक्षोणी-जलधरजलसङ्गमात् सुरभेण । गन्धेन हस्तिराजा घ्राणेन्द्रियपरवशो विहितः ॥ १२ ॥
स्मृत्वा विन्ध्यावंशाग्रकरलातिसरलसल्लकीप्रभृतिः । मदमत्तस्त्यक्तजनो वनसंमुखो गन्तुमारब्धः ॥ १३ ॥
गन्तुमसक्तस्सन् वलितः सामन्त-मन्त्रिप्रभृतिजनः । हस्ती पुनःसंप्राप्तो वने जलशिशिरपवने ॥ १४ ॥
तत्रापि गच्छता दृष्ट्वा वटपादपं पुरो भणिता । देवी नृपेण गच्छति तलेनैतस्य यदि हस्ती ॥ १५ ॥
तदा तं वटपादपलग्ने यत्नं कुर्या इति भणिते । राजा दक्षत्वेन गृहीत्वा तकत् समुत्तीर्णः ॥ १६ ॥
दधिवाहनोऽपि ततो वलित्वा चम्पां गतो निरानन्दः । पद्मावती गजेन नीता निर्मनुष्यामटविम् ॥ १७ ॥
दृष्ट्वा तत्र सरो हस्ती क्रीडानिमित्तमवतरितः । देवी समुत्तीर्य शनैरटव्यां भ्रमन्ती ॥ १८ ॥

दिट्ठा य तावसेणं नीया नियकुलवइस्स पासम्मि । पुट्ठा य तेण भद्दे ! काऽसि तुमं ? किमिह संपत्ता ? ॥ १९ ॥
तीयुत्तं दहिवाहणदइया धूया य चेडयनिवस्स । इह संपत्ता अहयं अवहरिया हत्थिणा तयणु ॥ २० ॥
भणियं कुलवइणा जइ एवं ता मम वि होसि तं धूया । जेण मह तुज्झ जणओ दुइज्जहिययं परममित्तो ॥ २१ ॥
सम्माणिया समाणी तत्थ ठिया सा वि कइवयदिणाणि । नाउं तत्थ निवासं असंगयं अन्नदियहम्मि ॥ २२ ॥
नियसीमं अब्भड वंचिऊण सा तावसेहिं सिक्खविया । अम्ह न विसओ वच्छे ! एत्तो पुरओ तओ तुमए ॥ २३ ॥
सिरिदंतवक्कनयरं गंतव्यं दंतवक्कनरवइणो । सा वि हु तं संपत्ता पव्वइया साहुणीपासे ॥ २४ ॥
पच्छन्नगब्भभावा संजाओ दारओ तओ तीसे । मुद्दारयणसमेओ कंबलरयणेण वेढेउं ॥ २५ ॥
मुक्को पेयवणम्मि पच्छन्ने सा ठिया निरूविंती । पेयवणसामिणा भारियाए सो दारओ दिन्नो ॥ २६ ॥
अज्जाए मित्ततं तीए सह पाणगीए पारद्धं । जं लहइ मोयगाई तं सव्वं तीए अप्पेइ ॥ २७ ॥
वड्ढंतो तीए सुओ संजाओ अट्ठवरिसदेसीओ । कच्छूसंगहियतणू कीलंतो सह वयंसेहिं ॥ २८ ॥
जंपइ भो ! तुम्हाणं मज्झे राया अहं करं देज्ज । ता तुब्भे मज्झ तणूकच्छूकंडूयणेणं ति ॥ २९ ॥
तो कयजहत्थनामो सो करकंडु त्ति दिक्करूवेहिं । विद्धि गओ मसाणं रक्खइ अह साहुणो दोन्नि ॥ ३० ॥
तम्मि मसाणम्मि गया वंसं दट्ठूण ताणमेगेणं । वुत्तं जो वंसमिमं गिण्हस्सइ सो निवो होही ॥ ३१ ॥
नवरं पडिक्खियव्वो चउरंगुलमेत्तयं पवड्ढंतो । तत्तो इमो जहोइयलक्खणगुणसंजुओ होही ॥ ३२ ॥

दृष्टा च तापसेन नीता निजकुलपतेः पार्श्वे । पृष्टा च तेन भद्रे ! काऽसि त्वं ? किमिह सम्प्राप्ता ? ॥ १९ ॥
तयोक्तं दधिवाहनदयिता दुहिता च चेटकनृपस्य । इह सम्प्राप्ताऽहमपहृता हस्तिना तदनु ॥ २० ॥
भणितं कुलपतिना यद्येवं तदा ममापि भवसि त्वं दुहिता । येन मम तव जनको द्वितीयहृदयं परममित्रम् ॥ २१ ॥
सन्मानिता सती तत्र स्थिता सापि कतिपयदिनानि । ज्ञात्वा तत्र निवासमसङ्गतमन्यदिवसे ॥ २२ ॥
नीजसीमामभ्यर्णं वञ्चित्वा सा तापसैः शिक्षिता । अस्मन्न विषयो वत्से ! इतः पुरतस्ततस्त्वया ॥ २३ ॥
श्रीदन्तवक्रनगरं गन्तव्यं दन्तवक्रनरपतेः । सापि हु तं संप्राप्ता प्रव्रजिता साध्वीपार्श्वे ॥ २४ ॥
प्रच्छन्नगर्भभावात्सञ्जातो दारकस्ततस्तस्याः । मुद्दारत्नसमेतः कम्बलरत्नेन वेष्टयित्वा ॥ २५ ॥
मुक्तः प्रेतवने प्रच्छन्ने सा स्थिता निरुपयन्ती । प्रेतवनस्वामिना भार्यायै स दारको दत्तः ॥ २६ ॥
आर्यया मित्रत्वं तया सह पाणग्या प्रारब्धम् । यल्लभते मोदकादयस्तत्सर्वं तस्या अर्पयति ॥ २७ ॥
वर्धमानस्तस्याः सुतः सञ्जातोऽष्टवर्षदेश्यः । कच्छूसङ्गृहीततनुः क्रीडन् सह वयस्यैः ॥ २८ ॥
जल्पति भो ! युस्माकं मध्ये राजाहं करं दद्यात् । ततो यूयं तनूकच्छूकण्डूयनेनेति ॥ २९ ॥
ततः कृतयथार्थनामा स करकण्डूरिति दिक्करुपैः । वृद्धिं गतः स्मशानं रक्षत्यथ साधू द्वौ ॥ ३० ॥
तस्मिन् स्मशाने गतौ वंशं दृष्ट्वा तयोरेकेन । उक्तं यो वंशमिदं ग्रहिष्यति स नृपो भविष्यति ॥ ३१ ॥
नवरं प्रतीक्षितव्यश्चतुरङ्गुलमात्रकं प्रवर्धमानः । ततोऽयं यथोचितलक्षणगुणसंयुक्तो भविष्यति ॥ ३२ ॥

पच्छन्ने विप्पेणं तं वयणं सुणिउ खणिउमारद्धो । करकंडुणा स दिट्ठो पयंपिओ मुणियभावेण ॥ ३३ ॥
किं मज्झ संतियं वंसदंडयं उक्खणेसि रे विप्प ! उद्दालिए हढेणं दिएण सो करणमाणीओ ॥ ३४ ॥
जाओ य विसंवाओ तेसिं दोण्हं पि दंडकज्जम्मि । कारणिगेहिं भणिओ करकंडू किं न अप्पेसि ? ॥ ३५ ॥
विप्पस्स इमं सो आह मज्झ एसो त्ति ता न अप्पेमि । अन्नं गेण्हसु भणिए जा कह वि न अप्पए तत्तो ॥ ३६ ॥
तेहुत्तं हसिऊणं राया किं होसि एयपासाओ ? । तेणुत्तं होहिस्सं बाढं भणिओ पुणो तेहिं ॥ ३७ ॥
जइया तं होसि निवो तइया गामो इमस्स दायव्वो । पडिवज्जिऊण एवं दो वि गया नियनियगिहेसु ॥ ३८ ॥
धिज्जाइएण दंडयगहणत्थं मेलिए दिए नाउं । सो जणय-जणणिसहिओ संपत्तो कंचणपुरम्मि ॥ ३९ ॥
तत्थ अपुत्तो राया मओय अहिवासियाणि दिव्वाणि । भमिऊण चच्चराइसु संपत्ताइं तहिं ताइं ॥ ४० ॥
जत्थऽच्छइ करकंडू सुत्तो छायाए सीयलतरुस्स । तं दट्ठूणं चक्कंकुसाइसल्लक्खणोवेयं ॥ ४१ ॥
आरोविओ सखंधस्मि हत्थिणा पउरलोयपरियरिओ । जा पविसइ पुरमज्झे ता मायंगो त्ति कलिऊण ॥ ४२ ॥
धिज्जाइया पवेसं न देंति तो दंडरयणमइघोरं । पज्जलियं तं दट्ठु नट्ठा विप्पा तओ रन्ना ॥ ४३ ॥
निव्विसया आणत्ता मायंगा पुण कया दियप्पवरा । सो वि हु मरुओ सोउं करकंडुनिवं तहिं पत्तो ॥ ४४ ॥
भणिओ रन्ना गामं गिण्हसु जं किं पि रोयए तुज्झ । तेणुत्तं मह गेहं चंपाविसए तहिं देहि ॥ ४५ ॥
तत्तो य दूयवयणेण भणइ दहिवाहणं नियदेसे । मह देसु गाममेगं धेत्तुं गामं व नयरं वा ॥ ४६ ॥

प्रच्छन्ने विप्रेण तद्वचनं श्रुत्वा खन्तुमारब्धः । करकण्डूना स दृष्टः प्रजल्पितो ज्ञातभावेन ॥ ३३ ॥
किं मम सत्कं वंशदण्डकमुत्खनसि रे विप्र ! । आच्छिन्ने बलाद् द्विजेन स करणमानीतः ॥ ३४ ॥
जातश्च विसंवादस्तयो द्वयोरपि दण्डकार्ये । कारणिकै र्भणितः करकण्डूः किं नार्पयसि ? ॥ ३५ ॥
विप्रस्येदं स आह ममैष इति ततो नार्पयामि । अन्यद्गृहाण भणिते यावत्कथमपि नार्पयति ततः ॥ ३६ ॥
तदभिमुखं हसित्वा राजा किं भवस्येतत्प्रासादात् ? । तेनोक्तं भविष्यामि गाढं भणितः पुनस्तैः ॥ ३७ ॥
यदा त्वं भवसि नृपस्तदा ग्राम एतस्मै दातव्यः । प्रतिपद्यैवं द्वावपि गतौ निजनिजगृहयोः ॥ ३८ ॥
धिग्जातिना दण्डकग्रहणार्थं मेलितान् द्विजान् ज्ञात्वा । स जनक-जननीसहितः सम्प्राप्तः कञ्चनपूरे ॥ ३९ ॥
तत्रापुत्रो राजा मृतश्चाधिवासितानि दिव्यानि । भ्रान्त्वा चत्वरादिषु सम्प्राप्तानि तत्र तानि ॥ ४० ॥
यत्रास्ते करकण्डूः सुप्तश्छायायां शीतलतरोः । तं दृष्ट्वा चक्राङ्कुशादिसल्लक्षणोपेतम् ॥ ४१ ॥
आरोपितः स्वस्कन्धे हस्तिना पौरलोकपरिवारितः । यावत्प्रविशति पुरमध्ये तावन्मातङ्ग इति कलित्वा ॥ ४२ ॥
धिग्जातिकाः प्रवेशं न ददति ततो दण्डरत्नमतिघोरम् । प्रज्वलितं तं दृष्ट्वा नष्टा विप्रास्ततो राज्ञा ॥ ४३ ॥
निर्विषया आज्ञप्ता मातङ्गाः पुनः कृता द्विजप्रवराः । सोऽपि हु मरुक श्रुत्वा करकण्ड्नृपं तत्र प्राप्तः ॥ ४४ ॥
भणितो राज्ञा ग्रामं गृहाण यत्किमपि रोचते तव । तेनोक्तं मम गृहं चम्पाविषये तत्र देहि ॥ ४५ ॥
ततो दूतवचनेन भणति दधिवाहनं निजकदेशे । मह्यं देहि ग्राममेकं गृहीत्वा ग्रामं वा नगरं वा ॥ ४६ ॥

मायंगो न वियाणइ अप्पं गामं च मग्गइ अणज्जो । इय भणिय अवन्नाए तेणं निद्धाडिओ दूओ ॥ ४७ ॥
तो करकंडू चंपं चउरंगबलेण रोहए गंतुं । नायं च साहुणीए मा होउ जणक्खओ एवं ॥ ४८ ॥
इय चिंतिऊण करकंडुगुडुरे आगयाए नरवइणो । कहिओ नियवुत्तंतो तस्स वि मायंगजणएण ॥ ४९ ।
सब्भावत्थो कहिओ मुद्दारयणाइ दंसियं तेण । तो भणइ तह वि अम्मो ! माणेणं न हु नियत्तेमि ॥ ५० ॥
निग्गंतूणं अज्जा पत्ता दहिवाहणस्स भवणम्मि । नरवइणा विन्नाया पुट्ठा सा तुह कहिं गब्भो ? ॥ ५१ ॥
तीयुत्तमेस गब्भो जो चंपं रोहिउं ठिओ तुज्झ । तो हिट्ठमणो राया गओ कुमारस्स पासम्मि ॥ ५२ ॥
दाऊण दो वि रज्जाइं तस्स दहिवाहणो विणिक्खंतो । करकंडो उण जाओ नरनाहो पयडमाहप्पो ॥ ५३ ॥
सो पयईए धण-गोउलप्पिओ गोउलम्मि संपत्तो । पेच्छइ य थोरगत्तं सेयं सो वच्छगं तत्थ ॥ ५४ ॥
वूत्ता गोवा दुद्धं पाएयव्वो इमोऽन्नगावीणं पडिवन्नं । तेहिं तयं सो वि हु उव्वित्तसुविसाणो ॥ ५५ ॥
संजाओ पीणुन्नयखंधो जुद्धम्मि निज्जिणियवसहो । कालेण पुणो रन्ना समागएणं तहिं एगो ॥ ५६ ॥
परिघट्टिज्जंतो पडुएहिं दिट्ठो वि सो तओ गोवे । पुच्छइ सो कत्थ गओ वसहो ? सो दंसिओ तेहिं ॥ ५७ ॥
रन्ना चिंतियमेयं सविसाएणं अहो ! असारत्तं । संसारस्स जमेसो एरिससत्तीए सहिओ वि ॥ ५८ ॥
निस्सेसआवयाणं संजाओ मंदिरं पुणो इण्हिं । संसारियवत्थूणं एसेव गई जओ भणियं ॥ ५९ ॥

मातङ्गो विजानात्यात्मानं ग्रामं च मार्गयत्यनार्यः । इति भणित्वावज्ञया तेन निष्कासितो दूतः ॥ ४७ ॥
ततः करकण्डूश्चम्पां चतुरङ्गबलेन रुणद्धि गत्वा । ज्ञातं च साधव्या मा भवतु जनक्षय एवम् ॥ ४८ ॥
इति चिन्तयित्वा करकण्डूर्वस्त्रगृहमागतया[1] नरपतेः । कथितो निजवृतान्तस्तस्यापि मातङ्गजनकेन ॥ ४९ ॥
सद्भावस्थः कथितो मुद्दारत्नादि दर्शितं तेन । तदा भणति तथाप्यवे ! मानेन न खलु निवर्तयामि ॥ ५० ॥
निर्गत्यार्या प्राप्ता दधिवाहनस्य भवने । नरपतिना विज्ञाता पृष्टा सा तव कुत्र गर्भः ? ॥ ५१ ॥
तयोक्तमेष गर्भो यश्चम्पां रोधित्वा स्थितस्तव । तदा हृष्टमना राजा गतः कुमारस्य पार्श्वे ॥ ५२ ॥
दत्वा द्वेऽपि राज्ये तस्मै दधिवाहनो विनिष्क्रान्तः । करकण्डूः पुन र्जातो नरनाथः प्रकटमाहात्म्यः ॥ ५३ ॥
स प्रकृत्या धन-गोकुलप्रियो गोकुले सम्प्राप्तः । पश्यति च स्थूलगात्रं श्वेतं स वत्सकं तत्र ॥ ५४ ॥
उक्ता गोपा दुग्धं पातव्योऽयमन्य गवानाम् प्रतिपन्नम् । तैस्तकत् सोऽपि खलूद्वयक्तसुविषाणः ॥ ५५ ॥
सञ्जातः पीनोन्नतस्कन्धो युद्धे निर्जितवृषभः । कालेन पुना राजा समागतेन तत्रैकः ॥ ५६ ॥
परिघर्ष्यमाणः पडुकै र्दृष्टोऽपि स ततो गोपान् । पृच्छति स कुत्र गतो वृषभः ? स दर्शितस्तैः ॥ ५७ ॥
राज्ञा चिन्तितमेतत् सविषादेनाहो ! असारत्वम् । संसारस्य यदेष ईदृशशक्त्या सहितोऽपि ॥ ५८ ॥
निःशेषापदां सञ्जातो मन्दिरं पुनरिदानीम् । सांसारिकवस्तूनामेषैव गति र्यतो भणितम् ॥ ५९ ॥

---

१. गुडुरः (दे.) वस्त्रगृहम् तम्बु (भाषायाम्)

सेयं सुजायं सुविभत्तसिंगं जो पासिया वसहं गोट्ठमज्झे ।
रिद्धिं अरिद्धिं समुपेहिया णं कलिंगराया वि समेक्ख धम्मं ॥ ६० ॥
गोट्ठंगणस्स मज्झे ढिक्कियसद्देण जस्स भज्जंति । दरिया वि दित्तवसहा सुतिक्खसिंगा समत्था वि ॥ ६१ ॥
पोराणयगयदप्पो गलंतनयणो चलंतवसहोट्ठो । सो चेव इमो वसहो पडुयपरिघट्टणं सहइ ॥ ६२ ॥
इय एवमाइबहुविहसंसारासारयं विचिंतितो । आसाइयसुहभावो जाओ पत्तेयबुद्धमुणी ॥ ६३ ॥
संभरियपुव्वजम्मो जाईसरणेण दिन्नसुरलिंगो । संजाओ पव्वइओ विहरइ विउलं महीवीढं ॥ ६४ ॥

॥ करकण्ड्वाख्यानकं समाप्तम् ॥ १०४ ॥

इदानीं नम्याख्यानकमाख्यायते । तद्यथा-

अत्थि अवंतीजणवयतिलयं नयरं सुंदसणं परमं । परमम्मोघट्टणदोसवज्जिओ वसइ जत्थ जणो ॥ १ ॥
सुह-संपयाण कत्ता विहियअवायाण जणियअहिगरणो । सुहकम्मो करणरुई असरिससंजणियसंबंधो ॥ २ ॥
सुविभत्तपयपहाणो निप्फाइयसंधिविग्गहो तत्थ । वसइ नरिंदो नामेण मणिरहो सव्वधम्मो व्व ॥ ३ ॥
लहुभाया जुवराया तस्सऽत्थि निहाणमसमसत्तस्स । नामेणं जुगबाहू जुगबाहू वियडवच्छयलो ॥ ४ ॥
सुहसीलसलिलसायरलहरी तस्सऽत्थि सुंदरा भज्जा । नामेण मयणरेहा मयणहंकाररेह व्व ॥ ५ ॥
अह अन्नया य राया अवलोयणसंठिओ तयं दट्ठुं । तम्मोहमोहियमई एवं हियए विचिंतेइ ॥ ६ ॥

श्वेतं सुजातं सुविभक्तशृङ्गं यो दृष्ट्वा वृषभं गोष्ठमध्ये ।
ऋद्धिमर्द्धिं समुत्प्रेक्ष्य णं कलिङ्गराजापि समीक्ष्य धर्मम् ॥ ६० ॥
गोष्ठाङ्गणस्य मध्ये ढिङ्कितशब्देन यस्य भज्यन्ते । दर्पिता अपि दीप्तवृषभाः सुतीक्ष्णशृङ्गाः समर्था अपि ॥ ६१ ॥
पौराणकगतदर्पो गलन्नयनश्चलद्वृषभौष्ठः । स चैवायं वृषभः पडुकपरिघट्टनं सहते ॥ ६२ ॥
इत्येवमादिबहुविधसंसारासारतां विचिन्तयन् । आसादितशुभभावो जातः प्रत्येकबुद्धमुनिः ॥ ६३ ॥
स्मृतपूर्वजन्मा जातिस्मरणेन दत्तसुरलिङ्गः । सञ्जातः प्रव्रजितो विहरति विपुलं महीपीठम् ॥ ६४ ॥

॥ करकण्ड्वख्यानकं समाप्तम् ॥ १०४ ॥

नम्याख्यानकम् ॥ १०५ ॥

अस्त्यवन्तीजनपदतिलकं नगरं सुदर्शनं परमम् । परमर्मोद्घाटनदोषवर्जितो वसति यत्र जनः ॥ १ ॥
सुख-सम्पदां कर्ता विहितापायानां जनिताधिकरणः । शुभकर्माः करणरुचिरसदृशसञ्जनितसम्बन्धः ॥ २ ॥
सुविभक्तपदप्रधानो निष्पादितसंधिविग्रहस्तत्र । वसति नरेन्द्रो नाम्ना मणिरथः सर्वधर्म इव ॥ ३ ॥
लघुभ्राता युवराट् तस्यास्ति निधानमसमसत्त्वस्य । नाम्ना युगबाहू र्युगबाहू र्विकटवक्षःस्थलः ॥ ४ ॥
शुभशीलसलिलसागरलहरी तस्यास्ति सुन्दरा भार्या । नाम्ना मदनरेखा मदनाहङ्काररेखेव ॥ ५ ॥
अथान्यदा च राजावलोकनसंस्थितस्तकां दृष्ट्वा । तन्मोहमोहितमतिरेवं हृदये विचिन्तयति ॥ ६ ॥

कह एसा भणियव्वा मए ? जहिच्छं कहं व रमियव्वा ? अहव ससुरा-ऽसुरम्मि वि जयम्मि दाणं वसीकरणं ॥७॥
तंबोलाईहिं तओ आढत्तो तं पलोभिउं राया । गेण्हइ अदुट्ठभावा जेट्ठपसाओ त्ति काउं सा ॥ ८ ॥
पट्ठविया अन्नदिणे दूई रन्ना पयंपए गंतुं । तुहरूय-गुणक्खित्तो पभणइ भद्दे ! इमं राया ॥ ९ ॥
पडिवज्जसु मं भत्तं भत्तारं तुह गुणेहिं अणुरत्तं । सहलीकुरु मणुयतं अणुमन्नसु रज्जसामित्तं ॥ १० ॥
तो भणइ मयणरेहा रेहा तुह राय ! रायवंसस्स ! सीलगुणेणं ता किं नियदुच्चरिएण तं फुससि ? ॥ ११ ॥
अन्नं च-
जं चिंतिउं जुज्जइ सप्पुरिसाणं मणम्मि वि जयम्मि । विउसजणनिंदणिज्जं नरवइणा जंपियं कहणु ? ॥ १२ ॥
इयरम्मि वि परदारे न रमइ मणयं पि उत्तमाण मणं । किं पुण नियबहुयाए सेवाबुद्धी नरयहेऊ ? ॥ १३ ॥
अन्नं च-
जुवरायगेहिणीए सामित्तं मज्झ विज्जए रज्जे । नट्ठम्मि सीलरयणे अहवा मह होउ रज्जेण ॥ १४ ॥
अन्नं च बहुभवेसुं जाया तित्ती न तुज्झ रमणीसु । इण्हिं मं रममाणो निन्नेहं कह णु तिप्पिहिसि ? ॥ १५ ॥
अवरं च-
एवं तं जंपंतो न लज्जिओ नियसहोयरस्सावि । एवमकज्जं दट्ठुं तस्स मणं केरिसं होही ? ॥ १६ ॥
इच्चाइ मयणरेहापयंपियं परिकहेइ सा दूई । नरवइणो न नियत्तइ तह वि इमो असुहकामस्स ॥ १७ ॥

कथमेषा भणितव्या मया ? यथेच्छं कथं वा रन्तव्या ?। अथवा ससुरा-ऽसुरेऽपि जगति दानं वशीकरणम् ॥ ७ ॥
तम्बोलादिभिस्तत आरब्धस्तां प्रलोभयितुं राजा । गृह्णात्यदुष्टभावाज्ज्येष्ठप्रसाद इति कृत्वा सा ॥ ८ ॥
प्रस्थापितान्यदिने दूती राज्ञा प्रजल्पति गत्वा । तवरूप-गुणाक्षिप्तः प्रभणति भद्रे ! इदं राजा ॥ ९ ॥
प्रतिपद्यस्व मां भक्तं भर्तारं तव गुणैरनुरक्तम् । सफलीकुरू मनुष्यत्वमनुमन्यस्व राज्यस्वामित्वम् ॥ १० ॥
तदा भणति मदनरेखा रेखा तव राजन् ! राजवंशस्य । शीलगुणेन ततः किं निजदुश्चरित्रेण तां मार्क्षि ? ॥ ११ ॥
अन्यच्च -
यच्चिन्तयितुं न युज्यते सत्पुरुषाणां मनस्यपि जगति । विद्वज्जननिन्दनीयं नरपतिना जल्पितं कथं नु ? ॥ १२ ॥
इतरस्मिन्नपि परदारे न रमते मनागप्युत्तमानां मनः । किं पुन र्निजवधुकायां सेवाबुद्धि र्नरकहेतुः ? ॥ १३ ॥
अन्यच्च -
युवराड्गृहिण्या स्वामित्वं मम विद्यते राज्ये । नष्टे शीलरत्नेऽथवा मम भवतु राज्येन ॥ १४ ॥
अन्यच्च बहुभवेषु जाता तृप्तिर्न तव रमणिषु । इदानीं मां रममाणो निस्नेहं कथं नु तर्पिष्यसि ? ॥ १५ ॥
अपरंच -
एवं त्वं जल्पन्न लज्जितोः निजसहोदरस्यापि । एवमकार्यं दृष्ट्वा तस्य मनः कीदृशं भविष्यति ? ॥ १६ ॥
इत्यादि मदनरेखाप्रजल्पितं परिकथयति सा दूतिः । नरपते र्न निवर्तयति तथाप्ययमशुभकामस्य ॥ १७ ॥

परिहरियनियकुलक्कममज्जाओ तो विचिंतए राया । मह बंधुम्मि जियंते एसा हु न तीरए घेतुं ॥ १८ ॥
ता तं विणासिऊणं हढेण गिण्हामि इय विचिंतेउं । नियबंधुणो निरिक्खइ छिड्डाइं मारणकएण ॥ १९ ॥
एत्थंतरम्मि कोइलकुलरवसंजणियजणमणुम्माहो । अहिणववसंतमासो संपत्तो परमरमणिज्जो ॥ २० ॥
दाहिणपवणंदोलिरतरुमंदरिविहुयरेणुसंघाओ । डिंभो व्व नववसंतो धूलीकीलाए कीलंतो ॥ २१ ॥
आवाणयगोट्ठिपरिट्ठिएहिं तरुणेहि जत्थ हरिसेण । कुसुमाऊहनरवइणो गिज्जइ रज्जाभिसेओ व्व ॥ २२ ॥
वणराइकुसुमपरिमलतित्तसमुड्डीणभमररिंछोली । जत्थ पियविरहियाणं कूरकडक्खो व्व कालस्स ॥ २३ ॥
एवंविहे वसंते गिज्जते विविहचच्चरिसमूहे । तरुणजणुम्मायकरे परहुयरवबहिरियदियंते ॥ २४ ॥
केणावि कारणेणं न गओ राया तहा वि उज्जाणे । जुगबाहू पुण पत्तो कीलत्थं पिययमासहिओ ॥ २५ ॥
सुइरं कीलंतस्स य तम्मि य रयणी समागया तत्तो । रइसुहमणुहविउमणो कयलीहरए सुहपसुत्तो ॥ २६ ॥
पत्थावं नाऊणं असहायत्तं च निच्छिउं राया । खग्गसहाओ सहसा समागओ तत्थ दुट्ठमई ॥ २७ ॥
तो चइऊणं लज्जं परिचइऊणं च नियमज्जायं । अवगन्निऊण य जसं पहिहरिऊणं च परलोयं ॥ २८ ॥
अवहत्थिय जणवायं अंगीकाऊण नरयदुक्खाइं । निसियासिपहारेणं गीवाए भायरं हणइ ॥ २९ ॥
अह कह वि मयणरेहाए परियणो मिलइ जाव दुक्खत्तो । वट्टुत्तरं विहेउं ताव गओ नरवई गेहे ॥ ३० ॥
तत्तो य मयणरेहा विहुरसरीरं वियाणिउं दइयं । होऊण कन्नमूलेसु महुरवयणेहि तं भणइ ॥ ३१ ॥

परिहृतनिजकुलक्रममर्यादस्ततो विचिन्तयति राजा । मम बन्धौ जीवत्येषा खलु न शक्यते ग्रहीतुम् ॥ १८ ॥
ततस्तं विनाश्य बलादृहणामीति विचिन्तयित्वा । निजबन्धो र्निरीक्षते छिद्राणि मारणकृतेन ॥ १९ ॥
अत्रान्तरे कोकिलकुलरवसञ्जनितजनमनोन्माथः । अभिनववसन्तमासः सम्प्राप्तः परमरमणीयः ॥ २० ॥
दक्षिणपवनान्दोलिततरुमञ्जरिविधूतरेणुसङ्घातः । डिम्भ इव नववसन्तो धूलीक्रीडया क्रीडन् ॥ २१ ॥
आपानकगोष्ठिपरिस्थितैस्तरूणैर्यत्र हर्षेण । कुसुमायूधनरपते र्गीयते राज्याभिषेक इव ॥ २२ ॥
वनराजिकुसुमपरिमलतृप्तसमुड्डीनभ्रमरपङ्क्तिः । यत्र प्रियविरहितानां क्रूरकटाक्ष इव कालस्य ॥ २३ ॥
एवंविधे वसन्ते गीयमाने विविधचर्चरिसमूहे । तरुणजनोन्मादकरे परभृतरवबधिरितदिगन्ते ॥ २४ ॥
केनापि कारणेन न गतो राजा तथाप्युद्याने । युगबाहुः पुनः प्राप्तः क्रीडनार्थं प्रियतमासहितः ॥ २५ ॥
सुचिरक्रीडतश्च तस्मिंश्च रजनी समागता ततः । रतिसुखमनुभवितुमनाः कदलीगृहे सुखप्रसुप्तः ॥ २६ ॥
प्रस्तावं ज्ञात्वाऽसहायत्त्वं च निश्चित्य राजा । खड्गसहायः सहसा समागतस्तत्र दुष्टमतिः ॥ २७ ॥
ततस्त्यक्त्वा लज्जां परित्यज्य च निजकमर्यादाम् । अवगण्य च यशः परिहृत्य च परलोकम् ॥ २८ ॥
अपहस्त्य जनवादमङ्गीकृत्य नरकदुःखानि । निशीतासिप्रहारेण ग्रीवायां भ्रातरं हन्ति ॥ २९ ॥
अथ कथमपि मदनरेखायाः परिजनो मिलति यावद्दुःखार्तः । वण्ठोत्तरं विधाय तावद्गतो नरपति र्गेहे ॥ ३० ॥
ततश्च मदनरेखा विधुरशरीरं विज्ञाय दयितम् । भूत्वा कर्णमूलेषु मधुरवचनैस्तं भणति ॥ ३१ ॥

भो भो महायस ! तुमं मणयं पि मणम्मि कुणसु मा खेयं । नियकम्मपरिणइवसा संजायं तुज्झ दुक्खमिमं ॥३२॥
जइ कुणसि तुममियाणिं कंठट्ठियजीविए गुरुपओसं । हारिहिसि तुमं परलोयमेव न हु किंचि वि परस्स ॥३३॥
ता धीर ! सव्वसत्तेसु कुणसु मेतिं ममत्तमवि छिंद । अंतो धरसु समाहिं अणुसर चउसरणमह इण्हिं ॥ ३४ ॥
सिद्धाणं पच्चक्खं नियदुच्चरियं च गरहसु सुधीर ! खामसु सव्वे सत्ते खमंतु ते तुज्झ सव्वे वि ॥ ३५ ॥
कम्मविसपरममंतो पणयामर-मणुयजणियजम्मंतो । देवो सिवमरहंतो जाजीवं तुज्झ अरहंतो ॥ ३६ ॥
परिचत्तघरावासा विसुद्धचारित्तिणो महासत्ता । सम्मत्त-नाणसहिया साहू गुरुणो पवज्ज तुमं ॥ ३७ ॥
पडिवज्जसु वेरमणं पाणिवहाईण तिविहतिविहेणं । जाजीवं अट्ठारसपावट्ठाणाण पडिकमसु ॥ ३८ ॥
परिभावसु तह सम्मं अणिच्चयं सव्वभाववसिएसु । अणुसरसु सयलसिद्धंतसारपरमेट्ठिनवकारं ॥ ३९ ॥
जओ -
पंचनमोक्कारसमा अंते वच्चंति जस्स दस पाणा । सो जइ न जाइ मोक्खं अवस्स वेमाणिओ होइ ॥ ४० ॥
अम्मा-पियरो मित्तं पुत्त-कलताइसयणवग्गो य । विहडइ सव्वं पि इमं होइ सहाओ परं धम्मो ॥ ४१ ॥
अणुहूयनरयदुक्खस्स तुज्झ किर केत्तियं इमं दुक्खं ? । तो अहियाससु सम्मं धरिउं मणपरिणइं परमं ॥ ४२ ॥
एसा पुणो महायस ! दुलहा मणुयाइया तु सामग्गी । ता गिण्हसु तीए फलं समाहिमवलंबिउं सोम ! ॥ ४३ ॥
इय तीए वयणघणरसविज्झावियकोवहुयवहो सम्मं । सिरविरइयकरकमलो पडिवज्जइ तं तहा सव्वं ॥ ४४ ॥

भो भो महायशः ! त्वं मनागपि मनसि कुरु मा खेदम् । निजकर्मपरिणतिवशात्सञ्जातं तव दुःखमिदम् ॥ ३२ ॥
यदि करोषि त्वमिदानीं कण्ठस्थितजीविते गुरुप्रद्वेषम् । हारिष्यसि त्वं परलोकमेवं न खलु किंचिदपि परस्य ॥३३॥
ततो धीर ! सर्वसत्वेषु कुरु मैत्रीं ममत्वमपि छिन्धि । अन्तो धर समाधिमनुसर चतुःशरणमथेदानीम् ॥ ३४ ॥
सिद्धानां प्रत्यक्षं निजदुश्चरित्रं गर्हस्व सुधीर ! । क्षमस्व सर्वान् सत्वान् क्षामयन्तु ते तव सर्वेऽपि ॥ ३५ ॥
कर्मविषपरममन्त्रः प्रणतामर-मनुजजनितजन्मान्तः । देवः शिवमर्हन् यावज्जीवं तवार्हन् ॥ ३६ ॥
परित्यक्तगृहवासान् विशुद्धचारित्रिणो महासत्त्वान् । सम्यकत्व-ज्ञान सहितान् साधून्गुरून् प्रपद्यस्व त्वम् ॥ ३७ ॥
प्रतिपद्यस्व विरमणं प्राणिवधादीनां त्रिविधत्रिविधेन । यावज्जीवमष्टादशपापस्थानानां प्रतिक्रामय ॥ ३८ ॥
परिभावय तथा सम्यगनित्यं सर्वभावविषयेषु । अनुसर सकलसिद्धान्तसारपरमेष्ठिनमस्कारम् ॥ ३९ ॥
यतः पञ्चनमस्कारसमा अन्ते व्रजन्ति यस्य दश प्राणाः । स यदि न याति मोक्षमवश्यं वैमानिको भवति ॥ ४० ॥
अम्बा-पितरौ मित्रं पुत्रकलत्रादिस्वजनवर्गश्च । विघटयति सर्वमपीमं भवति साहाय्यः परं धर्मः ॥ ४१ ॥
अनुभूतनरकदुःखस्य तव किल कियदिदं दुःखम् ? । ततोऽध्यासस्व सम्यग्धृत्वा मनः परिणतिं परमाम् ॥ ४२ ॥
एषा पुन र्महायशः ! दुर्लभा मनुष्यादिका तु सामग्री । ततो गृहाण तस्याः फलं समाधिमवलम्ब्य सौम्य ! ॥ ४३ ॥
इति तस्या वचनघनरसविध्यापितकोपहुतवहःसम्यक् । शिरोविरचितकरकमलः प्रतिपद्यते तत्तथा सर्वम् ॥ ४४ ॥

सह वेयणाए वड्ढंतपरमसंवेगसंजुओ मरिउं । संजाय भावसमणो उववन्नो बंभलोगम्मि ॥ ४५ ॥
एत्तो य मयणरेहा कंदंते परियणम्मि सयलम्मि । चिंतइ किमहं गब्भे न विलीणा मंदपुन्न ? त्ति ॥ ४६ ॥
सुद्धसहावस्स जओ महाणुभावस्स सुद्धसीलस्स । अहमस्स मरणहेऊ संजाया निरवराहस्स ॥ ४७ ॥
अवरं च जेण निहओ नियभाया सो अवस्स सुहसीलं । मह गंजिही बला वि हु ता तं रक्खेमि जत्तेण ॥ ४८ ॥
चंदजसे नियपुत्ते कंदंते परियणम्मि सोयंते । एगागिणी निसाए गुरूहारा[1] निग्गया तत्तो ॥ ४९ ॥
पुव्वामिमुहं पत्ता कमेण वियडं महाडविं एक्कं । अह अइकंता रयणी मज्झन्हे बीयदिवसम्मि ॥ ५० ॥
सा कुणइ पाणवित्तिं फलेहिं एक्कम्मि सरवरे नीरं । पाऊण कुणइ तत्तो पच्चक्खाणं च सागरं ॥ ५१ ॥
हिययब्भंतरविलसंतपंचपरमेट्ठिमंतसव्वस्सा । कयलीहरए तरुपत्तविहियसयणम्मि पासुत्ता ॥ ५२ ॥
एत्थंतरम्मि रयणीसमुब्भवा भीमसावयसमूहा । नाणाविहभयभेरवसद्दसमूहेहिं भेसंति ॥ ५३ ॥
तथा हि-
फेक्कारंति सिवाओ घुरुघुरिया भीमवग्घसंघाया । घुग्घूकरेंति घूया गुंजारवयंति केसरिणो ॥ ५४ ॥
एत्थंतरम्मि जाया गुरुवियणा चलियगब्भसंभूया । तो पयडियलयहरयं कंतीए सुयं पसूया सा ॥ ५५ ॥
तत्थेव तयं मोत्तुं पच्चासन्ने सरम्मि जा पत्ता । वत्थाइधोयणत्थं उक्खित्त ताव जलकरिणा ॥ ५६ ॥
उल्लालिऊण सुंडादंडेणं धत्तिया गयणमग्गे । विज्जाहरेण विहिणो निओगओ तयणु सा दिट्ठा ॥ ५७ ॥

सह वेदनया वर्धमानपरमसंवेगसंयुक्तो मृत्वा । सञ्जातभावश्रमण उत्पन्नो ब्रह्मलोके ॥ ४५ ॥
इतश्च मदनरेखा क्रन्दति परिजने सकले । चिन्तयति किमहं गर्भे न विलीना मन्दपुण्येति ? ॥ ४६ ॥
शुद्धस्वभावस्य यतो महानुभावस्य शुद्धशीलस्य । अहमस्य मरणहेतुः सञ्जाता निरापराधस्य ॥ ४७ ॥
अपरं च येन निहतो निजभ्राता सोऽवश्यं शुभशीलम् । मम भ्रंक्ष्यति बलादपि हु ततस्तद्रक्षामि यत्नेन ॥ ४८ ॥
चन्द्रयशसि निजपुत्रे क्रन्दति परिजने शोचति । एकाकिनी निशायां गुरुभारा निर्गता ततः ॥ ४९ ॥
पूर्वाभिमुखं प्राप्ता क्रमेण विकटां महाटविमेकाम् ।'अथातिक्रान्ता रजनी मध्याह्नि द्वितीयदिवसे ॥ ५० ॥
सा करोति प्राणवृत्तिं फलैरेकस्मिन् सरोवरे नीरम् । पीत्वा करोति ततः प्रत्याख्यानं च साकारम् ॥ ५१ ॥
हृदयाभ्यन्तरविलसत्पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रसर्वस्वा । कदलीगृहे तरुपत्रविहितशयने प्रसुप्ता ॥ ५२ ॥
अत्रान्तरे रजनी समुद्भवा भीमश्वापदसमूहाः । नानाविधभयभैरवशब्दसमूहै र्भेषयन्ति ॥ ५३ ॥
तथाहि -
पूत्कुर्वन्ति शिवाः घुरघुरिता भीमव्याघ्रसङ्घाताः । घूघूकुर्वन्ति घूका गर्जयन्ति केसरिणः ॥ ५४ ॥
अत्रान्तरे जाता गुरुवेदना चलितगर्भसम्भूता । ततः प्रकटितलतागृहं कान्त्या सुतं प्रसूता सा ॥ ५५ ॥
तत्रैव तकन्मुक्त्वा प्रत्यासन्ने सरसि यावत्प्राप्ता । वस्त्रादिधावनार्थमुत्क्षिप्ता तावज्जलकरिणा ॥ ५६ ॥
उच्छाल्य सुण्डादण्डेन क्षिप्ता गगनमार्गे । विद्याधरेण विधे र्नियोगात्तदनु सा दृष्टा ॥ ५७ ॥

---

१. गुरुभारा सगर्भा ।

नंदीसरम्मि दीवे गच्छंतेणं तओ वलेऊण । आरोविउं विमाणे वेयड्ढे पव्वए नीया ॥ ५८ ॥
भणिओ य तीए एसो अज्ज महाभाग ! तम्मि वणगहणे । संपयमेव पसूया पुत्तं अहयं लयाहरए ॥ ५९ ॥
ता सो सावयपासाओ अहव सयमेव दूसहछुहाए । मरिही ता तमिहाऽऽणसु तत्थ व मं नेसु रन्नम्मि ॥ ६० ॥
तेणुत्तं सुयणु ! तुमं पडिवज्जसि पाणसामियं जइ मं । ता हं आणाकारी आजम्मं होमि किं बहुणा ? ॥ ६१ ॥
अन्नं च सुयणु ! गंधारजणवए जणवयाण पवरम्मि । रयणावहम्मि नयरे मणिचूडो नाम नरनाहो ॥ ६२ ॥
कमलावई य भज्जा तेसिं पुत्तो मणिप्पहो अहयं । रज्जधुराधरणखमो पाणपिओ जणणि-जणयाणं ॥ ६३ ॥
मह जणओ विज्जाहरसेढीणं पालिऊण सामित्तं । निव्विन्नकामभोगो पव्वइओ गुरुसमीवम्मि ॥ ६४ ॥
ठविऊणं मं रज्जे निस्संगो सो अईयदिवसम्मि । आसि इहं चेव गओ संपइ नंदीसरे दीवे ॥ ६५ ॥
तव्वंदणत्थमहयं पि पत्थिओ ता मए तुमं दिट्ठा । ता होसु सामिणी सुयणु ! सव्वविज्जाहरवहूणं ॥ ६६ ॥
अवरं च तुज्झ तणओ तुरंगमावहरिएण संपत्तो । पउमरहेणं मिहिलाहिवेण चिट्ठइ सुहेण तहिं ॥ ६७ ॥
एयं पन्नतीए मह कहियं चयसु ता तुमं खेयं । उव्वभुंजसु रज्जसिरिं मा विहलं नेसु तारुन्नं ॥ ६८ ॥
चिंतियमिमीए मह पावकम्मवसयाए दुक्खरिंछोली । उवरुवरि पडइ ता पडउ वज्जमेयस्स रूवस्स ॥ ६९ ॥
जेणाहं रूवेणं पइमरणं पढममेव संपत्ता । पुणरवि य सुयविओयं संपत्ता एयदोसेणं ॥ ७० ॥
एसो वि हु मं पत्थइ रूवेणं चेव मोहिओ संतो । ता मह एस गुणोवि हु आवइ-दुहकारणं जाओ ॥ ७१ ॥

नन्दीश्वरे द्वीपे गच्छता ततो वलित्वा । आरोप्य विमाने वैताढ्ये पर्वते नीता ॥ ५८ ॥
भणितश्च तयैषोऽद्य महाभाग ! तस्मिन् वनग्रहणे । साम्प्रतमेव प्रसूता पुत्रमहं लतागृहे ॥ ५९ ॥
ततः स श्वापदपाशादथवा स्वयमेव दुःषहक्षुधया । मरिष्यति ततस्त्वमिहानय तत्र वा मां नयारण्ये ॥ ६० ॥
तेनोक्तं सुतनु ! त्वं प्रतिपद्यसे प्राणस्वामिकं यदि माम् । तदाहमाज्ञाकार्याजन्मं भवामि किं बहुना ? ॥ ६१ ॥
अन्यच्च सुतनु ! गन्धारजनपदे जनपदानां प्रवरे । रत्नावहे नगरे मणिचूडो नाम नरनाथः ॥ ६२ ॥
कमलावती च भार्या तयोः पुत्रो मणिप्रभोऽहम् । राज्यधुराधरणक्षमः प्राणप्रियो जननी-जनकयोः ॥ ६३ ॥
मम जनको विद्याधरश्रेणीनां पालयित्वा स्वामित्वम् । निर्विण्णकामभोगः प्रव्रजितो गुरुसमीपे ॥ ६४ ॥
स्थापयित्वा मां राज्ये निस्संग सोऽतीतदिवसे । आसीदिह चैव गतः सम्प्रति नन्दीश्वरे द्वीपे ॥ ६५ ॥
तद्वन्दनार्थमहमपि प्रस्थितस्तावन्मया त्वं दृष्टा । ततो भव स्वामिनी सुतनु ! सर्वविद्याधरवधूनाम् ॥ ६६ ॥
अपरं च तव तनयस्तुरंगमापहृतेन सम्प्राप्तः । पद्मरथेन मिथिलाधिपेन तिष्ठति सुखेन तत्र ॥ ६७ ॥
एतत् प्रज्ञप्त्या मम कथितं त्यज ततस्त्वं खेदम् । उपभुङ्ग्धि राज्यश्रियं मा विफलं नय तारुण्यम् ॥ ६८ ॥
चिन्तितमनया मम पापकर्मवशया दुखपङ्क्तिः । उपरोपरि पतति ता पततु वज्रमेतस्य रुपस्य ॥ ६९ ॥
येनाहं रुपेण पतिमरणं प्रथममेव सम्प्राप्ता । पुनरपि च सुतवियोगं सम्प्राप्ता तद्दोषेण ॥ ७० ॥
एषोऽपि हु मां प्रार्थयति रुपेण चैवं मोहितः सन् । ततो ममैष गुणोऽपि खल्वापत्ति-दुःखकारणं जातः ॥ ७१ ॥

एयस्स मज्झ बहुदुक्खलक्खसंघडणवावडमणस्स । विहिणोऽवसरो कज्जंतरस्स करणे धुवं नत्थि ॥ ७२ ॥
ता अस्थावत्तीए नज्जइ अन्नो वि अत्थि जयकत्ता । अन्नह जयवइचित्तं कुओऽवरेणावि भणियमिमं ॥ ७३ ॥
अस्त्येव कश्चिदपरो जगतां विधाता, तुभ्यं शपे तदलमत्र विकल्पितेन ।
मद्दुःखजालघटनाकुलचित्तवृत्तेः, कण्डूयनेऽपि शिरसोऽवसरः कुतोऽस्य ? ॥ ७४ ॥
परमिमिणा किं परिचिंतिएण ? गच्छामि ताव मुणिपासे । उम्मग्गं पि पयट्टं बोहिस्सइ सो नियं तणयं ॥ ७५ ॥
तो तीए सो भणिओ सव्वं तुह जंपियं करिस्सामि । नेह ममं नंदीसरदीवं वंदावसु जिणिंदे ॥ ७६ ॥
तो सो हरिसियहियओ विज्जाए विउव्विउं वरविमाणं । आयासेणुप्पइओ संपत्तो तम्मि दीवम्मि ॥ ७७ ॥
वंदिय जिणिंदचंदे मणिचूडं मुणिवरं पणमिऊणं । उवविट्ठा तेण समं निसुणइ जिणभासियं धम्मं ॥ ७८ ॥
मुणिणा वि मयणरेहाए वइयरं जाणिऊण नाणेण । भणिओ सो नियतणओ भद्द ! तए किं समारद्धं ? ॥ ७९ ॥
भीमभवभमणहेऊ परदारासेवणं नरयपयवी । सुहसंपयाण विग्घो भुयग्गाला सुगइदारस्स ॥ ८० ॥
नियकुलनिम्मलपासायभित्तिमसिकुच्चओ चरणसत्तू । आसंसारं भुवणम्मि अयसपडहो महाभाग ! ॥ ८१ ॥
अन्नं च-
मयणाइत्तो पुरिसो न गणइ वंसट्ठिइं हणइ किर्त्तिं । गंजइ अप्पाणं दलइ पोरिसं मलइ माहप्पं ॥ ८२ ॥
ता विरमसु एयाओ दुरज्झवसियाओ तं महाभाग ! । जइ वंछसि जसकिर्त्तिं महसि सुहं वहसि पुरिसवयं ॥ ८३ ॥
इय अणुसट्ठो मुणिणा विकक्खवयणो अहोमुहो जाओ । लज्जाए नियवयणं न तरइ दंसेउमवि मुणिणो ॥ ८४ ॥

एतस्य मम बहुदुःखलक्षसंघटनव्यापृतमनसः । विधेरवसरः कार्यान्तरस्य करणे ध्रुवं नास्ति ॥ ७२ ॥
ततोऽर्थापत्या ज्ञायतेऽन्योऽप्यस्ति जगत्कर्ता । अन्यथा जगद्वैचित्र्यं कुतोऽपरेणापि भणितमिदम् ॥ ७३ ॥
परमनेन किं परिचिन्ततेन ? गच्छामि तावन्मुनिपार्श्वे । उन्मार्गमपि प्रवृत्तं भोत्स्यति स निजं तनयम् ॥ ७५ ॥
तदा तया स भणितः सर्वं तव जल्पितं करिष्यामि । नय मां नन्दीश्वरद्वीपं वन्दय जिनेन्द्रान् ॥ ७६ ॥
तदा स हर्षितहृदयो विद्यया विकुर्व्य वरविमानम् । आकाशेनोत्पतितः संप्राप्तस्तस्मिन् द्वीपे ॥ ७७ ॥
वन्दित्वा जिनेन्द्रचन्द्रान्मणिचूडं मुनिवरं प्रणम्य । उपविष्टा तेन समं निश्रृणोति जिनभाषितं धर्मम् ॥ ७८ ॥
मुनिनापि मदनरेखाया व्यतीकरं ज्ञात्वा ज्ञानेन । भणितः स निजतनयो भद्र ! त्वया किं समारब्धम् ? ॥ ७९ ॥
भीमभवभ्रमणहेतुः परदारसेवनं नरकपदवी । सुखसम्पदां विघ्नो भुजार्गला सुगतिद्वारस्य ॥ ८० ॥
निजकुलनिर्मलप्रासादभित्तिमषीकुर्चकश्चरणशत्रुः । आसंसारं भुवनेऽयशःपटहो महाभाग ! ॥ ८१ ॥
अन्यच्च -
मदनायत्तः पुरुषो न गणति वंशस्थितिं हन्ति कीर्तिम् । भ्रंश्यत्यात्मानं दलयति पौरुषं मलते माहात्म्यम् ॥ ८२ ॥
ता विरमैतस्माद्दूराध्यवसितात्त्वं महाभाग ! । यदि वाञ्छसि यशःकीर्तिमिच्छसि सुखं वहसि पुरुषव्रतम् ॥ ८३ ॥
इत्यनुशास्तो मुनिना विलक्षवदनोऽधोमुखो जातः । लज्जया निजवदनं न शक्नोति दर्शयितुमपि मुनेः ॥ ८४ ॥

तो उट्ठिउं सविणयं पणमिय पाएसु मयणरेहाए । खमसु महासइ ! सव्वं अवरद्धं जं मए तुज्झ ॥ ८५ ॥
मणिचूडमुणिवरेणं पुणरवि जिणभणियसमयवयणेहिं । अणुसासियाणि कोमलगिराए जायाणि सुत्थाणि ॥८६॥
जावेवं चारणमुणिपुरओ अच्छंति ताव पेच्छंति । गयणयलाओ विम्हयविप्फारियनयणपत्ताणि ॥ ८७ ॥
सज्जो अमंदसुंदेरधाममेगं विमाणमवइन्नं । नंदीसरजिणमंदिर दंसणकयकोउगेणं व ॥ ८८ ॥
पणवन्नरयणघडियं सिरविलसिरसेयधयवडसमूहं । उवरिभमंतबलायं पणवन्नं जलयखंडं व ॥ ८९ ॥
तो मउडभासियसिरो वियसियमंदारदामसुइसिरओ । कुंडलमंडियगंडो हारविरायंतवच्छयलो ॥ ९० ॥
केऊर-कडय-वररयणमुद्दियाभरणभूसियसरीरो । नियसियदुगुल्लवसणो विम्हयभवणं नियंताण ॥ ९१ ॥
निप्पंकभित्तिसंकंतपयडपडिबिंबबहुविहसरीरो । अणुराएणमणेगो व्व मयणरेहाए दीसंतो ॥ ९२ ॥
अवयरिऊण विमाणाउ सुरवरो सरसपंकयदलच्छो । पेच्छंताणं सव्वेसिमेस मणिचूडमुणिपुरओ ॥ ९३ ॥
आणंदवियसियमुहो पढमं पडिऊण मयणरेहाए । पयपंकयम्मि पच्छा पणओ चारणमुणिवरस्स ॥ ९४ ॥
लद्धासीसो सोयामणि व्व दिप्पंतभासुरसरीरो । उवविट्ठो तप्पुरओ पुट्ठो विज्जाहरेण तओ ॥ १५ ॥
नीईओ सरियाउ व समुच्चगोत्ताणमुन्नयगुणाण । अमराण महिहराणं व धुवं महाभाग ! पभवंति ॥ ९६ ॥
मोत्तूणं मणिचूडं चरित्तचूडमणिं मुणिवरिंदं । ता किं तुच्छगुणाए एयाए पएसु पणिवइओ ? ॥ ९७ ॥
तो जंपियममरेणं सुणसु महाभाग ! कारणमिहत्थे । मोत्तूणं मुणिनाहं जं पणओ पुव्वमेईए ॥ ९८ ॥

तत उत्थाय सविनयं प्रणम्य पादयो र्मदनरेखायाः । क्षमस्व महासति ! सर्वमपराद्धं यन्मया तव ॥ ८५ ॥
मणिचूडमुनिवरेण पुनरपि जिनभणितसमयवचनैः । अनुशासितौ कोमलगिरा जातौ सुस्थौ ॥ ८६ ॥
यावदेवं चारणमुनिपुरत आसेते तावत्पश्यतिः । गगनतलाद्विस्मयविस्फारितनयनपत्रौ ॥ ८७ ॥
सद्यामन्दसौन्दर्यधामैकं विमानमवतीर्णम् । नन्दीश्वरजिनमन्दिरदर्शनकृतकौतूकेनेव ॥ ८८ ॥
पञ्चवर्णरत्नघटितं शिरोविलसच्छ्वेतध्वजपटसमूहम् । उपरिभ्रमद्बलाहकं पञ्चवर्णजलदखण्डमिव ॥ ८९ ॥
ततो मुकुटभासितशिरा विकसितमन्दारदामशुचिशिरकः । कुण्डलमण्डितगण्डो हारविराजमानवक्षःस्थलः ॥ ९० ॥
केयूर-कटक-वररत्नमुद्रिकाभरणभूषितशरीरः । निवसितदुकुलवसनो विस्मयभवनं पश्यताम् ॥ ९१ ॥
निष्पङ्कभित्तिसङ्क्रान्तप्रकटप्रतिबिम्बबहुविधशरीरः । अनुरागेणानेक इव मदनरेखायां द्रश्यमानः ॥ ९२ ॥
अवतीर्य विमानात्सुरवरः सरसपङ्कजदलाक्षः । पश्यतां सर्वेषामेष मणिचूडमुनिपुरतः ॥ ९३ ॥
आनन्दविकसितमुखः प्रथमं पतित्वा मदनरेखायाः । पदपङ्कजे पश्चात् प्रणतश्चारणमुनिवरस्य ॥ ९४ ॥
लब्धाशीषः सौदामिनिरिव दीप्यमानभासुरशरीरः । उपविष्टस्तत्पुरतः पृष्टो विद्याधरेण ततः ॥ ९५ ॥
नीतयः सरित इव समुच्चगोत्राणामुन्नतगुणानाम् । अमराणां महिधराणामिव ध्रुवं महाभाग ! प्रभवन्ति ॥ ९६ ॥
मुक्त्वा मणिचूडं चरित्रचूडामणिं मुनिवरेन्द्रम् । ततः किं तुच्छगुणाया एतस्याः पदयोः प्रणिपतितः ? ॥ ९७ ॥
ततो जल्पितमितरेण श्रृणु महाभाग ! कारणमिहार्थे । मुक्त्वा मुनिनाथं यत्प्रणतः पूर्वमेतस्याः ॥ ९८ ॥

आसि सुदंसणनयरे नामेणं मणिरहो महाराया । जुगराया जुगबाहू सहोयरो तस्स गुणभवणं ॥ ९९ ॥
केणावि कारणेणं पहओ सो तेण तिक्खखग्गेणं । तो कंठग्गयपाणो इमीए जिणवयणसलिलेणं ॥ १०० ॥
वेराणुभावतविओ निव्वविओ थिरमणाए सव्वंगं । पंचनमोक्कारपरो खमावियासेसजीवगणो ॥ १०१ ॥
निम्मलवयपरिणामो उववन्नो पंचमम्मि कप्पम्मि । दससागरोवमाऊ सुरिंदसामाणिओ देवो ॥ १०२ ॥
सो य अहं सुकयन्नू सरमाणो धम्मजणियमुवयारं । तक्खणमेवाऽऽयाओ गुरु त्ति काउं नया पढमं ॥ १०३ ॥
भणियं च-
जो जेण सुद्धधम्मम्मि ठाविओ संजएण गिहिणा वा । सो चेव य तस्स गुरू जायइ सद्धम्मदाणाओ ॥ १०४ ॥
अमरेण वि सा भणिया साहम्मिणि ! भणसु जं पियं किं पि ।
तुज्झ करेमि महासइ ! तो भणिओ तीए सो अमरो ॥ १०५ ॥
मह नत्थि किंपि कज्जं धम्मं मोत्तूण जिणवराभिहियं । ता मं पुत्तसयासे नेसु महाभाग ! जेण तयं ॥ १०६ ॥
दट्ठुं निव्वुयहिययाकरेमि तं सुगुरुपायमूलम्मि । इय भणियम्मि विमाणे नियये आरोविउं तम्मि ॥ १०७ ॥
भत्तीए मयणरेहा नीया मिहिलापुरीए अमरेण । अवयरिउं चेइयहरे भावेणं वंदिउं देवे ॥ १०८ ॥
पत्ताइं वयणिपासे पणमित्ता साहुणीण पयकमलं । उवविट्ठाइं पुरओ तासिं पासे सुओ धम्मो ॥ १०९ ॥
तं जहा-

आसीत्सुदर्शननगरे नाम्ना मणिरथो महाराजा । युवराजा युगबाहुः सहोदरस्तस्य गुणभवनम् ॥ ९९ ॥
केनापि कारणेन प्रहतः स तेन तीक्ष्णखड्गेन । ततः कण्ठगतप्राणोऽनया जिनवचनसलिलेन ॥ १०० ॥
वैरानुभावतप्तो निर्वापितः स्थिरमनसा सर्वाङ्गम् । पञ्चनमस्कारपरः क्षामिताशेषजीवगणः ॥ १०१ ॥
निर्मलव्रतपरिणाम उत्पन्नः पञ्चमे कल्पे । दश सागरोपमायुः सुरेन्द्रसामानिको देवः ॥ १०२ ॥
स चाहं सुकृतज्ञः स्मरन् धर्मजनितमुपकारम् । तत्क्षणमेवायातो गुरुरिति कृत्वा नता प्रथमम् ॥ १०३ ॥
भणितं च -
यो येन शुद्धधर्मे स्थापितः संयतेन गृहिणा वा । स चैव च तस्य गुरुर्जायते सद्धर्मदानात् ॥ १०४ ॥
अमरेणापि सा भणिता साधर्मिणि ! भण यत्प्रियं किमपि ।
तव करोमि महासति ! ततो भणितस्तया सोऽमरः ॥ १०५ ॥
मम नास्ति किमपि कार्यं धर्मं मुक्त्वा जिनवराभिहितम् । ततो मां पुत्रसकाशे नय महाभाग ! येन तकम् ॥ १०६ ॥
दृष्ट्वा निवृत्तहृदया करोमि तत् सुगुरुपादमूले । इति भणिते विमाने निजके आरोप्य तस्मिन् ॥ १०७ ॥
भक्त्या मदनरेखा नीता मिथिलापूर्याममरेण । अवतीर्य चैत्यगृहान् भावेन वन्दित्वा देवान् ॥ १०८ ॥
प्राप्तौ व्रतिनिपार्श्वे प्रणम्य साध्वीनां पदकमलम् । उपविष्टौ पुरतस्तासां पार्श्वे श्रुतो धर्मः ॥ १०९ ॥
तद् यथा -

लद्धूण माणुसत्तं धम्मा-धम्मप्फलं च नाऊण । सयलसुहसाहणम्मि जत्तो धम्मम्मि कायव्वो ॥ ११० ॥
अमरेण मयणरेहा भणिया भद्दे ! सुयस्स पासम्मि । वच्चामो तीउत्तं गच्छ तुमं संपयं सोम ! ॥ १११ ॥
चिंतियमिमीए दिट्ठे सुयम्मि होही मणम्मि पडिबंधो । ता किं तत्थ गयाए मए ? पवज्जामि पव्वज्जं ॥ ११२ ॥
जओ-
सव्वे जाया सयणा सव्वे जीवा य परजणा जाया । ता तेसिं सविवेओ उवरिं को कुणउ पडिबंधं ? ॥ ११३ ॥
इय परिभाविय सम्मं साहुणिपासे वयं पवन्ना सा । ठावियसुव्वयनामा पालइ तव-संजममसंगं ॥ ११४ ॥
सो वि हु तीए तणओ वड्ढइ पउमरहराइणो गेहे । सुयमाहप्पा रन्नो नया जओ सेसरायाणो ॥ ११५ ॥
तो से नमि त्ति नामं कयं तओ पंचधाइपरियरिओ । वड्ढंतो य कमेणं संजाओ अट्ठवारिसिओ ॥ ११६ ॥
परिणयकलाकलावो संपत्तो जोव्वणं तओ पिउणा । कन्नाणं कारविओ करगहमट्ठोत्तरसयस्स ॥ ११७ ॥
पउमरहो नमिकुमरं रज्जे ठविऊण गहियपव्वज्जो । उप्पन्नविमलनाणो विहुयमलो सिद्धिमणुपत्तो ॥ ११८ ॥
जाओ य नमी राया पयावपडिहयविवक्खसामंतो । एत्तो च मणिरहनिवो पावाओ तम्मि चेव दिणे ॥ ११९ ॥
दट्ठो भुयगेण मओ चउत्थपुढवीए नारओ जाओ । चंदजसो नमिभाया ठविओ मंतीहिं तस्स पए ॥ १२० ॥
एत्थंतरम्मि सरिऊण विंझवणमुन्नओ निमिनिवस्स । हत्थी भंजिउमालाणखंममनिवारियप्पसरो ॥ १२१ ॥
डिंडीररिंपिंड-गोखीर-तारनीहार-हार-हरधवलो । भूवलयं भमिउं जे विनिग्गओ कित्तिपुंजो व्व ॥ १२२ ॥

लब्ध्वा मानुष्यत्वं धर्माधर्मफलं च ज्ञात्वा । सकलसुखसाधने यत्नो धर्मे कर्तव्यः ॥ ११० ॥
अमरेण मदनरेखा भणिता भद्रे ! सुतस्य पार्श्वे व्रजावस्तयोक्तं गच्छस्त्वं साम्प्रतं सौम्य ! ॥ १११ ॥
चिन्तितमनया दृष्टे सुते भविष्यति मनसि प्रतिबन्धः । ततः किं तत्र गतया मया ? प्रव्रजामि प्रव्रज्याम् ॥ ११२ ॥
यतः -
सर्वे जाताः स्वजनाः सर्वे जीवाश्च परजना जाताः । ततस्तेषां सविवेक उपरि कः करोतु प्रतिबन्धम् ? ॥ ११३ ॥
इति परिभाव्य सम्यक् साध्वीपार्श्वे व्रतं प्रपन्ना सा । स्थापितसुव्रतानामा पालयति तपः संयममसङ्गम् ॥ ११४ ॥
सोऽपि हु तस्यास्तनयो वर्धते पद्मरथराज्ञो गृहे । सुतमाहात्म्याद्राज्ञो नता यतः शेषराजानः ॥ ११५ ॥
ततस्तस्य नमिरिति नाम कृतं ततः पञ्चधात्रीपरिवारितः । वर्धमानश्च क्रमेण सञ्जातोऽष्टवार्षिकः ॥ ११६ ॥
परिणतकलाकलापः सम्प्राप्तो यौवनं ततः पित्रा । कन्यानां कारितः करग्रहमष्टोत्तरशतस्य ॥ ११७ ॥
पद्मरथो नमिकुमारं राज्ये स्थापयित्वा गृहीतप्रव्रज्यः । उत्पन्न विमलज्ञानो विधूतमलः सिद्धिमनुप्राप्तः ॥ ११८ ॥
जातश्च नमी राजा प्रतापप्रतिहतविपक्षसामन्तः । इतश्च मणिरथनृपः पापात्तस्मिंश्चैव दिने ॥ ११९ ॥
दष्टो भुजगेन मृतश्चतुर्थपृथिव्यां नारको जातः । चन्द्रयशा नमिभ्राता स्थापितो मन्त्रिभिस्तस्य पदे ॥ १२० ॥
अत्रान्तरे स्मृत्वा विन्ध्यवनमुन्नतो नमिनृपस्य । हस्ती भङ्क्त्वालानस्तम्भमनिवारितप्रसरः ॥ १२१ ॥
डिण्डिरपिण्ड-गोक्षीर-तारनीहार-हार-हरधवलः । भूवलयं भ्रान्तुं ये विनिर्गतः कीर्तिपुञ्ज इव ॥ १२२ ॥

दिट्ठो य चंदजससेवएहिं नयरंतिएण वच्चंतो । तो तेहिं बंधिऊणं नीओ नियरायनयरम्मि ॥ १२३ ॥
तत्तो य चारपुरिसेहि साहियं नमिनिवस्स जह देव ! तुह धवलपट्टहत्थी चिट्ठइ चंदजससंगहिओ ॥ १२४ ॥
ताहे नमिणा दूओ पहिओ चंद्रजसराइणो सिग्धं । जह एस धवलहत्थी वणम्मि जो पाविओ तुमए ॥ १२५ ॥
सो मज्झ संतिओ ता नरिंद ! पेससु तुमं ति तेणुत्तं । रयणाणि न कस्स वि संतियाणि ता तं न पेसेमि ॥ १२६ ॥
निब्भच्छिऊण निस्सारिऊण मुक्को निवेण नमिदूओ । तेण वि सविसेसे साहियम्मि कुद्धो नमी राया ॥ १२७ ॥
चउरंगबलसमेओ चंदजसोवरि विणिग्गओ समरे । सो वि तमागच्छंतं सोउं तस्सम्मुहो चलिओ ॥ १२८ ॥
अवसउणखलियमग्गो काऊणं नयररोहयं थक्को । नाउं वइयरमेयं च सुव्वयज्जा विचिंतेइ ॥ १२९ ॥
मा होउ जणस्स खओ मा हु वराया वयंतु नरयमिमे । तो उवसमामि दोन्नि वि गंतूणं तेसि पासम्मि ॥ १३० ॥
मोयाविऊण गुरुणिं पत्ता नमिरायसंतिए कडए । दिट्ठो राया दिन्नं च तीए परमासणं रन्ना ॥ १३१ ॥
कहिओ नियवुत्तंतो परूविओ जिणवराण सद्धम्मो । नरयदुहाण निमित्तं च साहिओ तस्स संगामो ॥ १३२ ॥
अन्नं च केरिसो तुह संगामो जेट्ठभाउणो सद्धिं ? । कहमिव भाया एसो ? सपच्चओ तीए सो सव्वो ॥ १३३ ॥
कहिओ सो वुत्तंतो तह वि हु अभिमाणओ न ओसरइ । ताहे खडक्कियाए पत्ता चंदजसपासम्मि ॥ १३४ ॥
तो रायपमुहनायरजणेण सहस त्ति पच्चभिन्नाया । अंतेउरियासत्थो पएसु पडिउं परुन्नो सो ॥ १३५ ॥
तत्तो निवेण नमिऊण तीए पयपंकयं तओ पुट्ठा । अम्मो ! किमेरिसं ते कट्ठाणुट्ठाणमायरियं ? ॥ १३६ ॥

दृष्टश्च चन्द्रयशःसेवकै र्नगरान्तिकेन व्रजन् । तदा तै र्बद्धवा नीतो निजराजनगरे ॥ १२३ ॥
ततश्च चारपुरुषैः कथितं नमिनृपस्य यथा देव ! । तव धवलपट्टहस्ती तिष्ठति चन्द्रयशःसङ्गृहीतः ॥ १२४ ॥
तदा नमिना दूतः प्रहितश्चन्द्रयशो राज्ञे शीघ्रम् । यथैष धवलहस्ती वने यः प्राप्तस्त्वया ॥ १२५ ॥
स मम सत्कस्ततो नरेन्द्र ! प्रेषय त्वमिति तेनोक्तम् । रत्नानि न कस्यापि सत्कानि ततस्तं न प्रेषयामि ॥ १२६ ॥
निर्भर्स्त्य निःसार्य मुक्तो नृपेण नमिदूतः । तेनापि सविशेषे कथिते कुद्धो नमी राजा ॥ १२७ ॥
चतुरंगबलसमेतश्चन्द्रयशस उपरि विनिर्गतः समरे । सोऽपि तमागच्छन्तं श्रुत्वा तत्संमुखश्चलितः ॥ १२८ ॥
अपशकुनस्खलितमार्गः कृत्वा नगररोधकं स्थितः । ज्ञात्वा व्यतीकरमेतच्च सुव्रतार्या विचिन्तयति ॥ १२९ ॥
मा भवतु जनस्य क्षयो मा खलु वराकौ व्रजन्तु नरकमिमौ । तत उपशाम्यामि द्वावपि गत्वा तयोः पार्श्वे ॥ १३० ॥
मोचयित्वा गुरुणीं प्राप्ता नमिराजसत्के कटके । दृष्टो राजा दत्तं च तस्याः परमासनं राज्ञा ॥ १३१ ॥
कथितो निजवृत्तान्तः प्ररुपितो जिनवराणां सद्धर्मः । नरकदुःखानां निमित्तं च कथितस्तस्य सङ्ग्रामः ॥ १३२ ॥
अन्यच्च कीदृशस्तव संग्रामो ज्येष्टभ्रातुः सार्द्धम् ? । कथमिव भ्रातैष ? सप्रत्ययस्तया स सर्वः ॥ १३३ ॥
कथितः स वृत्तान्तस्तथापि खल्वभिमानान्नापसरति । तदा खटत्कृत्वा प्राप्ता चन्द्रयशसः पार्श्वे ॥ १३४ ॥
ततो राजप्रमुखनागरजनेन सहसेति प्रत्यभिज्ञाता । अन्तःपुरिकासार्थः पदयोः पतित्वा प्ररोदितः सः ॥ १३५ ॥
ततो नृपेण नत्वा तस्याः पदपङ्कजं ततः पृष्टा । अम्बे ! किमीदृशं ते कष्टानुष्ठानमाचरितम् ? ॥ १३६ ॥

कहिओ य तीए नियओ पुरनिग्गमणाइवइयरो सव्वो । भणियं च तओ रन्ना सहोयरो कत्थ मे अज्जा ! ? ॥१३७॥
तीए भणियं एसो जेण तुमं वेढिओ नियबलेण । तं सोउं चंदजसो हरिसवसुव्भिन्नरोमंचो ॥ १३८ ॥
नीहरिओ नयराओ निव्भरमालिंगिओ सिणेहेण । दाऊण तस्स रज्जं वयं पवन्नो सयं परमं ॥ १३९ ॥
इयरो वि दोसु रज्जेसु पत्तपयरिसविसेसओ जाओ । निग्गयपयडपयावो वसीकयासेसरिउनिवहो ॥ १४० ॥
भुंजंतस्स य पंचप्पयारविसए गओ बहू कालो । अह अन्नया य जाओ दाहजरो नमिनरिंदस्स ॥ १४१ ॥
तस्सोवसमनिमित्तं घसंति विज्जोवएसओ सव्वा । अंतेउरिया गयदंतवलयपडिपुन्नबाहुलया ॥ १४२ ॥
सिरिखंडाई सिसिरोवयारजणणत्थमवणिनाहस्स । तत्तो उत्तालाणं परोप्परं तेसि वलयाणं ॥ १४३ ॥
संघडण-विहडणावसविसेसओ संतयं समुच्छलिओ । हलबोलरवो विरसो (सु) दुस्सहो रायकन्नाणं ॥ १४४ ॥
भणियं च तओ रन्ना न सहइ एसो दढं मह मणस्स । तत्तो एगेगं दंतवलयमुम्मोइयं ताहिं ॥ १४५ ॥
तह वि हु जाव न पसमइ ताव य सव्वाणि ताहि मुक्काणि । एगेगं मोत्तूणं तो भणियं नरववरिंदेण ॥ १४६ ॥
संपइ किं उवसंतो वलयरवो ? तो निवेइयं रन्नो । वलयाण सरूवमिमं विवेयओ तो विचिंतेइ ॥ १४७ ॥
पेच्छसु अइहववलये[1] मोत्तुं सव्वाणि जाव णीयाणि । ता मह असमाहिकरो उवसंतो एस हलबोलो ॥ १४८ ॥
ता एसो वि हु बहुओ पुत्त-कलत्ताइओ सयेणवग्गो । जावऽज्ज वि ता जायइ जियाण हिययम्मि असमाही ॥१४९॥

कथितश्च तया निजकः पुरनिर्गमनादिव्यतीकरः सर्वः । भणितं च ततो राज्ञा सहोदरः कुत्र मम आर्यः !? ॥ १३७ ॥
तया भणितमेष येन त्वं वेष्ठितो निजबलेन । तत् श्रुत्वा चन्द्रयशा हर्षवशोद्भिन्नरोमाञ्चः ॥ १३८ ॥
निःसृतो नगरान्निर्भरमालिङ्गितः स्नेहेन । दत्वा तस्मै राज्यं व्रतं प्रपन्नः स्वयं परमम् ॥ १३९ ॥
इतरोऽपि द्वयो राज्ययोः प्राप्तप्रकर्षविशेषको जातः । निर्गतप्रकटप्रतापो वशीकृताशेषरिपुनिवहः ॥ १४० ॥
भुञ्जतश्च पञ्चप्रकारविषयान् गतो बहुकालः । अथान्यदा च जातो दाहज्वरो नमिनरेन्द्रस्य ॥ १४१ ॥
तस्योपशमनिमित्तं मर्दयन्ति वैद्योपदेशात् सर्वाः । अन्तःपुरिका गजदन्तवलयप्रतिपूर्णबाहुलताः ॥ १४२ ॥
श्रीखण्डानि शिशिरोपचारजननार्थमवनिनाथस्य । तत उत्तालानां परस्परं तेषां वलयानाम् ॥ १४३ ॥
संघटन- विघटनावशविशेषतः सत्कं समुच्छलितः । हलबोलरवो विरसः सुदुःषहो राजकर्णयोः ॥ १४४ ॥
भणितं च ततो राज्ञा न सहत एष दृढं मम मनसः । तत एकैकं दन्तवलयमुन्मोचितं ताभिः ॥ १४५ ॥
तथापि हु यावन्न प्रशाम्यति तावच्च सर्वाणि ताभि र्मुक्तानि । एकैकं मुक्त्वा ततो भणितं नरवरेन्द्रेण ॥ १४६ ॥
सम्प्रति किमुपशान्तो वलयरवः ? ततो निवेदितं राज्ञः । वलयानां स्वरूपमिदं विवेकतस्तदा विचिन्तयति ॥ १४७ ॥
पश्याविधवावलयं मुक्त्वा सर्वाणि यावन्नीतानि । तावन्ममासमाधिकर उपशान्त एष हलबोलः ॥ १४८ ॥
तत एषोऽपि हु बहुकः पुत्र-कलत्रादिकः स्वजनवर्गः । यावदद्यापि तावज्जायते जीवानां हृदयेऽसमाधिः ॥ १४९ ॥

---

१. अविधवावलयं सौभाग्यचिह्नरूपं वलयमित्यर्थः ।

अन्नं च जियस्सिमिणा बहुएण वि पासवत्तिणा ताणं । न भवइ दुहम्मि मणयं पि परियणेणं जओ भणियं ॥१५०॥
जइया दाहजरत्तो अइदुस्सहवाहिवेयणाविहुरो । तइया पासबइट्ठो सयणो अक्खंदए करुणं ॥ १५१ ॥
पंके खुत्तो व्व करी सयणगओ तंडफडेइ[1] दुक्खत्तो । सयणो वुन्नो जोयइ असमत्थो वेयणुद्धरणे ॥ १५२ ॥
अन्नह कहमेयाओ सरसाओ भारियाओ मिलियाओ ? । ससिणेहाउ मह कए खिज्जंतेवं वराईओ ? ॥ १५३ ॥
एए विचिगिच्छाए चउप्पयाराए सत्थभणियाए । धन्नन्तरिसारिच्छा वेज्जा कुसला किलिस्संति ? ॥ १५४ ॥
अवरे वि मंत-तंताइवाइणो मंतिणो ससामंता । चउरंगबलं एयं बहुयं पि हु विभयइ न दुक्खं ॥ १५५ ॥
जइ पुण पुव्वभवकयं सहायमेगं पि होइ मह सुकयं । ता तयमवियप्पेणं होज्जा ताणं दुहत्तस्स ॥ १५६ ॥
ता जइ कहमवि एयाओ रोगवसाणाओ हं विमुंचेज्जा । ता सुकयम्मि पयत्तं करेमि चइऊण रज्जसिरिं ॥१५७॥
इय चिंतिय रयणीए सेज्जाए जाव सुयइ ताव सुहा । जाया निद्दा वयपरिणई य कम्मक्खओवसमा ॥ १५८ ॥
पेच्छइ रयणिविरामे सुमिणमिमं किर अहं सयं चेव । संजमभरे व चडिओ समुन्नए मेरुसिहरम्मि ॥ १५९ ॥
तत्थ वि य सरयससहरकरनियरपहासमुज्जलसरीरे । नियगे व्व पुन्नपुंजे करिम्मि आरूढमप्पाणं ॥ १६० ॥
ताहे नायं एसो मेरुगिरी देवपुव्वजम्मम्मि । दिट्ठो जिणिंदजम्मणमज्जणयमहूसवम्मि मए ॥ १६१ ॥
एवं सो नमिराया जाईसरणेण नायपरमत्थो । देवयविइन्नलिंगो जाओ पत्तेयबुद्धमुणी ॥ १६२ ॥
गिरिकंदराए वीसुं पि पबलपज्जलियजलणदित्ताए । सीहो व्व विणिक्खंतो गिहवासाओ महासत्तो ॥ १६३ ॥

अन्यच्च जीवस्यानेन बहुकेनापि पार्श्ववर्तिना त्राणम् । न भवति दुःखे मनागपि परिजनेन यतो भणितम् ॥ १५० ॥
यदा दाहज्वरार्तोऽतिदुःषहव्याधिवेदनाविधुरः । तदा पार्श्वोपविष्टः स्वजन आक्रन्दते करुणम् ॥ १५१ ॥
पङ्के मग्न इव करी स्वजनगतः प्रकम्पते दुःखार्तः । स्वजनः खिन्नो पश्यत्यसमर्थो वेदनोद्धरणे ॥ १५२ ॥
अन्यथा कथमेताः सरसा भार्या मिलिताः ? । सस्नेहा मम कृते खिद्यन्त एव वराकयः ॥ १५३ ॥
एते विचिकित्सायां चतुष्प्रकारायां शास्त्रभणितायाम् । धन्वन्तरिसदृशा वैद्याः कुशलाः क्लिष्यन्ति ॥ १५४ ॥
अपरेऽपि मन्त्र-तन्त्रादिवादिनो मन्त्रिणः ससामन्ताः । चतुरंगबलमेतद्बहुकमपि हु विभजति न दुःखम् ॥ १५५ ॥
यदि पुनः पूर्वभवकृतं सहायमेकमपि भवति मम सुकृतम् । तदा तकदविकल्पेन भवेत् त्राणं दुःखार्तस्य ॥ १५६ ॥
ततो यदि कथमप्येतस्माद्रोगव्यसनादहं विमुञ्चेयम् । तदा सुकृते प्रयत्नं करोमि त्यक्त्वा राज्यश्रियम् ॥ १५७ ॥
इति चिन्तयित्वा रजन्यां शय्यायां यावत् स्वपिति तावत् सुखात् । जाता निंद्रा व्रतपरिणतिश्च कर्मक्षयोपशमात् ॥ १५८॥
पश्यति रजनीविरामे स्वप्नमिमं किलाहं स्वयं चैव । संयमभारे इवारुढो समुन्नते मेरुशिखरे ॥ १५९ ॥
तत्रापि च शरदशशधरकरनिकरप्रभासमुज्ज्वलशरीरे । निजक इव पुण्यपुञ्जे करिण्यारुढमात्मानम् ॥ १६० ।
तदा ज्ञातमेष मेरुगिरि र्देवपूर्वजन्मनि । दृष्टो जिनेन्द्रजन्ममज्जनकमहोत्सवे मया ॥ १९१ ॥
एवं स नमिराजा जातिस्मरणेन ज्ञातपरमार्थः । देवतावितीर्णलिङ्गो जातः प्रत्येकबुद्धमुनिः ॥ १६२ ॥
गिरिकन्दराया विष्वगपि प्रबलप्रज्वलितज्वलनदीप्तायाः । सिंह इव विनिष्क्रान्तो गृहवासान्महासत्त्वः ॥ १६३ ॥

---

१. (देश्यः) तरफडवुं इति भाषायाम् ।

एत्थंतरम्मि मणिरयणभासुराभरणभूसियसरीरो । सोहम्मवई सक्खं समागओ तप्परिक्खत्थं ॥ १६४ ॥
अच्चब्भुयतच्चरिएण रंजिओ नमिरिसिं महासत्तं । नयरीओ नीहरंतं माहणरूवो भणइ सक्को ॥ १६५ ॥
भो भो ! सुणसु महायस ! पव्वज्जा ताव पाणिदयमूला । तुह वयगहणे य इमा अक्कंदइ दुक्खिया नयरी ॥१६६॥
ता दूरमजुत्तमिणं पुव्वा-ऽवरबाहयं वयं तुज्झ । तो भणइ मुणी न दुहस्स कारणं इत्थं मज्झ वयं ॥ १६७ ॥
किंतु नियनियपओयणहाणी दुक्खस्स कारणं लोए । ता अहमवि नियकज्जं करेमि किमिमाए चिंताए ? ॥१६८॥
ततः स्वयमेवान्तः पुरगृहाणि प्रज्वलन्त्युपदर्श्य पुनरप्याह शक्रः -
एस अग्गी य वाऊ य एवं डज्झइ मंदिरं । भयवं ! अंतेउरंतेणं कीस णं नावएक्खह ? ॥ १६९ ॥
ततो नमिराह-
सुहं वसामो जीवामो जंसि मो नित्थि किंचणं । मिहिलाए डज्झमाणीए न मे इज्झए किंचणं ॥ १७० ॥
चत्तपुत्त-कलत्तस्स निव्वावारस्स भिक्खुणो । पियं न विज्जई किंचि अप्पियं पि न विज्जई ॥ १७१ ॥
पुनराह शक्रः-
पागारं कारइत्ता णं नयरस्स अइदुग्गयं । नाणाजंतेहिं संजुत्तं तओ पव्वय खत्तिया ! ॥ १७२ ॥
राजर्षिः प्राह-
संजमो नयरं मज्झ सयं च विहियो तहिं । दुग्गो पसमपायारो नयजंतेहिं संजुओ ॥ १७३ ॥

अत्रान्तरे मणिरत्नभासुराभरणभूषितशरीरः । सौधर्मपतिः साक्षात्समागतस्तत्परीक्षार्थम् ॥ १६४ ॥
अत्यद्भूततच्चरित्रेण रञ्जितो नमिर्षिं महासत्त्वम् । नगर्याः निःसरन् माहणरुपो भणति शक्रः ॥ १६५ ॥
भो भो ! श्रुणु महायशः ! प्रव्रज्या तावत्प्राणिदयामूला । तव व्रतग्रहणे चेमा आक्रन्दति दुःखिता नगरी ॥ १६६ ॥
ततो दूरमयुक्तमिदं पूर्वा-ऽपरबाधकं व्रतं तव । ततो भणति मुनि र्न दुःखस्य कारणमत्र मम व्रतम् ॥ १६७ ॥
किन्तु निजनिजप्रयोजनहानि र्दुःखस्य कारणं लोके । ततोऽहमपि निजकार्यं करोमि किमनया चिन्तया ? ॥ १६८ ॥
ततः स्वयमेवान्तः पुरगृहाणि प्रज्वलन्त्युपदर्श्य पुनरप्याह शक्रः -
एषोऽग्निश्च वायुश्चैतद्दहति मन्दिरम् । भगवन् ! अन्तःपुरं तेन कथं णं नावपेक्षध्वम् ? ॥ १६९ ॥
ततोनमिराह--
सुखं वसामो जीवामो यदस्ति मम नास्ति किञ्चन । मिथिलायां दह्यमानायां न मे दहति किञ्चन ॥ १७० ॥
त्यक्तपुत्र-कलत्रस्य निर्व्यापारस्य भिक्षोः । प्रियं न विद्यते किञ्चिदप्रियमपि न विद्यते ॥ १७१ ॥
पुनराहशक्रः
प्राकारं कारयित्वा णं नगरस्यातिदुर्गकम् । नानायन्त्रैः संयुक्तं ततः प्रव्रज क्षत्रिय ! ॥ १७२ ॥
राजर्षिप्राह--
संयमो नगरं मम स्वयं च विहितस्तत्र । दुर्गः प्रशमप्राकारो नययन्त्रैः संयुक्तः ॥ १७३ ॥

पुनर्वदति शचीपतिः-

निवासहेउं लोयस्स सासए सुमणोहरे । पासाए कारइत्ता णं तओ पव्वय खत्तिया ! ॥ १७४ ॥

नमिः प्राह-

मूढो चेव जणो पंथे वहंतो कुणई गिहं । निच्छएण जहिं ठाणं जुत्तं तत्थेव मंदिरं ॥ १७५ ॥

इन्द्रः प्राह- तक्करे निग्गहेऊणं सुत्थं काऊण पव्वय ।

नमिराह- चोरा रागाइणो चेव ते य निग्गहिया मए ॥ १७६ ॥

हरिराह-

जे केइ पत्थिवा तुज्झं न नमंति बलगव्विया । वसे ते ठावइत्ता णं तओ पव्वय खत्तिया ! ॥ १७७ ॥

मुनिरुवाच-

जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जयं जिणे । एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ ॥ १७८ ॥

सुरपतिरवादीत्-

गिहासमसमो धम्मो को अन्नो एत्थ विज्जई ? । दिज्जंति जत्थ दाणाइं दीणा-ऽणाहाइपाणिणं ॥ १७९ ॥

साधुरुत्तरयति-

जीवधायरओ धम्मं जं कत्थइ कुणइ गिही । साधुधम्मगिरिंदस्स राइमेत्तो वि नो इमो ॥ १८० ॥

पुनर्वदति शचीपतिः-

निवासहेतुं लोकस्य शाश्वतान्सुमनोहरान् । प्रासादान् कारयित्वा ततः प्रव्रज क्षत्रिय ! ॥ १७४ ॥

नमिः प्राह-

मुढ श्चैव जनः पथि वहन् करोति गृहम् । निश्चयेन यत्र स्थानं युक्तं तत्रैव मन्दिरम् ॥ १७५ ॥

तस्करान्निगृह्य सुस्थं कृत्वा प्रव्रज ।

चौरा रागादयश्चैव ते च निगृहीता मया ॥ १७६ ॥

हरिराह-

ये केऽपि पार्थिवा त्वां न नमन्ति बलगर्विताः । वशान् तान् स्थापयित्वा ततः प्रव्रज क्षत्रिय ! ॥ १७७ ॥

मुनिरुवाच-

यः सहस्रं सहस्राणां सङ्ग्रामे दुर्जयं जयति । एकं जयेदात्मानमेष तस्य परमो जयः ॥ १७८ ॥

सुरपतिरवादीत्-

गृहाश्रमसमो धर्मः कोऽन्योऽत्र विद्यते ? । दीयन्ते यत्र दानादयो दीना-ऽनाथादिप्राणिभ्यः ॥ १७९ ॥

साधुरुत्तरयति-

जीवघातरतो धर्मं यं कुत्रचित्करोति गृही । साधुधर्म-गिरिन्द्रस्य राजिकामात्रोऽपि नायम् ॥ १८० ॥

पुरन्दरः प्राह-

सुवन्न-मणि-मुत्ताओ कंसं दूसं च वाहणं । कोसे वड्ढावइत्ता णं तओ पव्वय खत्तिया ! ॥ १८१ ॥

(राजर्षिरुवाच)-

जइ होंति हिरण्णस्स गिरितुल्ला वि रासिणो । से तहा विरई कत्तो असंतुट्ठस्स जंतुणो ॥ १८२ ॥

सुराधिपो न्यगादीत्-

अणागयाण भोयाणं कारणम्मि नराहिवा ! हत्थागए इमे भोए मूढो जं एवमुज्झसि ॥ १८३ ॥

राजमुनिरभाषत-

भोगासंसाए नो भोए लद्धे परिचयामऽहं । अजिन्नसंभवे दोसे को धयं पियई बुहो ? ॥ १८४ ॥

सल्लं कामा विसं कामा कामा आसीविसोवमा । कामे पत्थेमाणा अकामा जंति दुग्गइं ॥ १८५ ॥

इय भणिओ वि हु एसो जा न चलइ मंदरो व्व पवणेहिं । ता जाओ पच्चक्खो हिट्ठो नमिउं मुणी सक्को ॥ १८६ ॥

भणइ महायस ! भुवणे वि तुज्झ सलहिज्जए कुलं गोत्तं । जेण तए पडलग्गं तणं व चत्ता इमा रिद्धी ॥ १८७ ॥

आगासं व न लिप्पसि मुणिंद ! कत्थइ ममत्तपंकेण । रागाइसत्तुवग्गो य सव्वहा तइ विणिग्गहिओ ॥ १८८ ॥

एवं अभित्थुणंतो रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए । तिपयाहिणं कुणंतो पुणो पुणो वंदई सक्को ॥ १८९ ॥

तो वंदिऊण पाए चक्कंकुसलक्खणे मुणिवरस्स । आगासेणुप्पइओ चलंतमणिकुंडलो सक्को ॥ १९० ॥

पुरन्दरः प्राह-

सुवर्ण-मणि-मुक्ताः कांस्यं दूष्यं च वाहनम् । कोशान् वर्धयित्वा ततः प्रव्रज क्षत्रिय ! ॥ १८१ ॥

(राजर्षिरुवाच)-

यदि भवन्ति हिरण्यस्य गिरितूल्या अपि राशयः । तस्य तथा विरतिः कुतोऽसंतुष्टस्य जन्तोः ॥ १८२ ॥

सुराधिपो न्यगादीत्-

अनागतानां भोगानां कारणे नराधिपः ! । हस्तागतानिमान् भोगान् मूढो यदेवमुज्झसि ॥ १८३ ॥

राजमुनिरभाषत-

भोगाशंसया न भोगाल्लब्धान् परित्यजाम्यहम् । अजीर्णसम्भवे दोषे कः घृतं पिबति बुधः ? ॥ १८४ ॥

शल्यं कामा विषं कामाः कामा आशीर्विषोपमाः । कामान् प्रार्थ्यमाना अकामा यान्ति दुर्गतिम् ॥ १८५ ॥

इति भणितोऽपि खल्वेष यावन्न चलति मन्दर इव पवनैः । तदा जातः प्रत्यक्षो हृष्टो नत्वा मुनिं शक्रः ॥ १८६ ॥

भणति महायशः ! भुवनेऽपि तव श्लाध्यते कुलं गोत्रम् । येन त्वया पटलग्नं तृणमिव त्यक्तेमार्द्धिः ॥ १८७ ॥

आकाशमिव न लिप्यसि मुनीन्द्र ! कुत्रचिन्ममत्त्वपङ्केन । रागादि शत्रुवर्गश्च सर्वथा त्वया विनिगृहीतः ॥ १८८ ॥

एवमभिस्तुवन् राजर्षिमुत्तमया श्रद्धया । त्रिप्रदक्षिणां कुर्वन् पुनः पुनर्वन्दते शक्रः ॥ १८९ ॥

ततो वन्दित्वा पादयोश्चक्राङ्कुशलक्षणयो र्मुनिवरस्य । आकाशेनोत्पतितश्चलन्मणिकुण्डलः शक्रः ॥ १९० ॥

न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो पालेउं नमिमुणी वि पव्वज्जं । सिद्धिं गओ इमं चिय कुणंति अन्ने वि सप्पुरिसा ॥ १९१ ॥

अधुना चारुदत्ताख्यानकस्यावसरः तच्च भावभट्टिकाख्यानके भणितमिति । क्रमप्राप्तं तु बन्धुदत्ताख्यानकमारभ्यते । तद्यथा-

अस्थि समिद्धिसमन्नियनायरजणजणियहिययसंतोसं । लच्छीतिलयं नयरं पुन्नाहियमणुयवंदं व ॥ १ ॥

तत्थ य समग्गलक्खणचंगिमगुणकलियनरकवालकरो । सुनओ वसणविरहिओ सिवो व्व ससिसेहरो राया ॥२॥

सव्वंतेउरसारा सुदंसणा नाम पिययमा तस्स । नियमइविहवविणिज्जियजीवो[1] मंती वि य सुबुद्धी ॥ ३ ॥

नेगमवग्गपहाणो समुद्दत्तभिहाणओ सेट्ठी । सीलाइगुणनिवासा वसंतसेणा पिया तस्स ॥ ४ ॥

नामेण बंधुदत्तो धम्मपिओ तीए पढमओ पुत्तो । बीओ वि हु वसुदत्तो सो मणयं वक्कववहारो ॥ ५ ॥

वाणियगकलाकुसला जाया ते दो वि जोव्वणाभिमुहा । तत्तो भणिओ दुट्ठाभिसंधिणा विहवलुद्धेण ॥ ६ ॥

जेट्ठो कणिट्ठएणं अच्छिज्जइ किमिय पंगुपाएहिं । दविणज्जणस्स जोग्गा जम्हा अम्हाणिमाऽवत्था ॥ ७ ॥

तो दविणऽज्जणकज्जे गम्मउ देसंतरम्मि इय भणिए । मोयाविया य अम्मा-पियरो[2] सप्पस्सयमिमेहिं ॥ ८ ॥

अम्मा-पिऊहिं भणिया विज्जइ वच्छा ! गिहे पभूयधणं । विसमा देसा तुब्भे सुहोइया ता न जुत्तमिमं ॥ ९ ॥

भूओ वि आयरेणं मोयावेऊण सोहणे दिवसे । चलिया एगदिसाए अत्थोवज्जणकए दो वि ॥ १० ॥

नापि रुष्टो नापि तुष्टः पालयित्वा नमिमुनिरपि प्रव्रज्याम् । सिद्धिं गत इमं चैव कुर्वन्त्यन्येऽपि सत्पुरुषाः ॥ १९१ ॥

॥ नमिराजाख्यानकं समाप्तम् ॥ १०५ ॥

बन्धुदत्ताख्यानकम् ॥ १०६ ॥

अस्ति समृद्धिसमन्वितनागरजनजनितहृदयसन्तोषम् । लक्ष्मीतिलकं नगरं पुण्याधिकमनुजवृन्दमिव ॥ १ ॥

तत्र च समग्रलक्षणचङ्गिमागुणकलितनरकपालकरः । सुनयो व्यसनविरहितः शिव इव शशिशेखरो राजा ॥ २ ॥

सर्वान्तःपुरसारा सुदर्शना नाम प्रियतमा तस्य । निजमतिविभवविनिर्जितजीवो मन्त्र्यपि च सुबुद्धिः ॥ ३ ॥

नैगमवर्गप्रधानःसमुद्रदत्ताभिधानः श्रेष्ठी । शीलादिगुणनिवासा वसन्तसेना प्रिया तस्यः ॥ ४ ॥

नाम्ना बन्धुदत्तो धर्मप्रियस्तस्याः प्रथमकः पुत्रः । द्वितीयोऽपि खलु वसुदत्तः स मनाग्वक्रव्यवहारः ॥ ५ ॥

वाणिजककलाकुशलौ जातौ तौ द्वावपि यौवनाभिमुखौ । ततो भणितो दुष्टाभिसन्धिना विभवलुब्धेन ॥ ६ ॥

ज्येष्ठो कनिष्ठेनाच्छिद्यते किमिति पङ्गूपायैः । द्रविणार्जनस्य योग्यौ यस्मादावयोरिमाऽवस्था ॥ ७ ॥

ततो द्रविणार्जनकार्ये गम्यतां देशान्तर इति भणिते । मोचयितौ चाम्मा-पितरौ सप्रश्रयमाभ्याम् ॥ ८ ॥

अम्मा-पितृभ्यां भणितौ विद्यते वत्सौ ! गृहे प्रभूतधनम् । विषमा देशा युवां सुखोचित्तौ ततो न युक्तमिदम् ॥ ९ ॥

भूयोऽप्यादरेण मोचयित्वा शोभने दिवसे । चलितावेकदिश्यर्थोपार्जनकृते द्वावपि ॥ १० ॥

---

१. बृहस्पतिः । २. सप्रश्रयम् ।

इय ते बाहुबिइज्जा सहाय-वाहण-कयाणयाइ विणा । नियपुन्नपरिक्खत्थं दो वि हु वच्चंति सेट्ठिसुया ॥ ११ ॥
भणिओ य बंधुदत्तो वसुदत्तेणं जहा इमो भाय ! । मग्गो निव्वहइ कहाणियाए अहवा वि कलहेणं ॥ १२ ॥
ता कहसु मह कहाणयमेगं अहवा वि पत्थुयत्थम्मि । अहमेव ताव कहयामऽवन्तरकहाणयं एगं ॥ १३ ॥
हलहरजणप्पहाणे कम्मि वि गाममि साहिमाणधणो । एगो करिसणवित्ती सकलत्तो वसइ कुलउत्तो ॥ १४ ॥
सो नियभारियाए कइया वुव्वेइओ अणज्जाए । नवघडियछुरियधारासरिच्छदुव्वयणजीहाए ॥ १५ ॥
तस्स य देसंतरपत्थियस्स मग्गम्मि संपयट्टस्स । महियाइविक्कयकए चलिया गोउलनिवेसाओ ॥ १६ ॥
महियारीओ मिलियाओ निव्विवेयाओ जोव्वणत्थाओ । अप्पाणयस्स सरिसाउ मत्थए ताण थालीओ ॥ १७ ॥
तथा हि-
सुपयाओ सिणिद्धाओ सुमहियदहियाओ सामलंगीओ । निम्मलपहाओ [१]सममणियाओ पायडियपंतीओ ॥ १८ ॥
सो उण अह वि सखेओ हलहरपालो तहा वि तरुणवओ । दट्ठुं ताओ जाओ जायवियारो जओ भणियं ॥ १९ ॥
अवश्यं यौवनस्थेन विकलेनापि जन्तुना । विकारः खलु कर्तव्यो नाविकारय यौवनम् ॥ २० ॥
इत्थीतरलत्तणओ भणियमिमाहिं मणुस्सगा ! कहसु । किं पि कहाणयमेगं रार्डिं[२] वा कुणसु जेण इमो ॥ २१ ॥
मग्गो सुहेण निव्वहइ अम्ह तुह वयणहरियचित्ताणं । सो उण ताओ अवगन्नऊण वच्चइ विहियमोणो ॥ २२ ॥
वारं वारं ताओ तहेव जंपंति जाव तं चेव । ताव य चिंतियमिमिणा मणयं संजायकोवेण ॥ २३ ॥

इति तौ बाहुद्वितीयौ सहाय-वाहन-क्रयाणकादिं विना । निज पुण्यपरीक्षार्थं द्वावपि हु व्रजतः श्रेष्ठिसुतौ ॥ ११ ॥
भणितश्च बन्धुदत्तो वसुदत्तेन यथायं भ्रात ! । मार्गो निर्वहति कथानिकयाऽथवापि कलहेन ॥ १२ ॥
ततः कथय मां कथानकमेकमथवापि प्रस्तुतार्थे । अहमेव तावत्कथयाम्यवान्तरकथानकमेकम् ॥ १३ ॥
हलधरजनप्रधाने कस्मिन्नपि ग्रामे स्वाभिमानधनः । एकः कर्षणवृत्तिः सकलत्रो वसति कुलपुत्रः ॥ १४ ॥
स निजकभार्यया कदोद्वेजितोऽनार्यया । नवघटितच्छूरिकाधारासदृशदुर्वचनजीह्वया ॥ १५ ॥
तस्य च देशान्तरप्रस्थितस्य मार्गे संप्रवृत्तस्य । महिकादिविक्रयकृते चलिता गोकुलनिवेशात् ॥ १६ ॥
महिकार्यो मिलिता निर्विवेका यौवनस्थाः । आपानकस्य सदृश्या मस्तके तासां स्थाल्यः ॥ १७ ॥
तथाहि -
सुपयाः स्निग्धाः सुमथितदधिकाः श्यामलाङ्ग्यः । निर्मलप्रभाः सममनसः प्राकटितपङ्क्त्यः ॥ १८ ॥
स पुन र्यद्यपि सखेदो हलधरप्रायस्तथापि तरुणवयः । दृष्ट्वा ता जातो जातविकारो यतो भणितम् ॥ १९ ॥
स्त्रीतरलत्वाद्भणितमिमाभि र्मनुष्यकाः ! कथयत । किमपि कथानकमेकं कलहं वा कुरु येनायम् ॥ २१ ॥
मार्गः सुखेन निर्वहत्यस्माकं तव वचनहृतचित्तानाम् । स पुनस्ता अवगण्य व्रजति विहितमौनः ॥ २२ ॥
वारं वारं तास्तथैव जल्पन्ति यावत्तं चैव । तावच्च चिन्तितमनेन मनाक् सञ्जातकोपेन ॥ २३ ॥

---

१. सममनसःएकमनसः । २. कलहम् ।

मोणेण ताव नोवसममेंति एयाओ पेच्छ पावाओ । दिज्जउ तम्हा वक्का हु कीलिया वक्कवेहस्स ॥ २४ ॥
इय परिभाविय कुलपुत्तएण तेणुल्लसंतणक्खेण । खिविउं पायं पायाणमंतरे पाडिया एगा ॥ २५ ॥
तीए पडंतीए निवाडियाओ ताओ धस त्ति धरणीए । महिविक्खिरियरसाओ तेरस थालीओ भग्गाओ ॥ २६ ॥
तप्पभिइं चलियाओ तेण समाणं कलिं कुणंतीओ । अमरिसविलक्खवयणाओ झत्ति नयरम्मि पत्ताओ ॥ २७ ॥
कुलपुत्तएण भणियं सिग्धं रार्डि कुणंतएण मए । नयरम्मि पावियाओ खमह महं जामि सट्ठाणं ॥ २८ ॥
तत्तो सद्धिं तेणं थालीणं सामिणी झगडएणं । लग्गा बहुजणमज्झे अवगन्निय तं बला नट्ठो ॥ २९ ॥
संपत्तो (वेसा) वाडयम्मि पत्थेइ वासयट्ठाणं । ताहिं वि अणाहसालाए दंसिओ सिक्कडो एगो ॥ ३० ॥
तम्मि निसन्नो जा सुयइ नेय अज्ज वि य मग्गपरिसंतो । ता विद्धकुट्टिणीए भणिओ आगंतुमेगाए ॥ ३१ ॥
कहसु कहाणयमेगं तेणुत्तमईव मग्गपरिसंतो । न चएमि कहेउं जे खणमेगं सुविउमिच्छामि ॥ ३२ ॥
सा उभयहा वि वेसा जाया कुलउत्तयस्स तम्मि खणे । होइ हु वेसो कुव्वं निद्दाभंगं जओ भणियं ॥ ३३ ॥
निद्राभङ्गं कथोछेदं सारथ्यं क्रयविक्रयम् । शक्रोऽपि द्वेष्यतां याति यः करोति चतुष्टयम् ॥ ३४ ॥
पुणरवि न देइ जा कह वि सोविउं ताव तेण रुट्ठेण । भणियं कप्पियमेयं किं वा वि हु चरियमक्खेमि ? ॥ ३५ ॥
तीए भणियं चरियं कहेसु रामायणाइयं किं पि । ता रुसिउं रंडाए मुट्ठीए पाडिया दंता ॥ ३६ ॥
तो मिलिए वेसावाडयम्मि कोलाहलम्मि वड्ढंते । दीवसिहाए पज्जालिऊण गेहं विणिक्खंतो ॥ ३७ ॥

मौनेन तावन्नोपशाम्यमेन्त्येताः पश्य पापाः । दीयतां तस्माद्वक्रा खलु कीलिका वक्रवेधस्य ॥ २४ ॥
इति परिभाव्य कुलपुत्रेण तेनोल्लसन्नखेन । क्षिप्त्वा पादं पादानामन्तरे पातितैका ॥ २५ ॥
तया पतन्त्या निपतितास्ता धसेति धरण्याम् । महिविकिरितरसास्त्रयोदश स्थाल्यो भग्नाः ॥ २६ ॥
तत्प्रभृति चलितास्तेन समानं कलिं कुर्वन्त्यः । आमर्षविलक्षवदना झटिति नगरे प्राप्ताः ॥ २७ ॥
कुलपुत्रकेण भणितं शीघ्रं कलहं कुर्वता मया । नगरे प्राप्ताः क्षमध्वं मां यामि स्वस्थानम् ॥ २८ ॥
ततः सार्धं तेन स्थालीनां स्वामिन्यः कलहेन । लग्ना बहुजनमध्येऽवगण्य तं बलान्नष्टः ॥ २९ ॥
सम्प्राप्तो (वेश्या) वाटके प्रार्थयति वासकस्थानम् । ताभिरप्यनाथशालायां दर्शिता खट्वैका ॥ ३० ॥
तस्मिन्निषण्णो यावत्स्वपिति नैवाद्यापि च मार्गपरिश्रान्तः । ततो वृद्धकुट्टिन्या भणित आगत्यैकया ॥ ३१ ॥
कथय कथानकमेकं तेनोक्तमतीव मार्गपरिश्रान्तः । न शक्नोमि कथयितुं ये क्षणमेकं स्वपितुमिच्छामि ॥ ३२ ॥
सोभयथापि द्वेष्या जाता कुलपुत्रकस्य तस्मिन् क्षणे । भवति हु द्वेष्यः कुर्वन्निद्राभङ्गं यतो भणितम् ॥ ३३ ॥
निद्राभङ्गं कथोच्छेदं सारथ्यं क्रयविक्रयम् । शक्रोऽपि द्वेष्यतां याति यः करोति चतुष्टयम् ॥ ३४ ॥
पुनरपि न ददाति यावत्कथमपि स्वपितुं तावत्तेन रुष्टेन । भणितं कल्पितमेतत् किं वापि खलु चरित्रमाख्ये ? ॥ ३५ ॥
तया भणितं चरित्रं कथय रामायणादिकं किमपि । ततो रुष्ट्वा रण्डाया मुष्ठया पातिताः दन्ताः ॥ ३६ ॥
ततो मिलिते वेश्यावाटके कोलाहले वर्धमाने । दीपशिखया प्रज्वाल्य गृहं विनिष्क्रान्तः ॥ ३७ ॥

विन्नायवइयरेहिं पत्तो आरक्खिएहिं निज्जन्तो । रायंतियम्मि दिट्ठो तीय वि मिहियारियाए तओ ॥ ३८ ॥
सव्वाहि वि मिलिऊणं कहिओ आरकिखयाण तद्दोसो । तेहि वि रन्नो पायाण दंसिओ बंधिउं पुरओ ॥ ३९ ॥
भणियं रन्ना पुट्ठेण तेण देवऽज्ज मग्गखिन्नेण । निद्दंतरायकरणेण बाढमुव्वेविएण मए ॥ ४० ॥
चरियं भारह-रामायणाइयं मह कहाणयं किं पि । वारं वारं पुट्ठेण सामि ! एयाए विद्धाए ॥ ४१ ॥
जह मउडमुत्तियाइं हणुएणं खलहलावियाइं तया । लंकाहिवस्स तह देव ! दंसियं दंतपाडणओ ॥ ४२ ॥
तेण जह पुच्छपजलणपयारओ पहु ! पलीविया लंका । तह दीवयगिहपज्जालणेण सव्वं पि सच्चवियं ॥ ४३ ॥
एयं तीए चरियं रामायणसंतियं समख्यायं । इय विहियं देव ! मए उड्ढं देवो पमाणं ति ॥ ४४ ॥
एयाहिं वि देव ! तहेव दूरमुल्लंठमासणपराहिं । महियारियाहिं संताविएण परिभाविऊण मए ॥ ४५ ॥
अन्नो नत्थि उवाओ त्ति सामि ! एयाण वंकभणिरीणं । एयं[1] धरणीए पाडिऊण थालीओ भग्गाओ ॥ ४६ ॥
भव्वं कयं जमेवं सिक्खवियाओ इमाओ पावाओ । एवं पसंसिऊणं मुक्को कुलपुत्तओ रन्ना ॥ ४७ ॥
राडी-कहाणएहिं तो एवं भाय ! पहपयट्टेहिं । गम्मइ सुहेण मग्गे ता कहसु कहाणयं तुमवि ॥ ४८ ॥
तेणुत्तं वच्छ ! न किं पि ताव अहयं कहाणयं कहिउं । जाणामि इय भणंता दोन्नि वि वच्चंति मग्गम्मि ॥ ४९ ॥
अह नियय दुट्ठयाए जंपइ जेट्ठं पुणो वि वसुदत्तो । जीवस्स जओ धम्माओ भाय ! किं वा वि पावाओ ? ॥ ५० ॥

विज्ञातव्यतीकरैः प्राप्त आरक्षिकै र्निर्यान् । राजान्तिके दृष्टस्तयापि महिकारिकया ततः ॥ ३८ ॥
सर्वाभिरपि मिलित्वा कथित आरक्षिकाणां तद्दोषः । तैरपि राजपादानां दर्शितो बद्ध्वा पुरतः ॥ ३९ ॥
भणितं राज्ञा पृष्टेन तेन देवाद्य मार्गखिन्नेन । निद्रान्तरायकरणेनात्यंतमुद्वेजितेन मया ॥ ४० ॥
चरित्रं भारत-रामायणादिकं मम कथानकं किमपि । वारंवारं पृष्टेन स्वामिन् ! एतया वृद्धया ॥ ४१ ॥
यथा मुकुटमूर्तिकानि हनुमता क्षुब्धानि तदा । लङ्काधिपस्य तथा देव ! दर्शितं दन्तपातनात् ॥ ४२ ॥
तेन यथा पृच्छप्रज्वलनप्रकारात्प्रभो ! प्रदीपिता लङ्का । तथा दीपकगृहप्रज्वालनेन सर्वमपि दर्शितम् ॥ ४३ ॥
एवं तस्याश्चरित्रं रामायणसत्कं समाख्यातम् । इति विहितं देव ! मयोर्ध्वं देवः प्रमाणमिति ॥ ४४ ॥
एताभिरपि देव ! तथैव दूरमुल्लण्ठभाषणपराभिः । महिकारिकाभिः सन्तापितेन परिभाव्य मया ॥ ४५ ॥
अन्यो नास्त्युपाय इति स्वामिन् ! एतासां वक्रभणन्तीनाम् । एकां धरण्यां पातयित्वा स्थाल्यो भग्नाः ॥ ४६ ॥
भव्यं कृतं यदेवं शिक्षियता इमाः पापाः । एवं प्रशंस्य मुक्तः कुलपुत्रको राज्ञा ॥ ४७ ॥
कलह-कथानकैस्तावदेवं भ्रात ! पथप्रवृत्तैः । गम्यते सुखेन मार्गे ततः कथय कथानकं त्वमपि ॥ ४८ ॥
तेनोक्तं वत्स ! न किमपि तावदहं कथानकं कथयितुम् । जानामीति भणन्तौ द्वावपि व्रजतो मार्गे ॥ ४९ ॥
अथ निजदुष्टतया जल्पति ज्येष्ठं पुनरपि वसुदत्तः । जीवस्य जयो धर्माद्भ्रात ! किं वापि पापात् ? ॥ ५० ॥

---

१. एकाम् ।

भणियमियरेण धम्माओ भणइ लहुओ वि भाय ! पावाओ । एवं विवयंताणं ताणं जाओ अभिनिवेसो ॥ ५१ ॥
विहिओ य पणो लोयणजुयेण पत्ता य कम्मि वि निवेसे । पुट्ठा विद्धा अत्थाइयाए धम्माओ तेहुत्तं ॥ ५२ ॥
न य पडिवन्नं लहुएण तो पयंपंति तुच्छया तत्थ । भव्वं भणइ वराओ पावेण जओ न धम्मेण ॥ ५३ ॥
पेच्छह पच्चक्खं चिय जे चोरा वंचगा असच्चपिया । दुव्वयणा दुद्धरिसा ते सुहिया वुत्तमेत्थऽत्थे ॥ ५४ ॥
नातीव सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्पतिन् । सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥ ५५ ॥
तथा-
गुणानामेव दोषात् स्याद् धुरि धुर्यो नियुज्यते । असञ्जातकिणस्कन्धः सुखं जीवति गौर्गलिः ॥ ५६ ॥
तत्तो य बंधुदत्तो हारियलोयणजुओ विलक्खमुहो । जाओ वच्चंताण य समागया भीसणा अडवी ॥ ५७ ॥
सा य केरिसा ?-
घुरुघुरियवग्घगुरुजणियभया, गुंजारवभीसणसीहसया । रुरु-हरिणकरुणसंवरपवरा, दुप्पेच्छतरच्छपवत्तदरा ॥५८॥
दीसंतविविहतरुवरविसरा, विहरंतवाह-नाहलयनरा । गुरुपव्वयकंदरदुग्गधरा, पवहंतनीरनिज्झरणसरा ॥ ५९ ॥
एत्थंतरम्मि लज्जं लहुईकाउं दुहा वि लहुएण । कुलमज्जायं अवहत्थिऊण चइऊण गुरुयत्तं ॥ ६० ॥
अवियारिऊण धम्मं तंबारेउं विसिट्ठवावारं । परिहरिउं परलोयं अंगीकाऊण नरयदुहं ॥ ६१ ॥
चिंतियमिमिणा जीवंतएण साहारणा हु घरलच्छी । ता मारिज्जउ एसो दुलहो एवंविहोऽवसरो ॥ ६२ ॥
सामंत्थिऊण एवं भणियं मह देसु लोयणजुयं तं । सच्चपइन्नत्तणओ पडिवन्नं तेण तं तइया ॥ ६३ ॥

भणितमितरेण धर्माभ्दणति लघुकोऽपि भ्रात ! पापात् । एवं विवदतोस्तयोर्जातोऽभिनिवेशः ॥ ५१ ॥
विहितश्च पणो लोचनयुगेन प्राप्तौ च कस्मिन्नपि निवेशे । पृष्टा वृद्धा अर्थादिकाया धर्मात्तैरुक्तम् ॥ ५२ ॥
न च प्रतिपन्नं लघुकेन ततः प्रजल्पन्ति तुच्छकास्तत्र । भव्यं भणति वराकः पापेन जयो न धर्मेण ॥ ५३ ॥
पश्यत प्रत्यक्षं चैव ये चौरा वञ्चका असत्यप्रियाः । दुर्वचना दुधर्षास्ते सुखिका उक्तमत्रार्थे ॥ ५४ ॥
ततश्च बन्धुदत्तो हारितलोचनयुग्मो विलक्षमुखः । जातो व्रजतोश्च समागता भीषणाटवी ॥ ५७ ॥
सा च कीदृशा ? -
घुरघुरितव्याघ्रगुरुजनितभया, गुञ्जारवभीषणसिंहशता । रुरु-हरिणकरुणसंवरप्रवरा, दुष्प्रेक्ष्यर्क्षप्रवृत्तदरा ॥ ५८ ॥
दृश्यद्विविहतरुवरसमूहा, विहरद्व्याघलाहलकनरा । गुरुपर्वतकन्दरदुर्गधरा, प्रवहन्नीरनिर्झरणस्वरा ॥ ५९ ॥
अत्रान्तरे लज्जां लघुकीकृत्वा द्विधापि लघुकेन । कुलमर्यादामपहस्तयित्वा त्यक्त्वा गुरुकत्वम् ॥ ६० ॥
अविचार्य धर्मं विनाश्य विशिष्टव्यापारम् । परिहृत्य परलोकमङ्गीकृत्या नरकदुःखम् ॥ ६१ ॥
चिन्तितमनेन जीवता साधारणा खलु गृहलक्ष्मीः । ततो मार्यतामेष दुर्लभ एवंविधोऽवसरः ॥ ६२ ॥
सामर्थ्यैवं भणितं मम देहि लोचनयुग्मं त्वम् । सत्यप्रतिज्ञत्वात् प्रतिपन्नं तेन तत्तदा ॥ ६३ ॥

---

१. ऋक्ष - रींछ २. नाहलक (लाहलक) भलेच्छ જાતિ ३. तंबार (दे.) विनाश, मृत्युः

तत्तो सो वसुदत्तो नयणुप्पाडणविहिं अयाणंतो । मुक्खत्तेण तहाविहसत्थेणुत्तोलिउं नयणे ॥ ६४ ॥
वलिओ हरिसियहियओ संपयमेगागिणी वि घरलच्छी । मज्झ मविस्सइ पियरे मयम्मि चित्ते वियप्पंतो ॥ ६५ ॥
न मुणइ अकज्जमेयं मए कुणंतेण पाडिओ अप्पा । नयरम्मि दुक्खपउरे धिद्धी ! लोहस्स माहप्पं ॥ ६६ ॥
भणियं च-
धावेइ रोहणं तरइ सायरं भमइ गिरिनिउंजेसु । मारेइ बंधवं पि हु पुरिसो जो होइ धणलुद्धो ॥ ६७ ॥
अडइ बहुं वहइ भरं सहइ छुहं पावमायरइ धट्ठो । कुल-सील-जाइपच्चयठिइं च लोभद्दुओ चयइ ॥ ६८ ॥
एत्थंतरम्मि पेच्छह निद्धस्स सहोयरस्स पावेण । पेच्छंतस्स वि मज्झं कहमिमिणा कज्जमायरियं ॥ ६९ ॥
सूरो हं सुभगो हं सुपवित्तो हं पयावपयडो हं । तामसपडिवक्खो हं सुपरक्कमसत्तिजुत्तो हं ॥ ७० ॥
कमलाण बोहओ हं समुच्चगोत्तुदयपत्तपसरो हं । सव्वुवरि संठिओ हं महिहरसिरदिन्नपाओ हं ॥ ७१ ॥
भुवणत्तयमित्तो हं तेयस्सिसिरोमणि त्ति पत्तो हं । ता किं इमिणा गुणसमुदएण मह कज्जवियलेण ? ॥ ७२ ॥
इय बंधुदत्तवणियं निद्दोसं दुक्खियं सरणरहियं । दट्ठुं अचयंतो लज्जिउ व्व अत्थं गओ तरणी ॥ ७३ ॥
कहमवि सुयणो सुयणस्स आवयावणयणम्मि असमत्थो । आवइपडियं दट्ठुं अपारयंतो अवक्कमइ ॥ ७४ ॥
इय बुद्धीए, मन्नेऽवक्कंतो मह पई सुयणतिलओ । इय परिभाविय संझा वि झत्ति पइमग्गमणुसरिया ॥ ७५ ॥

ततः स वसुदत्तो नयनोत्पाटनविधिमजानन् । मुर्खत्वेन तथाविधशस्त्रेणोत्क्षिप्य नयने ॥ ६४ ॥
वलितो हर्षितहृदयः साम्प्रतमेकाकिन्यपि गृहलक्ष्मीः । मम भविष्यति पितरि मृते चित्ते विकल्पयन् ॥ ६५ ॥
न मुणत्यकार्यमेतन्मया कुर्वता पातित आत्मा । नरके दुःखप्रचुरे धिग्धिग् ! लोभस्य माहात्म्यम् ॥ ६६ ॥
भणितं च -
धावति रोहणं तरति सागरं भ्रमति गिरिनिकुञ्जेषु । मारयति बान्धवमपि हु पुरुषो यो भवति धनलुब्धः ॥ ६७ ॥
अटति बहुं वहति भारं सहते क्षुधां पापमाचरति धृष्टः । कुल-शील-जातिप्रत्ययस्थितिं च लोभद्रुतस्त्यजति ॥ ६८ ॥
अत्रान्तरे पश्यत स्निग्धस्य सहोदरस्य पापेन । पश्यतोऽपि मम कथमनेन कार्यमाचरितम् ॥ ६९ ॥
शूरोऽहं सुभगोऽहं सुपवित्रोऽहं प्रतापप्रकटोऽहम् । तामसप्रतिपक्षोऽहं सुपराक्रमशक्तियुक्तोऽहम् ॥ ७० ॥
कमलानां बोधकोऽहं समुच्चगोत्रोदयप्राप्तप्रसरोऽहम् । सर्वोपरिसंस्थितोऽहं महिधरशिरोदत्तपादोऽहम् ॥ ७१ ॥
भुवनत्रयमित्रोऽहं तेजस्विशिरोमणिरिति प्राप्तोऽहम् । ततः किमनेन गुणसमुदयेन मम कार्यविकलेन ? ॥ ७२ ॥
इति बन्धुदत्तवणिजं निर्दोषं दुःखितं शरणरहितम् । द्रष्टुमपारयल्लज्जित इवास्तं गतस्तरणी ॥ ७३ ॥
कथमपि सुजनः सुजनस्यापदपनयनेऽसमर्थः । आपत्तिपतितं द्रष्टुमपारयन्नपक्रामति ॥ ७४ ॥
इति बुद्धया मन्येऽपक्रान्तो मम पतिः सुजनतिलकः । इति परिभाव्य सन्ध्यापि झटिति पतिमार्गमनुसृता ॥ ७५ ॥

सो वि वणिबंधुदत्तो रुहिरुल्लियनयणजुयलओ जुगवं । अंगीकओ सरीरय-माणसदुक्खेण खीणतणू ॥ ७६ ॥
कहमवि य हत्थफंसप्पयारओ पत्ततरुतलपएसो । परिभाविन्तो नियकम्मपरिणइं जाव वीसमइ ॥ ७७ ॥
ताव य पयईए चेव दुहयरी तमविलुत्तसम्मग्गा । कलिकालकरमणिमहिमामणुकुव्वंती निसा पत्ता ॥ ७८ ॥
तीए तमपडलाइं विप्फुरियाइं समंतओ भुवणे । संतावकारयाइं खलदुन्नयविलसियाइं व ॥ ७९ ॥
तत्तो य घूयसंघा घुग्घुइया निग्घिणा सवणकडुया । नीयजणा इव दुव्वयणजणियसुइसुयणसंतावा ॥ ८० ॥
कत्थ वि य घोरवग्घा घुरुहुरिया भयंकरा करालमुहा । लंचोवयारकलिया पिसुणा इव पयडपेसुन्ना ॥ ८१ ॥
अवरत्थ दुसहखरतरकरपसरा तासकारिणो कूरा । कलिकालनरिंदा इव गुंजारवयंति केसरिणो ॥ ८२ ॥
उव्वेयकारिणीओ भल्लुंकीओ भसंति भमिराओ । कुलडाउ व तरलयराउ उभयकुलफंसणकरीओ ॥ ८३ ॥
इय सो सावयभीओ समीहए तरुसिरे समारोढुं । नवरमिमो मूलाओ समुन्नओ सज्जणो व्व तरू ॥ ८४ ॥
साहाओ वि हु कुलबालिय व्व पणयाओ तस्स वरतरुणो । अवलंबिऊण ताओ साहाविवरे समल्लीणो ॥ ८५ ॥
अड्ढवियड्ढाओ चंपिऊण कोमललयाओ ताणुवरिं । रइऊण पत्तसयणं तम्मि पसुत्तो भयविमुक्को ॥ ८६ ॥
जावऽच्छइ ता दीवंतराओ पत्ताण सुणइ पक्खीणं । सिहरम्मि जंपियमिमो महल्लजणएण पुट्ठाणं ॥ ८७ ॥
भो ! को कुओ इहाऽऽओ ? केण व दीवंतरम्मि किं दिट्ठं ? निसुयं च कहइ सव्वं मह पुच्छंतस्स नियपिउणो ॥८८॥
तेहि वि जं जहवत्तं दिट्ठं जं जेण जम्मि दीवम्मि । तं तह सव्वं कहियं नवरमिमाणं भणइ एगो ॥ ८९ ॥

सोऽपि वणिग्बन्धुदत्तो रुधिराद्रितनयनयुगलको युगपत् । अङ्गीकृतः शारीरक-मानस दुःखेन क्षीणतनुः ॥ ७६ ॥
कथमपि च हस्तस्पर्शप्रकारात् प्राप्ततरुतलप्रदेशः । परिभावयन्निजकर्मपरिणतिं यावद्विश्राम्यति ॥ ७७ ॥
तावच्च प्रकृत्या चैव दुःखकरी तमोविलुप्तसमग्रा । कलिकालकरणिमहिमानमनुकुर्वन्ती निशा प्राप्ता ॥ ७८ ॥
तस्यास्तमःपटलानि विस्फुरितानि समन्ततो भुवने । सन्तापकारकाणि खलदुर्नयविलसितानीव ॥ ७९ ॥
ततश्च घूकसङ्घाः घुघुयिता निर्घृणाः श्रवणकटूकाः । नीचजना इव दुर्वचनजनितशुचिसुजनसन्तापाः ॥ ८० ॥
कुत्रापि च घोरव्याघ्राः घुरघुरिता भयंकराः करालमुखाः । लञ्चोपचारकलिताः पिशुना इव प्रकटपैशुन्याः ॥ ८१ ॥
अपरत्र दुःषहखरतरकरप्रसरास्त्रासकारिणः क्रूराः । कलिकालनरेन्द्रा इव गुञ्जारवन्ति केसरिणः ॥ ८२ ॥
उद्वेगकारिण्यो भल्लुङ्क्यो भसन्ति भ्रमन्त्यः । कुलटा इव तरलतरा उभयकुलमर्षणकारिण्यः ॥ ८३ ॥
इति स श्वापदभीतः समीहते तरुशिरसि समारोढुम् । नवरमयं मूलात् समुन्नतः सज्जन इव तरुः ॥ ८४ ॥
शाखा अपि हु कुलबालिका इव प्रणतास्तस्य वरतरोः । अवलम्ब्य ताः शाखाविवरे समालीनः ॥ ८५ ॥
अर्दवितर्दात् स्पृष्ट्वा कोमललतास्तासामुपरि । रचयित्वा पत्रशयनं तस्मिन् प्रसुप्तो भयविमुक्तः ॥ ८६ ॥
यावदास्ते तावद्द्वीपान्तरात् प्राप्तानां शृणोति पक्षीणाम् । शिखरे जल्पितमयं महज्जनकेन पृष्टानाम् ॥ ८७ ॥
भो ! कः कुत इहाऽऽगतः ? केन वा द्विपान्तरे किं दृष्टम् ? । निश्रुतं च कथयति सर्वं मम पृच्छतो निजपितुः ॥ ८८ ॥
तैरपि यद्यथावृत्तं दृष्टं यद्येन यस्मिन् द्वीपे । तत्तथा सर्वं कथितं नवरमेतेषां भणत्येकः ॥ ८९ ॥

अहमज्ज ताय ! पत्तो सिंहलदीवम्मि तत्थ नरवइणो । मयणधरणि व्व रूवेण मयणरेहा सुया तस्स ॥ ९० ॥
तीए य अच्छिवियणाए पीडियाए तइज्जओ मासो । विज्जेहि वि परिचत्ता पिउणा वि दवाविओ पडहो ॥ ९१ ॥
जो मह धूयं पउणं करेइ वियरामि तस्स तीए समं । अद्धं रज्जस्स तयं च को वि न य पडहयं छिवइ ॥ ९२ ॥
अज्ज दिणं छट्ठं पडहयस्स ता ताय ! ओसहं तीए । किं नत्थि तिहुयणे वि हु ? किं वा अत्थि ? त्ति मे कहसु ॥९३॥
अत्थि त्ति परं वच्छय ! केत्तिय एवंविहाणि वत्थूणि । जाणंतेहि वि उग्घाडएण वयणेण सीसंति ? ॥ ९४ ॥
तेणुत्तं ताय ! महंतकोउयं कहसु मज्झ जमिह वणे । न य को वि सुणइ जइ एवमेस रुक्खो समग्गाणं ॥ ९५ ॥
वाहीणमोसहं नयणवाहिणो पुण विसेसओ वच्छ ! । ता जइ इमस्स तरुणो को वि हु परिक्खवइ पत्तरसं ॥ १६ ॥
तीए नयणेसु तो सा पउणिज्जइ निच्छयं इमं सोउं । चिंतइ लोयणवियणाए बाहिओ बंधुदत्तवणी ॥ ९७ ॥
ताव परिक्खामि अहं जइ मह पउणीभवंति नयणाणि । ता जायपच्चओ हं पुरओ काहामि जं जुत्तं ॥ ९८ ॥
इय परिभाविय सम्मं कोमलपत्ताणि चाविऊण रसं । खिवइ नयणेसु पिंडी च बंधइ ताण चेवुवरिं ॥ ९९ ॥
जा खणमेगं चिट्ठइ ता मणि-मंतोसहिप्पभावस्स । गाढमचिंतत्तणओ नट्ठा वियणा असेसा वि ॥ १०० ॥
जावय रयणिविरामे अवणेउं पट्टयं नियइ ताव । पुव्वं व पेच्छिउं लोयणाणि जाओ पहिट्ठमणो ॥ १०१ ॥
ओयरिऊणं तरुणो सरम्मि पक्खालिऊण मुहमाई । परिविहियपाणवित्ती फलाइणा गमइ तं दियहं ॥ १०२ ॥
पुणरवि तहेव चडिउं चिट्ठइ तरुणो लयंतरालम्मि । संझासमए भारुंडपक्खिणो पेच्छइ तहेव ॥ १०३ ॥

अहमद्य तात ! प्राप्तः सिंहलद्वीपे तत्र नरपतेः । मदनगृहिणीव रुपेण मदनरेखा सुता तस्य ॥ ९० ॥
तस्याश्चाक्षिवेदनायाः पीडितायास्तृतीयो मासः । वैद्येरपि परित्यक्ता पित्रापि दापितः पटहः ॥ ९१ ॥
यो मम दुहितरं प्रगुणां करोति वितरामि तस्य तया समम् । अर्द्धं राज्यस्य तकच्च कोऽपि न च पटहं स्पृशति ॥ ९२ ॥
अद्य दिनं षष्टं पटहस्य ततस्तात ! औषधं तस्याः । किं नास्ति त्रिभुवनेऽपि हु ? किं वास्ति ? इति मे कथय ॥ ९३ ॥
अस्तीति परं वत्सक ! कियन्त्येवंविधानि वस्तूनि । जानद्भिरप्युद्घाटनेन वचनेन कथयन्ति ? ॥ ९४ ॥
तेनोक्तं तात ! महाकौतूकं कथय मम यदिह वने । न च कोऽपि शृणोति यद्येवमेष वृक्षः समग्राणाम् ॥ ९५ ॥
व्याधीनामौषधं नयनव्याधेः पुन र्विशेषतो वत्स ! ततो यदि एतस्य तरोः कोऽपि हु प्रक्षिपति पत्ररसम् ॥ ९६ ॥
तस्या नयनयोस्तदा सा प्रगुण्यते निश्चयमिदं श्रुत्वा । चिन्तयति लोचनवेदनाया बाधितो बन्धुदत्तवणिक् ॥ ९७ ॥
तावत्परीक्षेऽहं यदि मम प्रगुणीभवतो नयने । ततो ज्ञातप्रत्ययोऽहं पुरतः करिष्यामि यद्युक्तम् ॥ ९८ ॥
इति परिभाव्य सम्यक् कोमलपात्राणि चर्वित्वा रसम् । क्षिपति नयनयोः पिण्डीं च बन्धाति तयोरुपरि ॥ ९९ ॥
यावत्क्षणमेकं तिष्ठति तावन्मणि-मन्त्रौषधिप्रभावस्य । गाढमचिन्त्यत्वान्नष्टा वेदनाशेषापि ॥ १०० ॥
यावच्च रजनिविरामेऽपनीय पट्टकं पश्यति तावत् । पूर्वमिव दृष्ट्वा लोचने जातः प्रहृष्टमनाः ॥ १०१ ॥
अवर्तीर्य तरोः सरसि प्रक्षाल्य मुखादयः । परिविहितप्राणवृत्तिः फलादिना गमयति तं दिवसम् ॥ १०२ ॥
पुनरपि तथैवारुह्य तिष्ठति तरो र्लतान्तराले । सन्ध्यासमये भारण्डपक्षिणः प्रेक्षते तथैव ॥ १०३ ॥

चिंतियमिमिणा पयडेमि पोरिसं पउणयामि निवधूयं । गेहे गओ पडिस्सामि तत्थ पुणरवि अणत्थम्मि ॥ १०४ ॥
पउणीभूओ पत्ताण गिन्हिउं तस्स अमयफलतरुणो । सिंहलदीवे गमणं निवेइवं जेण जणयस्स ॥ १०५ ॥
चरणेसु अप्पयं बंधिऊण भारुंडपक्खिणो तस्स । वसिओ रयणीविगमे नीओ सउणेण तेण तहिं ॥ १०६ ॥
छिविऊण पडहयमिमो पत्तो पुहईवइस्स पासम्मि । कयसमुचियपडिवत्ती पुट्ठो रन्ना कुसलवत्तं ॥ १०७ ॥
संझासमए कारावियऊण बलिमंडलाइयमसेसं । वाहरिय मयणरेहं नयणचिगिच्छं कुणइ सव्वं ॥ १०८ ॥
जाया तहेव निरुया सोहणदिवसे विवाहिओ कन्नं । दिन्नं रज्जस्सऽद्धं रन्ना पत्तो पसिद्धिं च ॥ १०९ ॥
भुंजइ पंचपयारे विसए सह तीए नेहसाराए । अह अन्नया य पत्तो वसुदत्तो विहिनिओगेण ॥ ११० ॥
ववहरणत्थं वहणेण तयणु निवदंसणत्थमत्थाणे । पत्तो महरिहमणहरपाहुडहत्थो सपरिवारो ॥ १११ ॥
पेच्छइ य विरायतं सहोयरं तत्थ रायलच्छीए । सम्मं वियाणिऊणं धंसक्किओ[1] माणसे सहसा ॥ ११२ ॥
चिंतइ य कूरकम्मो जइ कह वि हु मज्झ वइयरं एसो । रन्नो पयडइ ता हं हियसव्वस्सो विणस्सामि ॥ ११३ ॥
ता केणावि उवाएण मरइ जइ एस तो भवे लट्ठं । एसो पउट्ठचित्तो ववहरइ अभिन्नमुहराओ ॥ ११४ ॥
अह अन्नदिणे विजणम्मि जाइ मायाए बंधुदत्तगिहे । पुच्छियकुसलोदंता परोप्परं जाव अच्छंति ॥ ११५ ॥
ता लहुएणं भणिओ सहोयरो भाय ! ताव कइ वि दिणे । मा मं जाणाविज्जसु रन्नो तेण वि य पडिवन्नं ॥११६॥
इय ते सकम्मनिरया सहोयरा दो वि तम्मि दीवम्मि ! निम्मल-कलुसियहियया गमंति दिवसाणि भणियं च ॥११७॥

चिन्तितमनेन प्रकटयामि पौरुषं प्रगुणयामि नृपदुहितरम् । गृहे गतः पतिष्यामि तत्र पुनरप्यनर्थे ॥ १०४ ॥
प्रगुणीभूतः पत्राणि गृहीत्वा तस्यामृतफलतरोः । सिंहलद्वीपे गमनं निवेद्यतं येन जनकस्य ॥ १०५ ॥
चरणेष्वात्मानं बद्ध्वा भारण्डपक्षिणस्तस्य । वसितो रजनीविरामे नीतः शकुनेन तेन तत्र ॥ १०६ ॥
स्पृष्ट्वा पटहमयं प्राप्तः पृथिवीपतेः पार्श्वे । कृतसमुचितप्रतिपत्तिः पुष्टो राज्ञा कुशलवार्ताम् ॥ १०७ ॥
सन्ध्यासमये कारयित्वा बलिमण्डलादिकमशेषम् । व्याहृत्य मदनरेखां नयनचिकित्सां करोति सर्वाम् ॥ १०८ ॥
जाता तथैव निरुजा शोभनदिवसे विवाहितः कन्याम् । दत्तं राज्यस्यार्द्धं राज्ञा प्राप्तः प्रसिद्धिं च ॥ १०९ ॥
भुनक्ति पञ्चप्रकारन् विषयान् सह तया स्नेहसारया । अथान्यदा च प्राप्तो वसुदत्तो विधिनियोगेन ॥ ११० ॥
व्यवहारार्थं वाहनेन तदनु नृपदर्शनार्थमास्थाने । प्राप्तो महार्हमनोहरप्राभृतहस्तः सपरिवारः ॥ १११ ॥
प्रेक्षते च विराजमानं सहोदरं तत्र राजलक्ष्म्याः । समं विज्ञाय धसकृत मानसे सहसा ॥ ११२ ॥
चिन्तयति च क्रूरकर्मा यदि कथमपि हु मम व्यतीकरमेषः । राज्ञः प्रकटयति तदाहं हृतसर्वस्वो विनक्ष्यामि ॥ ११३ ॥
ततः केनाप्युपायेन म्रियते यद्येष ततो भवेच्छोभनम् । एष प्रदुष्टचित्तो व्यवहरत्यभिन्नमुखरागः ॥ ११४ ॥
अथान्यदिने विजने याति मायया बन्धुदत्तगृहे । पृष्टकुशलोदन्तौ परस्परं यावदासेते ॥ ११५ ॥
तावल्लघुकेन भणितः सहोदरो भ्रात ! तावत्कत्यपि दिनान् । मा मां ज्ञापय राज्ञस्तेनापि च प्रतिपन्नम् ॥ ११६ ॥
इति तौ स्वकर्मनिरतौ सहोदरौ द्वावपि तस्मिन् द्वीपे । निर्मल-कलुषितहृदयौ गम्येते दिवसानि भणितं च ॥ ११७ ॥

---

१. (दे.) संभ्रम प्राप्त इत्यर्थः ।

कलुसमई कलुसं चिय विमला विमलं परं पि पिच्छंति । अत्ताणयं व आयरसए व्व जेणं जणो नियइ ॥ ११८ ॥
अवरं च-
जाणंति पियं चिय वोत्तुमुत्तमा अमयमुत्तिणो नूणं । किं अमयाओ अन्नं झरिउं मयलंछणो मुणइ ? ॥ ११९ ॥
अह अन्नदिणे विम्हइयमाणसो तम्मि चेव अत्थाणे । नियए सहोयरे निग्गयम्मि रायाइपच्चक्खं ॥ १२० ॥
भणइ सविसायहियओ वसुदत्तो महिऊण करजुयलं । को सक्कइ वन्नेउं नयरसिरिं एगजीहाए ? ॥ १२१ ॥
परमिह विरूवमेगं पयई एसा हवे पयावइणो । जं पडिपुन्नं एसो न कुणइ कत्थइ सनिम्माणं ॥ १२२ ॥
इय सव्वया वि एसो कुणमाणो अन्नया नरिंदेण । भणिओ विजणे भो भद्द ! किं विरूवं मह पुरीए ? ॥ १२३ ॥
नीससिउं सविसायं भणियं नरनाह ! अकहणिज्जं पि । तुज्झ कहिज्जइ नवरं पयासियव्वं न कस्सावि ॥ १२४ ॥
पडिवन्ने नरवइणा भणियं पहु ! एस तुज्झ जामाऊ । अम्ह पुरे सुपसिद्धो अंगरुहो वेज्जडुंबस्स ॥ १२५ ॥
तं सोउं नरनाहो चिंतइ एवं पि घडइ जुत्तीए । अन्नह कह मह धूया परिचत्ता सव्ववेज्जेहिं ? ॥ १२६ ॥
एएणं पन्नविया ? ता जइ सच्चं जहा इमो भणइ । ता हयविहिणा अम्हे विडंबिया पावकम्मेण ॥ १२७ ॥
एवं विसन्नहियओ पुट्ठो राया सुबुद्धिसचिवेण । देव ! किमेयं ? तेण वि कहियं वसुदत्तवणिभणियं ॥ १२८ ॥
सचिवेणुत्तं जइ देव ! एवमेयं तओ गुरू अयसो । ववहारियाणं ठाणं जमिमा दीवम्मि तुह नयरी ॥ १२९ ॥
ता जावऽज्ज वि न भवइ पायडमेयं नरिंद जणमज्झे । तावोवायं चिंतसु एत्थऽत्थे भणइ तो राया ॥ १३० ॥

कलुषमतिः कलुषं चैव विमला विमलं परमपि पश्यन्ति । आत्मानमिवादर्शे इव येन जनः पश्यति ॥ ११८ ॥
अपरं च -
ज़ानन्ति प्रियं चैव वक्तुमुत्तमा अमृतमूर्तयो नूनम् । किममृतादन्यत्स्यन्दितुं मृगलाञ्छनो मुणति ? ॥ ११९ ॥
अथान्यदिने विस्मितमानसस्तस्मिंश्चैवास्थाने । निजके सहोदरे निर्गते राजादिप्रत्यक्षम् ॥ १२० ॥
भणति सविषादहृदयो वसुदत्तो मर्दित्वा करयुगलम् । कः शक्यते वर्णयितुं नगरश्रियमेकजीव्हया ? ॥ १२१ ॥
परमिह विरुपमेकं प्रकृतिरेषा भवेत् प्रजापतेः । यत्प्रतिपूर्णमेष न करोति कुत्रचित् स्वनिर्माणम् ॥ १२२ ॥
इति सर्वदाप्येष कुर्वाणोऽन्यदा नरेन्द्रेण । भणितो विजने भो भद्र ! किं विरुपं मम पूर्याम् ? ॥ १२३ ॥
निःश्वस्य सविषादं भणितं नरनाथ ! अकथनीयमपि । तव कथ्यते नवरं प्रकाशितव्यं न कस्यापि ॥ १२४ ॥
प्रतिपन्ने नरपतिना भणितं प्रभो ! एष तव जामाता । अस्मत्पुरे सुप्रिसद्धोऽङ्गरुहो वैद्यडुम्बस्य ॥ १२५ ॥
तत श्रुत्वा नरनाथश्चिन्तयत्येतदपि घटति युक्त्या । अन्यथा कथं मम दुहिता परित्यक्ता सर्ववैद्यैः ॥ १२६ ॥
एतेन प्रगुणिता ? ततो यदि सत्यं यथायं भणति । ततो हतविधिना वयं विडम्बिता पापकर्मणा ॥ १२७ ॥
एवं विषण्णहृदयः पृष्टो राजा सुबुद्धिसचिवेन । देव ! किमेतत् ? तेनापि कथितं वसुदत्तवणिग्भणितम् ॥ १२८ ॥
सचिवेनोक्तं यदि देव ! एवमेतत्ततो गुरुरयशः । व्यवहारिकाणां स्थानं यदिमा द्वीपे तव नगरी ॥ १२९ ॥
ततो यावदद्यापि न भवति प्रकटमेतन्नरेन्द्र ! जनमध्ये । तावदुपायं चिन्तय अत्रार्थे भणति ततो राजा ॥ १३० ॥

तुममेव बुद्धिमंतो ता जं किच्चं तमेव मे कहसु । तेण वि भणियं पच्छन्नमेव वावायसु इमं ति ॥ १३१ ॥
तं सोउं नरनाहो दुहियादुक्खेण दुक्खिओ अहियं । कह कायव्वा एसा मयम्मि जामाउए दुहिया ? ॥ १३२ ॥
पडिवन्ने नरवइणा रहम्मि पुट्ठा इमं मयणरेहा । किं अकुलीणवियारो सच्चविओ को वि कइया वि ॥ १३३ ॥
नियपइणो ? पुत्तीए तीयुत्तं ताय ! चंदबिंबम्मि । अज्ज वि अत्थि कलंको न उणो पइणो मह कयाइ ॥ १३४ ॥
सरलो सच्चपइन्नो पुव्वाभासी कयन्नुओ सुहओ । परउवयारेक्करओ चाई सूरो महासत्तो ॥ १३५ ॥
किं बहुणा ? कोउयहारिएण विहिणा विणिम्मिओ एसो । केवलगुणमयमुत्ती पडो व्व परगुज्झरक्खट्ठा ॥ १३६ ॥
इय सोउं सुट्ठुयरं अभिभूओ माणसेण दुक्खेण । कहमेरिसनररयणं विणासियव्वं ? अहो ! पावं ॥ १३७ ॥
पुणरवि सचिवेणुत्तं किज्जउ निवनीइमणुसरंतेहिं । इय निच्छिऊणमेसो संझासमयम्मि वाहरिओ ॥ १३८ ॥
सुहपुन्नपेरिएणं तम्मि दिणे तेण पेसिओ भाया । नियवेसमप्पिऊणं रायउलेऽनायतत्तेहिं ॥ १३९ ॥
पच्चइयनरेहिं तओ वसुदत्तो चेव मारिओ तेहिं । रन्नो निवेइयं तं च निसुणिउं मुच्छिओ राया ॥ १४० ॥
सिसिरोवयारसंपत्तचेयणो वाहरेइ नियधूयं । किं ताय ! इमं ? ति सुयाए पुच्छिओ भणइ पावो हं ॥ १४१ ॥
जं तुह वेहव्वकरो तीए भणियं किमेरिसं ताय ! ? मज्झ पई नियगेहे जीवउ दीवालियं लक्खं ॥ १४२ ॥
सेज्जाए सुहपसुत्तं मोत्तुमहं तस्स चेव पासाओ । तुज्झ सयासे पत्ता मममिव ता पेच्छ जामाउं ॥ १४३ ॥
निव्वुयहियओ जाओ तं सोउं नरवई रहे पुट्ठो । सव्वं पि बंधुदत्तो तेण वि तच्चेट्ठियं कहियं ॥ १४४ ॥

त्वमेव बुद्धिमान् ततो यत् कृत्यं त्वमेव मां कथय । तेनापि भणितं प्रच्छन्नमेव व्यापादयेममिति ॥ १३१ ॥
तत् श्रुत्वा नरनाथो दुहितृदुःखेन दुःखितोऽधिकम् । कथं कर्तव्येषा मृते जामातरि दुहिता ? ॥ १३२ ॥
प्रतिपन्ने नरपतिना रहसि पृष्टेदं मदनरेखा । किमकुलीनविचारो दृष्ट कोऽपि कदापि ॥ १३३ ॥
निजपत्युः ? पुत्र्या तयोक्तं तात ! चन्द्रबिम्बे । अद्याप्यस्ति कलङ्को न पुनः पत्युर्मम कदाचित् ॥ १३४ ॥
सरलः सत्यप्रतिज्ञः पूर्वाभ्यासी कृतज्ञः सुभगः । परोपकारैकरतस्त्यागी शूरो महासत्त्वः ॥ १३५ ॥
किं बहुना ? कौतूकधारिकेण विधिना विनिर्मित एषः । केवलगुणमयमूर्तिः पट इव परगुप्तरक्षणार्थाय ॥ १३६ ॥
इति श्रुत्वा सुष्ठुतरमभिभूतो मानसेन दुःखेन । कथमीदृशनररत्नं विनाशितव्यमहो ! पापम् ॥ १३७ ॥
पुनरपि सचिवेनोक्तं क्रियतां नृपनीतिमनुसरद्भिः । इति निश्चित्वैष सन्ध्यासमये व्याहृतः ॥ १३८ ॥
शुभपुण्यप्रेरितेन तस्मिन् दिने तेन प्रेषितो भ्राता । निजवेशमर्पयित्वा राजकुलेऽज्ञाततत्वैः ॥ १३९ ॥
प्रत्यायितनरैस्ततो वसुदेवश्चैव मारितस्तै । राज्ञे निवेदितं तच्च निश्रुत्य मूर्च्छितो राजा ॥ १४० ॥
शिशिरोपचारसम्प्राप्तचेतनो व्याहरति निजदुहितरम् । किं तात ! इदमिति ? सुतया पृष्टो भणति पापोऽहम् ॥ १४१ ॥
यत्तव वैधव्यकरस्तया भणितं किमीदृशं तात !? । मम पति र्निजगृहे जीवतु दीपालिकां लक्षम् ॥ १४२ ॥
शय्यायां सुखप्रसुप्तं मुक्त्वाहं तस्य चैव पार्श्वात् । तव सकाशे प्राप्ता ममेव ततः प्रेक्षस्व जामातरम् ॥ १४३ ॥
निवृत्तहृहदयो जातस्तच्छ्रुत्वा नरपती रहसि पृष्टः । सर्वमपि बन्धुदत्तस्तेनापि तच्चेष्टितं कथितम् ॥ १४४ ॥

वसुदत्तवइयरो वि हु जणम्मि न य पयडिओ अयसहेऊ । पेसविय नियय पुरिसे सपरियणो आणिओ जणओ ॥ १४५ ॥
विहिओ विच्छड्डेणं नयरीए महूसवो नरिंदेण । अज्जं चिय जं एसो जाओ जामाउओ मज्झ ॥ १४६ ॥
जाया य वंससुद्धी स-परेसु सुहाण कारओ जाओ । रज्जसिरिं परिपालिय सुगइं पत्तो कमेणेसो ॥ १४७ ॥
धम्मेण जओ जाओ एवमिमो बंधुदत्तवणियस्स । पावाओ खयं पत्तो वसुदत्तो दत्तस-परदुहो ॥ १४८ ॥

॥ वणिग्बन्धुदत्ताख्यानं समाप्तम् ॥ १०६ ॥

जह पुव्वकम्मविरइयमवस्समेएसि कज्जमावडियं । तह सव्वस्स वि जायइ सक्को वि न वारिउं तरइ ॥ १ ॥

पापात्मके गतवति क्षयमन्तराये, पुण्यात्मनो गुण(सु) कर्मवशान्नरस्य ।
श्रीवेश्महेमगृह-पुत्र-कलत्रजातं, यद् यस्य पूर्वविहितं भुवि तस्य तत् स्यात् ॥ २ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचितवृत्तावाख्यानकमणिकोशे अवश्यप्राप्तव्यप्राप्तिदर्शकः पञ्चत्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३५ ॥

वसुदत्तव्यतीकरोऽपि हु जने न च प्रकटितोऽयशहेतुः । प्रेषयित्वा निजकपुरुषान् सपरिजन आनीतो जनकः ॥ १४५ ॥
विहितो विभवेन नगर्यां महोत्सवो नरेन्द्रेण । अद्य चैव यदेष जातो जामाता मम ॥ १४६ ॥
जाता च वंशवृद्धिः स्वपरेषु सुखानां कारको जातः । राज्यश्रियं परिपाल्य सुगतिं प्राप्तः क्रमेणैषः ॥ १४७ ॥
धर्मेण यतो जात एवमयं बन्धुदत्तवणिजः । पापात्क्षयं प्राप्तो वसुदत्तो दत्तस्व-परदुःखः ॥ १४८ ॥

॥ वणिग्बन्धुदत्ताख्यानकं समाप्तम् ॥ १०६ ॥

यथा पूर्वकर्मविरचितमवश्यमेतेषां कार्यमापतितम् ।
तथा सर्वस्यापि जायते शक्रोऽपि न वारयितुं शक्नोति ॥ १ ॥

● ● ●

[३६. सम्पद्विपदोः सत्पुरुषसमतावर्णनाधिकारः]

पूर्वविहितस्य नाशो (ना) स्तीत्यभिहितम् । साम्प्रतं पूर्वविहितवशादेव प्राप्तयोर्व्यसन-सम्पदोः सत्पुरुषैस्तुल्यैर्भवितव्यमित्यमुमर्थमभिधित्सुराह-

वसणम्मि समावडिया मुयंति धीरत्तणं न सप्पुरिसा ।
विहवे वि विगयगव्वा नायं नरविक्कमकुमारो ॥ ४५ ॥

व्याख्या-'व्यसने' विपद्यपि 'समापतिताः' प्राप्ताः 'मुञ्चन्ति' त्यजन्ति 'धीरत्वं' धैर्यं 'न' नैव 'सत्पुरुषाः' उत्तमाः । 'विभवे' सम्पद्यपि समापन्ना । इति द्रष्टव्यम् 'विगतगर्वाः' परित्यक्ताभिमानाः । 'ज्ञातं' दृष्टान्तः 'नरविक्रम(कुमारः')' नरविक्रमाभिधानो राजपुत्र इत्यक्षरार्थः । भावार्थस्तु आख्यानकादवसेयः । तच्चेदम्-

अत्थि परचक्क-दुब्भिक्ख-डमरविरहाइनायरगुणेहिं । अलयं पि जयंती जणवयम्मि नयरी जयंति त्ति ॥ १ ॥
तत्थ य राया रिउकरडिकरडदलणेक्कपच्चलो धणियं । गरुयपरक्कमभवणं समत्थि सीहो व्व नरसीहो ॥ २ ॥
जस्स गुणन्नियधम्मप्पमोइया मग्गणा सुसद्दजुया । गंतुं वंछियठाणे परसियकित्तिं वियारेंति ॥ ३ ॥
जस्स य रिउजणसंहारकारओ जलयसामलच्छओ । जमरायबाहुदंडो व्व सहइ समरंगणे खग्गो ॥ ४ ॥
तस्स य दुइज्जचितं व राइणो परमपेम्मसव्वस्सं । चंपयपल्लवहत्था चंपयमाला महादेवी ॥ ५ ॥

नरविक्रम कुमाराख्यानकम् ॥ १०७ ॥

अस्ति परचक्र-दुर्भिक्ष-डमरविरहादिनागरगुणैः । अलकामपि जयन्ती जनपदे नगरी जयन्तीति ॥ १ ॥
तत्र च राजा रिपुकरटिकरटदलनैकसमर्थोऽत्यन्तम् । गुरुकपराक्रमभवनं समस्ति सिंह इव नरसिंहः ॥ २ ॥
यस्य गुणान्वितधर्मप्रमोदिता मार्गणाः सुशब्दयुताः । गत्वा वाञ्छितस्थाने स्पर्शितकीर्तिं वितारयन्ति ॥ ३ ॥
यस्य च रिपुजनसंहारकारको जलदश्यामलच्छायः । यमराजबाहुदण्ड इव राजते समराङ्गणे खड्गः ॥ ४ ॥
तस्य च द्वितीयचित्तमिव राज्ञः परमप्रेमसर्वस्वम् । चम्पकपल्लवहस्ता चम्पकमाला महादेवी ॥ ५ ॥

जीसे सविलासनिरिक्खिएसु वंकत्तणं न पयईए । कुडिलत्तं चिहुरेसुं न उणो हिययम्मि कइया वि ॥ ६ ॥
जम्मंतरसमुवज्जियपुन्नपभावाओ अणुहवंतस्स । तीए समं विसयसुहं ईसाइ अदूसियमणस्स ॥ ७ ॥
नियमइपहावनिज्जियसुरगुरुणो रज्जचिंतणपरस्स । आरोवियरज्जधुरं सुकुलुग्गयमंतिवग्गस्स ॥ ८ ॥
पाएण सुत्थहिययस्स तह वि नीइ त्ति वसणरहियस्स । पुव्विल्लरायाण नाएण पालयंतस्स रज्जभरं ॥ ९ ॥
तथा हि-
नाएणं परिपालइ सिट्ठजणं दुट्ठनिग्गहं कुणइ । निविसइ रायत्थाणे परिचिंतइ दूयकज्जाइं ॥ १० ॥
चउरंगबलं पालइ परिभावइ कोस-कोट्ठयाराइ । अंतेउरं निरूवइ निसुणइ सद्धम्मसत्थाइं ॥ ११ ॥
सच्चाइरज्जसंगयकिच्चमसेसं पि चिंतयंतस्स । अप्पडिमबहुपयावस्स तस्स कालो अइक्कमइ ॥ १२ ॥
परिणयपायाए जामिणीए अह अन्नया य नरवइणो । सत्तंगरज्जसंगयसुहसंपयसुत्थहिययस्स ॥ १३ ॥
धम्मऽत्थ-कामलक्खणतिवग्गसारं सुहं पवन्नस्स । सुहनिद्दा-वल्लहकामिणीहिं परिसिढिलियंगस्स ॥ १४ ॥
सुइसुहयछेयमागहवयणविणिस्सरियमिस्सरियचिन्हं । पाहाउयरायपयारसुंदरं सुकइरइयं व ॥ १५ ॥
सुविसुद्धजाइकलियं सुवन्नपयसंजुयं कलत्तं व । गाहाजुयलं सुइजुयलमसरिसं विसइ तस्स इमं ॥ १६ ॥
विद्धिं वयंतमसमं गुरुवंसं खमपइट्ठसुहमूलं । कमविद्ध-निद्ध-घणपव्व-पत्त-साहासमाइन्नं ॥ १७ ॥
कज्जभरे आरोविय पुत्तं पुरिसस्स सगुणधम्ममई । जावऽज्ज वि न पवत्तइ ता कत्तो निव्वुइसुहाइं ? ॥ १८ ॥

यस्याः सविलासनिरीक्षितेषु वक्रत्वं न प्रकृत्या । कुटिलत्वं चिकुरेषु न पुन र्हृदये कदापि ॥ ६ ॥
जन्मान्तरसमुपार्जितपुण्यप्रभावादनुभवतः । तस्याः समं विषयसुखमिर्ष्याद्यदुषितमनसः ॥ ७ ॥
निजमतिप्रभावनिर्जितसुरगुरो राज्यचिन्तनपरस्य । आरोपितराज्यधुरां सुकुलोद्गतमन्त्रिवर्गस्य ॥ ८ ॥
प्रायेण सुस्थहृदयस्य तथापि नीतिरिति व्यसनरहितस्य । पूर्वराज्ञां ज्ञातेन पालयतो राज्यभरम् ॥ ९ ॥
तथाहि -
न्यायेन परिपालयति शिष्टजनं दुष्टनिग्रहं करोति । निविशति राजास्थाने परिचिन्तयति दूतकार्याणि ॥ १० ॥
चतुरङ्गबलं पालयति परिभावयति कोश-कोष्टागाराणि । अन्तःपुरं निरुपयति निशृणोति सद्धर्मशास्त्राणि ॥ ११ ॥
सत्यादिराज्यसंगमकृत्यमशेषमपि चिन्तयतः । अप्रतिमबहुप्रतापस्य तस्य कालोऽतिक्रामति ॥ १२ ॥
परिणतप्रायाया यामिन्या अथान्यदा च नरपतेः । सप्ताङ्गराज्यसंगतसुखसंपत्सुस्थहृदयस्य ॥ १३ ॥
धर्मा-ऽर्थ-कामलक्षणत्रिवर्गसारं सुखं प्रपन्नस्य । सुखनिद्रा-वल्लभकामिनिभिः परिशिथिलाङ्गस्य ॥ १४ ॥
श्रुतिसुभगछेकमागधवचनविनिःसृतमिश्वरीयचिह्नम् । प्रभातिकराजप्रकारसुन्दरं सुकविरचितमिव ॥ १५ ॥
सुविशुद्धजातिकलितं सुवर्णपदसंयुक्तं कलत्रमिव । गाथायुगलं श्रुतियुगलमसदृशं विशति तस्येदम् ॥ १६ ॥
वृद्धिं वदन्तमसमं गुरुवंशं क्षमाप्रतिष्ठसुखमूलम् । क्रमवृद्ध-स्निग्ध-घनपर्व-पत्र-शाखासमाकीर्णम् ॥ १७ ॥
कार्यभारमारोप्य पुत्रं पुरुषस्य सुगुणधर्ममतिः । यावदद्यापि न प्रवर्तते तावत्कुतो निर्वृत्तिसुखानि ? ॥ १८ ॥

तं सोउं नरनाहो सुयचिंतागरुयसायरे पडिओ । पेच्छसु ममंतरायस्स विलसियं अप्पडीयारं ॥ १९ ॥
जं मज्झ अणेगासु वि विसिट्ठलायन्न-रू वकलियासु । ओरोहपणइणीसुं सुयस्स एगस्स वि न लाभो ॥ २० ॥
अहवा वि किमेयाए सुयचिंताए समाहिमहणीए ? । जम्हा अचिंतियं पि हु जं भवियव्वं तयं होइ ॥ २१ ॥
किंच-
जावऽन्नं चिंतिज्जइ पयत्थजायं असासयमसारं । ताव वरं चिंतिज्जइ धम्मो च्चिय सुहयरो बंधू ॥ २२ ॥
धम्मो जियाण जणओ धम्मो माया सुओ सुही बंधू । भवभमणविनडियाणं जायइ परमत्थओ ताणं ॥ २३ ॥
जइ वि हु एवं तह वि हु ववहारनएण धम्मवोच्छेए । सुयसंतइरहियाणं मयाण को लेइ नामं पि ? ॥ २४ ॥
अवरं एस वराओ लोओ पुव्वयपाल्लिओ अहियं । दूमइ हिययं वुड्ढत्तणम्मि ताणं पि हु सुयाओ ॥ २५ ॥
यत उक्तम्-
लक्ष्मीः परोपकाराय विवेकाय सरस्वती । सन्ततिः स्वर्ग-मोक्षाय भवेद् धन्यस्य कस्यचित् ॥ २६ ॥
चंपयमालापमुहं संपयमेयंपि पणइणीविंदं । सव्वं निरत्थयं चिय भणियं केणइ जमेत्थं पि ॥ २७ ॥
कज्जविहूणं वयणं धम्मंविहूणं च माणुसं जम्मं । निरवच्चं च कलत्तं तिन्नि वि लोए अणत्थाइं ॥ २८ ॥
ता किं करेमि ? किं विन्नवेमि ? पेच्छामि कमिह कज्जम्मि? । सुयविरहियस्स मन्ने मरणेवि हु मज्झ न समाही ॥२९॥
परमिमिणा किं परिदेविएण विहलेण बुद्धिमंताणं ? । सव्वम्मि कज्जजाए जमुवायपवत्तणं सेयं ॥ ३० ॥
जा एवं नरनाहो विवेयवसओ मणम्मि सयमेव । सुयचिंताभरदुहिओ संठावइ मणयम्पाणं ॥ ३१ ॥

तच्छ्रुत्वा नरनाथः सुतचिन्तागुरुकसागरे पतितः । पश्य ममान्तरायस्य विलसितमप्रतिकारम् ॥ १९ ॥
यन्ममानेकाष्वपि विशिष्टलावण्य-रुपकलितासु । अन्तःपुरप्रणयिनिषु सुतस्यैकस्यापि न लाभः ॥ २० ॥
अथवापि किमनया सुतचिन्तया समाधिमथन्या ? । यस्मादचिन्तितमपि खलु यद्भवितव्यं तकं भवति ॥ २१ ॥
किञ्च-
यावदन्यच्चिन्त्यते पदार्थजातमशाश्वतमसारम् । तावद्वरं चिन्त्यते धर्मश्चैव सुखकरो बन्धुः ॥ २२ ॥
धर्मो जीवानां जनको धर्मो माता सुतः सखा बन्धुः । भवभ्रमणविनटितानां जायते परमार्थतस्त्राणम् ॥ २३ ॥
यद्यपि खल्वेवंतथापि हु व्यवहारनयेन धर्मव्युच्छेदे । सुतसन्ततिरहितानां मृतानां को लाति नामापि ? ॥ २४ ॥
अपरमेष वराको लोकः पूर्वजपालितोऽधिकम् । दुनोति हृदयं वृद्धत्त्वे तेषामपि खलु सुताः ॥ २५ ॥
चम्पकमालाप्रमुखं साम्प्रतमेतदपि प्रणयिनिवृन्दम् । सर्वं निरर्थकं चैव भणितं केनचिद्यदित्थमपि ॥ २७ ॥
कार्यविहीनं वचनं धर्मविहीनं च मानुष्यं जन्म । निरपत्यं च कलत्रं त्रिण्यपि लोकेऽनर्थानि ॥ २८ ॥
ततः किं करोमि ? कं विज्ञापयामि ? पश्यामि कमिह कार्ये ? । सुतविरहितस्य मन्ये मरणेऽपि खलु मम न समाधिः ॥२९॥
परमनेन किं परिदेवितेन विफलेन बुद्धिमताम् ? । सर्वमपि कार्यजाते यदुपायप्रवर्तनं श्रेयम् ॥ ३० ॥
यावदेवं नरनाथो विवेकवशान्मनसि स्वयमेव । सुतचिन्ताभारदुःखितः संस्थापयति मनागात्मानम् ॥ ३१ ॥

ताव य भेरी-भाणय-झल्लरि-तिलमाइओ पहासमए । बहिरंतो गयणयलं पवाइओ तूरसंघाओ ॥ ३२ ॥
वट्टियघुसिणरसेण व रविरमणसमागमम्मि सरसेणं । पुव्वदिसावहुवयणं रंजियमरुणेणमरुणेणं ॥ ३३ ॥
अमयमएणवि न मए निव्वविओ नरवई नियकरेहिं इय खेएण व जाओ विच्छाओ ससहरो गयणे ॥ ३४ ॥
सुयदुहिओ नरसीहो तमसा तविओ मए अणज्जाए । इय लज्जाए, मन्ने सहसा विलयं गया रयणी ॥ ३५ ॥
मिलिएहिं वि अम्हेहिं निवकज्जं न विहियं किमेयं ? ति । तारा वि दुहं ता सन्हीहोऊणऽवक्कंता ॥ ३६ ॥
बहुयाणं किम(स)ज्झं ? कुणिमोता निवसमीहियमिमं ति । कोलाहलमुहलमुहो समुट्ठिओ सउणसत्थो वि ॥ ३७ ॥
मित्तो त्ति विस्सुओ हं समुच्चगोतं समस्सिओ हं ति । उदयं पत्तो भाणू साहिउकामो व्व निवकज्जं ॥ ३८ ॥
एत्थंतरम्मि महरिहसुहसेज्जं चइय धीरिमानिलओ । परिविहियगोसकिच्चो निव्वत्तियफारसिंगारो ॥ ३९ ॥
सामंत-मंति-जोइसिय-पीढपरिमद्दपमुहपरिवारो । परिहरियत्थाणो वि हु अत्थाणं भयइ भूमिवई ॥ ४० ॥
सिंगाररुइरवरवाररमणिपरिधुव्वमाणसियचमरो । बहुमाणसहियसामंतपत्तिपणिवइयपयकमलो ॥ ४१ ॥
आभासियपउरजणो परिपुच्छियनयरनायरयखेमो । पच्चंतरायपेसियपाहुडपडिपाहुडविहत्थो ॥ ४२ ॥
पत्थावे भूसन्नियविसज्जियासेसरायअत्थाणो । पासपरिट्ठियकइवयपहाणपुरिसो पसन्नमुहो ॥ ४३ ॥
आमंतिय सप्पणयं साहइ सुयरयणिवइयरमसेसं । भो भो ! तुब्भे मह रज्जचिंतगा बुद्धिमयरहरा ॥ ४४ ॥
ता कहह किं पि जह गरुयतणयचिंताभरो समुत्तरइ । मह माणसाओ ते वि हु वयंति करकमलकयकोसा ॥ ४५ ॥

तावच्च भेरी-भाणक-झल्लरि-तिलिमादयः प्रभासमये । बधिरयन् गगनतलं प्रवादितस्तूर्यसङ्घातः ॥ ३२ ॥
वर्त्तितघृसुणरसेनेव रविरमणसमागमे सरसेन । पूर्वदिग्वधुवदनं रञ्जितमरुणेनारुणेन ॥ ३३ ॥
अमृतमयेनापि न मया निर्वापितो नरपति निजकरैः । इति खेदेनेव जातो विलक्षः शशधरो गगने ॥ ३४ ॥
सुतदुःखितो नरसिंहस्तमसा तापितो मया नार्यया । इति लज्जया मन्ये सहसा विलयं गता रजनी ॥ ३५ ॥
मिलितेरप्यस्माभि र्नृपकार्यं न विहितं किमेतदिति ? । तारा अपि दुखाक्रान्ता श्लक्ष्णीभूत्वाऽपक्रान्ताः ॥ ३६ ॥
बहूणां किमसाध्यं ? कुर्मस्तावन्नृपसमीहितमिति । कोलाहलमुखरमुखः समुत्थितः शकुनसार्थोऽपि ॥ ३७ ॥
मित्र इति विश्रुतोऽहं समुच्चगोत्रं समाश्रितोऽहमिति । उदयं प्राप्तो भानुः साधयितुकाम इव नृपकार्यम् ॥ ३८ ॥
अत्रान्तरे महार्हसुखशय्यां त्यक्त्वा धीरिमानिलयः । परिविहितप्रत्युषकार्यो निवर्तितस्फारशृङ्गारः ॥ ३९ ॥
सामन्त-मन्त्रि-ज्योतिष-पीठपरिमर्दप्रमुखपरिवारः । परिहृतास्थानोऽपि खल्वास्थानं भजति भूमिपतिः ॥ ४० ॥
शृङ्गाररुचिरवरवाररमणिपरिधुर्णयच्छितचमरः । बहुमानसहितसामन्तपत्तिप्रणिपतितपदकमलः ॥ ४१ ॥
आभाषितपौरजनः परिपृच्छितनगरनागरकक्षेमः । प्रत्यन्तराजप्रेषितप्राभृतप्रतिप्राभृतविहस्तः ॥ ४२ ॥
प्रस्तावे भृसंज्ञाविसर्जिताशेषराजास्थानः । पार्श्वपरिस्थितकतिपयप्रधानपुरुषः प्रसन्नमुखः ॥ ४३ ॥
आमन्त्र्य सप्रणयं कथयति सुतरजनीव्यतीकरमशेषम् । भो भो ! यूयं मम राज्यचिन्तका बुद्धिमकरगृहाः ॥ ४४ ॥
ततः कथयत किमपि यथा गुरुकतनयचिन्ताभारः समुत्तरति । मम मानसात्तेऽपि खलु वदन्ति करकमलकृतकोशाः ॥ ४५ ॥

बहुदेसिया एसा अम्हाण वि माणसे वसइ चिंता । देवेणमेयमम्हं हियया ओ कड्ढिउं भणियं ॥ ४६ ॥
परमम्हे किं भणिमो देवायत्ते इमम्मि कज्जम्मि ? । अन्नं च न भवओ वि हु मइविहवो समहिओ अम्हं ॥ ४७ ॥
परमेयं कहइ जणो पुत्तसमुप्पत्तिकारणं कुसलो । देवाराहण-ण्हाणाइ-मूलियापाणगाईयं ॥ ४८ ॥
एयं कयम्मि कस्स-वि कइया वि हु होइ कज्जनिप्फत्ती । कस्स वि य पुणो विहलं पि होइ पडिकूलकम्मवसा ॥ ४९ ॥
ता देव ! दुयं कीरउ पत्थुयकज्जम्मि संपयं जत्तो । एवं पि जइ न सिज्झई कज्जं पुरिसस्स को दोसो ? ॥ ५० ॥
परमम्हमभिप्पाओ इह संपइ पहु ! कुओ वि संपत्तो । नियविन्नाणमहागुणविम्हावियसयलनयरिजणो ॥ ५१ ॥
ससिकंतसमुज्जलबहलभूइधवलियतणू तिणयणो व्व । दाहिणहत्थत्थससद्दडमरुओ धरियखट्टंगो ॥ ५२ ॥
गहनिग्गहणे निउणो पयंडसत्ती पिसायनिम्महणे । उड्डंडडाइणीनिग्गहम्मि सव्वत्थ साहसिओ ॥ ५३ ॥
अइदुट्ठ-रुट्ठ-खरखेत्तपालरक्खणखमो खमावलए । ओसहिबंधणपसमियजराइबहु विविहरोयभरो ॥ ५४ ॥
गरुयगिरिदुग्गविवरप्पवेसतोसवियजक्खिणीलक्खो । धाउव्वायपसाहियसुवन्नविद्दवियदारिद्दो ॥ ५५ ॥
अवि य-
आगिट्ठिम्मि पडिट्ठो खुन्नो पन्नगमहाविसुद्धरणे । विक्खेवकरणदक्खो अमूढलक्खो वसीकरणे ॥ ५६ ॥
किंच-
जं विउसेहिं न कहियं न दंसियं कह वि पुव्वपुरिसेहिं । जुत्तीए वि न जुज्जइ सयाणया सद्दहंति न जं ॥ ५७ ॥

बहुदैवसिकैषास्माकमपि मानसे वसति चिन्ता । देवेनैतदस्माकं हृदयात्कृष्ट्वा भणितम् ॥ ४६ ॥
परं वयं किं भणामो देवायत्त एतस्मिन् कार्ये ? । अन्यच्च न भवतोऽपि खलु मतिविभवः समहितोऽस्माकम् ॥ ४७॥
परमेतत्कथयति जनः पुत्रसमुत्पत्तिकारणं कुशलः । देवाराधन-स्नानादि-मूलिकापानकादिकम् ॥ ४८ ॥
एवं कृते कस्यापि कदापि खलु भवति कार्यनिष्पत्तिः । कस्यापि च पुन र्विफलमपि भवति प्रतिकूलकर्मवशात् ॥ ४९ ॥
ततो देव द्रुतं क्रियतां प्रस्तुतकार्ये साम्प्रतं यत्नः । एवमपि यदि न सिध्यति कार्यं पुरुषस्य को दोषः ? ॥ ५० ॥
परमस्मदभिप्राय इह सम्प्रति प्रभो ! कुतोऽपि सम्प्राप्तः । निजविज्ञानमहागुणविस्मायितसकलनगरिजनः ॥ ५१ ॥
शशिकान्तसमुज्वलबहलभूतिधवलिततनूस्त्रिनयन इव । दक्षिणहस्तस्थसशद्बडमरुको धृतखट्वाङ्गः ॥ ५२ ॥
ग्रहनिग्रहणे निपूणः प्रचण्डशक्तिः पिशाचनिर्मथने । उद्दण्डडाकिनीनिग्रहे सर्वत्र साहसिकः ॥ ५३ ॥
अतिदुष्ट-रुष्ट-खरक्षेत्रपालरक्षणक्षमः क्षमावलये । औषधिबन्धनप्रशमितजरादिबहुविविधरोगभारः ॥ ५४ ॥
गुरुकगिरिदुर्गविवरप्रवेशतोषितयक्षिणीलक्षः । धातुवादप्रसाधितसुवर्णविद्रावितदारिद्रः ॥ ५५ ॥
अपि च -
आकृष्टे प्रतिष्ठः क्षुण्णः पन्नगमहाविषोद्धरणे । विक्षेपकरणदक्षोऽमूढलक्ष्यो वशीकरणे ॥ ५६ ॥
किञ्च-
यद्विद्वद्भि र्नकथितं न दर्शितं कथमपि पूर्वपुरुषैः । युक्त्यापि न युज्यते सकर्णकाः श्रद्धन्ति न यत् ॥ ५७ ॥

---

१. सकर्णकाः ।

सव्वं पि तयं मज्झं सज्झं किं पलविएण बहुएण ? । उग्घोसंतो बहुहा उब्भियबाहू भमइ नयरे ॥ ५८ ॥
एवं महप्पभावो घोरसिवो नामओ [१]महावइयो । सो पुच्छिज्जउ पत्थुयपओयणे एस अम्ह मई ॥ ५९ ॥
इय सोऊणं संजायकोउओ भणइ तो महीपालो । वाहरह तयं सइवं पुच्छामो पत्थुयत्थकए ॥ ६० ॥
तत्तो पहाणपुरिसे पेसेउं सायरं समाहूओ । सो वि हु सहरिसहियओ संपत्तो रायपासम्मि ॥ ६१ ॥
कयसमुचियपडिवत्ती सुहासणत्थो कयप्पणामो य । पुट्ठो रन्ना भयवं ! संपइ कत्तो तुहागमणं ? ॥ ६२ ॥
गमणमिओ वा कत्थ वि ? स आह सिरिपव्वयाऽऽगओ हं ति । गंतव्वं सिरिजालंधरम्मि उत्तरपहे रायं ! ॥ ६३ ॥
पुणरवि भणियं रन्ना तुह सत्ती का वि सुव्वइ अपुव्वा । ता अम्हाणं किं पि हु सकोउगाणं पयंसेसु ॥ ६४ ॥
आगिट्ठि-चित्तचिन्ताइकोउहल्लेण रंजिओ भणइ । एस च्चिय तुह सत्ती ? उआहु अन्नत्थ वि किमत्थि ? ॥ ६५ ॥
तो जंपइ सो हसिउं सव्वन्नू चेव जाणए सव्वं । लोयव्यवहारकयं अन्नं पि हु अत्थि मह किं पि ॥ ६६ ॥
जइ एवं ता किज्जउ महापसाओ सुपुत्तलामेण । तेणुत्तं मह नजर ! केत्तियमेत्तं इमं कज्जं ? ॥ ६७ ॥
नवरं होसु सहाओ दिणमेगं मंतसाहणे मज्झ । मणवंछियमन्नं पि हु जेण पसाहेमि सव्वं पि ॥ ६८ ॥
तो कण्हचउदसिदिणे खग्गकरो सह कवालिएण निवो । पत्थुयकज्जनिमित्तं पत्तोभीसणमसाणम्मि ॥ ६९ ॥
आलिहियमंडलो सो सकलीकरणं विहाणओ काउं । नियमंतं घोरसिवो थिरासणो जविउमारद्धो ॥ ७० ॥
भणिओ राया तेणं हत्थसयाओ परेण चिट्ठ तुमं । करवालकरो मा एसु सव्वहा तं अवाहरिओ ॥ ७१ ॥

सर्वमपि तकं मम साध्यं किं प्रलपितेन बहुना ? । उद्घोषयन् बहुधोर्द्धि[२]द्वाहुर्भ्रमति नगरे ॥ ५८ ॥
एवं महाप्रभावो घोरशिवो नामको महाव्रतिकः । स पृच्छयते प्रस्तुतप्रयोजन एषास्माकं मतिः ॥ ५९ ॥
तत् श्रुत्वा सञ्जातकौतूको भणति तदा महीपालः । व्याहरत तकं शैवं पृच्छामः प्रस्तुतार्थकृते ॥ ६० ॥
ततः प्रधानपुरुषान् प्रेषयित्वा सादरं समाहूतः । सोऽपि खलु सहर्षहृदयः सम्प्राप्तो राजपार्श्वे ॥ ६१ ॥
कृतसमुचितप्रतिपत्तिः सुखासनस्थः कृतप्रणामश्च । पृष्टो राज्ञा भगवन् ! सम्प्रति कुतस्तवागमनम् ? ॥ ६२ ॥
गमनमितो वा कुत्रापि ? स आह श्रीपर्वतादागतोऽहमिति । गन्तव्यं श्रीजालंधरमुत्तरापथं राजन् ! ॥ ६३ ॥
पुनरपि भणितं राज्ञा तव शक्तिः कापि श्रूयतेऽपूर्वा । ततोऽस्माकं किमपि हु सकौतूकानां प्रजल्प ॥ ६४ ॥
आकृष्ट-चित्तचिन्तादिकौतूहलेन रञ्जितो भणति । एषा चैव तव शक्तिः ? उदाहु अन्यत्रापि किमस्ति ? ॥ ६५ ॥
तदा जल्पति स हसित्वा सर्वज्ञश्चैव जानाति सर्वम् । लोकव्यवहारकृतमन्यदपि खल्वस्ति मम किमपि ॥ ६६ ॥
यद्येवं ततो क्रियतां महाप्रसादः सुपुत्रलाभेन । तेनोक्तं मम नरवर ! कियन्मात्रमिदं कार्यम् ? ॥ ६७ ॥
नवरं भव सहायो दिनमेकं मन्त्रसाधने मम । मनो वाञ्छितमन्यदपि खलु येन प्रसाधयामि सर्वमपि ॥ ६८ ॥
ततः कृष्ण चतुर्दशीदिने खड्गकरः सह कापालिकेन नृपः । प्रस्तुत कार्यनिमित्तं प्राप्तो भीषणश्मशाने ॥ ६९ ॥
आलिखितमण्डलः स सकलीकरणं विधानतः कृत्वा । निजमन्त्रं घोरशिवः स्थिरासनो जपितुमारब्धः ॥ ७० ॥
भणितो राजा तेन हस्तशतात्परं तिष्ठ त्वम् । करवालकरो मैहि सर्वथा त्वमव्याहृतः ॥ ७१ ॥

---

१. महाव्रतिकः । २. उर्ध्वीकृत इत्यर्थः ।

राया तहेव थक्को कालविलंबं महंतामाकलिउं । सणियं तप्पिट्ठीए समागओ सुणइ से जावं ॥ ७२ ॥
'हुं फडु साह त्ति हुणामि नरवई' हक्किओ इमं सोउं । रे रे कावालिय ! होसु संपयं मह पुरो पुरिसो ॥ ७३ ॥
तत्तो य समुक्खणिऊण तक्खण च्चेव कूरकावाली । विप्फुरियतरलजमजीहसच्छहं कत्तियं कुडिलं ॥ ७४ ॥
काऊण दाहिणकरे निब्भच्छइ भिउडिभीमभालयलो । रे रे तं रायाहम ! कुणसु सुदिट्ठं मणुस्सभवं ॥ ७५ ॥
तत्तो पयडपरक्कमपयंडभुयदंडपहरणरउद्दा । जुज्झेण संपलग्गा दो वि कवालिय-महीवाला ॥ ७६ ॥
दोन्नि वि वग्गंति घणं दोन्नि वि पहरंति पयडियपहावा । दोन्नि वि रोसारुणवयण-नयणविक्खेवदुप्पेच्छा ॥ ७७ ॥
जाव य खणंतरेणं निद्दयनरवइपहारजज्जरिओ । मुच्छानिमीलियच्छो पडिओ धरणीए कावाली ॥ ७८ ॥
एत्थंतरम्मि विप्फुरियतणुपहापडलपयडियदियंता । चवलतरचरणफणफणिरनेउरारावरमणीया ॥ ७९ ॥
विलसंतविविहभूसणविभूसियासेसविग्गहावयवा । ठाऊणं निवपुरओ देवी भणिउं समाढत्ता ॥ ८० ॥
भो नरसीहनरेसर ! भव्वं विहियं जमेस कावाली । कित्तिवलक्खसलक्खणखत्तियखयकारओ पाओ ॥ ८१ ॥
भुवणस्स वि दुद्धरिसो पयंडमंतप्पभावदुरभिभवो । संताविय भुवणयलो विणिज्जिओ जगडियजणोहो ॥ ८२ ॥
ता तुट्ठा हं संपयमज्जेव समीहियं मह पसाया । भो भो तुज्झ नरीसर ! पसन्नवयणा पयंपंती ॥ ८३ ॥
पणमिय पुट्ठा रन्ना भयवइ ! कहमेस वयपवन्नो वि । खत्तियवहसंजणओ भणिओ भवईए ? कहसु इमं ॥ ८४ ॥
तीयुत्तमिमो खत्तियवंसपसूओ नरेसर ! नरिंदो । नामेण वीरसेणो जह रज्जाओ परिब्भट्ठो ॥ ८५ ॥

राजा तथैव स्थितः कालविलम्बं महदाकल्य । शनैः तत्पृष्टे समागतः श्रृणोति तस्य जापम् ॥ ७२ ॥
'हुं फडु स्वाहेति जुहोमि नरपतिं' प्रेरित इदं श्रुत्वा । रे रे कापालिक ! भव साम्प्रतं मम पुरः पुरुषः ॥ ७३ ॥
ततश्च समुत्खन्य तत्क्षणं चैव क्रूरकापाली । विस्फुरिततरलयमजीव्हासदृशां कर्त्तिकां कुटिलाम् ॥ ७४ ॥
कृत्वा दक्षिणकरे निर्भर्त्स्यति भृकुटिभीमभालतलः । रे रे त्वं राजाधम ! कुरु सुदृष्टं मनुष्यभवम् ॥ ७५ ॥
ततः प्रकट पराक्रमप्रचण्डभुजदण्डप्रहरणरौद्रौ । युद्धेन संप्रलग्नौ द्वावपि कापालिक-महीपालौ ॥ ७६ ॥
द्वावपि वल्गतः घनं द्वावपि प्रहरतः प्रकटितप्रभावौ । द्वावपि रोषारुणवदन-नयनविक्षेपदुष्प्रेक्ष्यौ ॥ ७७ ॥
यावच्च क्षणान्तरेण निर्दयनरपतिप्रहारजर्जरितः । मूर्च्छानिमिलिताक्षः पतितो धरण्यां कापाली ॥ ७८ ॥
अत्रान्तरे विस्फुरिततनुप्रभापटलप्रकटितदिगन्ता । चपलतरचरणझणझणन्नुपूरारावरमणीया ॥ ७९ ॥
विलसद्विविधभूषणविभूषिताशेषविग्रहावयवा । स्थित्वा नृपपुरतो देवी भणितुं समारब्धा ॥ ८० ॥
भो नरसिंहनरेश्वर ! भव्यं विहितं यदेष कापाली । कीर्त्तिधवलसलक्षणक्षत्रियक्षयकारकः पापः ॥ ८१ ॥
भुवनस्यापि दुर्धर्षः प्रचण्डतत्प्रभावदुरभिभवः । सन्तापितभुवनतलो विनिर्जितः कदर्थितजनौघः ॥ ८२ ॥
ततस्तुष्टाऽहं साम्प्रतमद्यैव समीहितं मम प्रासादात् । भो भो तव नरेश्वर ! प्रसन्नवदना प्रजल्पन्ती ॥ ८३ ॥
प्रणम्य पृष्टा राज्ञा भगवति ! कथमेष व्रतप्रपन्नोऽपि । क्षत्रियवधसञ्जनको भणितो भवत्या ? कथयेमम् ॥ ८४ ॥
तयोक्तमयं क्षत्रियवेशप्रसूतो नरेश्वर ! नरेन्द्रः । नाम्ना वीरसेनो यथा राज्यात्परिभ्रष्टः ॥ ८५ ॥

जीवियनिव्विन्नेणं वित्थयभूमंडलं भमंतेणं । भइरवनिवडणमरणं जह भीमं ववसियमणेणं ॥ ८६ ॥
जह य महाकालेणं जोगाइरिएण वारिओ मरणा । तेणं चेव य दिन्नं जह कावालियवयमिमस्स ॥ ८७ ॥
तइलोक्कविजयमंतो दिन्नो गुरुणा जहा मरंतेण । जह अट्ठोत्तरनरवइसएण जावो समाइट्ठो ॥ ८८ ॥
जह वा कलिंगदेसाइएसु लक्खणजुया निवा हणिया । तह सव्वं नरवइणो निवेइयं देवयाए तया ॥ ८९ ॥
इय कावालियवइयभरमायन्निय देवयाए परिकहियं । सुयलाभेण पहिट्ठो पणमिय देविं गओ सगिहं ॥ ९० ॥
केण वि अलक्खिओ चेव सेज्जमारुहइ जाव ता पढियं । समयनिवेयगपुरिसेण तत्थ केणावि सवणसुहं ॥ ९१ ॥
तरिऊण तुमं व दुरंतदुक्खदंदोलिजलयराइन्नं । वसणसमुद्दं पावइ उदयं नरनाह ! एस रवी ॥ ९२ ॥
तो सुणिऊणं सणयं सिढिलियनिद्दो विचिंतए राया । सूरुग्गमसमयनिवेयगो इमो पढइ को वि नरो ॥ ९३ ॥
एत्थंतरम्मि चंपयमाला पत्ता नरिंदपासम्मि । जंपइ सनम्म[1] वयणं अहो ! हु सुहिओ जणो सुयइ ॥ ९४ ॥
पुट्ठं रन्ना सुंदरि ! विसेसओ किं तुहाऽऽगमणकज्जं ? । अवरं च किं पि हु पिए ! हरिसियहियय व्व लक्खिहिसि ॥ ९५ ॥
ताहे पयडियविणया जोडियकरसंपुडा भणइ देवी । आगमणकज्जमेयं पहु ! अवहियमाणसो सुणसु ॥ ९६ ॥
अज्ज मए रयणीए समुस्सिओ सरलवंसविक्खाओ । विलसंतजयवडाओ कलकिंकिणिसद्दसवणसुहो ॥ ९७ ॥
सयलजणापंदयरो महल्लमंगल्लदंसणमहग्घो । धम्मनिही परमधओ तुमं व सुमिणम्मि सच्चविओ ॥ ९८ ॥
ताहे सुहसुमिणसमुब्भवंतरोमंचचुइयतणुणा । भणियं रन्ना सुन्दरि ! सुहजणओ सुमिणओ एस ॥ ९९ ॥

जीवितनिर्विण्णेन विस्तृतभूमण्डलं भ्रमता । भैरवनिपतनमरणं यथा भीमं व्यवसितमनेन ॥ ८६ ॥
यथा च महाकालेन योगाचार्येण वारितो मरणात् । तेन चैव च दत्तं यथा कापालिकव्रतमेतस्य ॥ ८७ ॥
त्रैलोक्यविजयमन्त्रो दत्तो गुरुणा यथा म्रियमाणेन । यथाष्टोत्तरनरपतिशतेन जापः समादिष्टः ॥ ८८ ॥
यथा वा कलिङ्गदेशादिकेषु लक्षणयुक्ता नृपा हताः । तथा सर्वं नरपते र्निवेदितं देवतया तया ॥ ८९ ॥
इति कापालिकव्यतीकरमाकर्ण्य देवतया परिकथितम् । सुतलाभेन प्रहृष्टः प्रणम्य देविं गतः स्वगृहम् ॥ ९० ॥
केनाप्यलक्षितश्चैव शय्यायामारोहति यावततावत्पठितम् । समयनिवेदकपुरुषेण तत्र केनापि श्रवणसुखम् ॥ ९१ ॥
तीर्त्वा त्वमिव दुरन्तदुःखदन्दोलिजलचराकीर्णम् । व्यसनसमुद्रं प्राप्नोत्युदयं नरनाथ ! एष रविः ॥ ९२ ॥
ततः श्रुत्वा शनैः शिथिलितनिद्रो विचिन्तयति राजा । सूर्योद्गमसमयनिवेदकोऽयं पठति कोऽपि नरः ॥ ९३ ॥
अत्रान्तरे चम्पकमाला प्राप्ता नरेन्द्रपार्श्वे । जल्पति सनर्मवचनमहो ! हु सुखितो जनः स्वपिति ॥ ९४ ॥
पुष्टं राजा सुन्दरि ! विशेषतः किं तवाऽऽगमनकार्यम् ? । अपरं च किमपि हु प्रिये ! हर्षितहृदय इव लक्ष्यसि ॥ ९५ ॥
तदा प्रकटितविनया योजितकरसम्पूटा भणति देवी । आगमनकार्यमेतत्प्रभो ! अवहितमानसः श्रृणु ॥ ९६ ॥
अद्य मया रजन्यां समुच्छ्रितः सरलवंशविख्यातः । विलसज्जयपताकः कलकिङ्किणिशब्दश्रवणसुखः ॥ ९७ ॥
सकलजनानन्दकरो महामङ्गलदर्शनमहार्घ्यः । धर्मनिधिः परमध्वजस्त्वमिव स्वप्ने दृष्टः ॥ ९८ ॥
तदा शुभस्वप्नसमुद्भवद्रोमाञ्चकञ्चुकिततनुना । भणितं राज्ञा सुन्दरि ! शुभजनकः स्वप्न एषः ॥ ९९ ॥

---

१. सनर्म सहासमित्यर्थः ।

अम्ह कुलकेउभूयं पुत्तं पसविहिसि सुन्दरि ! नवन्हं । मासाणमुवरिमद्धट्ठमाण रांइदियाणं च ॥ १०० ॥
सो वि चउजलहिपज्जंतमहिमहेलाए नायगो होही । दुव्वारवइरिकरिकुंभदलणखरनहरपंचमुहो ॥ १०१ ॥
सा वि हु सोउं पियवयणमेरिसं भत्तुणो मणोदइयं । हरिसाऊरियहियया बंधइ वत्थे सउणगंठिं ॥ १०२ ॥
जह नरवइणा तह सउणपाढएहिं वि वियारिए सुमिणे । चंपयमाला परितुट्ठमाणसा गब्भमुव्वहइ ॥ १०३ ॥
गब्भप्पभिईदिवसाओ बड्ढमाणम्मि तइयमासम्मि । चिंतइ चंपयमाला देवी दोहलयगुणवसओ ॥ १०४ ॥
विविहेहिं पयारेहिं जइ पूयणमायरामि देवाणं । आणंदियमणवित्ती करेमि भत्तिं गुरुयणस्स ॥ १०५ ॥
वियरामि विविहसुहभक्ख-भोज्ज-वत्थाइएहिं मणदइयं । दीणाईणमहं जइ दाणं अनिवारियप्पसरं ॥ १०६ ॥
सवणामयसरिसाइं परिणामसुहाइं णिव्वुइकराइं । निसुणेमि गुरुसयासम्मि जइ अहं धम्मसत्थाइं ॥ १०७ ॥
तत्तो मणोरहब्भहियवित्तवियरणगुणप्पयारेण । रन्ना दोहलए पूरियम्मि सइसुहियसव्वंगी ॥ १०८ ॥
गब्भसुहावहसयणा-ऽऽसणाइणा सोहणप्पयारेण । गब्भं वहमाणीए तीए जाए पसवसमए ॥ १०९ ॥
नवमासाण सवायाणमुवरिमणहम्मि दिणि मुहुत्तम्मि । उच्चट्ठाणगएसुं गहेसु विरियासु य दिसासु ॥ ११० ॥
पणइजणमणवियप्पियपयत्थसंपयसमप्पणापवणं । कप्पमहीरुहभूमि व्व कप्पपायवमणप्पगुणं ॥ १११ ॥
चंपइमाला पसवइ पुत्तं पुन्नप्पभावओ रन्नो । नियतणुकंतिकडप्पप्पभावपज्जोइयदियंतं ॥ ११२ ॥
तत्तो हरिसविसंठुलगइवसपरिसिढिलवसण-धम्मिल्ला । ओरोहदासचेडी वद्धावइ वसुमईनाहं ॥ ११३ ॥

अस्मत्कुलकेतुभूतं पुत्रं प्रसविष्यसि सुन्दरि ! नवानाम् । मासानामुपर्यर्द्धाष्टमानां रात्रिंदिवानां च ॥ १०० ॥
सोऽपि चतुर्जलधिपर्यन्तमहीमेखलाया नायको भविष्यति । दुर्वारवैरिकरिकुम्भदलनखरनखरपञ्चमुखः ॥ १०१ ॥
सापि हु श्रुत्वा प्रियवचनमीदृशं भर्तुमनोदयितम् । हर्षापूरितहृदया बध्नाति वस्त्रे शकुनग्रन्थिः ॥ १०२ ॥
यथा नरपतिना तथा शकुनपाठकैरपि विचारिते स्वप्ने । चम्पकमाला परितुष्ठमानसा गर्भमुद्वहति ॥ १०३ ॥
गर्भ प्रभृतिदिवसाद्वर्धमाने तृतीयमासे । चिन्तयति चम्पकमाला देवी दोहदगुणवशतः ॥ १०४ ॥
विविधैः प्रकारै यर्दि पूजनमाचरामि देवानाम् । आनन्दितमनोवृत्तिः करोमि भक्तिं गुरुजनस्य ॥ १०५ ॥
वितरामि विविधसुखशुभभक्ष्य-भोजन-वस्त्रादिभि र्मनोदयितम् । दीनादीनामहं यदि दानमनिवारितप्रसरम् ॥ १०६ ॥
श्रवणामृतसदृशानि परिणामसुखानि निर्वृत्तिकराणि । निशृणोमि गुरुसकाशे यद्यहं धर्मशास्त्राणि ॥ १०७ ॥
ततो मनोरथाभ्यधिकवित्तवितरणगुणप्रकारेण । राज्ञा दोहदके पूरिते सदासुखितसर्वाङ्गी ॥ १०८ ॥
गर्भसुखावहशयना-ऽऽसनादिना शोभनप्रकारेण । गर्भं वहन्त्यास्तस्या जाते प्रसवसमये ॥ १०९ ॥
नवमासानां सपादानामुपर्यनघे दिने मुहूर्त्ते । उच्चस्थानगतेषु ग्रहेषु विरजःसु च दिक्षु ॥ ११० ॥
प्रणतिजनमनोविकल्पितपदार्थसम्पत्समर्पणाप्रवणम् । कल्पमहीरुहभूमिरिव कल्पपादपमनल्पगुणम् ॥ १११ ॥
चम्पकमाला प्रसवति पुत्रं पुण्यप्रभावाद्राज्ञः । निजतनुकान्तिकटप्रप्रभावप्रद्योतितदिगन्तम् ॥ ११२ ॥
ततो हर्षविसंस्थूलगतिवशपरिशिथिलवसन-धर्मिला । अन्तःपुरदासचेटी वर्धापयति वसुमतिनाथम् ॥ ११३ ॥

संपइ वद्धाविज्जसि नरनाह ! तुमं जएण विजएण । जेण पसूया पुत्तं चंपयमाला महादेवी ॥ ११४ ॥
रन्ना वि य दासित्तं अवणेउं तीए दासचेडीए । दिन्नं च पारिओसियदाणं सुयजम्मतुट्ठेण ॥ ११५ ॥
आणत्ता नायरया जहाविभूईए नयरमज्झम्मि । कारवह महाऽऽणाए सुयजम्ममहूसवं गरुयं ॥ ११६ ॥
तेहिं वि तह त्ति पडिवज्जिऊण निस्सेसनयरिमज्झम्मि । वद्धावणयं विहिणा कारवियं तं च एरिसयं ॥ ११७ ॥
विरइज्जमाणतोरणवंदणमालं दुवारदेसेसु । ठाविज्जमाणचंदणचच्चियसुहपुन्नकलसजुयं ॥ ११८ ॥
उब्भिज्जमाणनवरंग-वसण-परिहाण-जूय-मुसलसयं । पढमाणचवलतर चट्ट-भट्ट-सूमाइयाइन्नं ॥ ११९ ॥
पविसंतक्खयवत्तं विद्धाजणकिज्जमाणसुयरक्खं । नच्चन्तवारविलयं सनम्महीरंतसिरवेढं ॥ १२० ॥
इय गरुयविभूईए वद्धावणयं नरिंदचंदेण । आणंदियपउरजणं कारवियं पुत्तजम्मम्मि ॥ १२१ ॥
अह नामकरणदिवसम्मि सोहणे तिहि-मुहुत्त-करणम्मि । भोयाविऊण नीसेसपरियणं भोयणविहीए ॥ १२२ ॥
सम्माणिऊण वरवत्थ-रयण-असणप्पयाणओ सम्मं । पुहइवई सप्पणयं सव्वं पि हु पुरपहाणजणं ॥ १२३ ॥
कुलविद्धनारिनिवहेण मत्थए चोक्खयक्खिवणपुव्वं । नरविक्कमो त्ति नामं सुयस्स कारवइ कालण्णू ॥ १२४ ॥
संजाओ य कमेणं वड्ढंतो अट्ठवरिसदेसीओ । सुहसियपंचमि-गुरुवार-पुस्सनक्खत्त-करणेसु ॥ १२५ ॥
उवणीओ लेहायरियपायमूलम्मि मलियमाणभडो । ससिणेहं सम्माणिय कलागुरुं गरुयभत्तीए ॥ १२६ ॥
नियजोग्गयागुणेणं जणयपयत्ताओ निच्चमभिओगा । लेहायरियस्स गओ कलाण सव्वाण सो पारं ॥ १२७ ॥

सम्प्रति वर्धाप्यसे नरनाथ ! त्वं जयेन विजयेन । येन प्रसूता पुत्रं चम्पकमाला महादेवी ॥ ११४ ॥
राज्ञापि च दासित्वमपनीय तस्या दासचेट्याः । दत्तं च पारितोषिकदानं सुतजन्मतुष्टेन ॥ ११५ ॥
आज्ञाप्ता नागरका यथाविभूत्या नगरमध्ये । कारयत ममाज्ञया सुतजन्ममहोत्सवं गुरुकम् ॥ ११६ ॥
तैरपि तथैति प्रतिपद्य निःशेषनगरिमध्ये । वर्धापनकं विधिना कारितं तच्चेदृशम् ॥ ११७ ॥
विरच्यमाणतोरणवन्दनमालं द्वारदेशेषु । स्थाप्यमानचन्दनचर्चिकशुभपुण्यकलशयुगम् ॥ ११८ ॥
उद्भिद्यमाननवरंगवसन-परिधान-यूग-मुशलशतम् । पठयमानचपलतरचट्ट-भट्ट-कृपणादिकाकीर्णम्[1] ॥ ११९ ॥
प्रविशदक्षयपात्रं वृद्धाजनक्रियमाणसुतरक्षम् । नृत्यद्वारवनितं सनर्महियमाणशिरोवेष्टम् ॥ १२० ॥
इति गुरुकविभूत्या वर्धापनकं नरेन्द्रचन्द्रेण । आनन्दितपौरजनं कारितं पुत्रजन्मनि ॥ १२१ ॥
अथ नामकरणदिवसे शोभने तिथि-मुर्हूत-करणे । भोजयित्वा निःशेषपरिजनं भोजनविधिना ॥ १२२ ॥
सन्मान्य वरवस्त्र-रत्नाशनप्रदानतः सम्यक् । पृथिवीपतिः सप्रणयं सर्वमपि हु पुरप्रधानजनम् ॥ १२३ ॥
कुलवृद्धनारिनिवहेन मस्तके ऽक्षतक्षेपणपूर्वम् । नरविक्रम इति नाम सुतस्य कारयति कालज्ञः ॥ १२४ ॥
सञ्जातश्च क्रमेण वर्धमानोऽष्टवर्षदेशिकः । शुभसितपञ्चमी-गुरुवार-पुष्यनक्षत्र-करणेषु ॥ १२५ ॥
उपनीतो लेखाचार्यपादमूले मलितमानभटः । सस्नेहं सन्मान्य कलागुरुं गुरुकभक्त्या ॥ १२६ ॥
निजयोग्यतागुणेन जनकप्रयत्नान्नित्यमभियोगात् । लेखाचार्यस्य गतः कलानां सर्वासां स पारम् ॥ १२७ ॥

---

१. सूम - कृपणः

लेहम्मि लद्धलक्खो अहियं परिनिट्ठिओ धणुव्वेए । गंधव्वकलाकुसलो पत्तच्छेयम्मि पत्तट्ठो ॥ १२८ ॥
नर-नारि-तुरय-गय-रहवराइपरमत्थलक्खणविहन्नू । गंधंगजुत्तिनिउणो चउरमई चित्तयम्मम्मि ॥ १२९ ॥
लोयव्ववहारविऊ मंतपओगेसु नायपरमत्थो । परचित्तगहणदक्खोविसारओ सद्दसत्थेसु ॥ १३० ॥
सा नत्थि कला तं नत्थि कोउयं किं पि नत्थि विन्नाणं । जत्थ न सो पत्तट्ठो विसेसओ मल्लजुद्धम्मि ॥ १३१ ॥
अह अन्नया य पेक्खणय-गीयवक्खित्तरायअत्थाणे । निवपाससुहासीणे सुहए नरविक्कमकुमारे ॥ १३२ ॥
करकलियपयंडसुवन्नदंडदुद्धरिसभासुरसरीरो । आगंतूणं विन्नवइ सविणयं निवपडीहारो ॥ १३३ ॥
हरिसउरसामिणो देव ! देवसेणस्स दारदेसम्मि । चिट्ठइ दूओ देवस्स दंसणं महइ किं कज्जं ? ॥ १३४ ॥
सिग्घं भद्द ! पवेससु तमिइ निउत्ते निवेण स पविट्ठो । कयसमुचियपडिवत्ती एवं विन्नविउमाढत्तो ॥ १३५ ॥
संति पहु ! मज्झ पहुणो अइसयभूयाणि दोन्नि रयणाणि । नियरूवोवहसियतियससुंदरी कन्नगा एगा ॥ १३६ ॥
अवरो य रायमल्लो पडिभडकमलाण कालमेहो व्व । नामेण कमलमेहो विणिज्जियासेसमल्लगणो ॥ १३७ ॥
तत्थऽन्नया कयाई सुहासणत्थस्स रायअत्थाणे । सव्वालंकारमणोहरंगियानिययजणणीए ॥ १३८ ॥
पिउपायपणमणत्थं पट्ठविया पुव्ववन्निया कन्ना । उच्छंगम्मि निविट्ठा पलोइया तयणु पिउणा वि ॥ १३९ ॥
वरचिंतणत्थमेसा[ग्रन्थाग्रम् ११०००]मन्ने पउमावईए देवीए । पट्ठविया महपासे ता को णु इमीए अणुरूवो ॥१४०॥
होही भत्ता भवणेवि ? विसरिसाणं कए वि संबंधे । आजम्मं घरवासो दुहपासो होइ मिहुणाणं ॥ १४१ ॥

लेखे लब्धलक्ष्योऽधिकं परिनिष्ठितो धनुर्वेदे । गन्धर्वकलाकुशलः पत्रच्छेद्ये प्राप्तार्थः ॥ १२८ ॥
नर-नारि-तुरग-गज-रथवरादिपरमार्थलक्षणविज्ञः । गन्धाङ्गयुक्तिनिपुणश्चतुरमतिश्चित्रकर्मणि ॥ १२९ ॥
लोकव्यवहारविदु र्मन्त्रप्रयोगेषु ज्ञातपरमार्थः । परचित्तग्रहणदक्षो विशारदः शद्धशास्त्रेषु ॥ १३० ॥
सा नास्ति कला तन्नास्ति कौतूकं किमपि नास्ति विज्ञानम् । यत्र न स प्राप्तार्थो विशेषतो मल्लयुद्धे ॥ १३१ ॥
अथान्यदा च प्रेक्षणक-गीतव्याक्षिप्तराजास्थाने । नृपपार्श्वसुखासीने सुभगे नरविक्रमकुमारे ॥ १३२ ॥
करकलितप्रचण्डसुवर्णदण्डदुर्द्धर्षभासुरशरीरः । आगत्य विज्ञापयति सविनयं नृपप्रतिहारः ॥ १३३ ॥
हर्षपुरस्वामिनो देव ! देवसेनस्य द्वारदेशे । तिष्ठति दूतो देवस्य दर्शनं काङ्क्षते किं कार्यम् ? ॥ १३४ ॥
शीघ्रं भद्र ! प्रवेशय तमिति नियुक्ते नृपेण स प्रविष्टः । कृतसमुचितप्रतिपत्तिरेवं विज्ञापयितुमारब्धः ॥ १३५ ॥
स्तः प्रभो ! मम प्रभोरतिशयभूते द्वे रत्ने । निजरुपोपहसितत्रिदशसुन्दरी कन्यकैका ॥ १३६ ॥
अपरश्च राजमल्लः प्रतिभटकमलानां कालमेघ इव । नाम्ना कमलमेघो विनिर्जिताशेषमल्लगणः ॥ १३७ ॥
तत्रान्यदा कदाचित्सुखासनस्थ राजास्थाने । सर्वालङ्कारमनोहराङ्गिका निजजनन्या ॥ १३८ ॥
पितृपादप्रळमनार्थं प्रस्थापिता पूर्ववर्णिता कन्या । उत्सङ्गे निविष्ठा प्रलोकिता तदनु पित्रापि ॥ १३९ ॥
वरचिन्तनार्थमेषा मन्ये पद्मावत्या देव्या । प्रस्थापिता मम पार्श्वे ततः को नु एतस्या अनुरुपः ॥ १४० ॥
भविष्यति भर्ता भवनेऽपि ? विसदृशयोः कृतेऽपि सम्बन्धे । आजन्मं गृहवासो दुःखपाशो भवति मिथुनयोः ॥ १४१ ॥

इय दुहियावरचिंतणजलहिमहावत्तसंकडे पडिओ । राया सव्वावत्थासु दुहयरी होइ जेण सुया ॥ १४२ ॥
तत्तो रन्ना सयमेय पुच्छिया तुज्झ सीलमइ वच्छे ! । केरिसगुणो कहिज्जउ रुच्चइ हिययस्स भत्तारो ? ॥ १४३ ॥
किं चाई ? किं सूरो ? किं वा विउसो ? कयन्नुओ ? सुहओ ? । गंधव्वकलानिउणो ? परोवयारी ? दयालू वा ॥१४४॥
ईसिं अहोमुहीए सलज्जमेईए जंपियं ताय ! । जो को वि हु तुह रोयइ सो च्चिय मह सम्मओ भत्ता ॥ १४५ ॥
तो भणियं नरवइया ईसिसमुन्नामिऊण मुहकमलं । उवरोहसीलयाए वच्छे ! न सुहाइं कज्जाइं ॥ १४६ ॥
जइ एवं ता एसो तुह मल्लो महियले वऽपरिभूओ । जिप्पिस्सइ जेण बली सो मह भत्ता किमवरेण ? ॥ १४७ ॥
तो नायं नरवइणा एसा हु बलाणुराइणी बाला । ता भद्दं परमिमिणा सव्वे वि पराजिया बलिणा ॥ १४८ ॥
तो तं विसन्नचित्तं दट्ठुं भणियं पहाणपुरिसेहिं । अज्ज वि देव ! जयंतीए अत्थि अपरिक्खिओ एगो ॥ १४९ ॥
नरसीहसुओ बलपोरिसेक्करसिओ रसायलपसिद्धो । नरविक्कमाभिहाणो सो वि परिक्खिज्जउ नरिंद ! ॥१५०॥
सामत्थिऊण सम्मं तयत्थमहमेत्थ पेसिओ सामि ! । तो नरवइणा वयणं निरिक्खयं नियय्तणयस्स ॥ १५१ ॥
तेणावि पणमिऊणं भणियं देवाणुभावओ भव्वं । होही सव्वं पेसवह ताय ! मं तत्थ किं बहुणा ? ॥ १५२ ॥
तो मंतिऊण सामंत-मंति-नायरजणेण सह रन्ना । पेसविओ हरिसउरे हिट्ठो नरविक्कमकुमारो ॥ १५३ ॥
अम्मोगइयाए नियमहत्तमो देवसेणनरवइणा । कुमरस्स पेसिओ चडयरेण चउरंगबलकलिओ ॥ १५४ ॥
तो गरुयभूईए सोहणदिवसे पवेसिओ नयरे । नर-नारिनियरनयणाण किमवि परमूसवो कुमरो ॥ १५५ ॥

इति दुहितृवरचिन्तनजलधिमहावर्तसङ्कटे पतितः । राजा सर्वावस्थासु दुःखकरी भवति येन सुता ॥ १४२ ॥
ततो राजा स्वयमेव पृष्टा तव शीलमति ! वत्से । कीदृशगुणः कथ्यतां रोचते हृदयस्य भर्ता ? ॥ १४३ ॥
किं त्यागी ? किं शूरः ? किं वा विद्वान् ? कृतज्ञः ? सुभगः ? । गान्धर्वकला निपूणः ? परोपकारी ? दयालु ? र्वा ॥१४४॥
ईषदधोमुख्या सलज्जमनया जल्पितं तात ! । यः कोऽपि तव रोचते स चैव मम सम्मतो भर्ता ॥ १४५ ॥
ततो भणितं नरपतिनेषत्समुन्नामय्य मुखकमलम् । उपरोधशीलतायाः वत्से ! न सुखानि कार्याणि ॥ १४६ ॥
यद्येवं तावदेष तव मल्लो महीतल इवापरिभूतः । जेष्यते येन बली स मम भर्त्ता किमपरेण ? ॥ १४७ ॥
ततो ज्ञातं नरपतिनैषा खलु बलानुरागिणी बाला । ततो भद्रं परमनेन सर्वेऽपि पराजिता बलिना ॥ १४८ ॥
तदा तं विषण्णचित्तं दृष्ट्वा भणितं प्रधानपुरुषैः । अद्यापि देव ! जयन्त्यामस्त्यपरीक्षित एकः ॥ १४९ ॥
नरसिंहसुतो बलपौरुषैकरसिको रसातलप्रसिद्धः । नरविक्रमाभिधानः सोऽपि परीक्ष्यतां नरेन्द्र ! ॥ १५० ॥
मन्त्रयित्वा सम्यक् तदर्थमहमत्र प्रेषितः स्वामिन् ! । ततो नरपतिना वदनं निरीक्षितं निजकतनयस्य ॥ १५१ ॥
तेनापि प्रणम्य भणितं देवानुभावाद्भव्यम् । भविष्यति सर्वं प्रेषयत तात ! मां तत्र किं बहुना ? ॥ १५२ ॥
ततो मन्त्रयित्वा सामन्त-मन्त्रि-नागरजनेन सह राज्ञा । प्रषितो हर्षपुरे हृष्टो नरविक्रमकुमारः ॥ १५३ ॥
संमुखगमनेन निजमहत्तमो देवसेननरपतिना । कुमारस्य प्रेषितः समूहेन चतुरङ्गबलकलितः ॥ १५४ ॥
ततो गुरुकविभूत्या शोभनदिवसे प्रवेशितो नगरे । नर-नारि-निकरनयनानां किमपि परमोत्सवः कुमारः ॥ १५५ ॥

सयणा-ऽऽसण-बहुपरिवारसंजुओ धवलधयवडसणाहो । कुमरस्स वासगेहं समप्पिओ पवरपासाओ ॥ १५६ ॥
बीयम्मि दिणे भणिओ रन्ना कुमरो महऽत्थि सीलमई । नामेण कन्नया सा [प]भणइ जो कालमेहमिमं ॥१५७॥
मह मल्लमपडिमल्लं परिभविही होहिही स मे भत्ता । सह कित्ति-जयवडायाहिं कुमर ! ता गिण्हसु तयं ति ॥१५८॥
अंगीकयम्मि कुमरेण सज्जिया नयरपरिसरे रम्मे । मंचाइमंचकलिया वित्थिन्ना मल्लरंगमही ॥ १५९ ॥
नर-नारिनियरसहिए उवविट्ठे देवसेणनरनाहे । सिरिकुमर-कालमेहा समागया रंगभूमीए ॥ १६० ॥
अबद्धनिबिडकच्छा संजमियसिणिद्धकेसपब्भारा । दोन्नि वि निजुद्धनिव्वडियपोरुसा साहसेक्करसा ॥ १६१ ॥
दट्ठुण कालमेहो कुमरं संहणणदुद्धरिसदेहं । पुन्नक्खयाओ खिप्पं खुहिओ चित्तम्मि बलिओ वि ॥ १६२ ॥
चिंतइ य एस रन्नो वल्लहजामाउओ जणाणुपिओ । ता जय-पराजएसुं कुओ वि मह नत्थि कल्लाणं ॥ १६३ ॥
इय भयसंभमवसणो फुट्टं हिययं तड त्ति मल्लस्स । कुमरस्स साहुवाओ संजाओ रंगमज्झम्मि ॥ १६४ ॥
तत्तो य कलानिहिणो कंठे बलसालिणो कुमारस्स । पक्खित्ता वरमाला कुमरीए नेहरज्जु व्व ॥ १६५ ॥
अणुरूवो संजोगो विहिणा विहिओ समाणमेयाण । जाओ साहुक्कारो अहो ! सुवरियं ति जणमज्झे ॥ १६६ ॥
तत्तो सोहणदिवसे पाणिग्गहणं करावियं रन्ना । मंगलगीयरवेणं वज्जिरवरतूरनिवहेण ॥ १६७ ॥
पइमंडलमेईए तह हय-गय-रहवराइयं दिन्नं । रन्ना जह नयरजणो सव्वो वि धुणाविओ सीसं ॥ १६८ ॥
कइय वि दिणाणि नरवर-वहूणमणुभविय मंगलं राया । मोयाविओ सनयरं पइ गमणत्थं कुमारेण ॥ १६९ ॥

शयना-ऽऽसन-बहुपरिवारसंयुतो धवलध्वजपटसनाथः । कुमारस्य वासगृहं समर्पितः प्रवरप्रासादः ॥ १५६ ॥
द्वितीये दिने भणितो राज्ञा कुमारो ममास्ति शीलमती । नाम्ना कन्यका सा प्रभणति यः कालमेघमिमम् ॥ १५७ ॥
मम मल्लमप्रतिमल्लं परिभविष्यति भविष्यति स मे भर्त्ता । सह कीर्त्ति-जयपताकाभिः कुमार ! ततो गृहाण तकामिति ॥१५८॥
अङ्गीकृते कुमारेण सज्जिता नगरपरिसरे रम्ये । मञ्चातिमञ्चकलिता विस्तीर्णा मल्लरङ्गमही ॥ १५९ ॥
नरनारिनिकरसहित उपविष्टे देवसेननरनाथे । श्रीकुमार-कालमेघौ समागतौ रङ्गभूमौ ॥ १६० ॥
आबद्धनिबिडकक्षौ संयमितस्निग्धकेशप्राग्भारौ । द्वावपि निर्युद्धनिष्पन्नपौरुषौ साहसैकरसौ ॥ १६१ ॥
दृष्ट्वा कालमेघः कुमारं संहननदुर्घर्षदेहम् । पुण्यक्षयात्क्षिप्रं क्षुभितश्चित्ते बलिकोऽपि ॥ १६२ ॥
चिन्तयति चैष राज्ञो वल्लभजामाता जनानुप्रियः । ततो जय-पराजययोः कुतोऽपि मम नास्ति कल्याणम् ॥ १६३ ॥
इति भयसंभ्रमवशात्स्फुटितं हृदयं त्रटिति मल्लस्य । कुमारस्य साधुवादः सञ्जातो रङ्गमध्ये ॥ १६४ ॥
ततश्च कलानिधेः कण्ठे बलशालिनः कुमारस्य । प्रक्षिप्ता वरमाला कुमार्या स्नेहरज्जुरिव ॥ १६५ ॥
अनुरुपः संयोगो विधिना विहितः समानमेतयोः । जातः साधुकारोऽहो ! सुवृतमिति जनमध्ये ॥ १६६ ॥
ततः शोभनदिवसे पाणिग्रहणं कारितं राज्ञा । मङ्गलगीतरवेण वाद्यद्वरतूर्यनिवहेन ॥ १६७ ॥
प्रतिमण्डलमेतस्मै तथा हय-गज-रथवरादिकं दत्तम् । राज्ञा यथा नगरजनः सर्वोऽपि धुनितः शीर्षम् ॥ १६८ ॥
कत्यपि दिनानि नरवर-वध्वोरनुभूय मङ्गलं राजा । मोचितः स्वनगरं प्रति गमनार्थं कुमारेण ॥ १६९ ॥

तत्तो य पसत्थदिणे चउरंगमहाबलेण परियरिओ । संपत्थिओ कुमारो विढवियससिनिम्मलजसोहो ॥ १७० ॥
तत्तो पिउणा दुस्सहविओगतुट्टंतनेहपासेण । सिक्खविया सीलमई ससुरकुलं पत्थिया तइया ॥ १७१ ॥
वच्छं ! गुणवियले वि हु जणणी-जणयाण धुवमवच्चम्मि । को वि अपुव्वो नेहो तेण हियत्थं भणामि तुमं ॥१७२॥
निप्पंकसुवन्नसमुज्जला वि सुइसीलसोरभजुया वि । केयइफंडस[1] व्व सुया परोवयाराय निम्मविया ॥ १७३ ॥
ता वच्छे ! तत्थ गया सुविणीया होसु ससुरवग्गस्स । अविणीओ जलणो इव जणइ पवित्तो वि संतावं ॥ १७४ ॥
नियनाममणुसरन्ती सीलम्मि मइं सया वि मा मुयसु । सीलरयणे विणट्ठे न सुन्दरं उभयलोगे वि ॥ १७५ ॥
नियभत्तुणो करेज्जसु सयमासण-भोयणाइयं कज्जं । भत्तारदेवयाओ नारीओ जेण एस सुई ॥ १७६ ॥
पइणोऽभिमएसु य नम्मभासणा तस्स पुण अमित्तेसु । विहियावन्ना पियभासिणी य सव्वम्मि परिवारे ॥ १७७ ॥
ससुराईण गुरुणं भत्ता नमिरा नणंदवग्गम्मि । हरिसियमणा सवक्किसु पइबंधुयणम्मि ससिणेहा ॥ १७८ ॥
संसारियसोक्खपिवासियाण कुलबालियाण किल एवं । पइणो विसए निच्छियममंत-मूलं वसीकरणं ॥ १७९ ॥
अन्नं च–
विणयब्भंससरूवं गव्वं पि हु सव्वहा परिच्चयसु । धणुदंडं चिय विउसा जेण सगव्वं पसंसंति ॥ १८० ॥
रज्जसिरीपमुहेसुं वत्थुसु वच्छे ! मयं पि परिहरसु । सुयणु ! ससि व्व निरूवसु समओ झिज्जइ सुहयरो वि ॥१८१॥
दाणं पि जहाविहवं सया पयट्टेसु पणइवग्गम्मि । मयसमयम्मि अदाणो करि व्व निंदिज्जइ जणेण ॥ १८२ ॥

ततश्च प्रशस्तदिने चतुरंगमहाबलेन परिवारितः । संप्रस्थितः कुमारोऽर्जितशशिनिर्मलयशौघः ॥ १७० ॥
ततः पित्रा दुःषहवियोगत्रुटत्स्नेहपाशेन । शिक्षिता शीलमती श्वसुरकुलं प्रस्थिता तदा ॥ १७१ ॥
वत्से ! गुणविकलेऽपि हु जननी-जनकयो र्ध्रुवमपत्ये । कोऽप्यपूर्वः स्नेहस्तेन हृदयस्थं भणामि त्वाम् ॥ १७२ ॥
निष्पङ्कसुवर्णसमुज्वलापि शुचिशीलसौरभयुतापि । केतकीखण्डमिव सुता परोपकाराय निर्मापिता ॥ १७३ ॥
ततो वत्से ! तत्र गता सुविनीता भव श्वसुरवर्गस्य । अविनीतो ज्वलन इव जनयति पवित्रोऽपि सन्तापम् ॥ १७४ ॥
निजनामानुसरन्ती शीले मतिं सदापि मा मुञ्च । शीलरत्ने विनष्टे न सुन्दरमुभयलोकेऽपि ॥ १७५ ॥
निजभर्तुः कुर्याः स्वयमासन-भोजनादिकं कार्यम् । भर्तृदेवता नार्यो येनैषा श्रुतिः ॥ १७६ ॥
पत्युरभिमतेषु च नर्मभाषणात्तस्यपुनरमित्रेषु । विहितावज्ञा प्रियभाषिणी च सर्वस्मिन् परिवारे ॥ १७७ ॥
श्वसुरादीनां गुरुणां भक्ता नमनशीला ननान्दृवर्गे । हर्षितमना सपत्नीषु पतिबन्धुजने सस्नेहा ॥ १७८ ॥
सांसारिकसौख्यपिपासितानां कुलबालिकानां किलैवम् । पत्यु र्विषये निश्चितममन्त्र-मूलं वशीकरणम् ॥ १७९ ॥
अन्यच्च –
विनयभ्रंशरुपं गर्वमपि खलु सर्वथा परित्यज । धनुर्दण्डं चैव विद्वांसो येन सगर्वं प्रशंसन्ति ॥ १८० ॥
राज्यश्रीप्रमुखेषु वस्तुषु वत्से ! मदमपि परिहर । सुतनु ! शशीव निरुपय समदः क्षीयते सुखकरोऽपि ॥ १८१ ॥
दानमपि यथाविभवं सदा प्रवर्तय प्रणतिवर्गे । मदसमयेऽदानः करीव निन्द्यते जनेन ॥ १८२ ॥

---

१. फडस – 'ફાऽચું' इति भाषायाम्

इय सिक्खविऊण सुयं दूरमणुव्वइय देवसेणनिवो । वलिओ विवन्नछाओ सुमरंतो ताण गुणनियरं ॥ १८३ ॥
कुमरो वि अखंडपयाणएहिं पत्तो जयंतिनयरीए । नवजलहरो व्व सिहिणो पिउणो मग्गं नियंतस्स ॥ १८४ ॥
जयवारणमारूढो सीलमईए समं सभज्जाए । पिउणो पुरीए सोहं पेच्छंतो विसइ अह कुमारो ॥ १८५ ॥
कुमरस्स दंसणत्थं दोसु वि पासेसु रायमग्गस्स । हट्ठ-ऽट्टालय-देउलय-भवणपासायसिहरगओ ॥ १८६ ॥
मोत्तुं नियवावारं निस्सेसो नयरिनारि-नरनियरो । निच्चलनेत्तो नरनाहनंदणं नियइ नयणसुहं ॥ १८७ ॥
परिणयवएहिं भणियं सव्वं पि हु होइ पुन्नवन्ताण । जेणेसो पत्तजसो सकलत्तो नियपुरिं पत्तो ॥ १८८ ॥
तरुणाण भणइ को वि हु कुमरो रूवेण मयरकेउ व्व । अवरो जंपइ कुमरी तिहुयणअब्भहियरूवगुणा ॥ १८९ ॥
विद्धाहि भणियमम्मा-पिऊण सुइरं कुणंतु संतोसं । जीवंतु चिरं विलसंतु संपयं पुन्नवन्ताणि ॥ १९० ॥
तरुणीण पुणो तरलत्तणेण अविवेयबहुलयाए य । विविहालावा जाया परोप्परं ताण विसयम्मि ॥ १९१ ॥
तहाहि–
कीय वि कहियं करकमलकलियवज्जो पियाए सह कुमरो । सोहइ सिंधुरखंधे सहि ! सइसहिओ सुरिंदो व्व ॥१९२॥
अवराए भणियमलं पियसहि ! तुह जंपिएण जेण हरी । सो अकुलीणो अवरं च छिद्दसंछन्नसव्वंगो ॥ १९३ ॥
सुहसिरिजणओ सोहइ सभारिओ निवसुओ महासयणो । वेलाए सहिओ जलनिहि व्व विलसंतलायन्नो ॥१९४॥
मयरसिएण जलहिणा अमयं विन्नुं जडासएण समं । कुमरं करेसि जाणंतिया वि पियसहि ! बहुं भुल्ला ॥ १९५ ॥

इति शिक्षयित्वा सुतां दूरमनुवृत्य देवसेननृपः । वलितो विवर्णच्छायः स्मरंस्तयो र्गुणनिकरम् ॥ १८३ ॥
कुमारोऽप्यखण्डप्रयाणकैः प्राप्तो जयन्तीनगर्याम् । नवजलधर इव शिखिनः पितु मार्गं पश्यतः ॥ १८४ ॥
जयवारणमारुढः शीलमत्या समं स्वभार्यया । पितुः पूर्यां शोभां पश्यन् विशत्यथ कुमारः ॥ १८५ ॥
कुमारस्य दर्शनार्थं द्वयोरपि पार्श्वयो राजमार्गस्य । हट्टा-ऽट्टालय-देवकुल-भवनप्रासादशिखरगतः ॥ १८६ ॥
मुक्त्वा निजव्यापारं निःशेषो नगरनारि-नरनिकरः । निश्चलनेत्रो नरनाथनन्दनं पश्यति नयनसुखम् ॥ १८७ ॥
परिणतवयोभि र्भणितं सर्वमपि हु भवति पुण्यवताम् । येनैष प्राप्तयशाः सकलत्रो निजपुरिं प्राप्तः ॥ १८८ ॥
तरुणानां भणति कोऽपि हु कुमारो रुपेण मकरकेतुरिव । अपरो जल्पति कुमारी त्रिभुवनाभ्यधिकरुपगुणा ॥ १८९ ॥
वृद्धाभि र्भणितमम्मा-पितरोः सुचिरं कुर्वन्तु सन्तोषम् । जीवन्तु चिरं विलसन्तु संपत्पुण्यवन्ति ॥ १९० ॥
तरुणीनां पुनस्तरलत्वेनाविवेकबहुलतया च । विविधालापा जाताः परस्परं तयोर्विषये ॥ १९१ ॥
तथाहि -
कयापि कथितं करकमलकलितवज्रः प्रियया सह कुमारः । शोभते सिन्धुरस्कन्धे सखि ! शचीसहितः[1] सुरेन्द्र इव ॥१९२॥
अपरया भणितमलं प्रियसखि ! तव जल्पितेन येन हरिः । सोऽकुलीनोऽपरं च छिद्रसंच्छन्नसर्वाङ्गः ॥ १९३ ॥
सुखश्रीजनकः शोभते सभार्यको नृपसुतो महाशयनः । वेलया सहितो जलनिधिरिव विलसल्लावण्यः ॥ १९४ ॥
मदरसिकेन जलधिनामृतं विना जडाशयेन समम् । कुमारं करोषि जानन्त्यपि प्रियसखि ! बहुं विस्मृता ॥ १९५ ॥

१. शचीसहितः ।

कप्पियकरेण संतावहारिणा सहि ! समोसहइ कुमरो । भज्जासहिओ कप्पद्दुमेण सियचंपयलएण ॥ १९६ ॥
साहिपहाणं मणताववज्जिएणं समं कुमारेणं । जंपंती सिरसूलं पिय[सहि!] मह कुणसि जाणंती ॥ १९७ ॥
करकलियसंख-चक्को जणनिव्वुइकरसुदंसणो कुमरो । सीलमईए सिरीए व सहिओ विन्हु व्व पडिहाइ ॥ १९८ ॥
आवयवइसयणेणं सुहिसयणो विण्हुणा समो कुमरो । लच्छीसमभज्जो वि हु सगएण निरामओ कह णु ? ॥१९९॥
सुहरसणो जयसूरो मय-रणभयवज्जिओ सह पियाए । सीहीए समं पंचाणणो व्व सहि ! सोहइ कुमारो ॥२००॥
सहि ! ससधरसियदेहेण भणसि सीहेण जं समं कुमरं । केण वि अगंजियं तं मयच्छि ! मह चालसि अणक्खे ॥२०१॥
इय पउरपुरंधीणं कुमरो समयणवियड्ढवयणाणि । निसुणंतो नायरनारिनयणमालाहिं पिज्जंतो ॥ २०२ ॥
वीइज्जंतो वत्थंचलेहिं नरनाहमंदिरं विसइ । उब्भियतोरण-मोत्तियचउक्ककलियं कलाकुसलो ॥ २०३ ॥
पणओ पिउणो पाएसु सविणयंभारियाए सह कुमरो । पिउणा वि हु परिपालसु रज्जधुरं एवमणुसट्ठो ॥ २०४ ॥
मायाए पुण पणओ चिरकालं जियसु पुत्त ! इय भणिओ । सीलमई पुण भणिया अक्खयवच्छ भवसु वच्छे ! ॥२०५॥
नियपासायसमीवे पासायं देइ नियकुमरस्स । भोगोवभोगपरिवारसंजुयं सहरिसं जणओ ॥ २०६ ॥
जुवरज्जम्मि निवेसइ नायरजणसम्मएण तं कुमरं । इय सो सत्थत्थविऊ नियजणयपसायदुल्ललिओ ॥ २०७ ॥
पंचविहे कामगुणे भुंजंतो भारियाए सह कुमरो । दोगुंदुगो व्व देवो गयं पि कालं न याणेइ ॥ २०८ ॥
अह अन्नया कुमारो पंडियगोट्ठिं समीहए काउं । चउरमइ-विउसभूसणनामगमित्ताइपरियरिओ ॥ २०९ ॥

कल्पितकरेण सन्तापहारिणा सखि ! समः राजते कुमारः । भार्यासहितः कल्पद्रुमेण सितचम्पकलतया ॥ १९६ ॥
शाखिप्रधानं मनस्तापवर्जितेन समं कुमारेण । जल्पन्ती शिरःशूलं प्रिय[सखि !] मम करोषि जानन्ती ॥ १९७ ॥
करकलितशङ्ख-चक्रो जननिर्वृत्तिकरसुदर्शनः कुमारः । शीलमत्या श्रीयेव सहितो विष्णुरिव प्रतिभाति ॥ १९८ ॥
आपगापतिशयनेन सुखिशयनो विष्णुना समः कुमारः । लक्ष्मीसमभार्योऽपि हु स्वगदेन निरामयः कथं नु ? ॥ १९९ ॥
सुखरसनो जयशूरो-मद-रणभयवर्जितः सह प्रियया । सिंह्या समं पञ्चानन इव सखि ! शोभते कुमारः ॥ २०० ॥
सखि ! शशधरसितदेहेन भणसि सिंहेन यत्समं कुमारम् । केनाप्यपराभूतं तं मृगाक्षि ! मम चालयसि क्रोधे ॥ २०१ ॥
इति पौरपुरन्ध्रीणां कुमारः समदनविदग्धवचनानि । निःशुण्वन्नागरनारिनयनमालाभिः पीयमानः ॥ २०२ ॥
वीज्यमानो वस्त्राञ्चलै र्नरनाथमन्दिरं विशति । उद्भिततोरण-मौक्तिकचतुष्ककलितं कलाकुशलः ॥ २०३ ॥
प्रणतः पितुः पादयोः सविनयं भार्याया सह कुमारः । पित्रापि हु परिपालय राज्यधुरामेवमनुशिष्टः ॥ २०४ ॥
मात्रा पुनः प्रणतश्चिरकालं जीव पुत्र ! इति भणितः । शीलमती पुन र्भणिताऽक्षयवत्सा भव वत्से ! ॥ २०५ ॥
निज प्रासादसमीपे प्रासादं ददाति निजकुमाराय । भोगोपभोगपरिवारसंयुतं सहर्षं जनकः ॥ २०६ ॥
युवराज्ये निवेशयति नागरजनसम्मतेन तं कुमारम् । इति स शास्त्रार्थविदु र्निजजनकप्रसाददुर्ललितः ॥ २०७ ॥
पञ्चविधान् कामगुणान् भुञ्जन् भार्यया सह कुमारः । दोगुन्दुक इव देवो गतमपि कालं न जानाति ॥ २०८ ॥
अथान्यदा कुमारः पण्डितगोष्ठिं समीहते कर्तुम् । चतुरमति-विदुषभूषणनामकमित्रादिपरिवारितः ॥ २०९ ॥

सद्धिं सहिसहियाए सीलमईण वियड्ढभज्जाए । नियपासायवरगओ सरिऊण सुभासियं एयं ॥ २१० ॥
काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् । व्यसनेन हि मूर्खाणां निद्रया कलहेन च ॥ २११ ॥
काऊण छंद-लक्खण-पमाणसत्थाइपंडियवियारं । पन्होत्तरगोट्ठीए हरियमणो भणइ चउरमई ॥ २१२ ॥
पियमित्त ! समइरइयं किं पि हु पन्नहोत्तरं पढसु पढमं । जेणेस वियाणइ विउसभूसणो मज्झ वयणेण ॥ २१३ ॥
पढियं च चउरमइणा सरइयपन्होत्तरं[1] कुमरवयणा । वत्थमिममेगवारं[2] तहा समत्थं च तं च इमं ॥ २१४ ॥
भ्रान्तिमाशु बत बोधय पृष्टं, कानने न ननु का जगदिष्टाः ? ।
कीदृशाश्च पशुपालगृहाः स्युर्नीलशष्पपरिपुष्पदुरभ्राः ? ॥ २१५ ॥
सिग्घं विचिंतिऊणं सुगममिमं कुमर ! जाणइ सिसू वि ।
नाऊ[णं विउसविभूसणेण प]भणियमिमं तस्स ॥ २१६ ॥ भ्रमदवयः ॥
भणियं च चउरमइणा जइ सुगममिमं तओ तुमं पढसु । विसमतरं जेण तयं पेच्छामो तेण पढियमिमं ॥ २१७ ॥
सम्बोध्यते कथमजो धरणीरुहश्च, मर्त्यः प्रकाममवबोधनवर्जितश्च ? ।
कीदृग् नगाधिपसुतापतिरंह्रिहीनमर्त्या भवन्ति भुवने कतम[स्व]भावाः ॥ २१८ ॥
नायं च चउरमइणा किंचि चिरं चिंतिऊण किच्छेणं । सच्चं चिय विउसविभूसणोहि हसिऊण तं च इमं ॥ २१९ ॥
आगमनाः[3] ॥
भणियं तो विउसविभूसणेण तं कुमर ! पढसु दुरवगमं । पन्होत्तरमम्हाणं जं पढियं जणइ संतोसं ॥ २२० ॥
तक्खणमेव वियप्पियमिणमो नरविक्कमेण तं पढियं । वत्थमणेगालावं गयपच्चागयमिमं तं च ॥ २२१ ॥

सार्द्धं सखिसहितया शीलमत्या विदग्धभार्यया । जिनप्रासादवरगतः स्मृत्वा सुभाषितमेतत् ॥ २१० ॥
कृत्वा छन्द-लक्षण-प्रमाण शास्त्रादिपण्डितविचारम् । प्रश्नोत्तरगोष्ठ्या हृतमना भणति चतुरमतिः ॥ २११ ॥
प्रियमित्र ! स्वमतिरचितं किमपि हु प्रश्नोत्तरं पठ प्रथमम् । येनैष विजानाति विदुषभूषणो मम वचनेन ॥ २१३ ॥
पठितं च चतुरमतिना स्वरचितप्रश्नोत्तरं[1] कुमारवचनात् । व्यस्तमिदमेकवारं[2] तथा समस्तं च तच्चेदम् ॥ २१४ ॥
शीघ्रं विचिन्त्य सुगममिदं कुमार ! जानाति शिशुरपि । ज्ञात्वा विदुषविभूषणेन प्रभणितमिदं तस्य ॥ २१६ ॥
भणितं च चतुरमतिना यदि सुगममिदं ततस्त्वं पठ । विषमतर येन तकं पश्यामस्तेन पठितमिदम् ॥ २१७ ॥
ज्ञातं च चतुरमतिना किञ्चिच्चिरं चिन्तयित्वा कृच्छ्रेण । सत्यं चैव विदुषभूषणोऽसि हसित्वा तच्चेदम् ॥ २१९ ॥
भणितं ततो विदुषभूषणेन त्वं कुमार ! पठ दुरवगमम् । प्रश्नोत्तरमस्माकं यत्पठितं जनयति संतोषम् ॥ २२० ॥
तत्क्षणमेव विकल्पितमयं नरविक्रमेन तत्पठितम् । व्यस्तमनेकालापं गतप्रत्यागतमिदं तं च ॥ २२१ ॥

---

१. स्वरचितम् । २. व्यस्तमिदमेकवारं तथा समस्तं च । ३. 'आगम-नः !' पुराअपुरुष ! । 'अगमन' ! वृज्ञ ! । 'अ-गमनः ! बोधवर्जितपुरुष ! । 'अग-मनाः' हिमालयमनाः । 'अगमनाः' गतिरहिताः । समस्यादिषु स्वरादीनां विपर्यासो न दोषाय ।

दैत्याः केन विदारिताः ? रिपुगणाकीर्णं च कीदृग् रणं ?, प्रोक्तं ब्रह्म मनोरथेन वदति ब्रह्मा किमिष्टं नृणाम् ? ।
ब्रूते शर्मपतिर्विशुद्ध्यति मलः केनात्र कीदृग् नभः, प्रत्येकं ब्रुवते विकल्पविधिभृद् वर्णादनब्रह्मजाः ॥ २२२ ॥
अहह ! कुमारमईए नेउन्नं जेण गरुयकिच्छेणं । नायमिमं नवनाडीनिरोहओ तं कयाइ इमं ॥ २२३ ॥
अह विउसभूसणो भणइ कुमर ! समईए विरइयमियाणिं । पण्होत्तरमेरिसगं भणामि जइ भणसि तुममेगं ॥२२४॥
कुमरेण भणियमहमवहिओ म्हि अवरं च का वि हु अपुव्वा । आसुकवित्ते सत्ती तुह पढसु तओ य तेणुत्तं ॥२२५॥
पृष्टं पुष्करपालकेन मधुभिद् धत्ते किमस्त्रं ? रिपोः, सैन्यं कीदृगथो विकल्पवचनो वर्णश्च किं पीयते ? ।
पृष्टंचित्त[·····]पिपासति गजो विन्ध्योद्भवः किं पृथक्, सञ्जल्पन्ति निपात-वामसलिलाभिख्या समाजश्रियाः।२२६।
कुमरेणावि हु सविलंबमूहिउं भणियमुत्तरमिमस्स । भव्वमिमं दुरवगमं गुणेसु को मच्छरं वहइ ? ॥ २२७ ॥
रेवावारिवैरिवावारे ॥
तत्तो य चउरमइणा भणियं अहमवि विसिट्ठजाईए । आयन्नसु कुमर ! तुमं पढेमि पण्होत्तरं एगं ॥ २२८ ॥
कुमर ! पढावसु जम्हा विसिट्ठिजाईए कोउगं अम्ह । सव्वेहिं सहरिसं मन्नियम्मि तेणावि पढियमिमं ॥ २२९ ॥
कीदृग् दग्धमरण्यमर्तिजनकं किं चाहुरत्रोदितं, गन्त्र्या कीदृगथो मनोविद इति धान्वो वदन्त्यम्बुदम् ।
वोद्या चाव्ययपद्मजाङ्गजमरुन्निः श्रीकशब्दैकता, ब्रूते पञ्चजनोऽथ कीदृगुदितं वृन्दं मुनीनां वद ॥ २३० ॥
तं बहुसो वीमंसियमलद्धमज्झं न जाव विन्नायं । केण वि ता कुमरेणं भणियमिमं उत्तरमिमस्स ॥ २३१ ॥
सव्वेहि वि मिलिऊणं भणियं पुणरवि कुमार ! तं पढसु । दुरवगमं पण्होत्तरमवगच्छामो न वा अम्हे ॥ २३२ ॥
तो पढियं कुमरेणं गयपच्चागयमिमं पउमबंधे । समईए विरइयं मुणउ कोई जस्सऽत्थि मइविहवो ॥ २३३ ॥
अतिशायिबलो वध्यः सुराज्ञः कीदृशी तनुः ? । तपोलक्ष्म्या च कीदृक्ष्या युता कीदृग् मुनेस्तनुः ? ॥ २३४ ॥
·····वितं सौख्यं सगमनमालप कीदृग् वणिक्कला बोध्या ? । भौमयुतस्सततगतिर्बलं च कीदृक्स नो दा स्त्री ॥२३५॥

अहह ! कुमारमत्या नैपूण्यं येन गुरुककृच्छ्रेण । ज्ञातमिदं नवनाडीनिरोधात्तत्कदाचिदिदम् ॥ २२३ ॥
अथ विदुषभूषणो भणति कुमार ! स्वमत्या विरचितमिदानीम् । प्रश्नोत्तरमिदृशकं भणामि यदि भणसि त्वमेकम् ॥ २२४ ॥
कुमारेण भणितमहमवहितोऽस्म्यपरं च कापि हु अपूर्वा । आशुकवित्वे शक्तिस्तव पठ ततश्च तेनोक्तम् ॥ २२५ ॥
कुमारेणापि हु सविलम्बमुह्य भणितमुत्तरमस्य । भव्यमिदं दुरवगमं गुणेषु को मत्सरं वहति ? ॥ २२७ ॥
ततश्च चतुरमतिना भणितमहमपि विशिष्टजात्याः । आकर्णय कुमार ! त्वं पठामि प्रश्नोत्तरमेकम् ॥ २२८ ॥
कुमार ! पाठ्य यस्माद्विशिष्टजात्याः कौतूकमस्मान् । सर्वैः सहर्षं मन्यमाने तेनापि पठितमिदम् ॥ २२९ ॥
तं बहुशो विमृश्यालब्धमध्यं न यावद्विज्ञातम् । केनापि तावत्कुमारेण भणितमिदमुत्तरमेतस्य ॥ २३१ ॥
सर्वैरपि मिलित्वा भणितं पुनरपि कुमार ! त्वं पठ । दुरवगमं प्रश्नोत्तरमवगच्छामो न वा वयम् ॥ २३२ ॥
ततो पठितं कुमारेण गतप्रत्यागतमिमं पद्मबन्धे । स्वमत्या विरचितं मुणतु कोऽपि यस्यास्ति मतिविभवः । २३३ ॥

तो जाव न को वि हु किं पि मुणइ ता चउरबुद्धिणा भणियं । उत्तरमिमस्स धुणिऊण मत्थयं कुमरपन्नाए ॥२३६॥
सारतरयारतरसा ॥

ताहे विउसाणंदेण जंपियं कुमर ! किं पि हु भणामि । अहमवि पण्होत्तरमेगमेरिसं जइ मयं तुज्झ ॥ २३७ ॥
कुमरेणमीसि हसिऊण जंपियं मह सभाए तं पढमो । कुणसु जहत्थं नामं पढसु जहिच्छाए मज्झ मयं ॥ २३८ ॥

दृष्ट्वा सुरूपसुरभीभरभूरिशोभं, भूमीविभागमभितोऽभिहितो धरित्र्या ।
स्याद्वादसारवचनेन च यद् विरागस्ताभ्यां सदुत्तरमदायि तदेव तेन ॥ २३९ ॥

समपन्होत्तरमेयं वियाणिउं जंपियं कुमारेण । काउं नाउं च इमं सुदुक्करं पंडियाणंपि ॥ २४० ॥
तद्यथा—कोऽनेकान्तात्मगोव्रजः ॥
तेहुत्तं मइसायर ! नऽज्ज वि तं कुणसि कुमरसंतोसं । तेणूत्तं अम्हे सुत्तपाढया के बुहाण पुरो ? ॥ २४१ ॥
सुत्तपढणाणूरूवं तहा वि किं पि हु पढिज्जउ पसत्थं । जइ एवं सुत्तं चिय मह पण्होत्तरमिमं सुणह ॥ २४२ ॥
का सौख्यैकनिबन्धन त्रिभुवने ?, केषां महद् गौरवं ?, नीरुग् वक्ति, जनस्य तात्त्विकरिपुः कः ?, कं[1] च बभ्रुर्द्विषन् ?।
सङ्घो वक्ति, सुदर्शनं वद करे [के]षां, स्वराग्र्यभिधात्,
को वर्णो ?, नपरो वितुन्दति [न,]किं सूत्रं पुरस्यानजः ॥ २४३ ॥
अह तेहिं धुणिय सीसं दिन्ना नहछोडिया भणंतेहिं । पंडियसभाए कुमरस्सऽणेण वित्थारिया कित्ती ॥ २४४ ॥
नवरं विन्नायमिमं मइसायरसंतियं न केणावि । पण्होत्तरगयसुत्तं मुणियं कुमरेण तं तु इमं ॥ २४५ ॥
—अंहिंसाऽर्थानामज्वरे[2] ॥
विउसेहिं पुणो भणियं सहियणपरिवारिया मुणंती वि । तुह कुमर ! वल्लहा मोणमस्सिया संपइ किमेसा ? ॥२४६॥

ततो यावन्न कोऽपि हु किमपि मुणति तावच्चतुरबुद्धिना भणितम् । उत्तरमस्य धूर्णयित्वा मस्तकं कुमारप्रज्ञया ॥ २३६ ॥
तदा विदुषानन्देन जल्पितं कुमार ! किमपि हु भणामि । अहमपि प्रश्नोत्तरमेकमीदृशं यदि मतं तव ॥ २३७ ॥
कुमारेणेषद्धसित्वा जल्पितं मम सभायां त्वं प्रथमः । कुरु यथार्थं नाम पठ यथेच्छया मम मतम् ॥ २३८ ॥
समप्रश्नोत्तरमेतद्विज्ञाय जल्पितं कुमारेण । कृत्वा ज्ञात्वा चेमं सुदुष्करं पण्डितानामपि ॥ २४० ॥
तैरुक्तं मतिसागर ! नाद्यापि त्वं करोषि कुमारसन्तोषम् । तेनोक्तं वयं सूत्रपाठकाः के बुधानां पुरः ? ॥ २४१ ॥
सूत्रपठनानुरुपं तथापि किमपि हु पठ्यतां प्रशस्तम् । यद्येवं सूत्रं चैव मम प्रश्नोत्तरमिदं शृणुत ॥ २४२ ॥
अथ तै र्धूर्णित्वा शीर्षं दत्ता नखच्छोटिका[3] भणद्भिः । पण्डितसभायां कुमारस्यानेन विस्तारिता कीर्तिः ॥ २४४ ॥
नवरं विज्ञातमिदं मतिसागरसत्कं न केनापि । प्रश्नोत्तरगतसूत्रं मुणितं कुमारेण तत्विदम् ॥ २४५ ॥
विदुषैः पुन र्भणितं सखिजनपरिवारिता मुणन्त्यपि । तव कुमार ! वल्लभा मौनमाश्रिता सम्प्रति किमेषा ? ॥ २४६ ॥

---

१. बभ्रुः नकुलः । २. अहिंसा, अर्थानाम्, अज्वर ?, 'इः', कामः, अहिम्, सार्थ !, 'अनाम्' वासुदेवानाम्, अ, स्वरविपर्यासाद् अज्वरः, "हिंसार्थानामज्वरेः" [कातन्त्र० २-४-४०] । ३. 'चपटी' इति भाषायाम् ।

पेच्छ न किं पि पसंसइ न य एसा पढइ किं पि अम्हाणं । संतोसकए ताहे भणियं कुमरेण पढसु पिए ! ॥ २४७ ॥
तीए भणियं पिययम ! पाययभासानिउत्तवाणीणं । अम्हाण तुम्ह पुरओ पढियं भण केरिसं होइ ? ॥ २४८ ॥
कुमरेणुत्तं मा भणसु एरिसं जं बुहा वि जंपंति । उत्तिविसेसो कव्वं भासा जा होइ सा होउ ॥ २४९ ॥
ताहे सीलमईए नाऊण विणिच्छयं कुमारस्स । विउसमणाणंदयरं पढियं पण्होत्तरं एयं ॥ २५० ॥
पुत्थयहत्थी, तह सावयं च, कह भण्णए धरातणओ ? । गमणंपुच्छइ, को वा बुहाण सइवन्नणिज्जो उ ? ॥२५१॥
विज्जेणं बुद्धिमया को लक्खिखज्जइ सरीरिणो देहे ? । समरंगणम्मि दीसइ जणेण किर केरिसो कण्हो ? ॥२५२॥
रहवाई केरिसओ संजायइ वढविओयपज्जाओ ? । दुह वत्थं [ति]समत्थं जाण[ह] पण्होत्तरं मज्झ ॥ २५३ ॥
सीलमईए पढियं पण्होत्तरयं [च चिंतयं]ताणं । जाया महई वेला कहवि हु किच्छेण निन्नायं ॥ २५४ ॥
गयवियारो[१] ॥
एत्थंतरम्मि पंडियगुणाणुराएण रंजिओ कित्तिं । कुमरस्स कहेउं जे पत्तो दीवंतरम्मि रवी ॥ २५५ ॥
इय सिट्ठविणोएणं नरवइआणं अखंडयंतस्स । कुमरस्स केत्तिओ वि हु सुहेण कालो वइक्कंतो ॥ २५६ ॥
अह अन्नया स नरनिवइभूसणं कुसुमसेहरकुमारं । पसवइ पसत्थदिवसे सीलमई सुमणसगुणढ्ढं ॥ २५७ ॥
बीयं कमेण सिरिविजयसेहरं विजयकारयं पिउणो । तणयदुगं पि हु तं पुण निच्चं पि पियामहस्स पियं ॥ २५८ ॥
अह कइया वि हु मयसमयपरवसो भग्गनिव्वरालाणो । पाडियमिंठो निद्दलियनिबिडनिगडो नयरमज्झे ॥२५९॥

पश्य न किमपि प्रशंसन्ति न चैषा पठति किमप्यस्मान् । सन्तोषकृते तदा भणितं कुमारेण पठ प्रिये ! ॥ २४७ ॥
तया भणितं प्रियतम ! प्राकृतभाषानियुक्तवाणीनाम् । अस्माकं तव पुरतः पठितं भण कीदृशं भवति ?॥ २४८ ॥
कुमारेणोक्तं मा भणेदृशं यद्बुधा अपि जभ्पन्ति । युक्तिविशेषः काव्यं भाषा या भवति सा भवतु ॥ २४९ ॥
तदा शीलमत्या ज्ञात्वा विनिश्चयं कुमारस्य । विदुषमनानन्दकरं पठितं प्रश्नोत्तरमेतत् ॥ २५० ॥
पुस्तकहस्ती तथा श्वापदं च कथं भण्यते धरातनयः ? । गमनं पृच्छति, को वा बुधानां सदावर्णनीयस्तु ? ॥ २५१ ॥
वैद्येन बुद्धिमता को लक्ष्यते शरीरीणो देहे ? । समराङ्गणे दृश्यते जनेन किल कीदृशः कृष्णः ? ॥ २५२ ॥
रथवादी कीदृशः सञ्जायते मूर्खवियोगपर्यायः ? । द्विधा व्यस्तं त्रिसमस्तं जानीत प्रश्नोत्तरं मम ॥ २५३ ॥
शीलमत्या पठितं प्रश्नोत्तरकं (च चिन्तयताम्) । जाता महती वेला कथमपि हु कृच्छ्रेण निश्चित्तम् ॥ २५४ ॥
अत्रान्तरे पण्डितगुणानुरागेण रञ्जितः कीर्तिम् । कुमारस्य कथयित्वा ये प्राप्तो द्वीपान्तरे रविः ॥ २५५ ॥
इति शिष्टविनोदेन नरपत्याज्ञामखण्डयतः । कुमारस्य कतिपयोऽपि खलु सुखेन कालो व्यतीक्रान्तः ॥ २५६ ॥
अथान्यदा च नरनृपतिभूषणं कुसुमशेखरकुमारम् । प्रसवति प्रशस्तदिवसे शीलमती सुमनसगुणाढ्यम् ॥ २५७ ।
द्वितीयं क्रमेण श्रीविजयशेखरं विजयकारकं पितुः । तनयद्विकमपि हु तं पुन र्नित्यमपि पितामहस्य प्रियम् ॥ २५८ ॥
अथ कदापि हु मदसमयपरवशो भग्नाचलालानः[२] । पातितहस्तिपको निर्दलितनिबिडनिगडो नगरमध्ये ॥ २५९ ॥

---

१. गज !, वृक !, 'आर ! मङ्गल ! गत !, विचारः । गदविकारः । गदाविचारः । गतविचारः । २. निव्वरं (दे.) निष्प्रकम्पः अचलः ।

भंजंतो भवणचयं मोडंतो वियडविडविसंघायं । पाडिंतो पासाए मारंतो माणवसमूहं ॥ २६० ॥
नरारायपट्टहत्थी परिभमइ निरग्गलो अपडियारो । ताहे पुरीए मज्झे जायं असमंजसं सव्वं ॥ २६१ ॥
तत्तो भणियं रन्ना करिरयणमिमं पहारमकरिंतो । गिन्हउ को वि हु जस्सऽत्थि साहसं सुणिऊमिय सुहडा ॥२६२॥
सव्वे वि हु सन्नद्धा परमेगो वि हु जमं व तं हत्थिं । अंगीकाउमसत्तो तो रोसविसप्पिरमएण ॥ २६३ ॥
कइया वि पुरीमज्झे गब्भभरालसविहत्थसव्वंगी । एगा बाला वालेण तेण पत्ता परायत्ता ॥ २६४ ॥
हा भाय ! भाय ! हा ताय ! ताय ! हा राय ! राय ! तुरमाणा । तायह तायहं मं करिवराओ पावाओ एयाओ ॥२६५॥
हा हा ! कत्थइ किं कोई नत्थि कित्तिप्पिओ कुमारवरो । जो मोयावइ मरणाओ मं इमाओ महासत्तो ? ॥ २६६ ॥
इय विलवंतिं भयविहुरमाणसं तत्थ तासतरलच्छिं । पच्चासन्नीहुयमरणमेरिसं कलुणसद्देण ॥ २६७ ॥
पासिऊमपारयंतो कुमरो करुणापरव्वसो सहसा । हक्कन्तो करिनाहं ढुक्को करिणो समीवम्मि ॥ २६८ ॥
तो वारिंतस्स वि परियणस्स निस्सेसनायरजणस्स । सीहो व खंधभाए भयरहिओ चडइ चवलगई ॥ २६९ ॥
तत्तो य अंकुसो अंकुसो त्ति कुमरस्स वाहरंतस्स । मारेउं पारद्धो तं नारिं मत्तमायंगो ॥ २७० ॥
तत्तो कुमरो करुणाए तीए विम्हरियरायआएसो । पहणइ कुंभयडे तिक्खखग्गधेणूए करिनाहं ॥ २७१ ॥
ताहे हत्थी सो तारिसो वि गाढप्पहारजज्जरिओ । निग्गयरुहिरपवाहो तह चेव अचेयणोव्व ठिओ ॥ २७२ ॥
दिट्ठो जणेण छुरियप्पहारकुंभयडगलियरुहिरजलो । विंझो व्व गलियनिज्झरणनीरपरिधोयधाउरसो ॥ २७३ ॥

भञ्जन् भवनचयं मोटयन् विकटविटपिसङ्घातम् । पातयन् प्रासादान्मारयन्मानवसमूहम् ॥ २६० ॥
नरराजपट्टहस्ती परिभ्रमति निरर्गलोऽप्रतिकारः । तदा पूर्या मध्ये जातमसमञ्जसं सर्वम् ॥ २६१ ॥
ततो भणितं राज्ञा करिरत्नमिदं प्रहारमकुर्वन्तः । गृह्णातु कोऽपि यस्यास्ति साहसं श्रुत्वेति सुभटाः ॥ २६२ ॥
सर्वेऽपि हु सन्नद्धाः परमेकोऽपि हु यममिव तं हस्तिनम् । अङ्गीकर्तुमशक्तस्ततो रोषविसर्पन्मदेन ॥ २६३ ॥
कदापि पुरीमध्ये गर्भभरालसविहस्तसर्वाङ्गी । एका बाला व्यालेन तेन प्राप्ता परायत्ता ॥ २६४ ॥
हा भ्रात ! भ्रात ! हा तात ! तात ! हा राजन् ! राजन् ! त्वरमाणाः । त्रायध्वं त्रायध्वं मां करिवरात्पापादेतस्मात् ॥ २६५ ॥
हा हा ! कुत्रचित् किं कोऽपि नास्ति कीर्तिप्रियः कुमारवरः । यो मोचयति मरणान्मामस्मान्महासत्त्वः ? ॥ २६६ ॥
इति विलपन्तीं भयविधुरमानसां तत्र त्रासतरलाक्षिम् । प्रत्यासन्नीभूतमरणामीदृशां करुणशब्देन ॥ २६७ ॥
द्रष्टुमपारयन् कुमारः करुणापरवशः सहसा । प्रेरयन् करिनाथमुपस्थितः करिणः समीपे ॥ २६८ ॥
ततो वार्यमाणस्यापि परिजनस्य निःशेषनागरजनस्य । सिंह इव स्कन्धभागं भयरहित आरोहति चपलगतिः ॥ २६९ ॥
ततश्चाङ्कुशोऽङ्कुश इति कुमारस्य व्याहरतः । मारयितुं प्रारब्धस्तां नारिं मत्तमातङ्गः ॥ २७० ॥
ततः कुमारः करुणया तस्या विस्मृतराजादेशः । प्रहन्ति कुम्भतटे तीक्ष्णाग्रधेनुना करिनाथम् ॥ २७१ ॥
तदा हस्ती स तादृशोऽपि गाढप्रहारजर्जरितः । निर्गतरुधिरप्रवाहस्तथा चैवाचेतन इव स्थितः ॥ २७२ ॥
दृष्टो जनेन छूरिकाप्रहारकुम्भतटगलितरुधिरजलः । विन्ध्य इव गलितनिर्झरणनीरपरिधौतधातुरसः ॥ २७३ ॥

गयणाभोउ व्व अणूरुरत्तसंझाणुरायसंवलिओ । रेहइ हत्थी कुमरप्पहारपगलंतरुहिरोहो ॥ २७४ ॥
विप्फुरियविज्जुवलयावणद्धपणवन्नसक्ककोयंडो । नवजलहरो व्व रेहइ करिराओ रुहिरसंछन्नो ॥ २७५ ॥
तो ओयरिउं कुमरो करिंदखंधाउ सुद्धपरिणामो । उक्खिविऊणं बालं मुंचइ निरुवद्दवे ठाणे ॥ २७६ ॥
नाउं राया करिरायवइयरं नेहनिब्भरमणोवि । धणियं कुद्धो दुद्धरिसभिउडिभासुरियभालयलो ॥ २७७ ॥
फुरियाहरभयजणओ गुंजारुणवयण-नयणदुप्पेच्छो । घयसित्तहुयासणरासिसन्निभो भणिउमाढत्तो ॥ २७८ ॥
रे रे कुलफंसण ! पावकम्म ! गुरुवयणलंघणसयन्ह ! अवसर दिट्ठिपहाओ मह जीवियसमकरिकयंत ! ॥ २७९ ॥
इय दुस्सहपियपरिभवहुयवहजालापलित्तसव्वंगो । नियनिद्धजणयविरहणमचयंतो चिंतिउं लग्गो ॥ २८० ॥
ता किं इहेव चिट्ठामि विणयकरणेण पत्तियावेमि । जणयमहवा न संगयमावडियमिमं पि मज्झ फलं ॥ २८१ ॥
गुरुणवयणाइक्कमतरुणो ता निस्सारामि गेहाओ । अन्नं च जणयपरिभवमहियासेउं न सक्केमि ॥ २८२ ॥
जओ–
गयणम्मि निरालंबणमवि परिसक्कंति साहसेक्करसा । माणंसिणो न मणयं पि माणभंगं परिसहंति ॥ २८३ ॥
भीसणमसाणपज्जलियहुयवहं मत्थयम्मि साहसिया । गुग्गुलभारं धारिंति माणभंगं न माणघणा ॥ २८४ ॥
अवि कालकूडकवलणमसुहं सुहमायरंति पियमाणा । न उणो मुयंति मरणे वि माणमाणिक्कधणमणहं ॥ २८५ ॥
अवि समरमरणमवि देसगमणमवि बंधुमुयणमिच्छंति । माणघणा न उ नियनिद्धबंधुजणियं पराभवणं ॥२८६॥

गगनाभोग इवानूरुरक्तसन्ध्यानुरागसंवलितः । राजते हस्ती कुमारप्रहारप्रगलद्रुधिरौघः ॥ २७४ ॥
विस्फुरितविद्युद्वलयावनद्धपञ्चवर्णशक्रकोदण्डः । नवजलधर इव राजते करिराजो रुधिरसञ्छन्नः ॥ २७५ ॥
ततोऽवतीर्य कुमारः करीन्द्रस्कन्धाच्छुद्धपरिणामः । उत्क्षिप्यबालां मुञ्चति निरुपद्रवे स्थाने ॥ २७६ ॥
ज्ञात्वा राजा करिराजव्यतीकरं स्नेहनिर्भरमना अपि । अत्यन्तं क्रुद्धो दुर्घर्षभ्रुकुटिभासुरितभालतलः ॥ २७७ ॥
स्फुरिताधरभयजनको गुञ्जारूणवदन-नयनदुष्प्रेक्ष्यः । घृतसिक्तहुताशनराशिसन्निभो भणितुमारब्धः ॥ २७८ ॥
रे रे कुलपांशन ! पापकर्म ! गुरुवचनलङ्घनसतृष्ण ! । अपसर दृष्टिपथान्मम जीवितसमकरिकृतान्त ! ॥ २७९ ॥
इति दुःषहपितृपरिभवहुतवहज्वालाप्रदिप्तसर्वाङ्गः । निजस्निग्धजनकविरहणमपार्यन् चिन्तयितुं लग्नः ॥ २८० ॥
ततः किमिहैव तिष्ठामि विनयकरणेन प्रत्यापयामि । जनकमथवा न संगतमापतितमिममपि मम फलम् ॥ २८१ ॥
गुरुजनवचनातिक्रमतरोस्ततो निःसरामि गृहात् । अन्यच्च जनकपरिभवमध्यासितुं न शक्नोमि ॥ २८२ ॥
यतः -
गगने निरालम्बनमपि परिसर्पन्ति साहसैकरसाः । मनस्विनो न मनागपि मानभङ्गं परिषहन्ते ॥ २८३ ॥
भीषणश्मशानप्रज्वलिहुतवहं मस्तके साहसिकाः । गुग्गुलभारं धरन्ति मानभङ्गं न मानधनाः ॥ २८४ ॥
अपि कालकूटकवलनमसुखं सुखमाचरन्ति पिबन्तः । न पुन र्मुञ्चन्ति मरणेऽपि मानमाणिक्यधनमनघम् ॥ २८५ ॥
अपि समरमरणमपि देशगमनमपि बन्धुमुञ्चनमिच्छन्ति । मानधना न तु निजस्निग्धबन्धुजनितं पराभवनम् ॥ २८६ ॥

इय चिंतिऊण कुमरो परियणमाभासिऊण सप्पणयं । सम्माणिऊण समुचियमाभरणाईहिं तं भणइ ॥ २८७ ॥
भो भो ! जणयाणाए गंतव्वं ता मए विएसम्मि । समयम्मि पुणो तुब्भे पुणरवि संभालइस्सामि ॥ २८८ ॥
ते वि हु विओयपसरियवाहजलाउत्तलोयणा जाया । पियवयणपुव्वमाभासिऊणधीरेण धीरविया ॥ २८९ ॥
सीलमई पुण भणिया पिए ! तुमं जाहि जणयगेहम्मि । तायमणुयत्तमाणो गमिस्समहयं विदेसम्मि ॥ २९० ॥
तं सोऊणं दुस्सहविओगदुहमारमारियसरीरा । बाहजलाऊरियनयणसंपुडा रोविउं लग्गा ॥ २९१ ॥
किं रुयसि पिए ! ? आवंति आवयाओ भवे वसंताण । जीवाणमओ सुंदरि ! विवेइणो हुंति धीरमणा ॥ २९२ ॥
तीयुत्तं मणवल्लह ! धीरमणा वि हु रुवामि जमयंडे । मं मोत्तुं वयसि तुमं तं मह गुरुदुक्खमन्नं च ॥ २९३ ॥
सामि ! तुमं सिक्खविओ जइ सुमरसि तायसंतियं वयणं । एक च्चिय मह धूया छाय व्व तए न मोत्तव्वा ॥ २९४ ॥
तेणुत्तं सव्वमहं सरामि सुंदरि ! परं तुमं मग्गे । कहमहियाससि सुहिया सीयाऽऽयवसंभवं दुक्खं ? ॥ २९५ ॥
सा भणइ सामि ! मग्गो वि मह घरं काणणं पि कुलभवणं ।
कक्कससिला वि सेज्जा गिरी वि सुहओ मही वि पिया ॥ २९६ ॥
जत्थ तुमं मह पासे किं मह जणएण ? किं व ससुरेण ? । मणनिव्वुइमेव सुहं सामि ! सयाणा पसंसंति ॥ २९७ ॥
जइ एवं समदुक्खा ता पउणा होसु जेण वच्चामो । संपयमेव पयाणं किज्जइ किर किं वियप्पेण ? ॥ २९८ ॥
एवं सो सकलत्तो सिसुसुयजुयलो सुहिल्लिदुल्ललिओ । एगागी पयचारी पयत्थिओ साहससहाओ ॥ २९९ ॥

इति चिन्तयित्वा कुमारः परिजनमाभाष्य सप्रणयम् । सन्मान्य समुचितमाभरणादिभिस्तं भणति ॥ २८७ ॥
भो भो ! जनकाज्ञया गन्तव्यं ततो मया विदेशे । समये पुन र्युष्मान् पुनरपि सम्भालिष्यामि ॥ २८८ ॥
तेऽपि हु वियोगप्रसरितबाष्पजलार्द्रलोचना जाताः । प्रियवचनपूर्वमाभाष्य धीरेण धीरिताः ॥ २८९ ॥
शीलमती पुनर्भणिता प्रिये ! त्वं याहि जनकगृहे । तातमनुवर्तमानो गमिष्याम्यहं विदेशे ॥ २९० ॥
तच्छ्रुत्वा दुःषहवियोगदुःखभारभृतशरीरा । बाष्पजलापूरितनयनसम्पूटा रोदितुं लग्ना ॥ २९१ ॥
किं रोदिषि प्रिये ! ? आयान्ति आपदो भवे वसताम् । जीवानामतः सुन्दरि ! विवेकिनो भवन्ति धीरमनसः ॥ २९२ ॥
तयोक्तं मनोवल्लभ ! धीरमनापि खलु रोदिमि यदकाण्डे । मां मुक्त्वा व्रजसि त्वं तन्मम गुरुदुःखमन्यच्च ॥ २९३ ॥
स्वामिन् ! त्वं शिक्षयितो यदि स्मरसि तातसत्कं वचनम् । एका चैव मम दुहिता छायेव त्वया न मोक्तव्या ॥ २९४ ॥
तेनोक्तं सर्वमहं स्मरामि सुन्दरि ! परं त्वं मार्गे । कथमध्यास्यसि सुखिता शीता-ऽऽतपसम्भवं दुःखम् ? ॥ २९५ ॥
सा भणति स्वामिन् ! मार्गोऽपि मम गृहं काननमपि कुलभवनम् ।
कर्कशशिलापि शय्या गिरिरपि सुभगो महयपि प्रिया ॥२९६॥
यत्र त्वं मम पार्श्वे किं मम जनकेन ? किं वा श्वसुरेण ?। मनोनिर्वृत्तिमेव सुखं स्वामिन् ! सुजनाः प्रशंसन्ति ॥ २९७ ॥
यद्येवं समदुःखा तत प्रगुणा भव येन गच्छावः । साम्प्रतमेव प्रयाणं क्रियते किल किं विकल्पेन ? ॥ २९८ ॥
एवं स सकलत्रः शिशुसुतयुगलः सुखकेलिदुर्ललितः । एकाकी पदचारी प्रस्थितः साहससहायः ॥ २९९ ॥

कत्थ तयं ससुरसहं ? जणयपसायाओ कत्थ ते भोगा ? । एक्कपए च्चिय नट्ठा अहो ! हु विहिविलसियमपुव्वं ॥३००॥
इय सो माणेकधणो दुहममुणंतो अभिन्नमुहराओ । वच्चइ विसायरहिओ पियाणुरोहेण भणियं च ॥ ३०१ ॥
वसणे विसायरहिया संपत्तीए अणुत्तुणा हुंति । मरणे वि अणुव्विग्गा साहससारा य सापुरिसा ॥ ३०२ ॥
अह हरिरहिय व्व गुहा गुंफविउत्ता सुकव्ववाणि व्व । चायरहिय व्व लच्छी मुणिमाला पसमवियल व्व ॥ ३०३ ॥
कुमररहिया जयंती न विरायइ सेसगुणसमग्गा वि । अहवाऽवणीयहारा थणत्थली लहइ कइ सोहं ? ॥ ३०४ ॥
पच्चागयपडिबंधो पच्छायावानलेण तवियतणू । राया विसन्नवयणो विन्नतो मंतिवग्गेण ॥ ३०५ ॥
देव ! किमेयमयंडम्मि वज्जदंडप्पहारसममसुहं । तणु-मणसंतावयरं कुमारपरिभवणमावडियं ? ॥ ३०६ ॥
जुत्तमजुत्तं जाणंति देवपाया परं वयं भणिमो । अवियाणियमम्हेहिं वि न संगयं सामिणा विहियं ॥ ३०७ ॥
तिलतुसमेत्तं पि हु कज्जमन्नया ने कहंति निवपाया । मंदरगिरिगरुयं पि हु एयं नायं न अम्हेहिं ॥ ३०८ ॥
कहमवि करयलचडिओ पडिओ चिंतामणी जहा दुलहो । तह देव ! कुमररयणं पाविस्सामो कहमहन्ना ? ॥३०९॥
उद्दालियनिहिरयणा हियसव्वस्सा पणट्ठपरिताणा । निब्भग्गसेहरा सामि ! किं करेमो ? कहिं जामो ? ॥ ३१० ॥
इय दीणमंतिवयणेण चलियसुयसल्लविहुरिओ राया । लल्लक्कमुक्कपोक्को धस त्ति पडिओ धरणिवीढे ॥ ३११ ॥
सिसिरोवयारकरणेण लंभिओ चेयणं परियणेण । पलवइ राया सल्लं चालिंतो सयललोयस्स ॥ ३१२ ॥

कुत्र तकं श्वसुरसुखं ? जनकप्रसादात्कुत्र ते भोगाः ? । एकपदे चैव नष्टा अहो ! हु विधिविलसितमपूर्वम् ॥ ३०० ॥
इति स मानैकधनो दुःखममुणन्नभिन्नमुखरागः । व्रजति विषादरहितः प्रियानुरोधेण भणितं च ॥ ३०१ ॥
व्यसने विषादरहिताः सम्पद्यनभिमानिनो भवन्ति । मरणेऽप्युनुद्विग्नाः साहससाराश्च सत्पुरुषाः ॥ ३०२ ॥
अथ हरिरहितेव गुहा गुम्फवियुक्ता सुकाव्यवाणीव । त्यागरहितेव लक्ष्मी र्मुनिमाला प्रशमविकलेव ॥ ३०३ ॥
कुमाररहिता जयन्ती न विराजति शेषगुणसमग्रापि । अथवाऽपनीतहारा स्तनस्थली लभते कथं शोभाम् ? ॥ ३०४ ॥
प्रत्यागतप्रतिबन्धः पश्चात्तापानलेन तापिततनूः । राजा विषण्णवदनो विज्ञप्तो मन्त्रिवर्गेण ॥ ३०५ ॥
देव ! किमेतदकाण्डे वज्रदण्डप्रहारसममशुभम् । तनुर्मनःसन्तापकरं कुमारपरिभवनमापतितम् ? ॥ ३०६ ॥
युक्तमयुक्तं जानन्ति देवपादा परं वयं भणामः । अपि ज्ञातमस्माभिरपि न संगतं स्वामिना विहितम् ॥ ३०७ ॥
तिलतुषमात्रमपि हु कार्यमन्यदा ने कथयन्ति नृपपादाः । मन्दरगिरिगुरुकमपि खल्वेतज्ज्ञातं नास्माभिः ॥ ३०८ ॥
कथमपि करतलारुढः पतितश्चिन्तामणी यथा दुर्लभः । तथा देव ! कुमाररत्नं प्राप्स्यामः कथमधन्याः ? ॥ ३०९ ॥
आच्छिन्ननिधिरत्ना हृदयसर्वस्वाः प्रनष्टपरित्राणाः । निर्भाग्यशेखराः स्वामिन् ! किं कुर्मः ? क्व यामः ? ॥ ३१० ॥
इति दीनमन्त्रिवचनेन चलितसुतशल्यविधुरितो राजा । भयानकमुक्तपुत्कारो धसेति पतितो धरणीपीठे ॥ ३११ ॥
शिशिरोपचारकरणेन लम्भितश्चेतनां परिजनेन । प्रलपति राजा शल्यं चालयन् सकललोकस्य ॥ ३१२ ॥

हा विहियविणय ! हा गुरुयपणय ! हा दिन्नकणय ! पणयाणं ।
हा विहवधणय ! हा निद्धजणय ! हा जणियरणरणय ! ॥ ३१३ ॥
वच्छ ! गयरायचडियं सुरकरिमारूढममरनाहं व । विवुहजणाणंदयरं तं दच्छीहामि कइया हं ? ॥ ३१४ ॥
हा वच्छ ! विउसगोट्ठी वि तुज्झ विरहम्मि झूरइ सदुक्खं । हा पुत्त ! तुज्झ विरहे रायत्थाणं पि दुहजणयं ॥ ३१५ ॥
सरभसमागच्छंतं पेच्छिस्सं वच्छ ! कत्थ पत्थावे ? । मह पायपणमणत्थं वियसियमुहकमल-नयणजुयं ॥ ३१६ ॥
अंकम्मि निवेसिस्सं अग्घाइस्सं सिरम्मि संतुट्ठो । अद्धासणेण कइया निमंतइस्सामि वच्छ ! तुमं ? ॥ ३१७ ॥
हा वच्छ ! पुरवरीयं परमपमोयप्पया वि पेयवणं । तह पवसियम्मि जाया उव्वेययरी भयं जणइ ॥ ३१८ ॥
एवं अपरिक्खियकारयस्स निव्वुद्धियस्स मह जीहा । सयखंडा किं न गया कुमरं कडुयं भणंतस्स ? ॥ ३१९ ॥
चंपयमाला वि तया परिसिढिलियदेहबंधणा धणियं । सुयसोयविहुरियंगी विलवइ विविहप्पयारेण ॥ ३२० ॥
हा ! मज्झ मंदभग्गाए कहणु जीवियसमो वि जणएण । विहिवसगेणमकम्हा तुममिय निब्भच्छिओ वच्छ ! ? ॥३२१॥
तुममवि वच्छे ! सीलमइ ! बालसुयजुयलसंजुया कह णु । पयचारेणं गच्छसि कइया वि अदिट्ठदुहलेसा ? ॥३२२॥
इय असमंजसवयणाणि जणणि-जणयाणि पलवमाणाणि । संठावियाणि कह कह वि मंतिवग्गेण महुरगिरा ॥३२३॥
सो वि हु कुमरो वच्चइ सिसुसुयजुयकलियसीलमइकलिओ । अमरिसऽवहरियहियओ अक्खंडियपथपयाणेहिं ॥३२४॥
गच्छंतो संपत्तो कोडीसरवणियसयसमाइन्ने । संदणपुरम्मि धण-कणयपउरम्मि ॥ ३२५ ॥

हा विहितविनय ! हा गुरुकप्रणय ! हा दत्तकनक ! प्रणतानाम् ।
हा विभवधनद ! स्निग्धजनक ! हा जनितरणरणक ! ॥ ३१३ ॥
वत्स ! गजराजारुढं सुरकरिमारुढममरनाथमिव । विबुधजनानन्दकरं त्वं द्रक्ष्यामि कदाहम् ? ॥ ३१४ ॥
हा वत्स ! विद्वद्गोष्ठिरपि तव विरहे क्षिणोति सुदुःखम् । हा पुत्र ! तव विरहे राजास्थानमपि दुःखजनकम् ॥ ३१५ ॥
सरभसमागच्छन्तं प्रेक्षिष्ये वत्स ! कुत्र प्रस्तावे ? । मम पादप्रणमनार्थं विकसितमुखकमलनयनयुग्मम् ॥ ३१६ ॥
अङ्के निवेक्ष्यामि आघ्राष्यामि शिरसि सन्तुष्टः । अर्द्धासनेन कदा निमन्त्रयिष्यामि वत्स ! त्वाम् ? ॥ ३१७ ॥
हा वत्स ! पुरवरीयं परमप्रमोदप्रजापि प्रेतवनम् । त्वयि प्रवसिते जातोद्वेगकरी भयं जनयति ॥ ३१८ ॥
एवमपरीक्षितकारकस्य निर्बुद्धिकस्य मम जीव्हा । शतखण्डा किं न गता कुमारं कंटुकं भणतः ॥ ३१९ ॥
चम्पकमालापि तदा परिशिथिलितदेहबन्धनात्यन्तम् । सुतशोकविधुरिताङ्गी विलपति विविधप्रकारेण ॥ ३२० ॥
हा ! मम मन्दभाग्यायाः कथं नु जीवितसमोऽपि जनकेन । विधिवशगेनाकस्मात्त्वमिति निर्भर्त्सितो वत्स ! ? ॥ ३२१ ॥
त्वमपि वत्से ! शीलमति ! बालसुतयुगलसंयुक्ता कथं नु । पदचारेण गच्छसि कदाप्यद्रष्टदुःखलेशा ? ॥ ३२२ ॥
इत्यसमञ्जसवचनानि जननि-जनकौ प्रलपन्तौ । संस्थापितौ कथं कथमपि मन्त्रिवर्गेण मधुरगिरा ॥ ३२३ ॥
सोऽपि हु कुमारो गच्छति शिशुसुतयुगकलितशीलमतीकलितः । अमर्षापहृतहृदयोऽखण्डितपथप्रदानैः ॥ ३२४ ॥
गच्छन् सम्प्राप्तः कोटीश्वरवणिक्शतसमाकीर्णे । स्यन्दनपुरे वेलाकुले धन-कनकप्रचूरे ॥ ३२५ ॥

तत्थ य परिचयविरहाओ किमवि गेहाइयं अयाणंतो । पविसइ पाडलयाभिहमालायारस्स गेहम्मि ॥ ३२६ ॥
सो उण पाडलओ पयइभद्दओ दुत्थिए दयालु य । सगुणप्पिओ पसंतो परोवयारेक्कसिओ य ॥ ३२७ ॥
भणियं च तेण चिट्ठसु मह गेहे होइ कम्मवसगाणं । विसमो दसाविभागो जियाण को विम्हओ भद्द ! ? ॥ ३२८ ॥
जओ-
चंदस्स खओ न हु तारयाण रिद्धी वि तस्स न हु ताण । गरुयाण चडण-पडणं इयरा पुण निच्चपडिय त्ति ॥३२९॥
चिट्ठंति तत्थ मणयं सुहेण परमाऽऽसि दविणजायं जं । आभरणाई कालेण भक्खियं तो विसन्नाइं ॥ ३३० ॥
पाडलएणं भणियं ववसायविवज्जियाण किं दइवो । कत्तो मुहम्मि पाडइ ? ता किं पि करेह ववसायं ॥ ३३१ ॥
कुमरेणुत्तं भो भद्द ! भणसु जं किं चि किच्चमम्हाणं । तेणावि भणियमुच्चिणह मज्झ मलएगदेसाओ ॥ ३३२ ॥
पुप्फाणि कुणह विक्कयमेवं निव्वहह निव्वियप्पेण । जुत्तमिमं ति कुमारो कुणइ तयं चिंतिऊणमिमं ॥ ३३३ ॥
जह जह वाएइ विही विसरिसभंगेहि निट्ठुरं पडहं । धीरा पसन्नवयणा नच्चंति तहा तहा चेव ॥ ३३४ ॥
तप्पभिइ कलाकुसलत्तणेण कुमरो विचित्तमालाओ । गुंथइ सीलमई वि हु ताओ विक्किणइ रायपहे ॥ ३३५ ॥
परमेसा रूववई पयईए पसंतवम्महवियारा । कुणइ वियारे वत्थाऽलंकाररहिया वि ॥ ३३६ ॥
भणियं च-

तत्र च परिचयविरहात् किमपि गृहादिकमजानन् । प्रविशति पाटलकाभिधमालाकारस्य गृहे ॥ ३२६ ॥
स पुनः पाटलकः प्रकृतिभद्रको दुस्थिते दयालुश्च । सगुणप्रियः प्रशान्तः परोपकारैकरसिकश्च ॥ ३२७ ॥
भणितं च तेन तिष्ठ मम गेहे भवति कर्मवशागानाम् । विषमो दशाविपाको जीवानां को विस्मयो भद्र ! ? ॥ ३२८ ॥
यतः -
चन्द्रस्य क्षयो न हु तारकाणामृद्धिरपि तस्य न खलु तेषाम् । गुरुकाणामारोह-पतनमितरे पुनर्नित्यपतिता इति ॥ ३२९ ॥
तिष्ठन्ति तत्र मनाक् सुखेन परमासीद् द्रविणजातं यत् । आभरणादयः कालेन भक्षितं ततो विषण्णाः ॥ ३३० ॥
पाटलकेन भणितं व्यवसायविवर्जितानां किं दैवः । कुतो मुखे पातयति ? ततः किमपि कुरुत व्यवसायम् ॥ ३३१ ॥
कुमारेणोक्तं भो भद्र ! भण यत् किञ्चित्कार्यमस्माकम् । तेनापि भणितमुच्चिनुत मम मलयैकदेशात् ॥ ३३२ ॥
पुष्पाणि कुरुत विक्रयमेवं निर्वहत निर्विकल्पेन । युक्तमिदमिति कुमारः करोति तकं चिन्तयित्वेदम् ॥ ३३३ ॥
यथा यथा वादयति विधि र्विसदृशभङ्गै र्निष्ठुरं पटहम् । धीराः प्रसन्नवदना नृत्यन्ति तथा तथा चैव ॥ ३३४ ॥
तत्प्रभृति कलाकुशलत्वेन कुमारो विचित्रमालाः । ग्रथ्नाति शीलमत्यपि खलु ता विक्रीणाति राजपथि ॥ ३३५ ॥
परमेषा रुपवती प्रकृत्या प्रशान्तकामविकारा । करोति जनानां विकारान् वस्त्रालङ्कारहितापि ॥ ३३६ ॥
भणितं च -

मुद्धाण नाम हियया‌इं हरंति हंत !, नेवच्छकम्मगुणणेण नियंबिणीओ ।
छेया पुणो पय‌इचंगिमरंजणिज्जा, दक्खारसो न महुरिज्ज‌इ सक्कराए ॥ ३३७ ॥
अह अन्नया य दीवंतराओ पत्तेण पोयवणिएण । दिट्ठा य देहिलेणं तओ य सा मयणवसगेणं ॥ ३३८ ॥
भणिया तुह पुप्फाणं विच्छित्ति का वि सुंदरि ! अपुव्वा । ता मह इमाणि सव्वाणि सुयणु ! मोल्लेण देयाणि ॥३३९॥
अन्नत्थ न गंतव्वं कत्थइ सो देइ समहियं दव्वं । सा वि हु धणलोभेणं पइदियहं देइ तस्सेव । ३४० ॥
अह अन्नया य भणिया सीलमई तेण पावकम्मेण । मयणाउरेण सिलम्मि निच्चला हरिउकामेण ॥ ३४१ ॥
जइ एहि जाणवत्ते मह पासे तो बहूण पुप्फाण । सिग्धं पि विक्कओ होइ सा वि तत्थेव संपत्ता ॥ ३४२ ॥
तीए सुद्धसहावाए जाणवत्ते मुणालवेल्लहला । पक्खिता बाहुलया पुप्फाण समप्पणनिमित्तं ॥ ३४३ ॥
तो घेत्तुं पावेणं चडाविया तेण जाणवत्तम्मि । संवरिया नंगरया समुब्भिओ झत्ति सेयवडो ॥ ३४४ ॥
चालेऊणमवल्लइं पेल्लियं पाणियम्मि तं वहणं । आयन्नायड्ढियचावमुक्ककंडुग्गवेगेण ॥ ३४५ ॥
पत्तं पभूयजोयणपमाणमाणम्मि जलहिमज्झम्मि । एत्तो वि गिहे कुमरो पियाए मग्गं पलोएइ ॥ ३४६ ॥
जाव न पत्ता ताहे गवेसिया तेण तत्थ सव्वत्थ । अनियंतेणं कहिओ मालायारस्स वुत्तंतो ॥ ३४७ ॥
तेण वि चउक्क-चच्चरठाणेसु गवेसिया पयत्तेण । तत्तो य नयरबाहिं निरूविया जाव न हु दिट्ठा ॥ ३४८ ॥
ताहे पाडलएणं भणिओ कुमरो नईए परकूले । भद्द ! गवेससु गंतुं कइया वि हु होइ तत्थेव ॥ ३४९ ॥

मुग्धानां नाम हृदयानि हरन्ति हन्त ! नेपथ्यकर्मगुणनेन नितम्बिन्यः ।
छेकाः पुनः प्रकृतिचङ्गिमरञ्जनीया, द्राक्षारसो न मधूर्यते शर्करायाः ॥ ३१७ ॥
अथान्यदा च द्वीपान्तरात्प्राप्तेन पोतवणिजा । दृष्टा च देहिलेन ततश्च सा मदनवशगेन ॥ ३३८ ॥
भणिता तव पुष्पाणां रचना कापि सुन्दरि ! अपूर्वा । ततो ममेमानि सर्वाणि सुतनु ! मूल्येन देयानि ॥ ३३९ ॥
अन्यत्र न गन्तव्यं कुत्रचित् स ददाति समधिकं द्रव्यम् । सापि हु धनलोभेन प्रतिदिवसं ददाति तस्मा एव ॥ ३४० ॥
अथान्यदा च भणिता शीलमती तेन पापकर्मणा । मदनातुरेण शीले निश्चला हर्तुकामेन ॥ ३४१ ॥
यद्येहि यानपात्रे मम पार्श्वे तदा बहूनां पुष्पाणाम् । शीघ्रमपि विक्रयो भवति सापि तत्रैव सम्प्राप्ता ॥ ३४२ ॥
तया शुद्धस्वभावया यानपात्रे मृणालकोमला । प्रक्षिप्ता बाहुलता पुष्पाणां समर्पणनिमित्तम् ॥ ३४३ ॥
ततो गृहीत्वा पापेनारोहिता तेन यानपात्रम् । संवृत्ता नंगरका समुद्भितो झटिति श्वेतपटः ॥ ३४४ ॥
चालयित्वा वल्लकानि प्रेरितं पानीये तं वहनम् । आकर्णाकर्षितचापमुक्तकण्डुकवेगेन ॥ ३४५ ॥
प्राप्तं प्रभूतयोजनप्रमाणमाने जलधिमध्ये । इतोऽपि गृहे कुमारः प्रियाया मार्गं प्रलोकयति ॥ ३४६ ॥
यावन्न प्राप्ता तदा गवेषिता तेन तत्र सर्वत्र । अपश्यता कथितो मालाकारस्य वृत्तान्तः ॥ ३४७ ॥
तेनापि चतुष्क-चत्वरस्थानेषु गवेषिता प्रयत्नेन । ततश्च नगरबहि र्निरुपिता यावन्न खलु दृष्टा ॥ ३४८ ॥
तदा पाटलकेन भणितः कुमारो नद्या परकूले । भद्र ! गवेषय गत्वा कदापि खलु भवति तत्रैव ॥ ३४९ ॥

ते वि हु जणणीविरहे पिउपासं पुत्तया न मुंचंति । तो तेहिं सहिओ च्चिय गवेसणत्थं नईए गओ ॥ ३५० ॥
संठाविऊणमेगं बीयं नेउं नईए परकूले । जावाऽऽगच्छइ पढमाणयणत्थं ताव असुहवसा ॥ ३५१ ॥
सहस च्चिय नइनीरं विद्धिं पत्तं तओ अवसपाओ । पययूरेण नईए कुमरो वोढुं समाढत्तो ॥ ३५२ ॥
भवियव्वयाए पत्तं किं पि हु कट्ठाइयं नईमज्झे । तन्निस्साए पत्तो केत्तियमेत्तम्मि भूभागे ॥ ३५३ ॥
उत्तरिऊण तहाविहतरुपायं पाविउं समुवविट्ठो । चिंतइ विसन्नहियओ विहिविलसियमप्पणो असुहं ॥ ३५४ ॥
पेच्छसु एगपए च्चिय विहिणो वामया हयासस्स । जं चिंतिउं न सक्का न यावि सहिउं न वा कहिउं ॥ ३५५ ॥
भणियं च-
चिंतिज्जइ जं न मणे जुत्तिवियारेण जुज्जइ न जं च । तं पि हयासो एसो सुहमसुहं वा विही कुणइ ॥ ३५६ ॥
तहा-
खणदंसियसुरसरिवित्थाराइं खणसुन्नरन्नसरिसाइं । एयाइं ताइं कम्मिंदयालिणो जीव ! ललियाइं ॥ ३५७ ॥
जणय-जणणीविओगो पियाए विरहो सुयाण विच्छोहो । भूयबलि व्व कुडुंबं दिसोदिसिं धत्तियं विहिणा ॥३५८॥
न तहा जणणी-जणया न तहा मह भारिया तवइ हिययं । जह बाला वणमज्झे दुहावहा नद्धसल्लं व ॥ ३५९ ॥
ता किं करेमि संपइ ? किं वा सरणं जणं पवज्जामि ? ।
विसम-विसंठुलचेट्ठिय ! हयविहि ! वच्चामि भण कत्थ ? ॥ ३६० ॥

तावपि खलु जननीविरहे पितृपार्श्वं पुत्रकौ न मुञ्चतः । ततस्ताभ्यां सहितश्चैव गवेषणार्थं नदीं गतः ॥ ३५० ॥
संस्थाप्यैकं द्वितीयं नीत्वा नद्याः परकूले । यावदागच्छति प्रथममानयनार्थं तावदशुभवशात् ॥ ३५१ ॥
सहसा चैव नदीनीरं वृद्धिं प्राप्तं ततोऽवशप्रायः । पयःपूरेण नद्याः कुमारो वोढुं समारब्धः ॥ ३५२ ॥
भवितव्यतया प्राप्तं किमपि हु काष्ठादिकं नदीमध्ये । तन्निश्रया प्राप्तः कियन्मात्रे भूभागे ॥ ३५३ ॥
उत्तीर्य तथाविधतरुपादं प्राप्य समुपविष्टः । चिन्तयति विषण्णहृदयो विधिविलसितमात्मनोऽशुभम् ॥ ३५४ ॥
पश्यैकपदे चैव मम विधे वामता हताशस्य । यच्चिन्तयितुं न शक्या न चापि सोढुं न वा कथयितुम् ॥ ३५५ ॥
भणितं च -
चिन्त्यते यन्मनसि युक्तिविचारेण युज्यते न यच्च । तदपि हताश एष सुखमसुखं वा विधिः करोति ॥ ३५६ ॥
तथा -
क्षणदर्शितसुरसरिद्विस्तराणि क्षणशून्यारण्यरसितानि । एतानि तानि कर्मेन्द्रजालिनो जीव ! ललितानि ॥ ३५७ ॥
जनक-जननीवियोगः प्रियाया विरहः सुतयो र्विरहः । भूतबलीव कुटुम्बं दिशोदिशि क्षिप्तं विधिना ॥ ३५८ ॥
न तथा जननी-जनकौ न तथा मम भार्या तापयति हृदयम् । यथा बालौ वनमध्ये दुःखावहौ नद्धशल्यमिव ॥ ३५९ ॥
ता किं करोमि सम्प्रति ? कं वा शरणं जनं प्रपद्ये ? ।
विषम-विसंस्थूलचेष्टिते ! हतविधे ! गच्छामि भण कुत्र ? ॥ ३६० ॥

अहवा गरुयाणं पि हु जायइ वसणं विहिम्मि विवरीए। किर किं चोज्जं अम्हारिसाण ? विउसा भणंति जओ ॥३६१॥

अलङ्कारः शङ्का करनरकपालं परिकरः, प्रशीर्णाङ्गे भृङ्गी वसु च वृष एको गतवयाः ।
अवस्थेयं स्थाणोरपि भवति यत्रामरगुरोर्विधौ वक्रे मूर्ध्नि स्थितवति वयं के पुनरमी ? ॥ ३६२ ॥

ता मह सत्थत्थविसारयस्स जुत्तं न सोइउं एवं । इय जा संठवइ मणं ता जं जायं तयं सुणह ॥ ३६३ ॥

सिरिजयवद्धणनयरस्स सामिओ कित्तिधम्मनरनाहो । सूलाइकयायंकेणमुवरओ केवलमपुत्तो ॥ ३६४ ॥

तत्तो तप्पयसमुचियसव्वुत्तमपुरिसरयणनाणत्थं । अहिवासियाणि मंतीहिं पंच दिव्वाणि विहिपुव्वं ॥ ३६५ ॥

हत्थी तुरओ चमरा कलसो छत्तं च ताणि पुरमज्झे । भमिउं चउक्क-चच्चर-तिगाइठाणेसु सव्वत्तो ॥ ३६६ ॥

अनियंताणि पुराओ बाहिं पि विणिग्गयाणि पत्ताइं । जत्थच्छइ नरविक्कमकुमरो तरुणो तलम्मि ठिओ ॥ ३६६ ॥

पढमं चिय गिरिगरुयं थोरोरुकरं करिं नियइ कुमरो । चिंतइ वणहत्थी को वि एस ता कुणउ जमभिमयं ॥३६७॥

एयं न ताव करिरायमागयं दुज्जयं पि दमइस्सं । सिक्खाविऊ वि जम्हा मह मरणं विरहियस्स वरं ॥ ३६८ ॥

जओ-

विरहाओ वरं मरणं विरहो दूमइ निरंतरं देहं । ता सेयं मरणं चिय जेण समप्पंति दुक्खाइं ॥ ३६९ ॥

मरणम्मि निच्छियमई कुमरो तं जाव नियइ सम्ममिमं । तो तं लीलायतं जिंभायंतं च सोममुहं ॥ ३७० ॥

तम्मग्गेणं तुरयं छत्ताईयं च पासिउं कुमरो । चिंतइ मणम्मि कारणमिह किं पि न एस वणहत्थी ॥ ३७१ ॥

तिपयाहिणिय कुमारं गलगज्जियजलहिगहिरगज्जीए । उक्खिविऊण करेणं सखंधमारोविओ कुमरो ॥ ३७२ ॥

अथवा गुरुकाणामपि खलु जायते व्यसनं विधौ विपरीते । किल किमाश्चर्यमस्मादृशानां ? विद्वांसो भणन्ति यतः ॥ ३६१॥

ततो मम शास्त्रार्थविशारदस्य युक्तं न शोचितुमेवम् । इति यावत्संस्थापयति मनस्तावद्यज्जातं तच्छृणुत ॥ ३६३ ॥

श्री जयवर्धननगरस्य स्वामी कीर्तिधर्मनरनाथः । शूलादिकृतातङ्केनोपरतः केवलमपुत्रः ॥ ३६४ ॥

ततस्तत्पदसमुचितसर्वोत्तमपुरुषरत्नज्ञानार्थम् । अधिवासितानि मन्त्रिभिः पञ्च दिव्यानि विधिपूर्वम् ॥ ३६५ ॥

हस्ती तुरगश्चमरौ कलशश्छत्रं च तानि पुरमध्ये । भ्रान्त्वा चतुष्क-चत्वर-त्रिकादिस्थानेषु सर्वतः ॥ ३६६ ॥

अपश्यन्ति पुराद्बहिरपि विनिर्गतानि प्राप्तानि । यत्रास्ते नरविक्रमकुमारस्तरोस्तले स्थितः ॥ ३६६ ॥

प्रथमं चैव गिरिगुरुकं स्थूलोरुकरं करिं पश्यति कुमारः । चिन्तयति वनहस्ती कोऽप्येष ततः करोतु यदभिमतम् ॥३६७॥

एनं न तावत्करिराजामागतं दुर्जयमपि दमिष्यामि । शिक्षाविदुरपि यस्मान्मम मरणं विरहितस्य वरम् ॥ ३६८ ॥

विरहाद्वरं मरणं विरहो दुनोति निरन्तरं देहम् । ततः श्रेयं मरणं चैव येन समाप्यन्ति दुःखानि ॥ ३६९ ॥

मरणे निश्चितमतिः कुमारस्तं यावत्पश्यति सम्यगिमम् । तदा तं लीलायन्तं जृम्भयन्तं च सौम्यमुखम् ॥ ३७० ॥

तन्मार्गेण तुरगं छत्रादिकं च दृष्ट्वा कुमारः । चिन्तयति मनसि कारणमिह किमपि नैष वनहस्ती ॥ ३७१ ॥

त्रिप्रदक्षिण्य कुमारं गलगर्जितजलधिगम्भीरगर्जिते । उत्क्षिप्य करेण स्वस्कन्धमारोपितः कुमारः ॥ ३७२ ॥

अहिणवजलहरसामलसमुच्चकरिरायसंठिओ कुमरो । सोहइ सिंहकिसोरो व्व विंझगिरिमत्थयारूढो ॥ ३७३ ॥
उक्खिविऊण करेणं निम्मलजलभरियपुन्नकलसेण । विरहग्गितावियतणू अमयरसेणेव अहिसित्तो ॥ ३७४ ॥
हरहास-हारधवलं कुमरस्स सिरम्मि संठियं छत्तं । बिंबं व्व सोमयाए विजिएणं पेसियं ससिणा ॥ ३७५ ॥
ससि-कुंद-संखसेयं चामरजुयलं सुसंगयं ढलियं । जस-कित्तिपुंजजुयलं व्व सहइ पासेसु कुमरस्स ॥ ३७६ ॥
तिपयाहिणिय तुरंगो समुच्चरोमंचकंचुइयगत्तो । हिणहिणइ भणइ पिट्ठम्मि चडसु मह निवपए व्व तुमं ॥ ३७७ ॥
मंचाइमंचकलिए नयरम्मि पवेसिओ विभूईए । वरवत्थरइयउल्लोयरुइरविच्छित्तिरमणीए ॥ ३७८ ॥
विरइयवंदणमाला-मणहरतोरणविराइयदुवारे । रायभवणम्मि पविसइ कयकोउयमंगलपविते ॥ ३७९ ॥
विलसिरवारविलासिणिविरइयमोत्तियचउक्कमणीए । सीहासणे निसीयइ सुपसत्थमुहुत्तसमयम्मि ॥ ३८० ॥
तो समकालपवज्जिरनाणाविहतूरबहिरियदियंतं । पुणरवि महायणेणं विहिओ रज्जाहिसेओ से ॥ ३८१ ॥
महरिहवत्थालंकाररुइरनिस्सेसविग्गहावयवो । पणओ असेससामंत-मंति-नायरयनियरेण ॥ ३८२ ॥
पणया पच्चंतनिवा सव्वे वि हु तप्पयावगुणवसओ । अणुकूलकम्मकलिओ पुणरवि सो संपया वरिओ ॥ ३८३ ॥
नवरं न किं पि लग्गइ चित्ते से पुत्त-पिययमाविरहे । सल्लंति ताणि हियए खणे खणे नद्धसल्लं व ॥ ३८४ ॥
जओ
भुज्जउ जं वा तं वा परिहिज्जउ सुन्दरं व मलिणं वा । इट्ठेण जत्थ जोगो तं चिय रज्जं किमवरेण ? ॥ ३८५ ॥
इओ य-

अभिनवजलधर श्यामलसमुच्चकरिराजसंस्थितः कुमारः । शोभते सिंहकिशोर इव विन्ध्यगिरिमस्तकारूढः ॥ ३७३ ॥
उत्क्षिप्य करेण निर्मलजलभृतपूर्णकलशेन । विरहाग्नितापिततनूरमृतरसेनेवाभिषिक्तः ॥ ३७४ ॥
हरहास-हारधवलं कुमारस्य शिरसि संस्थितं छत्रम् । बिम्बमिव सौम्यतया विजितेन प्रेषितं शशिना ॥ ३७५ ॥
शशि कुन्द-शङ्खश्वेतं चामरयुगलं सुसंगतं ढलितम् । यशः कीर्तिपुञ्जयुगलमिव राजते पार्श्वयोः कुमारस्य ॥ ३७६ ॥
त्रिप्रदक्षिण्य तुरङ्गः समुच्चरोमाञ्चकञ्चुकितगात्रः । हणहणति भणति पृष्टमारूह मम नृपपदमिव त्वम् ॥ ३७७ ॥
मञ्चातिमञ्चकलिते नगरे प्रवेशितो विभूत्या । वरवस्त्ररचितोल्लोचकरूचिररचनारमणीये ॥ ३७८ ॥
विरचितवन्दनमाला-मनोहरतोरणविराजितद्वारे । राजभवने प्रविशति कृतकौतूकमङ्गलपवित्रे ॥ ३७९ ॥
विलसद्वारविलासिनिविरचितमौक्तिकचतुष्ककमनीये । सिंहासने निषीदति सुप्रशस्तमुर्हूतसमये ॥ ३८० ॥
ततःसमकालप्रवाद्यन्नानाविधतूर्यबधिरितदिगन्तम् । पुनरपि महाजनेन विहितो राज्याभिषेकस्तस्य ॥ ३८१ ॥
महार्हवस्त्रालङ्काररुचिरनिःशेषविग्रहावयवः । प्रणतोऽशेषसामन्त-मन्त्रि-नागरकनिकरेण ॥ ३८२ ॥
प्रणताः प्रत्यन्तनृपाः सर्वेऽपि हु तत्प्रतापगुणवशतः । अनुकूलकर्मकलितः पुनरपि स संपद्वृत्तः ॥ ३८३ ॥
नवरं न किमपि लगति चित्ते तस्य पुत्र-प्रियतमाविरहे । शल्यन्ति तानि हृदये क्षणे क्षणे नद्धशल्यमिव ॥ ३८४ ॥
यतः -
भुञ्जतु यद्वा तद्वा परिहरतु सुन्दरं वा मलिनं वा । इष्टेन यत्र योगस्तच्चैव राज्यं किमपरेण ? ॥ ३८५ ॥
इतश्च -

जिणसमयभणियविहिणा वियाणियासेससमयसब्भावो । छत्तीससूरिगुणरयणरोहणो रुद्धमणपसरो ॥ ३८६ ॥
खंतीनिवासगेहं महवगुणविजियदुज्जयमाणभडो । अज्जवनिज्जियमाओ मुत्तीबलविजियलोहखलो ॥ ३८७ ॥
तवतेयदित्ततणुओ संजमसंजमियकरणहयपसरो । सच्चवसीकयभुवणो सोयसमुज्जलसमायारो ॥ ३८८ ॥
आकिंचन्नविभूसियदेहो बंभवयगुणपवित्ततणू । सुविसुद्धधम्मदसभेयरयणसमलंकियसरीरो ॥ ३८९ ॥
दंसणमेत्तेण वि भवियनिवहनिम्महियचित्तसंतावो । परमालवणसुहारसपवाहनिव्ववियजणहियओ ॥ ३९० ॥
विहरंतो संपत्तो समंतभद्दाभिहाणमुणिवसभो । जयवद्धणपुरपरिसरबहिरुज्जाणेसमवसरिओ ॥ ३९१ ॥
सोऊण तयागमणं भत्तिभरुल्लसियबहलरोमंचा । के वि हु वंदणवडियाए निग्गया सूरिपायाणं ॥ ३९२ ॥
के वि हु कोउयवसओ के वि हु पत्ता पराणुवत्तीए । संसयवोच्छेयत्थं च पत्थिया तत्थ के वि नरा ॥ ३९३ ॥
राया वि मुणियमुणिनाहवइयरो रइय (विमल)नेवच्छो । पियपुत्त-पियावुत्तंतपुच्छणत्थं समणुपत्तो ॥ ३९४ ॥
सव्वेसुं पि जहारिहमुवविट्ठेसुं विसिट्ठलोएसुं । मुणिनाहो नवनीरयगज्जियगंभीरवाणीए ॥ ३९५ ॥
पारद्धो धम्मकहं कहिउं कारुन्नपुन्नभवणो । भवियजणबोहणत्थं सत्थत्थविसारओ भयवं ॥ ३९६ ॥
तं जहा-
खणदिट्ठनट्ठविहवे खणपरियट्टंतविविहसुह-दुक्खे । खणसंजोय-विओए नत्थि सुहं किं पि संसारे ॥ ३९७ ॥
जओ-
जीयं जोव्वणमिड्ढी पियसंजोगा य अत्थिरं सव्वं । खणदिट्ठनट्ठरूवं नहम्मि गंधव्वनयरं व ॥ ३९८ ॥

जिनसमयभणितविधिना विज्ञाताशेषसमयसद्भावः । षट्त्रिंशत्सूरिगुणरत्नरोहणो रुद्धमनःप्रसरः ॥ ३८६ ॥
क्षान्तिनिवासगृहं मार्दवगुणविजितदुर्जयमानभटः । आर्जवनिर्जितमायो मुक्तिबलविजितलोभखलः ॥ ३८७ ॥
तपस्तेजोदिप्ततनूः संयमसंयमितकरणहयप्रसरः । सत्यवशीकृतभुवनः शौचसमुज्वलसमाचारः ॥ ३८८ ॥
आकिञ्चनविभूषितदेहो ब्रह्मवयगुणपवित्रतनूः । सुविशुद्धधर्मदशभेदरत्नसमलङ्कृतशरीरः ॥ ३८९ ॥
दर्शनमात्रेणापि भविकनिवहनिर्मथितचित्तसन्तापः । परमालपनसुधारसप्रवाहनिर्वापितजनहृदयः ॥ ३९० ॥
विहरन् सम्प्राप्तः समन्तभद्राभिधानमुनिवृषभः । जयवर्धनपुरपरिसरबहिरुद्याने समवसृतः ॥ ३९१ ॥
श्रुत्वा तदागमनं भक्तिभरोल्लसितबहलरोमाञ्चाः । केऽपि हु वन्दनप्रत्ययान्निर्गताः सूरिपादानाम् ॥ ३९२ ॥
केऽपि हु कौतूकवशात्केऽपि हु प्राप्ताः परानुवृत्या । संशयव्युच्छेदार्थं च प्रस्थितास्तत्र केऽपि नराः ॥ ३९३ ॥
राजापि मुणितमुनिनाथव्यतीकरो रचित (विमल) नेपथ्यः । पितृपुत्र-प्रियावृतान्तपृच्छनार्थं समनुप्राप्तः ॥ ३९४ ॥
सर्वेष्वपि यथार्हमुपविष्टेषु विशिष्टलोकेषु । मुनिनाथो नवनीरदगर्जितगम्भीरवाण्या ॥ ३९५ ॥
प्रारब्धो धर्मकथां कथयितुं कारुण्यपुण्यमनोभवनः । भविकजनबोधनार्थं शास्त्रार्थविशारदो भगवान् ॥ ३९६ ॥
तं यथा-
क्षणदृष्टनष्टविभवे क्षणपरिवर्तमानविविधसुख-दुःखेः । क्षणसंयोग-वियोगे नास्ति सुखं किमपि संसारे ॥ ३९७ ॥
यतः -
जीवं यौवनमृद्धिः प्रियसंयोगाश्चास्थिरं सर्वम् । क्षणदृष्टनष्टरुपं नभसि गान्धर्वनगरमिव ॥ ३९८ ॥

तथाहि-

खरपवणपणुन्नकुसग्गलग्गजलबिंदुसच्छहं जीयं । तरणिकरतवियतरुखुडियकुसुमसरिसं च तारुन्नं ॥ ३९९ ॥
सुररायचावलयसच्छहाओ लच्छीओ चलसरूवाओ । विज्जुलयविलसियसमा पियसंजोगा य जीवाणं ॥ ४०० ॥
तम्हा सुर-नर-सिवसोक्खकारए सासए जिणपणीए । परमत्थबंधवे कुणह उज्जमं सुद्धधम्मम्मि॥ ४०१ ॥
इय मुणिवइवयणाओ विणिग्गयं धम्मरयणमभिमुणिउं । संवेयभावियमणा जाया सव्वे वि भवियजणा ॥४०२॥
राया वि हु मुणिवइणो नाणाइसयं वियाणिउं तइया । पत्थुयमत्थं पुच्छिउकामो कामं भणइ एवं ॥ ४०३ ॥
भयवं ! तुब्भे नाणेण नत्थि तं जं न याणह जयम्मि । ता कहह कया होही मह पुत्त-पियाहि संजोगो ? ॥ ४०४ ॥
भयवं पि भणइ नरनाह ! धम्ममेयं सया कुणंतस्स । सव्वं पि धडइ जीवस्स वंछियं वत्थुजायं ति ॥ ४०५ ॥
भयवमसमाहिजोगे धम्मो वि हु तीरए न काउं जे । भवयाणमिव न अम्हं विवेयवियलाण मणथेज्जं ॥ ४०६ ॥
जइ एवं तह वि तुमं निच्चलचितो चरित्तवंताणं । मुणिपुंगवाण सइ पज्जुवासणं कुणसु भणियं च ॥ ४०७ ॥
सेवा वि हु दुलह च्चिय महाणुभावाण पावनिद्दलणी । छायं पि कप्पतरुणो पुन्नविहुणा न पावंति ॥ ४०८ ॥
सो वि हु तह त्ति पडिवज्जिऊण साहूण कुणइ पयसेवं । गुणपक्खवायभावा अलंकिओ पउरपुन्नेण ॥ ४०९ ॥
एत्तो य नईतीरे ते कुमरे नियइ गोउलियपुरिसो । तम्मि पएसे कत्तो वि आगओ तेसि पुन्नेण ॥ ४१० ॥
तो घेत्तुं (जा) इ वणं, ते नरकुब्बर-जयंतकुमर व्व । अप्पेइ गोउलियमयहरस्स वज्जरियतव्वत्तो ॥ ४११ ॥
तेण वि य अपुत्ताए समप्पिया पणइणीए नियगाए । सा वि हु पालइ अंगुब्भव व्व परमन्नपाणेहि ॥ ४१२ ॥

तथाहि -

खरपवनप्रेरितन्नकुसुमाग्रजलबिन्दुसदृशं जीवितम् । तरणिकरतप्ततरुस्खलितकुसुमसदृशं च तारुण्यम् ॥ ३९९ ॥
सुरराजचापलतासदृशा लक्ष्म्यश्चलस्वरूपाः । विद्युल्लताविलसितसमाः प्रियसंयोगाश्च जीवानाम् ॥ ४०० ॥
तस्मात्सुर-नर-शिवसौख्यकारके शाश्वते जिनप्रणीते । परमार्थबन्धौ कुरुध्वमुद्यमं शुद्धधर्मे ॥ ४०१ ॥
इति मुनिपतिवदनाद्विनिर्गतं धर्मरत्नमभिज्ञा । संवेगभावितमनसो जाताः सर्वेऽपि भविकजनाः ॥ ४०२ ॥
राजापि हु मुनिपते र्ज्ञानातिशयं विज्ञाय तदा । प्रस्तुतमर्थं प्रष्टुकामः कामं भणत्येवम् ॥ ४०३ ॥
भगवन् ! यूयं ज्ञानेन नास्ति तद्यन्न जानीत जगति । ततः कथयत कदा भविष्यति मम पुत्र-प्रियाभिः संयोगः ? ॥४०४॥
भगवानपि भणति नरनाथ ! धर्ममिमं सदा कुर्वतः । सर्वमपि घटयति जीवस्य वाञ्छितं वस्तुजातमिति ॥ ४०५ ॥
भगवन्नसमाधियोगे धर्मोऽपि हु शक्यते न कर्तुं ये । भवतामिव नास्माकं विवेकविकलानां मनः स्थैर्यम् ॥ ४०६ ॥
यद्येवं तथापि त्वं निश्चलचित्तश्चारित्रवताम् । मुनिपुङ्गवानां सदा पर्युपासनं कुरु भणितं च ॥ ४०७ ॥
सेवापि हु दुर्लभा चैव महानुभावानां पापनिर्दलनी । छायापि कल्पतरोः पुण्यविहीना न प्राप्नुवन्ति ॥ ४०८ ॥
सोऽपि हु तथेति प्रतिपद्य साधूनां करोति पदसेवाम् । गुणपक्षपातभावादलङ्कृतः प्रचूरपुण्येन ॥ ४०९ ॥
इतश्च नदीतीरे तौ कुमारौ पश्यति गोकुलिकपुरुषः । तस्मिन् प्रदेशे कुतोऽप्यागतस्तयोः पुण्येन ॥ ४१० ॥
ततो गृहीत्वा याति वनं तौ नरकुबेर-जयन्तकुमाराविव । अर्पयति गोकुलिकमहत्तरस्य कथिततद्वार्तः ॥ ४११ ॥
तेनापि चापुत्रायाः समर्पितौ प्रणयिन्या निजकायाः । सापि हु पालयत्यङ्गोद्भवाविव परमान्नपानैः ॥ ४१२ ॥

सो वि हु मणदइओ नरवइस्स कोसल्लियाणि धेत्तूण । वच्चइ रायसमीपे अहऽन्नया ते वि सह पिउणा ॥ ४१३ ॥
राहार्डिं काऊण चलिया अम्हे वि आगमिस्सामो । नयरस्स दंसणत्थं पत्तो सो तेहिं समयं पि ॥ ४१४ ॥
जा नियइ निवो तो दोवि दारए अणमिसाए दिट्ठीए । ता नायं जह एए मज्झ सुया कहइ मह हिययं ॥ ४१५ ॥
पुट्ठेण मयहरेणं तहेव कहियं निबंधओ सव्वं । तो काउं उच्छंगे नेहवसा भरियगलसरणी ॥ ४१६ ॥
किमपि परुन्नो राया गलंतनयणंसुधोवियकवोलो । भणइ सुया एए ते मह मिलिया गुरुपसाएणं ॥ ४१७ ॥
बीयम्मि दिणे गुरुणो कहिओ सव्वो वि पुत्तवुत्तंतो । केत्तियमेत्तं भो भद्द ! साहुसेवाए फलमेयं ॥ ४१८ ॥
अज्ज वि होही तुह पिययमाए जोगो वि थेवदिवसेहिं । अहरीकयकप्पद्दुममाहप्पा जेण मुणिसेवा॥ ४१९ ॥
तहा हि-
हरइ रुयं दलइ दुहं जणइ समाहिं समीहियं कुणइ । अवणेइ आवयाओ मुणिसेवा कामधेणु व्व ॥ ४२० ॥
एवं राया संजायपच्चओ कुणइ साहुपयसेवं । पालइ रज्जं निव्वुयहियओ अइगमइ दियहाणि ॥ ४२१ ॥
सा वि हु सीलमई देहिलेण जलहिम्मि दढमणज्जेण । नाउं हरिज्जमाणं अप्पाणं निवडिया वहणे ॥ ४२२ ॥
मुच्छानिमीलियच्छी विहिया सिसिरोवयारओ सत्था ॥ अइदुसहविरहदुहभारभारिया पलविउं लग्गा ॥ ४२३ ॥
हा जलहिदेवयाओ ! हा पवहणदेवयाओ ! हा सुयणा ! इह अत्थि कोइ जो मं रक्खइ पावेण हीरंतं ॥ ४२४ ॥
हा ताय ! दुहियवच्छल ! हा ससुर ! सिणेहसार ! हा दइय ! । मह पाणप्पिय ! तायसु हीरंतिं सरणरहियं मं ॥ ४२५ ॥
तं पेच्छिऊण सहस त्ति विहियकरसंपुडो वहणसामी । भणइ सविणयं सुंदरि ! मा रोयसु सुणसु विन्नत्तिं ॥ ४२६ ॥

सोऽपि हु मनोदयितो नरपतेरुपहाराणि गृहीत्वा । व्रजति राजसमीपेऽथान्यदा तावपि सह पित्रा ॥ ४१३ ॥
राटिं कृत्वा चलितावावामप्यागमिष्यावः । नगरस्य दर्शनार्थं प्राप्तः स ताभ्यां समकमपि ॥ ४१५ ॥
यावत्पश्यति नृपस्तौ द्वावपि दारकावनिमेषया दृष्ट्या । तावज्जातं यथैतौ मम सुतौ कथयति मम हृदयम् ॥ ४१६ ॥
पृष्टेन महत्तरेण तथैव कथितं निर्बन्धात्सर्वम् । ततः कृत्वोत्सङ्गे स्नेहवशाद्धृतगलसरणी ॥ ४१६ ॥
किमपि प्ररुदितो राजा गलन्नयनाश्रुधौतकपोलः । भणति सुतावेतौ तौ मम मिलितौ गुरुप्रसादेन ॥ ४१७ ॥
द्वितीये दिने गुरोः कथितः सर्वोऽपि पुत्रवृत्तान्तः । कियन्मात्रं भो भद्र ! साधुसेवया फलमेतत् ॥ ४१८ ॥
अद्यापि भविष्यति तव प्रियतमाया योगोऽपि स्तोकदिवसैः । अधरीकृतकल्पद्रुममाहात्म्या येन मुनिसेवा ॥ ४१९ ॥
तथाहि -
हरति रुग् दलयति दुःखं जनयति समाधिं समीहितं करोति । अपनयत्यापदो मुनिसेवा कामधेनुरिव ॥ ४२० ॥
एवं राजा सञ्जातप्रत्ययः करोति साधुपदसेवाम् । पालयति राज्यं निर्वृत्तहृदयोऽतिगमयति दिवसानि ॥ ४२१ ॥
सापि हु शीलमती देहिलेन जलधौ दृढमनार्येण । ज्ञात्वा ह्रियमानमात्मानं निपतिता वहने ॥ ४२२ ॥
मूर्च्छानिमीलिताक्षी विहिता शिशिरोपचारात्स्वस्था । अतिदुःषहविरहदुःखभारभृता प्रलपितुं लग्ना ॥ ४२३ ॥
हा जलधिदेवता ! हा प्रवहणदेवता ! हा स्वजनाः ! । इहास्ति कोऽपि यो मां रक्षति पापेन ह्रियमाणाम् ॥ ४२४ ॥
हा तात ! दुःखितवत्सल ! हा श्वसुर ! स्नेहसार ! हा दयित ! । मम प्राणप्रिय ! त्रायस्व ह्रियमाणीं शरणरहितां माम् ॥४२५॥
तां प्रेक्ष्य सहसेति विहितकरसम्पूटो वहनस्वामी । भणति सविनयं सुन्दरि ! मा रोदीः शृणु विज्ञप्तिम् ॥ ४२६ ॥

वीसत्था होसु खणं अवधारसु मज्झ वयणपरमत्थं । अहमेव ताय तुह सुयणु ! किंकरो पसिय पसयच्छि ! ॥ ४२७ ॥
भवसु मह विउलगिहविभवसामिणी वहसु गेहिणीसद्दं । चयसु विसायं संठवसु अप्पयं मणसमाहीए ॥ ४२८ ॥
निव्ववसु सुयणु ! मं मयणदहणतवियं ससंगमजलेण । इय विन्नत्तिं मह कुणसु करिय करुणं कुरंगच्छि ! ॥ ४२९ ॥
तं सोउं कोवारत्तनयणुभडभिउडिभीसणनिडाला । फुरियाहरुट्ठपक्खलियवयणपस्सिन्नमुहकमला ॥ ४३० ॥
अवसर दिट्ठिपहाओ निक्किव ! निब्भग्गसेहर ! निहीण ! निद्धम्म ! नराहम ! निव्विवेय ! निप्फुट्ट ! निल्लज्ज ! ॥ ४३१ ॥
मा भणसु पुणो एवं मा निवडसु नरयअंधकूवम्मि । निव्विन्नाण ! न याणसि अप्पस्स परस्स य विसेसं ॥ ४३२ ॥
एवं तीए निब्भच्छिओ दढे मोणमस्सिओ वणिओ । लोभाभिहयं च सयं जीवमुवालद्धमारद्धा ॥ ४३३ ॥
हा जीव ! तथा लोभेण विनडिओ मुणसि नेय कवडमिमं । जं मह कज्जत्थमिमो समाहयमत्थ पयच्छंतो ॥४३४॥
वाहियइ अहव झुट्ठेण लोभिओ लोयजंपियं जायं । तमिमं सच्चं संपइ जइ मह सीलस्स माहप्पं ॥ ४३५ ॥
अत्थि तओ देवो वा असुरो वा किन्नरो व जक्खो वा । सन्नेज्झं कुणउ जओ गरुया दुहियम्मि कारुणिया ॥ ४३६ ॥
इय साविय्म्मि सीलप्पभावओ जलहिदेवया खुहिया । पक्खिवइ महावत्ते वहणं कयजलयवद्दलया ॥ ४३७ ॥
वायाविद्धं परिभमइ पवहणं जाव ता नहयलम्मि । सहस त्ति जंपियं जलहिदेवयाए सरोसमिमं ॥ ४३८ ॥
हं हो अणज्ज ! निल्लज्ज ! दुट्ठ ! पाविट्ठ ! चत्तमज्जाय ! सीलमइं सीलमइं महासइं एवमहिखिवसि ॥ ४३९ ॥
संपइ जइ भइणिसमं पिच्छसि परिपालिउं पयत्तेण । अप्पसि पइणो ता तुज्झ जीवियं अन्नहा नत्थि ॥ ४४० ॥
तप्पभिइं भयभीओ भोयण-पाणाइएहिं भइणि व्व । पालंतो गंतव्वं संपत्तो वंछियं ठाणं ॥ ४४१ ॥

विश्वस्ता भव क्षणमवधारय मम वचनपरमार्थम् । अहमेव तातस्तव सुतनु ! किङ्करो प्रसीद प्रसन्नाक्षि ! ॥ ४२७ ॥
भव मम विपुलगृहविभवस्वामिनी वह गृहिणिशब्दम् । त्यज विषादं संस्थापयात्मानं मनःसमाधिना ॥ ४२८ ॥
निर्वापय सुतनु ! मां मदनदहनतप्तं स्वसंगमजलेन । इति विज्ञप्तिं मम कुरु कृत्वा करुणां कुरङ्गाक्षि ! ॥ ४२९ ॥
तत् श्रुत्वा कोपारक्तनयनोद्भटभृकुटिभीषणनिडाला । स्फुरिताधरौष्ठप्रक्षलितवचनप्रस्विन्नमुखकमला ॥ ४३० ॥
अपसर दृष्टिपथान्निष्कृप ! निर्भाग्यशेखर ! निहीन ! । निधर्म ! नराधम ! निर्विवेक ! निस्फुट ! निर्लज्ज ! ॥४३१॥
मा भण पुनरेवं मा निपत नरकान्धकूपे । निर्विज्ञान ! न जानास्यात्मनः परस्य च विशेषम् ॥ ४३२ ॥
एवं तया निर्भिर्त्सितो दृढं मौनमाश्रितो वणिक् । लोभाभिहतं च स्वं जीवमुपालब्धुमारब्धा ॥ ४३३ ॥
हा जीव ! तदा लोभेन विनटितो मुणसि नैव कपटमिदम् । यन्मम कार्यार्थमयं समाहतमर्थं प्रयच्छन् ॥ ४३४ ॥
व्याहरत्यथवाऽसत्येन लोभितो लोकजल्पितं जातम् । तदिमं सत्यं सम्प्रति यदि मम शीलस्य माहात्म्यम् ॥ ४३५ ॥
अस्ति ततो देवो वाऽसुरो वा किन्नरो वा यक्षो वा । सांनिध्यं करोतु यतो गुरुका दुःखिते कारुणिकाः ॥ ४३६ ॥
इति शापिते शीलप्रभावाज्जलधिदेवता क्षुब्धा । प्रक्षिपति महावर्ते वहनं कृतजलदवर्दला ॥ ४३७ ॥
वाताविद्धं परिभ्रमति प्रवहणं यावत्तावन्नभस्तले । सहसेति जल्पितं जलधिदेवतया सरोषमिदम् ॥ ४३८ ॥
हं हो अनार्य ! निर्लज्ज ! दुष्ट ! पापिष्ठ ! त्यक्तमर्याद ! । शीलमतीं शीलमतीं महासतीमेवमधिक्षिपसि ॥ ४३९ ॥
सम्प्रति यदि भगिनिसमं प्रेक्षषे परिपाल्य प्रयत्नेन । अर्पयसि पत्युस्तदा तव जीवितमन्यथा नास्ति ॥ ४४० ॥
तत्प्रभृति भयभीतो भोजन-पानादिकै र्भगिनीव । पालयन् गन्तव्यं संप्राप्तो वाञ्छितं स्थानम् ॥ ४४१ ॥

विणिवट्टिऊण भंडं विढवियदविणो गिहं पइ नियत्तो । पडिकूलपवणवसओ पणोल्लियं पवहणं पत्तं ॥ ४४२ ॥
जयवद्धणम्मि नयरे वणिओ धेत्तूण पाहुडं पवरं । वच्चइ निवस्स पासे तेणावि सगोरवं दिट्ठो ॥ ४४३ ॥
दीवंतरवत्ताकहणवावडाणं परोप्परं महई । वेला लग्गा जाव य वोलीणो जामिणीपहरो ॥ ४४४ ॥
ता विन्नतो राया बहुदव्वं देव ! पवहणं मज्झ । ता मुयह देव ! पुणरवि समागमिस्सं पहायम्मि ॥ ४४५ ॥
भवियव्वयानिओगेण भूवई भणइ भद्द ! भवओ हं । पच्चइयनियनरेहिं रक्खाविस्सामि तं वहणं ॥ ४४६ ॥
भवया उण मह पासे वसियव्यवं अज्ज मन्निए वणिणा । नरवइणा पेसविया पहाणपुरिसा पवहणम्मि ॥ ४४७ ॥
अणुकूलकम्मवसओ कुमारकयकोउया जलहिवहणे । जणयं विणएणं विन्नवंति सप्पणयम्महाणं ॥ ४४८ ॥
पवहणमदिट्ठपुव्वं ता तद्दंसणकए तहिं ताय ! वच्चामो जइ मन्नसि तो रन्ना पेसिया तत्थ ॥ ४४९ ॥
रयणीए सुहं सुत्ता तत्थेव य पवहणम्मि सेज्जाए । जाए पच्छिमपहरे पडिबुद्धो भणइ लहुभाया ॥ ४५० ॥
भाय ! मह कुसुमसेहर ! कहाणयं किं पि कहसु कमणीयं । वच्चइ सुहेण रयणी जेणेसा तं सुणंतस्स ॥ ४५१ ॥
जेट्ठेण भणियमेयं महंतमच्छेरयावहमपुव्वं । अम्हाणमेव चरियं कहाणयं सुण किमवरेण ॥ ४५२ ॥
लहुएणं संलत्तं तयं पि मह कहसु अवहिओ अहयं । अत्थि इह संदणपुरं वेलाउलसन्नियं वच्छ ! ॥ ४५३ ॥
तत्थ इमो मह जणओ पिउणा अवमाणिओ सह पियाए । देसाओ आगंतुं मालायारस्स गेहम्मि ॥ ४५४ ॥
गुंथइ पुप्फाणि सयं भज्जा विक्किणइ रायमग्गम्मि । खत्तियकुलुब्भवा वि हु अहो ! हु विहिविलसियमपुव्वं ॥४५५॥
न हु एत्तिएण तुट्ठो वच्छ ! इमो हयविही जमम्हाणं । केणावि हु अवहरिया माया वि हु जीवियब्भहिया ॥ ४५६ ॥

विनिवर्त्य भाण्डमर्जितद्रविणो गृहं प्रतिनिवृत्तः । प्रतिकूलपवनवशात् प्रेरितं प्रवहणं प्राप्तम् ॥ ४४२ ॥
जयवर्धने नगरे वणिग्गृहीत्वा प्राभृतं प्रवरम् । व्रजति नृपस्य पार्श्वे तेनापि सगौरवं दृष्टः ॥ ४४३ ॥
द्वीपान्तरवार्ताकथनव्यापृतयोः परस्परं महती । वेला लग्ना यावच्च गतो यामिनिप्रहरः ॥ ४४४ ॥
तदा विज्ञप्तो राजा बहुद्रव्यं देव ! प्रवहणं मम । ततो मुञ्चत देव ! पुनरपि समागमिष्यामि प्रभाते ॥ ४४५ ॥
भवितव्यातिनियोगेन भूपति र्भणति भद्र ! भवतोऽहम् । प्रत्यायितनिजनरै रक्षयिष्यामि तं वहनम् ॥ ४४६ ॥
भवता पुन र्मम पार्श्वे वसितव्यमद्य मन्यमाने वणिजा । नरपतिना प्रेषिताः प्रधानपुरुषाः प्रवहणे ॥ ४४७ ॥
अनुकूलकर्मवशात् कुमारौकृतकौतूकौ जलधिवहने । जनकं विनयेन विज्ञापयतः सप्रणयमस्माकम् ॥ ४४८ ॥
प्रवहणमदृष्टपूर्वं ततस्तदर्शनकृते तत्र तात ! । व्रजावो यदि मन्यसे ततो राज्ञा प्रेषितौ तत्र ॥ ४४९ ॥
रजन्यां सुखं सुप्तौ तत्रैव च प्रवहणे शय्यायाम् । जाते पश्चिमप्रहरे प्रतिबुद्धो भणति लघुभ्राता ॥ ४५० ॥
भ्रात ! मम कुसुमशेखर ! कथानकं किमपि कथय कमनीयम् । व्रजति सुखेन रजनी येनैषा तत्शृणुतः ॥ ४५१ ॥
ज्येष्टेन भणितमेतन्महाश्चर्यावहमपूर्वम् । अस्माकमेव चरित्रं कथानकं शृणु किमपरेण ॥ ४५२ ॥
लघुकेन संलप्तं तकमपि मम कथयावहितोऽहम् । अस्तीह स्यन्दनपुरं वेलाकुलार्द्रं वत्स ! ४५३ ॥
तत्रायं मम जनकः पित्रापमानीतः सह प्रियायाः । देशादागत्य मालाकारस्य गृहे ॥ ४५४ ॥
ग्रथ्नाति पुष्पाणि स्वयं भार्या विक्रीणाति राजमार्गे । क्षत्रियकुलोद्भवापि खल्वहो ! खलु विधिविलसितमपूर्वम् ॥४५५॥
न खल्वेतावता तुष्टो वत्स ! अयं हतविधि र्यदावयोः । केनापि खल्वपहृता मातापि खलु जीविताभ्याधिका ॥४५६॥

तीए गवेसणत्थं अम्ह पिया निग्गओ नईतीरे । नरविक्कमो कुमारो अम्हे मोत्तुं नईकूले ॥ ४५७ ॥
वूढो नईपवाहेण पुन्नजोएण नरवई जाओ । अम्हे वि हु संपत्ता कह वि हु गोउलियपुरिसेण ॥ ४५८ ॥
तेणावि वच्छ ! अम्हे समप्पिया मयहरस्स तस्स गिहे । विद्धिं पत्ता पुन्नेण जोइया जणयपायाणं ॥ ४५९ ॥
संपइ दुक्खत्ताणं जइ माया मिलइ कह वि पुन्नवसा । देव-गुरूणं पायप्पसायओ ता भवे लट्ठं ॥ ४६० ॥
गुणलयणियाए मज्झे सयणीयगयाए अवहियमणाए। सीलमईए सव्वं निसामियं नियचरियमिमं ॥ ४६१ ॥
तत्तो नेहपरव्वसहियया सव्वंगजायरोमंचा । सुरहि व्व नियवच्छगदंसणनिग्गयथणयदुद्धा ॥ ४६२ ॥
जामि बलिं तुम्ह मुहस्स होमि ओयारणं नियसुयाणं । इय जंपंती तुट्टंतकंचुया निग्गया बाहिं ॥ ४६३ ॥
एसा अलक्खणा हं तुम्हाणं दुक्खदाइया माया । ता एह एह चिरविरहियाऽहमारुहह उच्छंगे ॥ ४६४ ॥
इय उच्छंगो काऊण मुक्कपोक्काए तीए तह रुन्नं । कुमरेहिं समं वहणे रुयाविओ जह जणो सव्वो ॥ ४६५ ॥
संठावियाणि निवपरियणेण संजायपरमतोसेण । आणंदरोदणेण वि पज्जत्तं देवि ! बहुएणं ॥ ४६६ ॥
सिग्धं केण वि गंतुं निवेइओ एस वइयरो रन्नो । हरिसाऊरियहियओ सो वि हु अंगे अमायंतो ॥ ४६७ ॥
देवीपवेसणकए नयरम्मि महूसवं समाइसइ । वयणाणंतरनिव्वत्तियम्मि अह तम्मि निवमग्गे ॥ ४६८ ॥
मंगलगीयरवेणं अवलोयंती समग्गपुरसोहं । पविसइ पेच्छिज्जंती नर-नारिसहस्सवंदेणं ॥ ४६९ ॥
वीइज्जंती सियचामरेहिं कणयप्पहाकरेणुगया । विज्जु व्व विरायंती बलायजुयजलयमालाए ॥ ४७० ॥

तस्या गवेषणार्थमस्मत्पिता निर्गतो नदीतीरे । नरविक्रमः कुमार आवां मुक्त्वा नदीकूले ॥ ४५७ ॥
उढो नदीप्रवाहेण पुण्ययोगेन नरपति र्जातः । आवामपि खलु सम्प्राप्तौ कथमपि खलु गौकुलिकपुरुषेण ॥ ४५८ ॥
तेनापि वत्स ! आवां समर्पितौ महत्तरस्य तस्य गृहे । वृद्धिं प्राप्तौ पुण्येन योजितौ जनकपादानाम् ॥ ४५९ ॥
सम्प्रति दुखार्तयो र्यदि माता मिलति कथमपि पुण्यवशात् । देव-गुरुणां पादप्रसादात्ततो भवेच्छोभनम् ॥ ४६० ॥
गुणलयनीयया मध्ये शयनीयगतयाऽवहितमनसा । शीलमत्या सर्वं निशामितं निजकचरित्रमिदम् ॥ ४६१ ॥
ततः स्नेहपरवशहृदया सर्वाङ्गजातरोमाञ्चा । सुरभिरिव निजकवत्सदर्शननिर्गतस्तनदुग्धा ॥ ४६२ ॥
यामि बलिं युवयो र्मुखस्य भवाम्यवतारणं निजसुतयोः । इति जल्पन्ती त्रुटत्कञ्चुका निर्गता बहिः ॥ ४६३ ॥
एषालक्षणाहं युवयो र्दुखदायिका माता । तत एतएत चिरविरहिताहमारुहतामुत्सङ्गम् ॥ ४६४ ॥
इत्युत्सङ्गः कृत्वा मुक्तपुत्कृतया तया तथा रुदितम् । कुमाराभ्यां समं वहने रोदितो यथा जनः सर्वः ॥ ४६५ ॥
संस्थापितानि नृपपरिजनेन सञ्जातपरमतोषेण । आनंदरूदनेनापि पर्याप्तं देवि ! बहुना ॥ ४६६ ॥
शीघ्रं केनापि गत्वा निवेदित एष व्यतीकरो राज्ञः । हर्षापूरितहृदयः सोऽपि खल्वङ्गेऽमायन् ॥ ४६७ ॥
देवीप्रवेशनकृते नगरे महोत्सवं समादिशति । वचनानन्तरनिवर्तितेऽथ तस्मिन्नृपमार्गे ॥ ४६८ ॥
मङ्गलगीतरवेणावलोकयन्ती समग्रपुरशोभाम् । प्रविशति प्रेक्ष्यमाणी नर-नारी सहस्रवृन्देन ॥ ४६९ ॥
वीज्यमानी श्वेतचामरैः कनकप्रभाकरेणुगता । विद्युदिव विराजमाना बलाकयुतजलदमालया ॥ ४७० ॥

पविसइ नरिंदभवणे विद्धाजणविहियमंगलपविते । नारीहिं सलहियगुणा आसीसामुहलवयणाहिं ॥ ४७१ ॥
रायाई पुरलोओ मिलिओ सव्वो वि तम्मि समयम्मि । नच्चइ गायइ पहसइ हरिसियहियओ तयागमणे ॥ ४७२ ॥
रायाइमाणुसाणं तेसिं मिलियाण निरुवमं सोक्खं । जं जायं तं तीरइ कहिउं नऽन्नस्स केणावि ॥ ४७३ ॥
अभयप्पयाणपुव्वं कहिओ देवीए वइयरो वणिणो । निव्विसओ आणतो सो वि हु रन्ना ससव्वस्सो ॥ ४७४ ॥
तप्पभिइ रज्जसोक्खं विसयसुहं मन्नए मणे राया । जं हिययनिव्वुईए विउसा मन्नंति परमसुहं ॥ ४७५ ॥
विवयाए निरुव्विग्गो विहवं पत्तो न गव्वमुव्वहइ । लच्छीए न छलिज्जइ अहो ! हु गरुयाण पुरिसवयं ॥ ४७६ ॥
देइ अणवरयदाणं पयडइ भत्तिं पि सीलवंताणं । रक्खइ तवोवणाइं सया सहावेण सुहभावो ॥ ४७७ ॥
चउरंगवलसमिद्धो पडिहयसत्तू विणिग्गयपयावो । ससहरकरधवलजसो जाओ नरविक्कमनरिंदो ॥ ४७८ ॥
एवं सो गुरुपयपज्जुवासणाजायवंछियपत्थो । संपत्तसावयवयो पत्तो माहिंदकप्पम्मि॥ ४७९ ॥

॥ नरविक्रमाख्यानकं समाप्तम् ॥ १०७ ॥

जह एसो सप्पुरिसो संपइ-विवयासु तुल्लमणवित्ती ।
एयासु तहऽन्नेण वि हरिस-विसाओ न कायव्वो ॥ १ ॥

औद्धत्यदोषरहिता विभवे भवन्ति, दैन्यादपेतमनसो व्यसनेऽपि सन्तः ।
पुण्याशयाः स्तिमितनीरधिनीरकल्पाः, सर्वत्र सम्पदि विपद्यपि तुल्यचित्ताः ॥ २ ॥

॥ इति श्रीमदाम्रदेवसूरिविरचित्तवृत्तावाख्यानकमणिकोशे सम्पद्-विपदोः सत्पुरुषतुल्यताप्रतिपादकः षट्त्रिंशत्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥ ३६ ॥

प्रविशति नरेन्द्रभवने वृद्धाजनविहितमङ्गलपवित्रे । नारिभिः श्लाध्यगुणाऽऽशीषमुखरवचनाभिः ॥ ४७१ ॥
राजादिः पुरलोको मिलितः सर्वोऽपि तस्मिन् समये । नृत्यति गायति प्रहसति हर्षितहृदयस्तदागमने ॥ ४७२ ॥
राजादिमनुष्याणां तेषां मिलितानां निरुपमं सौख्यम् । यज्जातं तच्छक्यते कथयितुं नान्यस्य केनापि ॥ ४७३ ॥
अभयप्रदानपूर्वं कथितो देव्या व्यतीकरो वणिजः । निर्विषय आज्ञप्तः सोऽपि खलु राज्ञा ससर्वस्वः ॥ ४७४ ॥
तत्प्रभृति राज्यसौख्यं विषयसुखं मन्यते मनसि राजा । यद् हृदयनिर्वृत्या विद्वांसो मन्यन्ते परमसुखम् ॥ ४७५ ॥
विपदो निरुद्विग्नो विभवं प्राप्तो न गर्वमुद्वहति । लक्ष्म्या न छल्यतेऽहो ! खलु गुरुकाणां पुरुषव्रतम् ॥ ४७६ ॥
ददात्यनवरतदानं प्रकटयति भक्तिमपि शीलवताम् । रक्षति तपोवनानि सदा स्वभावेण शुभभावः ॥ ४७७ ॥
चतुरंगबलसमृद्धः प्रतिहतशत्रुर्विनिर्गतप्रतापः । शशधरकरधवलयशा जातो नरविक्रमनरेन्द्रः ॥ ४७८ ॥
एवं स गुरुपदपर्युपासनाजातवाञ्छितपदार्थः । सम्प्राप्तश्रावकव्रतः प्राप्तो माहेन्द्रकल्पे ॥ ४७९ ॥

॥ नरविक्रमाख्यानकं समाप्तम् ॥ १०७ ॥

यथैष सत्पुरुष संपद्विपत्सु तुल्यमनोवृत्तिः ।
एतासु तथान्येनापि हर्ष-विषादौ न कर्तव्यौ ॥ १ ॥

પૂજ્યપાદ્ આચાર્યદેવ ઓંકારસૂરીશ્વરજી મહારાજ જ્ઞાનમંદિર ગ્રંથાવલીમાં પ્રાપ્ય પુસ્તકો...

પૂ. આચાર્યદેવ મુનિચન્દ્રસૂરિજી મ. સંપાદિત - સંકલિત પ્રેરિત ગ્રંથો

- વીર નિર્વાણ સંવત ઔર જૈન કાલગણના : લે. પં.શ્રી કલ્યાણવિજયજી ગણિ
- શ્રમણ ભગવાન મહાવીર : પં. શ્રી કલ્યાણવિજયજી ગણિ (હિન્દી)
- જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઈતિહાસ: લે. મોહનલાલ દેસાઈ
- જૈન સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઈતિહાસ ભાગ ૧-૨-૩ : લે. હીરાલાલ ૨. કાપડિયા
- પાઈઅ ભાષાઓ અને સાહિત્ય - હીરાલાલ કાપડિયા
- વ્યવહાર સૂત્ર ભાગ-૧ થી ૬, વ્યવહાર સૂત્ર પ્રતાકારે ભાગ-૧ થી ૭
- દસ વૈકાલિક સૂત્ર : પૂ. આ. ભદ્રંકરસૂરિજી મ.સા.ના વિવેચન સાથે
- પ્રસંગવિલાસ ■ પ્રસંગ અંજન ■ પ્રસંગસિદ્ધિ (હિન્દી) ■ પ્રસંગ રંગ ■ પ્રસંગ સરીતા ■ પ્રસંગકિરણ (હિન્દી)
- પ્રસંગ કલ્પલત્તા ■ હીર સૌભાગ્ય (સટીક) ■ પ્રવચન સારોદ્ધાર વિષમપદ વ્યાખ્યા
- દંસસાવગચરિયં ■ ધર્મરત્નકરંડક ■ કથારત્નાકર ■ પ્રભાવકચરિત્ર (ગુજરાતી ભાષાંતર)
- ઉપમિતિ કથોદ્ધાર કર્તા : પં. શ્રી હંસરત્નવિજયજી ગણિ ■ ઉવાઈયસુત્તમ્ ■ પ્રસંગયાત્રા ■ પ્રસંગ સરિતા
- સુરસુંદરી ચરિયં (સંસ્કૃત છાયા સાથે) - સંપાદિકા સા. મહાયશાશ્રીજી મ.,
- પ્રમાણનયતત્વાલોક (વિવેચન સા. મહાયશાશ્રીજી મ.)
- ચૈત્યવંદન ચતુર્વિંશતિકા - સંપાદિકા સા. મહાયશાશ્રીજી મ.,
- કર્મગ્રંથ : ઉપશમ શ્રેણિ, ક્ષપક શ્રેણિ, શાંતિનાથ ચરિત્ર સાનુવાદ, દાનોપદેશ-માલા સવિવેચન રમ્યરેણુ,

પૂ. આચાર્યદેવ યશોવિજયસૂરીશ્વરજી મહારાજની વાચનાઓ...

- દરિસણ તરસિએ ભાગ ૧-૨
- આપ હિ આપ બુઝાય
- મેરે અવગુણ ચિત્ત ન ધરો
- પરમ ! તારા માર્ગે
- અનુભૂતિનું આકાશ
- ધ્યાન અને કાયોત્સર્ગ
- પ્રવચન અંજન જો સદ્‌ગુરુ કરે
- સમાધિશતક ભાગ-૧ થી ૪
- બિછુરત જાયે પ્રાણ
- પ્રગટ્યો પૂરન રાગ
- ઋષભ જિનેશ્વર પ્રિતમ માહરો
- આત્માનુભૂતિ
- રોમે રોમે પરમ પર્શ
- માણ્યું તેનું સ્મરણ
- એકાન્તનો વૈભવ
- સમુંદ સમાના બુંદ મેં
- સો હિ ભાવ નિર્ગ્રંથ
- આતમજ્ઞાની શ્રમણ કહાવે
- પ્રભુનો પ્યારો સ્પર્શ
- અસ્તિત્વનું પરોઢ
- પ્રભુના હસ્તાક્ષર
- રસો વૈ સઃ
- સાધનાપથ

: સંપર્ક :

- આ. શ્રી ઓંકારસૂરિ આરા. ભવન ગોપીપુરા, સુરત ૧, ટેલી : ૨૪૨૬૫૩૧
- શ્રી વિજય ભદ્ર ચે. ટ્રસ્ટ, ભીલડીયાજી, ૩૮૫૫૩૦, ટેલી : ૦૨૭૪૪/૨૩૩૧૨૯
- આ. શ્રી ઓંકારસૂરિ જ્ઞાનમંદિર, વાવપથકની વાડી, દશા પોરવાડ સોસા., પાલડી, અમદાવાદ, ૩૮૦૦૦૭, ટેલી : ૨૬૫૮૬૨૯૩.

■ ■ ■

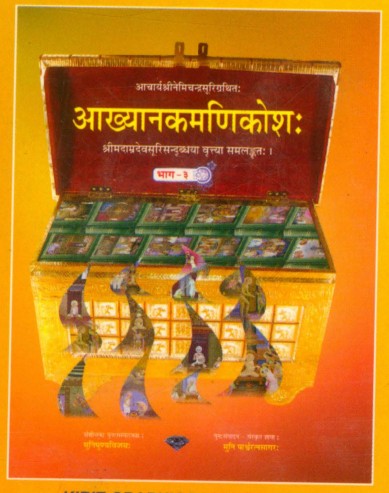

KIRIT GRAPHICS : 079-25330095